ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

# कारण-कार्यनियम

## (नियमसार प्रवचन, भाग-२)

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित
परमागम श्री नियमसार पर
परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
गाथा ३८ से ५५ और कलश ५४ से ७५ पर
धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णाकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

**प्रथम संस्करण :** 1000 प्रतियाँ

**न्यौछावर राशि :** 20 रुपये मात्र

**प्राप्ति स्थान :**

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

# प्रकाशकीय

परम पूज्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसारजी नामक शास्त्र अध्यात्म प्रधान द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सत्शास्त्रों में से एक सर्वोत्कृष्ट तथा चारित्र प्रधान श्रेष्ठतम शास्त्र है।

परम भट्टारक शासननायक श्री महावीरस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अन्य केवली तथा श्रुतकेवली कथित आगम और अध्यात्म विद्या का संकलन चार अनुयोग के असंख्य शास्त्रों में अनेक आचार्यों-मुनिभगवन्तों द्वारा सम्पन्न हुआ है। सनातन दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में कलिकाल सर्वज्ञ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का स्थान अजोड़ है। लगभग चौरासी पाहुड़ शास्त्रों की भेंट आपश्री ने प्रदान की है तथापि अभी मात्र १२-१५ ही उपलब्ध हो सके हैं।

उन उपलब्ध सत्शास्त्रों में समयसार, प्रवचनसार, नियमसार जैसे उत्तमोत्तम परमागमों में हजारों शास्त्रों का सार समाहित हो जाता है। जैसे समयसार में शुद्धनय से नौ तत्त्वों का निरूपण किया है, वैसे नियमसार में शुद्धनय से ही जीव-अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण इत्यादि विषयों का वर्णन है।

वर्तमान में उपलब्ध भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के उत्कृष्ट परमागमों में अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये रचित सर्वोत्कृष्ट श्री समयसारजी में दृष्टिप्रधान कथन से शुद्धात्मा का स्वरूप समझाया है। दिव्यध्वनि के सार श्री प्रवचनसारजी में ज्ञानप्रधान कथन से वही स्वरूप वर्णन किया है। श्री नियमसारजी में चारित्र अधिकार की मुख्यता से उसी स्वरूप का वर्णन है। वीतरागता प्रगट करने के प्रयोजन से दृष्टि-ज्ञान-चारित्र के आश्रयभूत शुद्धात्मा का ही वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है।

श्री नियमसारजी की तो आचार्यदेव ने स्वयं के जीवन की सन्ध्याकाल में निज भावना के निमित्त से रचना की होने से कारणपरमात्मा का बहुत ही घोलन किया है।

इस असाधारण परमागम की टीका भावी तीर्थाधिनाथ अतीन्द्रिय आनन्द के रसिक भावलिंगी मुनिराज श्रीमद् पद्मप्रभमलधारिदेव ने की है। जिनके मुख में से परमागमरूपी मकरन्द झरता है, ऐसे मुनिराज कहते हैं कि गुण के धारक गणधरों से रचित तथा श्रुतधरों की परम्परा से भली प्रकार से व्यक्त किये गये इस परमागम के सार की पुष्टरुचि से यह टीका सहज रची गयी है। टीकाकार ने श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए आध्यात्मिक भावों को स्वानुभूति से प्रमाण करके, परमपारिणामिकभाव में रहे हुए अन्तर रहस्यों को खोला है।

श्री नियमसार भरतक्षेत्र के उत्तमोत्तम शास्त्रों में से एक होने पर भी प्राभृतत्रय की समानता में इसकी प्रसिद्ध बहुत कम है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी विक्रम संवत् १९७२ में नियमसार की भूमिका में सत्य ही लिखते हैं कि '**आज तक श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय संग्रह,**

**प्रवचनसार, और समयसार, ये तीन रत्न ही बहुत प्रसिद्ध हैं। खेद की बात है कि उनके जैसा, तथापि कितने ही अंशों में उनसे भी अधिक ऐसा नियमसार रत्न है, उसकी प्रसिद्धि इतनी कम है कि कोई कोई तो उसका नाम भी नहीं जानते।'**

नियमसार अर्थात् भागवत् शास्त्र (गाथा १८७)। श्रुतपरम्परा में शास्त्रों का प्रणयन शिष्यों को सम्बोधन के लिए अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य से किया जाता है परन्तु इस ग्रन्थाधिराज की रचना आचार्यश्री ने अपने दैनिक पाठ के लिए की होनी चाहिए, क्योंकि आचार्यश्री की ग्रन्थ की अन्तिम उक्ति द्वारा स्पष्ट होता है कि 'णियभावणाणिमित्तं' अर्थात् निजभावना के अर्थ / निमित्त से पूर्वापर दोषों से रहित जिनोपदेश को जानकर मैंने नियमसार नाम का शास्त्र रचा है।

नियमसार अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय की अपेक्षारहित शुद्धरत्नत्रय का स्वरूप। इस ग्रन्थ में पर्याय की मुख्यता से कथन होने पर भी भावलिंगी सन्तों की दृष्टि तो उसके कारण पर ही रहा करती है।

भव्य जीवों को भाग्योदय से इस नियमसार कृति पर तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखनेवाले महासमर्थ मुनिराजश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हुए, जो वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य थे और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। इस शास्त्रजी में १८७ गाथाओं में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्न अनुसार बारह विभागों में प्रस्तुत किया गया है।

१. जीव अधिकार
२ अजीव अधिकार
३. शुद्धभाव अधिकार
४. व्यवहारचारित्र अधिकार
५. परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार
६. निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार
७. परम आलोचना अधिकार
८. शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार
९. परम समाधि अधिकार
१०. परमभक्ति अधिकार
११. परम आवश्यक अधिकार
१२. शुद्धोपयोग अधिकार

जीव अधिकार में तथा अजीव अधिकार में रत्नत्रयरूप नियम का; जीवद्रव्य का तथा पुद्गलादि पाँच अजीव द्रव्यों का सामान्य वर्णन पूर्ण करके आचार्यश्री ने गाथा ३८ से ५५ तक कुल १८ गाथाओं में नियमसार ग्रन्थ की प्राणभूत शुद्धभाव अधिकार की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भी कलश / श्लोक क्रमांक ५५ से ७५ तक कुल २२ श्लोकों में आचार्य कुन्दकुन्ददेव की मूल गाथाओं के रहस्य को परिस्पष्ट किया है।

**हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।**
**अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है ॥३८॥**

हेय-उपादेय तत्त्व के स्वरूप का निरूपण करती हुई इस ३८वीं गाथा से शुद्धभाव अधिकार

की मंगलमय शुरुआत की गयी है। प्रस्तुत गाथा में आत्मा को 'आत्मा' ही वास्तव में उपादेय है; इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं है। इस त्रिकाल सत्य को समझाते हुए टीकाकार के आत्मप्रदेशों से निम्न काव्य स्फुरित हो उठता है।

**'जयति समयसारः सर्वतत्त्वैकसारः'**

तत्पश्चात् गाथा ३९ से ४६ में शुद्ध जीव को (कलश ५४) समस्त परद्रव्यों से, परभावों से और पर्यायभावों से पृथकृत्व सिद्ध करते हुए समझाया गया है कि स्वभाव (विभावस्वभाव) के, मानापमान भाव के, हर्ष-अहर्ष के स्थान नहीं हैं; प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बन्ध के तथा उदय के स्थान नहीं हैं; चतुर्गतिरूप भवभ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं है। शुद्धात्मा को समस्त विभावभावों का अभाव दर्शाते हुए आचार्यश्री लिखते हैं कि आत्मा निर्दण्ड, निर्द्वन्द्व, निर्मम, निःशरीर (शरीररहित) निराग, निर्दोष, निर्भय, निरालम्ब, और निर्मूढ़ है। निर्ग्रन्थ, निष्काम, निष्क्रोध, निर्मान, निःशल्य, निर्मद तथा सर्वदोष विमुक्त है।

तत्पश्चात् दो गाथाओं में (गाथा ४५ और ४६ में ) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा, उसके स्वरूप का वर्णन करते हुए ग्रन्थकर्ता समझाते हैं कि वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, स्त्री, पुत्र, नपुंसक आदि पर्यायें, संस्थान और संहनन शुद्ध को नहीं है। इससे तू जीव को अरस, अरूप, अगन्ध, अव्यक्त, चेतनागुणवाला अशब्द अलिंगग्रहण, और अनिर्दिष्ट संस्थान जान।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि श्री षट्खण्डागम और श्री समयसारादि परमागमों में उल्लखित सुप्रसिद्ध गाथा '**अरसवरुवमगंध...**' इस शुद्धभाव अधिकार में ही आती है। आगे चलकर द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी और मुक्त जीवों में अन्तर नहीं होने का कथन करते हुए वर्णन करते हैं कि जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे ही भवलीन संसारी जीव हैं। जिससे वे भी जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं।

इतना वर्णन करने के पश्चात् गाथा ५० में शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य ही उपादेय है। ऐसे परमार्थ सत्य के रहस्यों का अपूर्व भावों से परिस्पष्ट किया गया है जो मूलतः पठनीय और मननीय है।

प्रस्तुत शुद्धभाव अधिकार का समापन गाथा ५१ से ५५ तक की पाँच गाथाओं में रत्नत्रय के स्वरूप कथन द्वारा किया गया है।

शुद्धभाव अधिकार की मूल विषयवस्तु को निम्नानुसार विषय बिन्दुओं द्वारा विचार किया जा सकता है—

(१) हेय-उपादेय तत्त्व का स्वरूप

(२) शुद्ध अन्तःतत्त्वस्वरूप शुद्ध जीव का अस्तिपरक स्वरूप

(३) पर से, परभावों से और पर्यायभावों से पृथक् ऐसे शुद्ध जीव का नास्तिपरक स्वरूप

(४) सिद्ध और संसारी जीवों में द्रव्यस्वरूपगत समानता

(५) रत्नत्रय का स्वरूप।

उपसंहाररूप से इतना ही कहा जा सकता है कि शुद्धभाव का अस्ति-नास्तिरूप अनेकान्तमय विवेचन और उसकी उपासना हेतु रत्नत्रयस्वरूप की व्याख्या करके उपेयतत्त्वभूत शुद्ध जीव तथा उपायतत्त्वभूत रत्नत्रय ही इस अधिकार का मुख्य प्रमेय है - ऐसा सिद्ध करने के लिए ही आचार्यश्री ने इस शुद्धभाव अधिकार का अवतरण किया है।

नियम अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो वह, अर्थात् रत्नत्रय। नियमसार अर्थात् नियम का सार अर्थात् शुद्धरत्नत्रय। इस शुद्धरत्नत्रय की प्राप्ति परमतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। इस परमतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दुःखों को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इसलिए सुख के लिए उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य भव्यजीवों को / प्राणीमात्र को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है। इस मुख्य मुद्दे के साथ ही दूसरे बहुत सब विषय इसमें ले लिए गए हैं। इस सम्बन्ध उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है—

'**किञ्चास्य खलु निखिलागमार्थसार्थप्रतिपादनसमर्थस्य....**।' अर्थात् यह नियमसार नामक शास्त्र समस्त आगम के अर्थसमूह का प्रतिपादन करने में समर्थ है...

ग्रन्थ की शुरुआत की गाथा में मार्ग और मार्गफल की जो बात प्रारम्भ की थी, उसका उपसंहार १८६वीं गाथा में प्रस्तुत करके एक श्रेष्ठ और विशिष्ट शिक्षा प्रदान करते हुए लिखते हैं कि

**जो कोई सुन्दर मार्ग की निन्दा करे मात्सर्य में।**
**सुनकर वचन उसके अभक्ति न कीजिये जिनमार्ग में॥१८६॥**

इस शास्त्र के भावों का विवेचन करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री भावविभोर होकर कहते हैं - **टीकाकार मुनिराज ने कार्य के साथ ही त्रैकालिक कारण (कारणशुद्धपर्याय) की बात करके टीका में अलौकिक रहस्य खोले हैं। अहो! जंगल में बसनेवाले और आत्मानन्द में लीन रहनेवाले सन्तों के श्रीमुख से परमागमरूपी अमृत की वर्षा हुई, उसमें आया है कि हे भाई! तेरे धर्म का ध्रुव कारण तो तुझमें सदा विद्यमान है, परन्तु तू उसे कारण नहीं बनाता, इसलिए दुःखी है। अहो! अन्तर का कारण मुनियों के आत्मा में से ही अमृत झरे हैं, उसकी यह अचिन्त्य और अपूर्व बात है। भारतवर्ष के लिए अभी यह बात एकदम नयी है। जिसके महाभाग्य होंगे, उसे यह बात सुनने**

**को मिलती है और जिसे अन्दर में यह बात बैठ गयी, उसका तो कहना ही क्या ? उसका तो बेड़ा पार हो गया।**

सन्तों के अन्तरआत्मा में रहे हुए रहस्यों को खोलनेवाले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये भावों को ग्रहण करके हम भी उन्हें स्वानुभव से प्रमाण करें, यही भावना है।

इस नियमसार शास्त्र पर धारावाही अक्षरश: प्रवचन २१४ हैं। जिन्हें सात भागों में प्रकाशित किया जाएगा।

प्रस्तुत कारण-कार्य नियम, भाग-२ में नियमसार शुद्धभाव अधिकार की गाथा ३८ से ५५ तथा कलश ५४ से ७५ के प्रवचनों को समायोजित किया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अतीन्द्रिय आनन्दरस से सराबोर ऐसे कुल २९ प्रवचन अक्षरश: प्रकाशित किये गये हैं। जिसमें दो प्रवचन सन् १९६६ के वर्ष के भी लिए गये हैं।

प्रवचन प्रकाशन से पूर्व सम्पूर्ण प्रवचनों को सी.डी. से शब्दश: लिखा जाता है। तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार वाक्य पूर्ति हेतु कोष्टक भरा जाता है और प्रकाशन से पूर्व फिर से मिलान किया जाता है। गुजराती भाषा में इस कार्य को डॉ. चेतनभाई दोशी, सुरेन्द्रनगर और श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा सम्पन्न किया गया है। जिसका प्रकाशन राजकोट दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट से हुआ है।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए ................................ के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में कारण नियमस्वरूप स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सभी जीव कार्यनियम अर्थात् निश्चय मोक्षमार्गरूप परिणमित हों, इसी भावना के साथ.....

निवेदक

**ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,** मुम्बई

एवं

**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,** सोनगढ़

## श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

# श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

# अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

## ( संक्षिप्त जीवनवृत्त )

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

**शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

**का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य

विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत

में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और

उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व–पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश–विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं – यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य–गुण–पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

# अनुक्रमणिका


| प्रवचन नं. | दिनांक | गाथा / श्लोक नं. | पृष्ठ नं. |
|---|---|---|---|
| ३३ | ०८-०८-१९८० | ३८ | १ |
| ३४ | ०९-०८-१९८० | ३८ | १७ |
| ३५ | १०-०८-१९८० | ३८ | ३१ |
| ३६ | ११-०८-१९८० | ३८, ४५ | ४५ |
| ३७ | १२-०८-१९८० | ३९, ५५ | ५९ |
| ३८ | ०१-०४-१९६६ | ४०, ५५ | ७७ |
| ३९ | ०२-०४-१९६६ | ४०, ५६ | ९५ |
| ३८ | १३-०८-१९८० | ४०, ५६, ५७ | ११३ |
| ३९ | १४-०८-१९८० | ४१, ५८-५९ | १२९ |
| ४० | १५-०८-१९८० | ४१ | १४६ |
| ४१ | १६-०८-१९८० | ४१ | १६२ |
| ४२ | १७-०८-१९८० | ४१-४२, ५८-५९ | १७५ |
| ४३ | १८-०८-१९८० | ४२ | १९२ |
| ४४ | १९-०८-१९८० | ४३, ६०-६१ | २०८ |
| ४५ | २०-०८-१९८० | ४३ | २२५ |
| ४६ | २१-०८-१९८० | ६२-६४ | २३७ |
| ४७ | २२-०८-१९८० | ४४, ६५-६८ | २५३ |
| ४८ | २३-०८-१९८० | ४४ | २७० |
| ४९ | २४-०८-१९८० | ४५-४६, ६९ | २८२ |
| ५० | २५-०८-१९८० | ४७, ७० | २९८ |
| ५१ | २६-०८-१९८० | ४७-४८, ७१ | ३१५ |
| ५२ | २७-०८-१९८० | ४८, ७२ | ३२९ |
| ५३ | ३१-०८-१९८० | ४९ | ३४४ |
| ५४ | ०१-०९-१९८० | ५०, ७३ | ३५८ |
| ५५ | ०२-०९-१९८० | ५० | ३७२ |
| ५६ | ०३-०९-१९८० | ५० | ३८५ |
| ५७ | ०४-०९-१९८० | ५०-५५, ७४ | ३९६ |
| ५८ | ०५-०९-१९८० | ५०-५५ | ४१३ |
| ५९ | ०६-०९-१९८० | ५१-५५, ७५ | ४२६ |

ॐ

परमात्मने नमः।

# कारण-कार्य नियम

(नियमसार-प्रवचन)

(भाग-२)

## ३
## शुद्धभाव अधिकार

### गाथा-३८

अथेदानीं शुद्धभावाधिकार उच्यते।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ।।३८।।

जीवादिबहिस्तत्त्वं हेयमुपादेयमात्मनः आत्मा।
कर्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्यायैर्व्यतिरिक्तः ।।३८।।

हेयोपादेयतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्। आत्मनः सहजवैराग्यप्रासादशिखरशिखामणेः परद्रव्यपराङ्मुखस्य पञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जित-गात्रमात्रपरिग्रहस्य परमजिनयोगीश्वरस्य स्वद्रव्यनिशितमतेरुपादेयो ह्यात्मा। औदयिकादि-चतुर्णां भावान्तराणाम-गोचरत्वाद् द्रव्यभावनोकर्मोपाधिसमुपजनितविभावगुण-पर्यायरहितः, अनादिनिधनामूर्तातीन्द्रियस्वभावशुद्धसहजपरमपारिणामिकभावस्वभाव-कारणपरमात्मा ह्यात्मा। अत्यासन्नभव्यजीवानामेवम्भूतं निजपरमात्मानमन्तरेण न किञ्चिदुपादेयमस्तीति।

अब शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है।

हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।
अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥

अन्वयार्थः—[ जीवादिबहिस्तत्त्वं ] जीवादि बाह्यतत्त्व [ हेयम् ] हेय हैं; [ कर्म्मोपाधिसमुद्भवगुणपर्यायैः ] कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायों से [ व्यतिरिक्तः ] व्यतिरिक्त [ आत्मा ] आत्मा [ आत्मनः ] आत्मा को [ उपादेयम् ] उपादेय है।

टीकाः—यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है।

जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है। सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि[१] है, परद्रव्य से जो पराङ्मुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। औदयिक आदि चार भावान्तरों[२] को अगोचर होने से जो ( कारणपरमात्मा ) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है तथा अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है। अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त ( अन्य ) कुछ उपादेय नहीं है।

---

प्रवचन-३३, गाथा-३८, शुक्रवार, अषाढ़ कृष्ण १३, दिनांक ०८-०८-१९८०

---

यह नियमसार। कुन्दकुन्दचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। दूसरे ग्रन्थ में ऐस शब्द कहीं आया नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य! मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी.. तीसरे नम्बर में मंगलं कुन्दकुन्दार्यो आता है। वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये यह निमयसार बनाया है। यह 'शुद्धभाव अधिकार' है। यह

१. शिखामणि=शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।

२. भावान्तर=अन्य भाव। (औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक — ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण, उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)

शुद्धभाव, पर्याय की बात नहीं है। ऊपर शुद्धभाव नाम है न? उस शुद्धभाव-शुद्धोपयोग की यहाँ बात नहीं है। अशुभराग और शुभराग दोनों अशुद्ध हैं और रागरहित चिदानन्द भगवान आत्मा का उपयोग शुद्ध है। उसकी बात यहाँ नहीं है। वह शुद्ध पर्याय की बात है। यह शुद्धभाव द्रव्य की बात है। आहाहा!

वस्तु है वस्तु, भाववान। वह शुद्धभावस्वरूप है। त्रिकाल ध्रुव। भाववान आत्मा का भाव शुद्धभाव, वह त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! भाववान ध्रुवपना अथवा आत्मापना जो त्रिकाली ज्ञायकभाव, त्रिकाली परमपारिणामिक, जिसमें किसी कर्म के अभाव अथवा निमित्त की अपेक्षा नहीं, ऐसा परम त्रिकाली स्वभाव को यहाँ शुद्धभाव कहते हैं।

**शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है।** शुद्धभाव का अर्थ इतना—द्रव्य त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर है और जिसमें गुण-गुणी का भेद भी नहीं। शुद्धभाव और आत्मा शुद्धभाव का धारक—ऐसा भेद भी जिसमें नहीं। शुद्धभाव, पवित्र त्रिकाल भाव, आहाहा! पुण्य और पाप आदि भावों को तो शास्त्र में चपलभाव कहा है। चपल, चपलाई है, आकुलता है। उनसे रहित जो भाव है, वह शुद्धोपयोग है, वह तो पर्याय है, परन्तु शुद्धोपयोग की पर्याय किसके आश्रय से उत्पन्न होती है - उसका अधिकार है। समझ में आया? शुद्धभाव का अर्थ पहले किया। कभी सुना नहीं। क्या शुद्धभाव! जय भगवान, भक्ति करना, पूजा करना। सेठ! यह तो सेठ है। वहाँ प्रमुख है। नरम व्यक्ति है। यह सुनने का प्रेम है। यह चीज़ कुछ दूसरी है। प्रभु! क्या कहें? वर्तमान में प्रचलित बात से (यह) कोई दूसरी ही बात है। आहाहा!

शुद्धभाव, गाथा

**जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**
**कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ।।३८।।**

नीचे (हरिगीत)

**हैं हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है।**
**अरु कर्म से उत्पन्न गुणपर्याय से वह बाह्य है॥३८॥**

**टीका - यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को छोड़ने योग्य क्या है? और आदरनेयोग्य क्या है? - उसका कथन है। धर्म की पहली

सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान सम्यग्दर्शन है, तो सम्यग्दर्शन में उपादेय क्या है और हेय क्या है ? सम्यग्दर्शन, पर्याय है.. आहाहा! परन्तु उसमें पर्याय की सन्मुखता किस चीज़ पर जाती है और वह उपादेय कैसा है तथा उसके अतिरिक्त बहिरतत्त्व हेय कैसा है ? ऐसा हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। ऐसा साधारण शब्द लिया है। अब इसका अर्थ भी थोड़े दूसरे प्रकार से करते हैं।

**जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** वास्तव में हेय है – ऐसा नहीं कहा। पाठ में हेय है। परन्तु हेय न कहकर उपादेय नहीं है (–ऐसा कहा)। समझ में आया ? क्या उपादेय नहीं। '**जीवादिबहित्तच्चं**' जीव की वर्तमान पर्याय और संवर, निर्जरा और मोक्ष; पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध – ये सब बहिरतत्त्व हैं। पर्याय जो है, धर्म की पर्याय-संवर-निर्जरा की पर्याय – भी बहिरतत्त्व है, क्योंकि अन्त:तत्त्व में वह चीज़ / पर्याय नहीं है। सूक्ष्म बात है। अरे रे! जिन्दगी मिली है तो सुनना-समझना तो पड़ेगा न, भाई! जिन्दगी चली जाएगी। कहाँ अवतार होगा ? आहाहा! यदि अन्तर में यह वस्तु समझने में नहीं आयी, तो इसके जन्म का कहीं पता नहीं लगेगा। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते थे, वह कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं की भावना के लिये बनाया है। '**जीवादिबहित्तच्चं**' **जीवादि सात तत्त्वों...** यहाँ पुण्य-पाप को भिन्न नहीं लिया। शुभ-अशुभभाव को आस्रव में मिला (दिया है)। जीव की वर्तमान पर्याय और पुण्य-पाप, वह आस्रव, दो.. और संवर-निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष – ये सात तत्त्व हुए। इन सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय, स्वद्रव्य जो भगवान शुद्धभाव त्रिकाल परमात्मस्वरूप, अपना पूर्ण भगवत्स्वरूप 'घट घट अन्तर जिन बसे, घट घट अन्तर जैन; मत मदिरा के पान सो मतवाला समझे न।' अपने अभिप्राय की मदिरा पिये हुए, यह सात तत्त्व क्या है, वह समझते नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि इन सात तत्त्वों में संवर, निर्जरा और मोक्ष भी आये। जो मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने संवर को उपादेय कहा है, निर्जरा को हित का कारण कहते हैं, मोक्ष परम हित है – ऐसा कहा है। वह तो ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है। यहाँ दृष्टि प्रधान कथन में... आहाहा! सम्यग्दर्शन जो अनन्त काल में एक समयमात्र भी चीज़ क्या है, इसने यथार्थ रुचि से सुनी नहीं। '**तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता**' आहाहा! गाथा आती है न ? पद्मनन्दि पंचविंशति की है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ,

जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी पर्याय है तो पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय है; अत: व्यवहार के विषय को यहाँ परद्रव्य कहा है।

परद्रव्य क्यों कहा ? कि जैसे अपने अतिरिक्त परद्रव्य में से धर्म की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती; वैसे संवर-निर्जरा की पर्याय में से धर्म की शुद्धि की नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। सूक्ष्म है, भाई ! धर्म की पर्याय की शुद्धि की वृद्धि, वह पर्याय में से नहीं आती। पर्याय के आश्रय से नहीं आती, पर्याय के लक्ष्य से नहीं आती। उस पर्याय के अतिरिक्त त्रिकाली भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अनन्त गुण का सागर है ( उसके आश्रय से शुद्धि की पर्याय प्रगट होती है ) । आहाहा !

यहाँ तो अभी दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हेय हैं, यह स्वीकार करने में पानी उतर जाता है। पण्डितजी ! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, भगवान का विनय आदि ये सब भाव हेय हैं, राग है। अभी यह राग हेय है, यह समझने में कठिन पड़ता है। आहाहा ! यहाँ तो परमात्मा सौ इन्द्रों के बीच में, सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र एकावतारी, एक भवतारी है। शकेन्द्र इन्द्र है। सौधर्म देवलोक में बत्तीस लाख विमान हैं। एक-एक विमान में बहुतों में तो असंख्य अरब देव हैं। बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य-असंख्य देव हैं। संख्यात देव वाले थोड़े हैं। संख्यात देव वाले हैं, परन्तु वे थोड़े हैं। असंख्य देव वाले बहुत हैं, ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी, करोड़ों अप्सरायें हैं। आहाहा ! शकेन्द्र है। सिद्धान्त में लेख है कि वह एक भवतारी है। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाला है और उसकी एक पटरानी, रानी, देवी है, वह देवी उत्पन्न होती है, तब तो मिथ्यात्व ( होता है ) । स्त्री का उत्पन्न होना मिथ्यात्व से ही उत्पन्न होता है। जहाँ-जहाँ स्त्री उत्पन्न हुई, वह मिथ्यात्व है; इसलिए स्त्रीरूप से उत्पन्न होती है। वह देवी उत्पन्न हुई, तब तो मिथ्यात्व था परन्तु पश्चात् उसके स्वामी इन्द्र, उसके साथ भगवान का जन्मकल्याणक, गर्भकल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक, दीक्षाकल्याणक में साथ जाते थे। इसमें सुनने में आया और सुनकर देवी अन्दर में उतर गयी। करोड़ों देवियों में उनकी मुख्य अधिपति। आहाहा ! वह यह जो पर्याय कहते हैं, उसकी दृष्टि छोड़कर द्रव्यदृष्टि में उतर गयी। अन्त:-अन्त:... आहाहा !

लोग कहते हैं न कि पाताल में बहुत पानी है। पाताल, पाताल में बहुत पानी नहीं, क्योंकि पाताल के पानी में नीचे नरक के पासड़ा आते हैं, चाहे जितने गहरे सागर-समुद्र हो परन्तु नीचे एक हजार योजन का पहले नरक का ऊपर का पासड़ा है। इसलिए पाताल

में पानी अधिक नहीं है अथवा चौदह ब्रह्माण्ड में पानी का क्षेत्र थोड़ा है और जमीन का क्षेत्र अधिक है। समझ में आया? यह तो एक बार अन्दर बहुत विचार आते-आते लगा कि पूरे ब्रह्माण्ड का तौल क्या होगा? पूरे ब्रह्माण्ड के ३४३ राजू का तौल क्या होगा? तौल वह तो भगवान जाने। बाकी उसका तौल अर्थात् ज्ञान के प्रमाण में उसका माप आ जाता है। समझ में आया? मुझे तो दूसरा कहना है। इस पाताल की तो मर्यादा है और यह भगवान है, इसकी पर्याय के पीछे पाताल भरा हुआ है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा!

तेरी प्रभुता का पार नहीं, प्रभु! ऐसी बात है परन्तु इन बाहर की चीज़ों के प्रपंच में बाहर के प्रपंच में सुखबुद्धि से तेरी स्वयं की सुखबुद्धि उत्पन्न नहीं होती। बाह्य यह प्रपंच शरीर, वाणी, प्रदर्शन, पैसा, इज्जत, मकान, ये सब बाह्य प्रपंच और सुखबुद्धि के कारण भगवान अन्दर शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द सम्पन्न है, उसकी सुखबुद्धि नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो दूसरा कहना है कि इस पाताल के पानी की तो मर्यादा है। इस पाताल (के ऊपर) यह पर्याय है, उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। उस परद्रव्य के पीछे पूरा पाताल है। यह शुद्धभाव। ये सात तत्त्व हैं, वह शुद्धभाव नहीं है। संवर-निर्जरा, मोक्ष भी शुद्धभाव नहीं है। वह पर्याय का शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव की पर्याय को तो यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! कठिन बात है, भगवान! अरे! तुझे कहाँ रहना? कहाँ जाना?

अनादि-अनन्त भगवान आत्मा, तो कहते हैं कि प्रभु तेरी चीज़ तो ऐसी है कि जिसमें संवर, निर्जरा और मोक्ष को भी हम तो परद्रव्य कहते हैं, क्योंकि उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं.. उत्पन्न हुआ सम्यग्दर्शन, परन्तु सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! संवर की पर्याय शुद्धि है और निर्जरा की पर्याय, शुद्धि की वृद्धि है और मोक्ष की पर्याय, शुद्धि की पूर्णता है, परन्तु ये तीनों पर्याय, पर्याय से उत्पन्न नहीं होती। आहाहा! सेठ! यह कभी सुना ही नहीं। बहुत कठिन (बात), भगवान! आहाहा! बाहर की प्रवृत्ति में ऐसा किया.. ऐसा किया.. गजरथ निकाला, रथयात्रा निकाली, भगवान की हजारों प्रतिमा स्थापित की तो मानो हो गया धर्म। शुभभाव होता है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक समकिती को भी अशुभ से बचने शुभभाव होता है परन्तु वह बन्ध का कारण है।

यहाँ तो उससे भी आगे जाकर.. आहाहा! प्रभु! द्रव्य और पर्याय दो वस्तु है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु अर्थात् यह शुद्धभाव और पर्याय; दो चीज़ में पर्याय को व्यवहारनय

कहा और त्रिकाल को निश्चय कहा। पर्याय को व्यवहार कहकर परद्रव्य कहा, तो कहते हैं, टीकाकार ने परद्रव्य कहाँ से निकाला? पाठ में तो ऐसा नहीं है। '**जीवादिबहित्तच्चं**' इतना है, तो ५०वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने परद्रव्य कहा है। ५०वीं गाथा! यह टीकाकार भी अपनी शैली करते हैं। '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**।' ऐसे तीन बोल हैं। ५० गाथा देखो! पर्याय है वह परद्रव्य है, परभाव है और हेय है। तीन बोल है। समझ में आया? आहाहा! संसार के कारण इसे निवृत्ति नहीं मिलती। उसमें पैसा कुछ करोड़-दो करोड़-पाँच करोड़ होवे तो, आहाहा! उसमें फँस गया। प्रभु! उसकी संख्या से अनन्तगुने तुझमें धर्म, गुण हैं। जिसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं, वह द्रव्यस्वभाव, उसके गुण की संख्या का पार नहीं है - अन्त नहीं है कि यह अन्तिम अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. तो यह अनन्त, अनन्त के अनन्त का यह अन्तिम गुण है, ऐसी बात आत्मा में है ही नहीं। समझ में आया? क्या कहा?

आत्मा में गुण की इतनी संख्या है। पर्याय से भिन्न द्रव्य अन्दर है। पर्याय अन्तर्मुख देखती है तो पाताल उसके हाथ में आता है, परन्तु वह पाताल पूरा पाताल होता नहीं, तथापि पता लग जाता है। क्या कहा? आहाहा! संवर-निर्जरा की, मोक्षमार्ग की अपनी पर्याय जो है, उस मोक्षमार्ग की पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय है। वह पर्याय है, उसकी अवधि एक समय की है और भगवान अन्दर त्रिकाली आनन्द का कन्द है।

सिद्धान्त में तो ऐसा एक शब्द आया है कि निरन्तर वर्तमान। आहाहा! त्रिकाली वस्तु निरन्तर वर्तमान। भविष्य में रहेगी, ऐसा नहीं; यहाँ तो निरन्तर वर्तमान है। बाद में विशेष कथन करें तो त्रिकाली भी कहने में आता है। आहाहा! इस देह में भगवान आत्मा निरन्तर वर्तमान, निरन्तर ध्रुव, निरन्तर वर्तमान ध्रुव है। यह शुद्धभाव। यह वर्तमान में शुद्धभाव है। त्रिकाल रहता है, इसलिए शुद्धभाव है-ऐसा नहीं, परन्तु यहाँ तो वर्तमान ही शुद्धभाव है, वर्तमान में ही ध्रुव है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

यहाँ कहते हैं कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** इनके घर का नहीं कहा। ५०वीं गाथा में और समयसार में भी आता है। समयसार में कलश में आता है '**परद्रव्यम् समग्रं हेयम्**' यह सब पर्यायादि परद्रव्य है। आहाहा! एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक समय की पर्याय को राम कहें तो प्रभु त्रिकाली को पूरा गाँव कहें। पूर्णानन्द का नाथ,

जिसके गुण की संख्या का पार नहीं। आहाहा! यहाँ तो अरब-दो अरब कमाया.. यह तो अभी अरब तक कहते हैं। हमारे समय में तो अरब के बाद भी लेते थे - खरब, निखरब, महापद्म ऐसी संख्या थी। जैसे सौ करोड़ का अरब, वैसे सौ अरब का खरब, सौ खरब का निखरब.. ऐसे अठारह बोल थे। हमारे समय में। अभी तो अरब तक है। यह तो सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष पहले की बात है। ९-१० वर्ष की उम्र में पढ़े थे। अभी तो ९० हुए। आहाहा! तो उस संख्या की भी मर्यादा है। समझ में आया? अरब के पश्चात् खरब, निखरब आदि अठारह हैं तो भी उनकी मर्यादा-हद है। आत्मा के गुण की जो संख्या है, उसकी तो मर्यादा की हद ही नहीं। आहा! इतनी संख्या का पूर, चैतन्य के नूर के तेज का पूर, इस अतीन्द्रिय आनन्द के सागर के जल से भरा पड़ा है, प्रभु! आहाहा! इस शुद्धभाव की अपेक्षा से संवर-निर्जरा-मोक्ष को भी परद्रव्य कहा गया है। आहाहा!

अरे रे! सत्य बात कान में पड़े नहीं, वह सत्य बात कब समझे, अरे! मनुष्यपना चला जाता है, भाई! समय-समय, मिनट, दिन जाते हैं। यह जो मृत्यु का समय है, वह तो निश्चित है। जितने दिन जाते हैं, वे मृत्यु के समीप जाते हैं। समझ में आया? देह को छूटने का निश्चित समय है। उसमें कुछ आगे-पीछे नहीं होता, तो इस समय में जितने दिन जाते हैं, वे देह छूटने के समीप में जाते हैं। आहाहा! उसमें यदि आत्मा पर से भिन्न है, ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं किया.. आहाहा! तो प्रभु! तेरे भव का अन्त कहाँ से आयेगा और पहले तो अभी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति करते-करते कल्याण हो जायेगा (ऐसी मान्यता), वह तो मिथ्यात्व है।

यहाँ तो पर्याय के आश्रय से कल्याण होगा - ऐसा भी नहीं है। संवर-निर्जरा पर्याय है तो कल्याणरूप। कल्याणरूप। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग, वह है तो तीनों कल्याणरूप और श्रावक को तो ये तीनों कहे हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक है, उसे भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। इस नियमसार में भक्ति अधिकार में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं परन्तु उसके पहले दर्शनशुद्धि, प्रतिमा के ग्यारह बोल हैं न? उसमें दर्शनशुद्धि पहला बोल है। तो वह दर्शनशुद्धि, यह चौथे गुणस्थान की बात नहीं है। पाँचवें गुणस्थान की बात है। दर्शनशुद्धि, व्रत ऐसी ग्यारह प्रतिमा है न? तो वह दर्शनशुद्धि चौथे गुणस्थान की बात नहीं है। ग्यारह प्रतिमा में पहली प्रतिमा है। है तो पंचम गुणस्थान की बात परन्तु व्रत निरतिचार नहीं; इस कारण व्रत प्रतिमा नहीं कहा। मुझे तो दूसरा कहना है, इस दर्शन

प्रतिमावाले को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे हैं। आहाहा! पीछे अधिकार है न? भक्ति का अधिकार है। भक्ति-भक्ति, यह लो! भक्ति अधिकार आया, हों! भक्ति। यह तो हिन्दी है न? हमारे गुजराती में सब लिखा है। देखो! पहली गाथा १३४ में है। हिन्दी प्रति में २६९ पृष्ठ है। देखो!

**रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति...** उसमें चारित्र लिया है। समझ में आया? शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। उसमें है? शुद्ध रत्नत्रय, पंचम गुणस्थानवाले को रत्नत्रय कहा। पहली गाथा १३४, टीका है। बाद में चारित्र कहा है परन्तु वह यहाँ नहीं लिया। आहाहा! वह चारित्र पाँचवें गुणस्थान में भी कहा है - मुझे ऐसा कहना है। समझ में आया? क्या कहा?

कोई ऐसा कहता है कि श्रावक को चारित्र नहीं होता। श्रावक को मात्र दर्शन और ज्ञान होते हैं। सम्यग्दृष्टि श्रावक है और पंचम गुणस्थान में है, उसे यहाँ... पाठ देखो पाठ। मूल पाठ **कुणइ सावगो समणो** गाथा है? **सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो। तस्स दु णिव्वुदिभत्ती..** श्रावक भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की भक्ति अर्थात् परिणमन करता है। भक्ति अर्थात् विकल्प नहीं। आहाहा! समझ में आया? १३४वीं गाथा है। '**कुणइ सावगो समणो**' '**सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो**' श्रावक को भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति है, वह भक्ति है। सिद्ध की भक्ति करना, वह तो व्यवहार में गया। वह दूसरी गाथा में है क्योंकि वह तो विकल्प है। आहाहा! यहाँ तो पंचम गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों कहे गये हैं। यहाँ तो कहते हैं कि नहीं, नहीं; पंचम गुणस्थानवाले को शुद्धोपयोग नहीं होता। शुद्धोपयोग तो मुनि को ही होता है (ऐसा आजकल कुछ लोग कहते हैं)। पाठ में ऐसा है, परन्तु वह तो मुनि का शुद्धोपयोग है, वह दशा जैसा शुद्धोपयोग श्रावक को नहीं होता (ऐसा कहना है)। समझ में आया? शुद्धोपयोग नहीं होता है, ऐसा नहीं है क्योंकि सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धोपयोग की भूमिका में ही होता है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा है। ४७ - '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ऐसा पाठ है। निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार के मोक्ष का हेतु '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' ध्यान में प्राप्त होता है। ऐसी किसी विकल्प की दशा में और ऐसे और वैसे मोक्षमार्ग नहीं होता। आहाहा! अन्तर में

स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका ध्यान लगा दिया, ध्येय बनाकर ध्यान लगाया, उस ध्यान में निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त होते हैं और साथ में जरा राग रहता है, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग का आरोप देकर व्यवहार कहा है। है तो राग। '**दुवहिं पि**' है न? '**दुवहिं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**।' ४७वीं गाथा है। ४७ अर्थात् क्या? ४ और ७। हिन्दी भाषा सब नहीं आती है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि श्रावक को भी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह बहिर्तत्त्व है। आहाहा! इसने तो सुना भी नहीं होगा कि यह चीज़ क्या है? वह यहाँ कहते हैं। सुन तो सही, प्रभु! तेरे अन्दर इतनी बड़ी चीज़ पड़ी है कि उसकी महिमा के आगे दुनिया में कोई दूसरी महिमा नहीं है। सिद्ध की पर्याय की भी उसके समक्ष महिमा नहीं है, महिमा नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा, वर्तमान, वर्तमान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु! अनन्त गुण के समुदाय का एक पिण्ड, प्रभु! उसे यहाँ द्रव्य अथवा शुद्धभाव कहते हैं। उस द्रव्य की अपेक्षा से संवर, निर्जरा और मोक्ष का मार्ग भी परद्रव्य कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

विशिष्टता क्या है? कि पाठ में तो संक्षिप्त शब्द हैं, इसलिए हेय-उपादेय कहा कि सात तत्त्व हैं, वे हेय हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी हेय है। समझ में आया? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** आया न? **परद्रव्य होने के कारण...** पाठ में हेय कहा। टीकाकार ऐसा कहते हैं कि **वास्तव में उपादेय नहीं है**। ऐसा लिया है। पाठ में हेय है, ऐसा न लेकर, सात तत्त्व उपदेय नहीं (-ऐसा कहा है)। समझ में आया? मार्ग, बापू! परमात्मा जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलौकिक है। लोक तो ये बाहर में व्रत लिये, तप किया, जंगल में रहना, नग्न रहना, ऐसी क्रिया, ऐसे परिग्रह सहन करना, वह सब धर्म है। वह धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा! लोकरंजन को धर्म बताकर लोगों का रंजन हो जाता है। यह तो कठिन बात है।

यहाँ तो **जीवादि सात तत्त्वों...** अर्थात् जीव की एक समय की पर्याय, अजीव का ज्ञान। अजीव का ज्ञान। अजीव तो पर है। आस्रव-पुण्य-पाप; बन्ध-राग में रुक जाना; संवर-शुद्धि की उत्पत्ति; निर्जरा-शुद्धि की वृद्धि; मोक्ष - शुद्धि की पूर्णता। ये सात तत्त्व हैं। ये **सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त परद्रव्य हैं, वे तो हेय हैं।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव अष्टपाहुड़-मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में ऐसा फरमाते हैं कि '**परदव्वाओ दुग्गइ**' प्रभु ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर तेरा लक्ष्य होगा तो तुझे राग

होगा, वह तेरी दुर्गति है; वह चैतन्य की गति नहीं। आहाहा! समझ में आया? अष्टपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा '**परदव्वाओ दुग्गइ**' तीर्थंकर कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य हैं, तो परद्रव्य दुर्गति है। हमारी ओर तेरा लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग ही उत्पन्न होगा। राग, वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। अर र! आहाहा! 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं...' करे, वह तो राग है।

यहाँ तो संवर और निर्जरा जो रागरहित दशा है, वह आत्मद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है। संवर-निर्जरा और मोक्ष, ये तीन और चार को साथ मिलाकर—जीव, अजीव, आस्रव, और बन्ध – इन चार को साथ मिलाकर तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष तीन अर्थात् सात, इन सातों को मिलाकर परद्रव्य कहा है। समझ में आया? है न अन्दर। आहाहा! यहाँ तो अभी लोग यह दया करे, व्रत करे, अपवास करे, महीने-महीने, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के बिना पानी के उपवास करे तब, ओहोहो! बहुत तपस्या की। अरे! धूल भी नहीं, लंघन है। तप तो उसे कहते हैं कि जिसे अपनी शुद्ध चैतन्य की दृष्टि का-स्वद्रव्य का अनुभव हुआ, परद्रव्य को हेय जानकर, फिर स्वद्रव्य में लीनता होना, वह चारित्र है और चारित्र में उग्र पुरुषार्थ से विशेष उग्रता होना, वह तप है। आहाहा! व्याख्या भी अलग!

वह भी यहाँ तो कहते हैं कि भाव तप है। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि होती है, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! **परद्रव्य होने के कारण...** वापस कारण दिया। वह उपादेय क्यों नहीं? आदरणीय क्यों नहीं? कि वह परद्रव्य है, इसलिए उपादेय (नहीं है)। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** खरेखर वह, वास्तव में अर्थात् खरेखर। समझ में आया? आहा! '**जीवादिसप्ततत्त्व-जातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्**' आहाहा! वास्तव में उपादेय नहीं है ऐसा आया न? '**परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्**' आहाहा! अभी तो पुण्य के परिणाम करने में से निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा! संसार के पाप, पूरे दिन धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र, पूरे दिन पाप.. आहाहा! परद्रव्य की प्रवृत्ति में तो अकेला पाप है। अब पाप में से निवृत्ति लेकर जिसे पुण्य भी नहीं होता, उसे तो यह बात रुचती नहीं। यहाँ तो पुण्य में से भी निकलकर आत्मा के आश्रय से शुद्धि का, आनन्द का वेदन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द मोक्षमार्ग का अर्थ? अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, उसका नाम मोक्षमार्ग.. है! आहाहा!

क्योंकि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द का आश्रय करके, जो सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे भी यहाँ तो परद्रव्य कहा है। आहाहा! पूर्ण नहीं और एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान वह सादि-अनन्त की पर्याय नहीं। रहती है सादि-अनन्त परन्तु एक समय की पर्याय है, दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान, तीसरे समय तीसरा केवलज्ञान। आहाहा! केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। आहाहा!

वहाँ गये थे न, क्या कहलाता है? यात्रा का स्थल। मथुरा, मथुरा में सब पण्डित बैठे थे और यह व्याख्या हुई कि केवलज्ञान भी पर्याय है, गुण नहीं। वहाँ तो खलबलाहट हो गयी। यह क्या कहते हैं? भगवान का केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है, वह पर्याय? पर्याय है। प्रगट हुई है, वह पर्याय है। ध्रुव-ध्रुव, वह प्रगट नहीं होता और ध्रुव आवरण में नहीं आता। त्रिकाली भगवान ध्रुव प्रगट नहीं होता और उसमें आवरण नहीं है। सकल निरावरण परमात्मा त्रिकाली आत्मा है। आहाहा! ए.. डाह्याभाई! ऐसी बातें हैं।

आता है न ३२० गाथा में? पीछे से लेंगे कदाचित्। ३२० कहीं है, वहाँ पीछे आया है। जो सकल निरावरण। द्रव्यस्वभाव है, वह तो सकल निरावरण है। अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय-प्रत्यक्ष होनेवाला, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्म तत्त्व द्रव्य-निज परमात्मद्रव्य, वही उपादेय है। आहाहा! धर्मी निज परमात्मद्रव्य का ध्यान करता है। खण्ड-खण्ड ज्ञान का ध्यान नहीं करता। भाई! इसमें आता है, उसमें है।

जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रतयक्ष प्रतिभासमय है। पर्याय उसका ध्यान करती है। पर्याय उसे मानती है। पर्याय ऐसा नहीं मानती कि मैं पर्याय हूँ। पर्याय ऐसा मानती है कि सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? पर्याय ऐसा जानती है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। वह यह शुद्धभाव है। आहाहा! इसमें एक घण्टे में सब किस प्रकार याद रखना? भगवान! बापू! यह तो अलौकिक मार्ग है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी सम्प्रदाय में नहीं। श्वेताम्बर में नहीं, तो फिर अन्यत्र तो कहाँ से होगी? आहाहा! सुनना कठिन पड़ता है।

केवलज्ञान परद्रव्य! कहते हैं - हाँ, क्योंकि एक समय रहता है और प्रभु तो त्रिकाल

है। वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. त्रिकाल ध्रुव है। उस त्रिकाली को यहाँ शुद्धभाव कहा है। उस शुद्धभाव की अपेक्षा से वर्तमान पर्याय जो साथ में है, वह उपादेय नहीं है। वह संवर-निर्जरा और मोक्ष उपादेय नहीं है। आहाहा! क्योंकि उसके आश्रय से तो विकल्प उत्पन्न होता है। अन्तर के आश्रय से मोक्षमार्ग उत्पन्न हुआ, परन्तु मोक्षमार्ग की पर्याय का आश्रय करे तो राग उत्पन्न होता है। पर्याय के आश्रय से तो राग होता है। त्रिकाली भगवान एक समय में पूर्णानन्द का नाथ.. आहाहा! समझ में आया?

क्रमबद्ध में आया है न? जिस समय में मोक्ष होता है, उसी समय में होता है। एक बार हमारे प्रश्न हुआ था। यह तो रूपचन्दजी लक्ष्य में आये। रूपचन्दजी। वहाँ ध्यानविजय है न? कौन सा गाँव कहा? गजपंथा। गजपंथा हम गये थे। वहाँ श्वेताम्बर के ध्यानविजय थे न? उसने हमारी बात सुनकर श्वेताम्बरपना छोड़ दिया। ध्यानविजय थे। सोनी थे। कैसे? पराजिया सोनी। यहाँ का पढ़कर बहुत बात करते थे। फिर हम वहाँ गये तो हमें उठ-बैठ करके हमारे पैर लगे। मैंने कहा - क्या हुआ? यह बोलते हो तो क्या है? तो दोपहर को जाने का था, हम वहाँ गये। कमरा बन्द था। कमरा खोलकर हमारे दर्शन किये, फिर बैठे। मैंने पूछा, कहा प्रवचनसार में ऐसा आता है कि काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष, ऐसा पाठ आया है। इसमें तुम्हारा क्रमबद्ध कहाँ रहा? क्रमबद्ध - ऐसा तो नहीं पूछा था परन्तु काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष है तो काल से मोक्ष है, यह तो सैंतालीस नय इनकार करता है। रूपचन्दजी साथ में थे। चार-पाँच व्यक्ति थे। गजपंथा.. नासिक-नासिक।

वहाँ ऐसा पाठ कहा है कि जिस समय में मोक्ष होगा, वह कालनय और दूसरा अकालनय भी लिया है। तो यह काल से मोक्ष होता है, ऐसा नहीं, अकाल से भी मोक्ष होता है, यह पाठ में लिया है तो इसका अर्थ क्या? सैंतालीस नय प्रवचनसार। तो वह समझ गया कि मैं कहूँगा तो मेरी बात (सत्य) नहीं पड़ेगी। कहा - मैंने विचार नहीं किया। ऐसा कहकर छोड़ दिया। मैंने विचार नहीं किया।

यह काल से मोक्ष और अकाल से मोक्ष दोनों एक समय में हैं। अकाल का अर्थ कि स्वभाव, पुरुषार्थ, वह लेना है। काल तो वही समय है परन्तु उस समय में पुरुषार्थ और स्वभाव आदि है, उसे अकाल कहने में आता है। आहाहा! काल से भी मोक्ष और अकाल

से भी मोक्ष! परन्तु समय तो वही है। आहाहा! मात्र अकाल से कहने का आशय (इतना है कि) काल के अतिरिक्त स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता, निमित्त का अभाव, ये पाँचों समवाय एक साथ हैं, उसे अकाल कहा गया है। आहाहा! पहली यात्रा निकली थी न? (संवत्) २०१३ के साल की बात है। बाईस वर्ष पहले। लोग विचार किये बिना ऐसे के ऐसे विपरीतता किये रहते हैं। कुछ पता ही नहीं होता है।

यहाँ कहते हैं.. आहाहा! काल से भी मोक्ष है, उस पर्याय को भी परद्रव्य कहने में आया है। एक भगवान आत्मा एक समय में (त्रिकाल है)। यह पर्याय है, वह एक समय की स्थिति है, और यह एक समय में त्रिकाल है, ध्रुव है। एक समय में वर्तमान ध्रुव है। आहाहा! वही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि तो वही आदरणीय है।

**मुमुक्षु :** आश्रय करनेयोग्य...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्रय करनेयोग्य है। वही आदरणीय / उपादेय है। यहाँ उपादेय शब्द लिया है। आश्रय करनेयोग्य अर्थात् उपादेय करनेयोग्य। समझ में आया?

**जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** परद्रव्य होने के कारण। दलीलसहित, न्यायसहित (बात है)। **वास्तव में उपादेय नहीं है।** वास्तव में वे सात तत्त्व हैं... आहाहा! वे आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं। वहाँ लक्ष्य करनेयोग्य नहीं हैं। ज्ञान होता है परन्तु आश्रय करने से लाभ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! है, उसका ज्ञान करना। ज्ञान में जानने में आते हैं परन्तु वे आश्रय करनेयोग्य उपादेय नहीं हैं। आहाहा! यदि तुम सात तत्त्व को उपादेय मानो तो भगवान त्रिकाल है, उसे हेय माना और अपने आत्मा को.. परमात्मप्रकाश में शब्द है। रागादि को उपादेय माना, उसे आत्मा हेय हो गया। यहाँ कहते हैं, जो सात तत्त्व को उपादेय माने, तो त्रिकाली द्रव्य तो लक्ष्य में रहा नहीं। द्रव्य का दृष्टि में से अभाव हो गया। आहाहा! ऐसी बात सुनने में कठिन पड़ती है। ऐसा मार्ग है प्रभु का। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, जिनेश्वर परमात्मा का यह हुकम है। उनका यह मार्ग है। प्रभु! यह कोई पक्ष नहीं, यह कोई वाड़ा नहीं। आहाहा! वे उपादेय नहीं। आहाहा! तब उपादेय कौन है? वह कहते हैं।

**सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** स्वयं मुनि कहते हैं। मुनिपना कैसा है? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** वैराग्य

किसे कहते हैं ? दुकान, धन्धा, व्यापार छोड़ दिया, ब्रह्मचर्य ले लिया, इसलिए वैराग्य हो गया, ऐसा नहीं है। वैराग्य किसे कहते हैं ? कि अपनी पूर्ण वस्तु की प्रतीति के अस्तित्व की श्रद्धा और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त होना, उसका नाम वैराग्य है। आहाहा ! समझ में आया ? इस समयसार में पुण्य-पाप अधिकार में है। पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव हैं, वे राग हैं। उनसे विरक्त होना, वह वैराग्य है परन्तु मात्र वैराग्य नहीं, अपने पूर्ण शुद्धतत्त्व की प्रतीति और पुण्य-पाप से हटकर वैराग्य, वह ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति धर्मी के साथ में है। आहाहा ! समझ में आया ?

धर्मी की ज्ञान और वैराग्य शक्ति एक समय में दोनों साथ में है। ज्ञान (अर्थात्) त्रिकाली उपादेय है, ऐसा ज्ञान। आहाहा ! समझ में आया ? और पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्त। रक्त है अनादि से जो रक्त है। वह विरुक्त (होवे), वह वैराग्य है। आहाहा ! यह मुनि कहते हैं। आहाहा ! भाषा तो सरल है परन्तु बापू ! तत्त्व तो कोई अलौकिक है। ऐसा नहीं समझना कि हमें समझ में नहीं आयेगा। प्रभु ! आत्मा तो एक क्षण में केवलज्ञान ले सके, इतनी ताकतवाला है। आहाहा ! एक समय में केवलज्ञान लेने की ताकतवाला कहे कि मुझे समझ में नहीं आता, प्रभु ! कलंक लगता है। समझ में नहीं आता, ऐसा नहीं कहना, प्रभु ! आहाहा ! मार्ग तो मार्ग है। आहाहा !

**सहज वैराग्यरूपी...** ऐसी भाषा ली है न ? सहज वैराग्य का अर्थ कि सम्यग्दर्शनसहित, पुण्य-पाप से रहित, वह वैराग्य है। यह तो आचार्य के ऐसे शब्द हैं। ऐसे दिगम्बर सन्तों के (जैसे) शब्द कहीं नहीं हैं। अलौकिक बात है, बापू ! यह समझने के लिये थोड़ा समय देना पड़ेगा। विद्यालय के पठन में तो सात, आठ, दस वर्ष निकालता है। पढ़ते-पढ़ते।

हमारा एक मित्र था, हम साथ पढ़ते थे। फिर हम तो हमारी दुकान में जाने लगे। फिर भावनगर रास्ते में मिले थे। कैसे ? वेणीभाई ! क्या करते हो ? मैं पढ़ता हूँ। अरे ! कहाँ तक ? कि इक्कीस वर्ष हुए पढ़ते-पढ़ते। आहाहा ! मित्र थे। सूरत के एक डॉक्टर थे, उनका लड़का था, वह उनका मित्र था, हम तो दुकान में जाने लगे थे। फिर भी वह भावनगर पढ़ता था। मिले तो कहा कि अभी तक क्या करते हो ? कहा - मैं पढ़ता हूँ। उसके घर गये थे। कितने वर्ष से (पढ़ते हो) ? कितना बड़ा अभ्यास होगा कोई अपने को कहीं एल.एल.बी. या एस.एस.सी. हिम्मतभाई को क्या कहलाता है बी.ए.। इन्हें कुछ

पदवीं कहते थे। इक्कीस वर्ष। हमारे बाद भी पढ़ते-पढ़ते दस बारह वर्ष हो गये। तो इसके लिये थोड़ा समय लेना पड़ेगा न प्रभु! अनन्त काल से समझा नहीं। कल्पना से मान लिया कि हम कुछ समझे हैं। परन्तु तीन लोक के नाथ को, सर्वज्ञ परमात्मा को क्या रीति और क्या पद्धति कहनी है, वह समझना अलौकिक बात है, अलौकिक पुरुषार्थ है।

**सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** है ? **शिखामणि= शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न। परद्रव्य से जो पराङ्मुख...** कौन ? मुनि अपनी बात करते हैं। **परद्रव्य से जो पराङ्मुख...** सात द्रव्य (तत्त्व) से पराङ्मुख है। आहाहा! सात तत्त्व जो परद्रव्य है, उनसे पराङ्मुख है। आहाहा! और **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित...** पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित, एक देहमात्र रही। नग्न-मुनि है न ? मुनिपना तो नग्न ही होता है। मात्र नग्न नहीं; अन्तर में नग्नपना - विकल्प से रहित, त्रिकाली द्रव्य के आनन्द का वेदन और फिर स्वरूप में रमणता होने पर उसे नग्नपना हो जाता है। वस्त्र रहे और मुनिपना हो, ऐसा नहीं है और वस्त्र छूट गये और नग्नपना हो गया तो मुनिपना है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। समझने में आता है न ? बहुत दूर से आये हैं न ? अपनी सुविधा छोड़कर यहाँ आये हैं न! आहाहा! यहाँ कहीं इतनी सुविधा भोजनशाला में नहीं होती, जितनी तुम्हारे घर में हो उतनी, तो भी (सुनने आये हैं)। आहाहा!

कहते हैं कि **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है, जो परम जिनयोगीश्वर हैं,...** आहाहा! यह मुनि की बात की है। **परम जिनयोगीश्वर हैं,...** योगीश्वर तो अन्यमत में भी कहते हैं। परन्तु वह योगी नहीं; अन्तर में पूर्णानन्द के नाथ में जुड़ान हो गया हो, उसे योगी कहते हैं। अन्यमति ऐसा ध्यान करे, कल्पना करे, वह सब अज्ञान है, वह तो मूढ़ता है, वह योग नहीं। आहाहा! आगे योग की व्याख्या है कि योग किसे कहते हैं ? नियमसार में (व्याख्या है)। अन्तर में स्वरूप की रमणता पूर्ण, पूर्णानन्द के नाथ में आनन्द का भोजन, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र भोजन करना, उसे योग कहने में आता है। उसने अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया है। अपनी पर्याय को द्रव्य में जोड़ दिया, उसे योग कहते हैं। आहाहा!

**जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** अब इसकी व्याख्या कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३४, गाथा-३८, शनिवार, अषाढ़ कृष्ण १४, दिनांक ०९-०८-१९८०

निमयसार, शुद्धभाव अधिकार ३८ वीं गाथा चलती है न? पहले तो ऐसा कहा कि यह शुद्धभाव मैं कहता हूँ। तो इस शुद्धभाव का अर्थ? शुद्धोपयोग या शुद्धपरिणति नहीं। शुद्धभाव, वह त्रिकाली ज्ञायकभाव, सर्वज्ञस्वभावी पूर्ण। यहाँ द्रव्यस्वभाव को शुद्धभाव कहने में आया है। नहीं तो पुण्य और शुभ-अशुभराग, वह अशुद्ध राग, अशुद्धोपयोग है। और शुभराग - अशुभराग से रहित, वह शुद्धयोग है। शुद्धयोग, वह शुद्धयोग पर्याय है। शुद्धयोग कहो या शुद्धोपयोग कहो, वह तो पर्याय है। उस पर्याय को मोक्ष का कारण कहना, वह भी एक व्यवहार है। मोक्ष का कारण स्वद्रव्य है। आया?

**यह हेय और उपादेयतत्त्व के स्वरूप का कथन है। जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य...** आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष, वह भी बहिर्तत्त्व है। पर्याय है न? पर्याय, द्रव्य में प्रविष्ट नहीं होती, प्रवेश नहीं करती। द्रव्य-ऊपर पर्याय तैरती है। आहाहा! इस अपेक्षा से पुण्य, पाप और आस्रव, बन्ध को तो बहिर्तत्त्व कहा, परन्तु अपना त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से जो मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह भी बहिर्तत्त्व है। आहाहा! जो मोक्ष का मार्ग है, वह भी बहिर्तत्त्व है क्योंकि संवर, निर्जरा में वह आ गया।

यहाँ पाठ में तो हेय-उपादेय कहा और टीकाकार ने जरा ऐसा शब्द लिया कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** परद्रव्य होने के कारण बहुत सूक्ष्म बात, भगवान! आहाहा! पाठ में तो हेय है परन्तु टीका में उपादेय नहीं - ऐसा कहा। समझ में आया? पाठ में **जीवादिबहित्तच्चं हेयम्** है परन्तु अर्थकार-टीकाकार कहते हैं.. आहाहा! कि जो पर्याय बहिर्तत्त्व है, वह उपादेय नहीं। आहाहा! निमित्त उपादेय नहीं, दया, दान का व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उपादेय नहीं, परन्तु मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! उन्होंने परद्रव्य कहा, वह घर का नहीं कहा, क्योंकि ५० वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा है कि जितनी निर्मलादि पर्याय है, वह '**परद्रव्यम् परभावाः इति**

**हेया:**' ऐसे तीन शब्द ५० वीं गाथा में हैं। ५० (गाथा) परद्रव्य, परभाव, हेय। आहाहा! और उसमें समयसार का आधार लिया है। सिद्धान्त की इस ओर श्लोक है उसके नीचे चौथी लाईन में परद्रव्य कहा है, वह समयसार का कलश है। उसमें भी... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात प्रभु!

जिसे सर्वज्ञपना आत्मा का स्वभाव, वह निरन्तर वर्तमान (वर्त रहा है)। आहाहा! वह त्रिकाली वर्तमान सर्वज्ञस्वभाव, उस अपेक्षा से मोक्ष के मार्ग की जो पर्याय है, उसका आश्रय करने से तो विकल्प उत्पन्न होता है। जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से पर्याय नहीं आती; इसलिए पर्याय को परद्रव्य कहा है। सेठ! यह तो कभी सुना नहीं ऐसी बात है। वहाँ पैसे के कारण धूल में (फुरसत नहीं) परन्तु प्रेम है, इसलिए छोड़कर यहाँ आये हैं। मार्ग बहुत (सूक्ष्म) है, प्रभु! आहाहा!

देव, गुरु, शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तेरे आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! सर्वज्ञ ऐसा कहते हैं कि हम तेरे आदरणीय नहीं, हों! आहाहा! यह तो मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में कहा था न! '**परदव्वाओ दुग्गई**' सन्त, आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता के समक्ष, तेरे स्वद्रव्य के समक्ष हम परद्रव्य हैं और हमारे प्रति लक्ष्य करेगा तो तेरी दुर्गति होगी। अर र! आहाहा! '**परदव्वाओ दुग्गई सद्दव्वदो दुग्गई**' मोक्षपाहुड़ की १६ वीं गाथा में ऐसा पाठ है। भगवान! मार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! अभी तो ऐसी गड़बड़ हो गयी है कि इतनी कठिनाई, फिर कितने ही भाग्यशाली लोगों के कान में पड़ता है। आहाहा! यह तो अन्दर चैतन्य सर्वज्ञ परमात्मा के घर की बात है। आहाहा! कहते हैं कि हम सर्वज्ञदेव और हमारे सन्त मोक्षमार्ग के साधक और हमारे शास्त्र, ये तीनों परद्रव्य हैं। ये परद्रव्य हैं परन्तु हमें मानना, परद्रव्य को मानना, वह राग है, वह परद्रव्य है। वह तो परद्रव्य हैं परन्तु राग से भिन्न होकर अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान, अनुभव किया, वह अनुभव की पर्याय भी परद्रव्य है। आहाहा! ऐसे बैठो, ऐसे बैठो, इस ओर जरा। इस ओर आ जाओ, नजर पड़े वहाँ। हुकमचन्दजी, ज्ञानचन्दजी का प्रभावना में बहुत बड़ा हाथ है और यह बाबूभाई तीसरे, हमारे गुजरात में से यह बाबूभाई और हिन्दी में से ये दो। आहाहा! मार्ग प्रभु...

यहाँ तो देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं कि हम तो तेरे द्रव्य से परद्रव्य तो हैं ही और हमारे प्रति लक्ष्य करेगा तो हम परद्रव्य हैं तो तुझे विकल्प होगा, प्रभु! वह तो होगा परन्तु तेरे स्वद्रव्य के आश्रय से जो कुछ सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए, प्रभु! उन्हें भी हम

तो परद्रव्य कहते हैं। ज्ञानचन्दजी! बात ऐसी है, भगवान! भाग्य हो, उसके कान में पड़े, ऐसी बात है। लोगों को एकान्त लगती है। एकान्त है, एकान्त है.. अरे प्रभु! सम्यक् एकान्त ही है। आहाहा!

यहाँ तो कहा कि संवर-निर्जरा, जो चारित्र सम्यग्दर्शन अनुभवसहित आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर अर्थात् प्रवाह.. जैसे पानी का प्रवाह चलता है, वह आड़ा चलता है। यह पूर है, वह ऐसे ध्रुव चलता है, ध्रुव। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पूर, वह पूर अर्थात् प्रवाह ध्रुवरूप से है, जिसे शास्त्र में निरन्तर वर्तमान कहा है। त्रिकाल रहनेवाला, यह अपेक्षा छोड़ दी। त्रिकाल में तीन काल का भेद हो गया। शास्त्र में पाठ है, निरन्तर वर्तमान है। जैसे वर्तमान पर्याय संवर-निर्जरा है तो उसे हम परद्रव्य कहते हैं। इस प्रकार उससे भिन्न द्रव्य भी वर्तमान है। पूर्णानन्द का नाथ.. आहाहा! वीतराग मूर्ति अचल-अकम्प ऐसी चीज़, उस चीज़ की अपेक्षा से, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन अनुभव हुआ, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। ओहोहो! उस स्वाद के भाग में दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन आ जाते हैं।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: जहाँ तीनों को मोक्षमार्ग, ऐसा तत्त्वार्थसूत्र में कहा। तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी ने सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग: कहा, वह पर्याय से कहा है। समझ में आया? वह तत्त्वार्थसूत्र पूरा ज्ञानप्रधान कथन से है। आहाहा! क्यों? कि उसमें मति श्रुत(ज्ञान) की बात की है तो मति-श्रुत परोक्ष है, ऐसा कहा है। और मति है, वह इन्द्रिय मन से उत्पन्न होता है, ऐसा कहा है तो वह सब व्यवहार है। जो मतिज्ञान है, वह त्रिकाली चैतन्य भगवान के अवलम्बन से होता है, वह मतिज्ञान है। वहाँ परोक्ष कहकर पर की अपेक्षा से कहा है। यह प्रश्न बहुत वर्ष पहले मोरबी में भाई थे न? क्या नाम? दफ्तरी। मगनभाई दफ्तरी बहुत होशियार कहलाता था न, मोरबी गवर्नर आये थे, तब उसने भाषण किया था।

**मुमुक्षु :** गवर्नर ने उसे होशियार कहा था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहता हूँ। गवर्नर आये थे। मुझे यही कहना है। भाषण किया, वे मगनभाई दफ्तरी थे। गवर्नर ने उनका ऐसा गुणगान किया कि यह तो चिथड़े में लिपटा हुआ रत्न तुम्हारे गाँव में है। यह उसके साथ चर्चा हुई। लगभग (संवत्) १९८२

के साल की बात थी। तो वह कहे – इस शास्त्र में मति-श्रुत को परोक्ष कहा है। कहा – भाई! वह परोक्ष है, वह पर की अपेक्षा से है; बाकी मति और श्रुतज्ञान स्व से होते हैं, वे तो प्रत्यक्ष होते हैं... लालचन्दभाई! रहस्यपूर्ण चिट्ठी में.. अनुभव तो प्रत्यक्ष है, ऐसा श्लोक आता है।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उदाहरण है न, खबर है। यहाँ तो कहते हैं, सेठ! कभी सुना नहीं, भगवान!

**मुमुक्षु :** सुनानेवाला कोई नहीं था।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इतना आग्रह छोड़कर यहाँ आये। यह तो बड़ा सेठ है। राजकुमार के लड़के की लड़की इसके घर में है। बापू! यह सब बाहर की चीज़ें हैं। आहाहा! बाहर के प्रपंच की चीज़ में जिसे अधिकता भासित होती है और कुछ विशिष्टता लगती है, वह चैतन्यस्वरूप भगवान का अनादर करता है। आहाहा! वह बाहर की चीज़ तो दूर रही। अब अन्तर की जो चीज़ है संवर और निर्जरा.. आहाहा! जो त्रिकाली आनन्द का नाथ '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' जो त्रिकाली आत्मा के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा जो ११ वीं गाथा में कहा है... देवीलालजी कहाँ गये? वहाँ नय भी कहा है और सम्यग्दर्शन भी कहा है। तुम्हारा प्रश्न था न? ११ वीं गाथा में भूतार्थ को नय भी कहा। दूसरे पद में। व्यवहार अभूतार्थ है, पर्यायमात्र अभूतार्थ है। संवर-निर्जरा मोक्ष की पर्याय भी अभूतार्थ है। आहाहा! फिर दूसरे पद में कहा, व्यवहार अभूतार्थ है, वह गौण करके अभूतार्थ कहा है। पर्याय का अभाव करके अभूतार्थ नहीं कहा; नहीं तो वेदान्त हो जाता है। समझ में आया? पर्याय को गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहा है। पर्याय को असत्य कहा, वह तो गौण करके असत्य कहा है। 'है'। ये कहा न? सात तत्त्व हैं। पर्याय लक्ष्य से सात तत्त्व हैं, अस्ति है, तब कहा न? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...** अस्तित्व तो सिद्ध किया। समझ में आया?

वास्तव में तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो ऐसा कहा **जीवादिबहित्तच्चं हेयं..** पाठ में ऐसा लिया है, परन्तु अर्थकार-टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव ने उपादेय नहीं, ऐसा कहा, मीठी भाषा। आहाहा! प्रभु! पुण्य और पाप का भाव तो बन्ध, कलुषित और दुःख है, वह तो हेय है ही परन्तु अन्दर संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय प्रगट हुई... आहाहा! एक

समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसी पर्याय प्रगट हुई, यहाँ साधक जीव को तो प्रगट नहीं परन्तु साधक को जो यह केवलज्ञान पर्याय है, वह सद्भूतव्यवहारनय का विषय है; निश्चयनय का विषय नहीं, क्योंकि केवलज्ञान है, वह त्रिकाली द्रव्य का भेद, एक अंश है। एक अंश है, परन्तु इसमें है तो सद्भूतव्यवहारनय से कहने में आता है। आहाहा! केवलज्ञान व्यवहार है, सद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा! और पुण्य-पापभाव असद्भूतव्यवहारनय से है।

यहाँ तो सद्भूतव्यवहारनय और असद्भूतव्यवहारनय दोनों को परद्रव्य है, ऐसा कहकर उपादेय नहीं, ऐसा कहा। पाठ में हेय है। **जीवादिबहित्तच्चं हेयं,** परन्तु (टीकाकार ने) मीठी भाषा की है। प्रभु! सात तत्त्व उपादेय नहीं। उसके ऊपर आश्रय करने योग्य नहीं। भगवान अन्दर विराजता है न, प्रभु! पूर्णानन्द का नाथ, वही उपादेय है, ये उपादेय नहीं। आहाहा! जयचन्दजी! यह जय होने की बात है यहाँ। पराजय होने की बात संसार में है। आहाहा!

बापू! भगवान! आहाहा! एक समय का केवलज्ञान, अरे! एक समय के अनन्त चतुष्टय केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त सत्ता को अनन्त चतुष्टय कहने में आता है परन्तु साथ में अनन्त गुण की पूर्ण पर्याय है। जितने गुण हैं, उतनी पूर्ण पर्याय सब पूर्ण है और जब श्रद्धा आत्मा में ढलती है तो मात्र श्रद्धा ही झुकती है, ऐसा नहीं है, वह तो श्रद्धा से कथन किया है। बाकी जितनी पर्यायें हैं, वे सब अन्दर झुकती हैं। आहाहा!

ग्यारहवीं गाथा में तो भाषा ऐसी आयी कि **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** परन्तु अकेला समकित होता है, इतना नहीं। ये सब पर्यायें जितनी हैं, वे सब भूतार्थ के आश्रय से हुई; इस कारण वहाँ पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का अंश भी साथ में आया। अरे! अनन्त गुण का एक अंश व्यक्त अनन्त एक साथ आये। समझ में आया? अनन्त गुण जितनी संख्या में हैं, उन सब गुण की शक्ति और स्वभाव का जो सामर्थ्य था, वह पर्याय में व्यक्तरूप से एक अंश बाहर आया। आहाहा! यह रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है, भाई! लालचन्दजी! चिट्ठी में ज्ञानादि एकदेश चौथे गुणस्थान में और केवली को ज्ञानादि सर्वदेश। श्रीमद् में इसका अर्थ ऐसा किया कि 'सर्व गुणांश वह समकित।' समकित अर्थात् क्या? आहाहा! आत्मा में जितने गुण हैं, उन सबकी संख्या में से व्यक्त

अनन्त गुण का अंश प्रगट होता है। मात्र समकित उत्पन्न हुआ – ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ मुझे तो दूसरा कहना है कि अनन्त गुण का अंश जो प्रगट हुआ, उसे परद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? वह (परद्रव्य) होने से वास्तव में उपादेय नहीं है। आहाहा! अरे! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त की कोई संख्या नहीं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. ऐसे के ऐसे अनन्त-अनन्त चले जाओ तो भी गुण की संख्या में यह अन्तिम अन्त है, ऐसा नहीं है। अन्तिम अन्त तो नहीं परन्तु यह अन्तिम एक भाग, वह तो इसमें है ही नहीं। आहाहा! इतना भगवान आनन्द-आनन्दादि स्वभाव से भरा पड़ा है। मोक्षमार्ग में एक अंश व्यक्त हुआ... आहाहा! सब गुण का। सर्वगुणांश वह समकित; उसे यहाँ परद्रव्य कहा। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! कहाँ गये हमारे जतीशजी! जतीश। बाहर बैठा है। ठीक, जतीश तो यहाँ बहुत रहता था न। आहाहा!

क्या कहा? **जीवादि सात तत्त्वों का समूह...** समूह लिया न? एक पर्याय नहीं है। सात हैं, इसलिए समूह हुआ। तथापि वह समूह **परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है**। हेतु क्या? उपादेय क्यों नहीं? कि वह परद्रव्य होने के कारण। आहाहा! गजब बात की है।

अब आत्मा और उपादेय, यह लेना है। उसमें लम्बी बात है। **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है,...** अब मुनि अपनी बात करते हैं। अपनी बात करके श्रोताओं को तत्त्व कैसा है, वह बताते हैं। स्थिति ऐसी है। हम ऐसे हैं। कैसे? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि...** तो क्या कहा? सहज वैराग्य का अर्थ क्या? कि स्त्री, कुटुम्ब छोड़ा, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, वह वैराग्य है, यह वैराग्य की व्याख्या ही नहीं है। वैराग्य की व्याख्या तो यह है कि अस्ति अपना पूर्ण स्वभाव भगवान, उसकी श्रद्धा और ज्ञान के साथ पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तपना, वह वैराग्य है। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी भक्ति का परिणाम, उससे विरक्त, वह वैराग्य है। यह निर्जरा अधिकार में आया न? ज्ञान और वैराग्य दो शक्ति। ज्ञान अस्तित्व का, सारे पूर्ण की प्रतीति, वह ज्ञान और वैराग्य, पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, विरक्त; रक्त अनादि से है, उससे विरक्त। वह अस्ति का ज्ञान (और) राग से विरक्त, वह वैराग्य। आहाहा! ऐसी बात है। हजारों रानियाँ छोड़ दे, करोड़ों की आमदनी छोड़ दे, इसलिए वह वैरागी है-ऐसा नहीं है। आहाहा!

वैराग्य तो उसे कहते हैं, सहज वैराग्य, सहज अपनी चीज़ जो पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी उपादेय बुद्धि होकर जो निर्मल प्रतीति सम्यग्दर्शन, पूर्ण के अनुभव में प्रतीति हुई, उसके साथ शुभ-अशुभ राग से हटकर वैराग्य-रक्तपना था, उसे छोड़कर विरक्त होना वह अस्ति से ज्ञान, नास्ति से वैराग्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का धर्म बहुत सूक्ष्म है, प्रभु! भगवान का विरह पड़ा, प्रभु वहाँ रह गये। भगवान की यह वाणी है परन्तु प्रभु वहाँ रह गये। आहाहा! मार्ग रह गया दूसरा। आहाहा! हम तो वहाँ थे न, हमें तो विरह हो गया न!

वह प्रभु की वाणी ऐसा (कहती) है... आहाहा! भगवन्त! तुझमें अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण (भरे हैं)। उन सब गुण का एक अंश व्यक्त प्रगट हो, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है। उसे यहाँ परद्रव्य कहा गया है। आहाहा! परद्रव्य क्यों कहा? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी शुद्धि की पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय के आश्रय से शुद्धि की पर्याय नहीं आती। समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु! मार्ग तो जैसा है वैसा है। आहाहा! अरे रे! इस मार्ग को समझे बिना चौरासी लाख योनि, एक-एक में अनन्त अवतार (किये) आहाहा!

कैसे मुनि कोढ़वाले? वादिराजमुनि। भगवान की स्तुति करते-करते.. विषयहार स्तुति की है। विषयहार (एकी भाव) स्तुति है न? उसमें एक शब्द लिया, प्रभु! मैं भूतकाल के दुःख याद करता हूँ तो आयुध की चोट लगती हो, ऐसा लगता है, ऐसा मुनि कहते हैं। आहाहा! मैं भूतकाल के दुःख को याद करता हूँ, ये निगोद के, नरक के (दुःख)... आहाहा! जैसे आयुध-शस्त्र की चोट लगे, वैसे चोट लगती है। अरे! यह दुःख कैसे भोगा जाये? आहाहा!

जिसके अन्तर्मुहूर्त के दुःख, नारकी के करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से न कहे जा सकें। आहाहा! तब प्रभु के गुण अनन्त मुख और एक-एक मुख में अनन्त जीभ से भी नहीं कहे जा सकते। आहाहा! इतने गुण की संख्या है। मुझे तो यहाँ दूसरा कहना है। उसका एक अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट हुआ, तो सब गुण का अंश प्रगट हुआ। छतां.. छतां को क्या कहते हैं? ऐसा होने पर भी उसे परद्रव्य कहा। क्योंकि पर्याय उत्पन्न हुई (उसमें से)। शुद्धि की नयी पर्याय (पर्याय में से) उत्पन्न नहीं होती। संवर है, वह शुद्धि है; निर्जरा, वह शुद्धि की वृद्धि है; मोक्ष, शुद्धि की पूर्णता है तो कहते हैं कि जो शुद्धपर्याय प्रगट हुई,

उसके आश्रय से शुद्धि उत्पन्न नहीं होती। शुद्धि की वृद्धि उत्पन्न हो तो त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। इस कारण से जैसे परद्रव्य में से अपनी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे अपनी निर्मल पर्याय में से भी नयी शुद्ध निर्मलपर्याय नहीं आती; इस कारण उसे हम परद्रव्य कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! अलौकिक बात है।

यह मुनि कहते हैं, मुझे मेरा आत्मा उपादेय है, ऐसा कहकर जगत को सुनाते हैं। समझ में आया ? मेरा आत्मा ही मुझे उपादेय है। मैं कैसा हूँ ? कि **सहज वैराग्यरूपी महल...** बड़ा महल, उसका शिखर, उसका शिखामणि। **शिखर के ऊपर का रत्न; चूड़ामणि; कलगी का रत्न।** वह शिखामणि। मैं ऐसा वैराग्यस्वरूपी हूँ, ऐसा कहते हैं। **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** आहाहा ! यह पर्याय आदि परद्रव्य है, उनसे मैं पराङ्मुख हूँ। आहाहा ! इस प्रकार से अपना दृष्टान्त देकर श्रोता को सत्य बात की प्रसिद्धि करते हैं। समझ में आया ? अकेली बात नहीं है कि बात में इतना जानने का है। वस्तु तत्त्व जानना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

कहते हैं, **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र...** मुनि है न, मुनि ? तो पाँच इन्द्रिय का लक्ष्य भी छूट गया है। अनीन्द्रिय भगवान आत्मा का आश्रय हो गया है। आहाहा ! समझ में आया ? **पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि को तो एक देहमात्र रहती है। वस्त्र-पात्र तो है ही नहीं। आहाहा ! श्वेताम्बर में तो बहुत लिया है। वस्त्र, पात्र दस-दस रजोणा, दस-दस गुच्छा। भिक्षा के लिये जाये और मिले तो ले लेना। एक अपने लिये रखना और नौ आचार्य को देना। और उस पात्र को इतना रंगना।

यह (संवत्) १९७३ की बात है। १९७३ के वर्ष में हमारे गुरु पात्र रंगते थे। तो दो-दो, तीन-तीन घण्टे रंगने के लिये चाहिए। वे पात्र रंगते थे, हम स्वाध्याय करते थे। (संवत्) १९७३ की बात है। संवत् १९७३। मेरा ध्यान उस ओर बहुत नहीं था। मैंने कहा, महाराज ! यह पात्र दो-दो घण्टे रोज रंगना, यह क्या है ? गुरु ने ऐसा कहा, भद्रिक थे (तो कहा) पात्र रहित साधु ढूँढ़ लाना। समझ में आया ? पात्र होते हैं न ? साधु रखते हैं, उन पात्र को रंगते हैं, उनमें भोजन लेते हैं। वे रंगते थे और मैंने कहा कि महाराज ! ये क्या करते हो ? तब मेरी दीक्षा को चार वर्ष हुए थे। १९७३ की बात है। यह क्या उपाधि ? तब मेरे गुरु ने ऐसा कहा कि पात्ररहित साधु ढूँढ़ ला। पात्ररहित साधु होंगे ? वे ढूँढ़ लिये। आहाहा ! यह

१९७३ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? ६२ वर्ष हुए। ६० और २। हमारे पण्डितजी का तो जन्म भी नहीं था। वे कहे पात्ररहित साधु होते होंगे? खोज लाना। वे खोज लिये। कुन्दकुन्दाचार्य पात्ररहित मुनि हैं। पात्र रखे, वे मुनि नहीं और अकेले पात्र तथा वस्त्र छोड़ दे तो भी मुनि नहीं। अन्दर में दया, दान, महाव्रत के परिणाम को अपना मानते हैं, आदरणीय मानते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं), संवर निर्जरा को ही आदरणीय मानना नहीं। प्रगट हुए हैं। मैं तो उनसे विरुद्ध स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि से पड़ा हूँ।

**परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** ऐसा लिखा है न? **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है, पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिसे परिग्रह है,...** मुनि को तो देहमात्र परिग्रह है। एक शरीर छोड़ने से छूटता नहीं है। आहाहा! **जो परम जिनयोगीश्वर....** परम जिनयोगीश्वर है। मैं तो परम जिनयोगीश्वर हूँ। परम जिनयोगीश्वर। इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन में योग अर्थात् अपनी पर्याय को आत्मा में जोड़ना, वह तो है, परन्तु जघन्यपना है। अपनी निर्मल पर्याय को द्रव्य के साथ में जोड़ना, लीन होना, वह योग है। वह योग है। यह तो कहते हैं कि हम तो परम जिनयोगीश्वर। परम जिन और योगीश्वर। हमारे आनन्द में हमने हमारी पर्याय को बहुत जोर दिया है। आहाहा! त्रिकाली में जिस संवर, निर्जरा को परद्रव्य कहने में आता है।

**मुमुक्षु :** .........महिमा नहीं आती पर्याय की।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** है तो सही। वस्तु है। ज्ञान में तो बराबर जानना चाहिए। आदरणीय वह नहीं। ज्ञान में तो है, ऐसा न जाने, तब तो वस्तुदृष्टि नहीं रहती। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जो परम जिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** आहाहा! देखो! समकिती और मुनि कैसे होते हैं? आहाहा! **स्वद्रव्य में...** यह मुनि की बात है न? इसलिए **जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** सम्यग्दृष्टि की स्वद्रव्य में बुद्धि है, परन्तु मुनि जितनी तीक्ष्ण बुद्धि नहीं है। अन्दर आनन्द के नाथ में तीक्ष्ण बुद्धि है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है, उसमें रमणता करते हैं, उस अतीन्द्रिय आनन्द में रमण करते हैं, वह चारित्र है। चारित्र वह कहीं नग्नपना, पंच महाव्रत परिणाम, वह चारित्र-फारित्र नहीं है। सेठ! ये दिगम्बर के सेठ हैं। यह दिगम्बर। आहाहा!

कहते हैं कि हमारे **स्वद्रव्य में...** देखो! परद्रव्य से पराङ्गमुख; परद्रव्य और सात

तत्त्व कहे, उनसे पराङ्गमुख। आहाहा! गजब बात है। टीका करनेवाले ने भी गजब किया है न! पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि, नग्न मुनि, दिगम्बर (मुनि), उनकी टीका है। यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्यदेव, पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! (परमागममन्दिर में) बीच में कुन्दकुन्दाचार्य हैं, एक ओर अमृतचन्द्राचार्य, इस ओर पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। उनकी यह टीका है। आहाहा! कहते हैं कि हम मुनि परद्रव्य से पराङ्गमुख, सहज वैराग्य के रत्न चूड़ामणि, राग के विकल्पमात्र से तो मेरा वैराग्य है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी राग है तो उस राग से भी मैं तो विरक्त हूँ। आहाहा! समझ में आया? भगवन्त! तेरी बात सूक्ष्म है, परन्तु यह बात सत्य है। आहाहा! समझना कठिन पड़े, इसका अभ्यास नहीं और इस प्रकार की उपदेश पद्धति नहीं। (अभी तो) उपदेश पद्धति ही बदल गयी है। बस, व्रत करो, प्रतिमा ले लो, यह ले लो, यह ले लो। तो यह राग की क्रिया करना, वह तो मरना है। भाई ने लिया नहीं? निहालभाई, द्रव्यदृष्टिप्रकाश। पण्डितजी! निहालभाई का द्रव्यदृष्टिप्रकाश है न? उसमें लिखा है कि रागादि करना, वह तो मरना है। दया, दान, महाव्रत आदि का परिणाम मैं करता हूँ, वह तो स्वभाव का मरण है। भगवान ज्ञातादृष्टा है, वह राग को किस प्रकार करे? त्रिकाल में कोई ऐसा गुण नहीं की विकार करे, तो पर्याय में विकार होता है... आहाहा! वह मेरा कार्य नहीं। आहाहा! और मेरा कार्य (है), ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। आहाहा! समझ में आया?

**स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है—ऐसे आत्मा को...** आहाहा! **ऐसे आत्मा को...** ऐसा कहा न? कौन? परद्रव्य से पराङ्गमुख, स्वद्रव्य में तीक्ष्ण बुद्धि है, सहज वैराग्य के शिखामणि है, ऐसे आत्मा को... ऐसे आत्मा को...। **'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** ऐसे आत्मा को वास्तव में 'आत्मा' उपादेय है। आहाहा! प्रियंकरजी! यह शास्त्र। बापू! भगवान त्रिलोक के नाथ, उसका सम्यग्दर्शन क्या है? और उस सम्यग्दर्शन का विषय क्या है? सम्यग्दर्शन का विषय सम्यग्दर्शन की पर्याय भी नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उसका विषय नहीं। आहाहा! यह तो कहा न? **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** वह परद्रव्य हुआ न? सम्यग्दर्शन, वह त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है।

एक समय की पर्याय है, और एक ओर त्रिकाली ध्रुव महाप्रभु, अनन्त गुण का सागर अनन्त गुण से भरपूर भरा हुआ आनन्द का नाथ... आहाहा! वह। **स्वद्रव्य में**

**जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है...** अन्दर और परद्रव्य से पराङ्गमुख है। ऐसे आत्मा को। अज्ञानी को तो इसकी खबर नहीं। इसलिए ऐसा कहते हैं कि **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** वास्तव में देखो! पहले में भी लिया था कि परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं, ऐसा कहा था। आहाहा! **वास्तव में उपादेय नहीं...** संवर-निर्जरादि। इस आत्मा को वास्तव में आत्मा उपादेय है। आहाहा! त्रिलोकनाथ की प्रवचनध्वनि, दिव्यध्वनि यह आयी है। परन्तु बापू! प्रभु! इसे समझना, अपना आग्रह छोड़कर। जो पक्ष को मानता है, उसे छोड़कर यह समझना, वह अलौकिक बात है। आहाहा! यह अनन्त-अनन्त काल में.... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो पंच महाव्रत, वह दुःख है, ऐसा कहा। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो दुःख है। आहाहा! और संवर-निर्जरा सुख है। तो भी उसे परद्रव्य कहकर **परद्रव्य से जो पराङ्गमुख है,...** ऐसा कहते हैं। आहाहा! दुःख से तो पराङ्गमुख हूँ। आहाहा! परन्तु अपनी पर्याय में संवर-निर्जरा की आनन्द की दशा उत्पन्न हुई है, वह भी परद्रव्य है, मेरे लक्ष्य से वह पराङ्गमुख है; और स्वद्रव्य त्रिकाली मेरा नाथ प्रभु विराजता है, वहाँ मेरी दृष्टि है। आहाहा! कहो, पटेल! ऐसा तुम्हारे वहाँ कहीं जमीन-बमीन में है ? पटेल है। राजकोट के करोड़पति हैं। किसान। किसान समझते हो ? बड़े करोड़पति गृहस्थ। पैंतीस लाख का तो एक फ्लैट है, वहाँ चरण करने ले गये थे। वह तो जमीन-बमीन बाहर की बातें छिलके हैं। पैसे की बात तो परद्रव्य रही, वह तो अपनी पर्याय है ही नहीं। आहाहा! और दया, दान, व्रत के परिणाम, वह अपनी पर्याय नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा, मोक्ष की पर्याय वह तो अपनी है। है, उससे भी पराङ्गमुख है। गुलांट खा जाये, गुलांट खा जाये। ऐसी दृष्टि पर्याय के ऊपर है तो द्रव्य के ऊपर ले जा। आहाहा! ऐसी बात। यह लोग बाहर से प्रेम से आये हैं। अपना घर-बार छोड़कर आये हैं। सुनने के लिये आये हैं न! आहाहा! बात तो ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

**'आत्मा' ..ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को... यह तो मुनि हैं तो मुनि की बात की है परन्तु सम्यग्दृष्टि को, ऐसे आत्मा को, परद्रव्य से पराङ्गमुख और स्वद्रव्य त्रिकाल है, वह उपादेय है। ऐसे आत्मा को वह उपादेय है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में...

**मुमुक्षु :** .......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वर्ग में भी ऐसा है, नरक में भी ऐसा है। सातवें नरक में समकित

है। आहाहा! सातवें नरक में जाता है, तब मिथ्यात्व है। क्या कहा? सातवें नरक में जाता है, तब मिथ्यात्व है परन्तु बीच में समकित होता है, वापिस निकलता है, तब मिथ्यात्व है। सातवें नरक में बहुत पाप करके जाने के बाद, समकित होता है, बाद में निकलते समय मिथ्यात्व हो जाता है। आहाहा! इतनी पीड़ा और इतने प्रतिकूल संयोग, तथापि अन्दर में भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को तो ऐसा पूर्णानन्द प्रभु है, वही उपादेय है। आहाहा! यहाँ तो अभी दया पालो, व्रत करो, तपस्या करो, वह उपादेय है और आदरणीय है, वह करते-करते निश्चय हो जायेगा, (ऐसा लोग मानते हैं)। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आ जायेगी।

अरे भगवान! तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, नाथ! तेरी चीज़ की बात तो वीतराग की वाणी... एक-एक गुण एक समय में कहे तो अनन्त काल में भी नहीं कह सकते। आहाहा! क्या कहा? केवली एक गुण को एक समय में और सादि-अनन्त काल है तो भी इसके गुण अनन्त समय में नहीं कह सकते उतने गुण हैं। सादि-अनन्त काल। केवलज्ञान हुआ और फिर अनन्त काल रहेगा, तो भी एक समय में एक गुण कहे, दूसरे समय में दूसरा गुण कहे। ऐसे सादि-अनन्त कहे तो भी अनन्त गुण नहीं कह सकते। इतने गुण का भण्डार प्रभु! तू महारत्न है, चैतन्य रत्नाकर है। चैतन्य रत्न का समुद्र / सागर भरा है। पण्डितजी को कहा था न सागर! तुम्हारा सागर नहीं, यह सागर। आहाहा!

प्रभु! यहाँ ऐसा कहते हैं, **ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** अब जरा सूक्ष्म बात है। **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** क्या कहते हैं कि दया-दान के जो विकल्प उठते हैं, वह उदयभाव है, उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता, अगोचर है। उनसे अगोचर, एक बात। उपशमभाव। उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। उपशमभाव से जानने में आता है, परन्तु उपशमभाव के आश्रय से जानने में नहीं आता। समझ में आया? यहाँ तो चारभाव से अगोचर है, ऐसा कहते हैं। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। क्षायिकभाव से भी अगोचर है। अगोचर का अर्थ, चार भावान्तर। भावान्तर अर्थात् अपना जो स्वरूप-भाव है, परमपारिणामिक ज्ञायकभाव है, उससे भावान्तर। उस भाव से चार अन्य भाव। आहाहा! समझ में आया?

भावान्तर का अर्थ क्या किया? कि अपना जो त्रिकाल स्वभावभाव है, उससे अन्य भाव। वह अन्य-दूसरे हैं। उन्हें यहाँ चार भावान्तर, अपने भाव से अन्य भाव कहा है। वे

चार भाव क्षायिकभाव.. क्षायिक समकित चौथे गुणस्थान में हो तो भी यहाँ तो कहते हैं कि उस क्षायिक समकित के आश्रय से अगम्य है। क्षायिक समकित, क्षायिकभाव से अगम्य है, ऐसा कहने का अर्थ यह है। क्षायिकभाव से अगम्य है, ऐसा कहने का अर्थ यह कि क्षायिकभाव के आश्रय से यह गम्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अब ऐसी बातें! कहो, अभयकुमारजी! यह अभय की बात है। आत्मा अभय है।

कहते हैं, इन चार भावों से अगोचर है। एक ओर ऐसा कहे कि सम्यग्दृष्टि को गोचर है, गम्य है। यह आगे कहेंगे। सम्यग्दृष्टि को गम्य है कि आत्मा कैसा है। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि की पर्याय है, वह तो क्षयोपशम, क्षायिक आदि है, उससे अगोचर है। अर्थात् उसके आश्रय से गम्य नहीं। आश्रय तो परमस्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। अब ऐसी बातें। ऐसा उपदेश। है या नहीं यह? यहाँ की पुस्तक है?

**मुमुक्षु :** पर्याय का सामर्थ्य..............

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय का सामर्थ्य नहीं? पर्याय का लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है। इस अपेक्षा से चार भाव से अगम्य है। वरना तो उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव से गम्य है। सम्यग्दर्शन से तो गम्य है, तो सम्यग्दर्शन उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक है। उससे तो गम्य है, परन्तु यहाँ कहने का आशय ऐसा है कि वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक के आश्रय से गम्य नहीं। इसलिए चार भाव से अगोचर है, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

**औदयिक आदि चार भावान्तरों को...** नीचे लिखा है। **भावान्तर=अन्य भाव।** भावान्तर है न? अन्यभाव अर्थात् अपना पारिणामिक त्रिकाली स्वभाव ज्ञायक से चार अन्य भाव हैं। चारों भाव अन्य हैं। जैसे सात तत्त्व को परद्रव्य कहा, वैसे ये चार भाव भी निश्चय से परद्रव्य है। आहाहा! यह सात तत्त्व में आ गया। आहाहा! **भावान्तर=अन्य भाव।** अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव, प्रभु! उससे ये चार भाव अन्य हैं। यह भावान्तर की व्याख्या हुई। **( औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक—ये चार भाव परमपारिणामिकभाव से अन्य होने के कारण,... )** परमपारिणामिक ज्ञायकभाव जो है, उससे ये चार भाव अन्य हैं। आहाहा! द्रव्यस्वभाव जो शुद्ध चिदानन्द प्रभु है, उस भाव से यह क्षायिकभाव भी अन्य है। आहाहा! ऐसी बात! वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की यह वाणी है। लोगों को एकान्त लगता है। लोग कहें ऐ... सोनगढ़ का एकान्त है। प्रभु!

तेरी चीज़ की तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! 'एकान्त है; व्यवहार से इनकार करते हैं कि व्यवहार से नहीं होता। सिद्धान्त में लेख है कि व्यवहार साधक है और निश्चय साध्य है।' (ऐसा लोग कहते हैं)। यह तो व्यवहार का ज्ञान कराया है, प्रभु! साधक तो अपने राग से भिन्न होकर अनुभव हुआ, वह साधक है। उसमें राग बाकी है, उसे उपचार से साधक कहकर कथन किया है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका में बहुत आता है। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका है न? व्यवहार साधन-निश्चय साध्य, यह टीका में बहुत आता है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। निश्चयाभास—निश्चय और व्यवहार दो भास में। उसे व्यवहार क्यों कहा? कि ज्ञान कराने के लिये। ज्ञान कराने के लिये व्यवहार है। है तो हेय, परन्तु उसका ज्ञान करना है या नहीं? जानना तो है या नहीं? आहाहा! भले राग हो, परन्तु जानना तो चाहिए या नहीं? इस ज्ञान से भिन्न चीज़ है, ऐसा ज्ञान करना या नहीं? श्रद्धा का आश्रय भले नहीं। आहाहा!

**(इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)** अर्थात् कि चार भावों से... नीचे लिखा न? **(उन्हें भावान्तर कहा है। परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारण-परमात्मा इन चार भावान्तरों को अगोचर है।)** कारण प्रभु, सम्यग्दर्शन का कारण भगवान, वह चार भाव के आश्रय से अगम्य है। चार भाव से अगम्य है, यह शब्द लेने का अर्थ यह है। चार भाव के आश्रय से अगम्य है। वह तो त्रिकाली स्वभाव का आश्रय करने से गम्य है। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा!

**(कारणपरमात्मा)** आहाहा! यहाँ त्रिकाली आत्मा को कारणपरमात्मा कहा है। कारणपरमात्मा। क्योंकि उसके आश्रय से कार्य होता है। समझ में आया? यह भी प्रश्न हुआ था। वीरजीभाई का लड़का है न? त्रिभुवनभाई राजकोट। महाराज! यह कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा कहते हो तो कारण का कार्य तो आना चाहिए, ऐसा प्रश्न हुआ था। आत्मा को कारणपरमात्मा कहते हो परन्तु कार्य तो आता नहीं, तो कारणपरमात्मा किस प्रकार? परन्तु प्रभु! कारणपरमात्मा है, यह जिसकी प्रतीति में आया, उसे कारणपरमात्मा है। प्रतीति में आया नहीं, उसे कारणपरमात्मा कहाँ है? वह तो पर्याय और राग है। प्रतीति में आया कि भगवान ऐसा है, उसे कारणपरमात्मा हैं, तो कारणपरमात्मा प्रतीति में आया तो उसे सम्यग्दर्शन कार्य हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया? इन चार भाव से अगम्य है। वह कैसा है, यह विशेष कहेंगे.....　　　　　　　　　　**(श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३५, गाथा-३८, रविवार, अषाढ़ कृष्ण १५, दिनांक १०-०८-१९८०

नियमसार ३८वीं गाथा। मुख्य बात है। एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान आदि। वह पर्याय वास्तव में आत्मा नहीं है। आहाहा! जो आत्मा यहाँ उपादेयरूप से कहा गया है, वह आत्मा तो पर्यायरहित है। यह आया न देखो! **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि...** आहाहा! ज्ञायकभाव एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक या सर्वार्थसिद्धि की चाहे जो पर्याय अन्दर हो, परन्तु द्रव्य तो निरावरण त्रिकाली शुद्ध है। उस द्रव्य को यहाँ स्वद्रव्य कहा है और **स्वद्रव्य में जिसकी तीक्ष्ण बुद्धि है — ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** उपादेय करती है पर्याय, परन्तु उपादेय है तो द्रव्य। समझ में आया? आहाहा!

फिर से। त्रिकाली स्वभाव जो भगवान पूर्णानन्द प्रभु, वह उपादेय / आदरणीय/ स्वीकार करनेयोग्य है परन्तु स्वीकार कौन करता है? पर्याय। क्योंकि ध्रुव में आदर करना या स्वीकार करना या परिणमन करना, वह उसका स्वभाव नहीं है। वह तो त्रिकाली भगवान ध्रुव है। जिसे परसन्मुख का सब लक्ष्य छूट गया है और मात्र आत्मा ही जिसे दृष्टि में आया है, ऐसे आत्मा को यह आत्मा उपादेय है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र भी उपादेय नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ भगवान... प्रवचनसार की ८० गाथा में ऐसा कहते हैं कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' जो अरिहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय जाने, '**सो जाणदि अप्पाणं**' आहाहा! यह तो निमित्त से एक कथन है। समझ में आया?

परद्रव्य का, द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान, वह तो परलक्ष्यी राग है। अरे! नियमसार में आवश्यक अधिकार में भी ऐसा आया है कि अपने द्रव्य-गुण और पर्याय, इन तीन के विचार करता है, वह भी पराधीन है। आहाहा! भगवान के द्रव्य-गुण-पर्याय जानना, वह तो निमित्त से बात है। उस ओर का लक्ष्य छोड़कर... पाठ तो ऐसा है कि '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं सो जाणदि अप्पाणं**' परन्तु ऐसा आत्मा लिया है कि अरहन्त का, सर्वज्ञपने का जिसे अन्तर में परलक्ष्यी ज्ञान में यथार्थ निर्णय हुआ... परलक्ष्यी

ज्ञान... आहाहा! वह अपना स्वलक्ष्य करने के लिये लिया है कि जैसे सर्वज्ञ हैं, वैसा ही मैं हूँ। मेरा स्वभाव ही सर्वज्ञ=सर्व-ज्ञ (है) अपने को और पर को सबको जानने का मेरा त्रिकाल स्वभाव है। उस त्रिकाल स्वभाव का भी नियमसार में उपयोग अधिकार में कहा है, वह त्रिकाल स्वभाव ही स्व-पर को पूर्ण जानता है। जानने का अर्थ कि उसकी शक्ति ऐसी है। समझ में आया? जानती है, वह तो पर्याय है। उस पर्याय में जानने योग्य, आदरनेयोग्य चीज़ क्या है? आत्मा जो त्रिकाली शुद्ध प्रभु... आहाहा! पर्याय को पूर्ण (स्वभाव में) झुकना, पूर्ण स्वरूप में पर्याय को झुकना, वह आत्मा उपादेय कहने में आया है। आहाहा! अब ऐसी बातें लोगों को... बापू! मार्ग तो ऐसा है, भाई! आहाहा!

**ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।** आहाहा! जिसका सब परलक्ष्य छूट गया, निमित्त का तो छूट गया, राग का भी (लक्ष्य) छूट गया, परन्तु पर्याय का लक्ष्य भी छूट गया। ऐसी पर्याय में त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का निधान / खान, ऐसा आत्मा उपादेय है। आहाहा! वह आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान में उपादेय जाना, वह भी पर्याय है, उसे भी यहाँ तो परद्रव्य कहने में आया है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती, उसी प्रकार त्रिकाल के आश्रय से संवर, निर्जरा, मोक्ष का मार्ग उत्पन्न हुआ, परन्तु उसमें से नयी शुद्धि की पर्याय नहीं आती, पर्याय में से शुद्धि की पर्याय नहीं आती। द्रव्य में से आती है तो पर्याय को भी परद्रव्य कहकर त्रिकाली को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई!

यह आत्मा **औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से...** आहाहा! प्रभु! यह उदयभाव जो है, दया, दान, व्रत, भक्ति, विनय आदि विकल्प जो है, वह उदयभाव है, उस उदयभाव से तो अगम्य है। उसके आश्रय से तो नहीं परन्तु उससे भी आत्मा का ख्याल नहीं आता। अब उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक रहे, वे हैं तो निर्मल पर्याय, उनके आश्रय से ख्याल में नहीं आता; इस कारण चार भाव से आत्मा अगम्य और अगोचर कहा गया है। तथापि सम्यग्दृष्टि के उपशमभाव और क्षयोपशमभाव में गोचर होता है। इन चार भाव से अगोचर कहा, अगम्य कहा।

**मुमुक्षु :** आश्रय की अपेक्षा से।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आश्रय की अपेक्षा से। आहाहा! यह तो **भूदत्थ मस्सिदो** जो (समयसार की) ११वीं गाथा है, उसका विशेष स्पष्टीकरण है। मूल गाथा ११वीं है, वह

पूरे जैनदर्शन का प्राण है। आहाहा! एक समय में अनादि-अनन्त जो भूतार्थ चीज़ है, ऐसा कहना भी ठीक है। वर्तमान में जो पूर्ण है.. आहाहा! वही आत्मा चार भाव से अगम्य है अर्थात्? चार भाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। क्षायिकभाव के आश्रय से गम्य नहीं होता। आहाहा! तथापि सम्यग्दृष्टि को गम्य है। इसका अर्थ कि त्रिकाली का आश्रय लिया है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का आश्रय नहीं लिया। जो दृष्टि ने उपादेयरूप से स्वीकार किया है, उस दृष्टि का आश्रय नहीं लिया। समझ में आया? आहाहा!

जो भगवान पूर्ण परमात्मा... लो! यह तुम्हारे परमात्मा याद आये। ये ले गये इंटरव्यू। पढ़ गये हैं। दस पृष्ठ हैं। पढ़े हैं। यह परमात्मस्वरूप, एक समय की पर्याय उसका आदर करती है, परन्तु उस पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कठिन लगती है। फिर सोनगढ़वालों ने नया निकाला, ऐसा कहते हैं। नया नहीं, प्रभु! यह तो अनादि का मार्ग है। अनादि के अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सर्वज्ञों को यह मार्ग है। भरतक्षेत्र में प्रभु का, तीर्थंकर का, सर्वज्ञ का विरह पड़ा है। उनका तो विरह पड़ा परन्तु केवलज्ञान का विरह पड़ गया। विरह का अर्थ कि अपने में केवलज्ञान उत्पन्न हो, उसका भी विरह पड़ा है। आहाहा! अपने में। भगवान तो भले भगवान के पास रहे। उनका तो यहाँ विरह है परन्तु केवलज्ञान उत्पन्न होने का विरह हो गया परन्तु केवलज्ञान की पर्याय से भी नजदीक की सम्यग्दर्शन की पर्याय में आत्मा गम्य हो जाता है। आहाहा! अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ (है), उसका विरह नहीं है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी बात ली है। दिगम्बर सन्त तो बात करते हैं, कोई सम्यक्त्व से भ्रष्ट होता है, नये कर्म बाँधे, ऐसी बात करे, तथापि मूल बात तो ऐसी कहते हैं कि जिसने यह भगवान आत्मा वर्तमान पर्याय में अन्दर झुकाव करके जो अनुभव किया, वह अनुभव सम्यग्दर्शन और ज्ञान-दर्शन-चारित्र तीनों साथ में हैं। अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति - ऐसे तीन बोल श्रीमद् में हैं। आत्मसिद्धि में हैं। समझ में आया? अनुभव, लक्ष्य, प्रतीति। लक्ष्य, वह ज्ञान है; प्रतीति, वह श्रद्धा है; अनुभव, वह आनन्द का आचरण है। है न? आत्मसिद्धि में है, उसमें कितनी ही बात तो श्रीमद् ने बहुत ऊँची की है। मात्र एक श्वेताम्बर और दिगम्बर की भिन्नता बाहर नहीं आयी। उन्होंने अन्त-अन्त में तो बाहर कर डाली है। सत्शास्त्र के नाम में श्वेताम्बर का एक भी शास्त्र नहीं है, परन्तु उनके भक्तों को छोड़ना कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर का आश्रय (छोड़ नहीं सकते)। श्वेताम्बर भी है, दिगम्बर भी है और श्वेताम्बर,

दोनों जैन हैं। यह बात मिथ्या है। समझ में आया? यहाँ तो दिगम्बर में भी जो बात है, वह त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा न मानकर दया, दान और व्यवहार करते-करते धर्म होगा, वह भी जैन नहीं है। समझ में आया? यह तो वस्तु का स्वरूप है।

भगवान आत्मा देह-देवल में अमृत का पूर भरा है। अतीन्द्रिय अमृत मधुर स्वाद से भरपूर है। आहाहा! पूर्णस्वरूप है। जैसे कलश होता है न? क्या कहते हैं कलश को? लोटा। लोटा.. लोटा.. बाहर की भाषा भूल जाते हैं। लोटा-लोटा। लोटे में पानी भरा है न, वह पूरा-पूरा भरा है। इसी प्रकार यह लोटा जैसी देह है, देखो! इस देह में भिन्न भगवान अमृत के पूर से पूर्ण भरा हुआ है। यह देह भी कलश जैसी है न? देखो! यह सिर ऊपर के लोटे जैसा भाग है।

एक बार शास्त्र में से कहा था? तीन प्रकार के विग्रह शरीर कहे हैं। तीन प्रकार के शरीर। एक त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु, वह ज्ञान शरीर है। समझ में आया? एक पुण्य-पाप के विकल्प का समूह, वह विकार शरीर है। विग्रहं। उसे विग्रह कहा है। विकार को विग्रह कहा है। ज्ञानस्वरूप को विग्रह कहा है और यह शरीर तो विग्रह है ही। समझ में आया? शरीर विग्रह है; उससे भी रहित है और पुण्य-पाप के असंख्य प्रकार के विकल्प होते हैं, वह भी विग्रह है। शरीर है। विकाररूप एक शरीर है। स्वरूप है। उससे भी भगवान ज्ञान-विग्रहं भिन्न है। वह पूर्ण भरा है, उसे चार भाव से अगम्य कहा। अर्थात् चार भाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! उस त्रिकाली नाथ का आश्रय लेने से (उत्पन्न होता है)। परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है, परन्तु विश्वास बैठना कठिन पड़े, भाई! दो बीड़ी ठीक से पीवे, तब तो पाखाने में दस्त उतरे। इतने अपलक्षण। अब उसे ऐसा कहना... आहाहा!

भगवान तो ऐसा कहते हैं कि जो छह आवश्यक करता है न? वह शुभभाव के आवश्यक करनेवाला भी धर्म नहीं है, वह परवश है; स्वतन्त्र नहीं। आहाहा! छह आवश्यक व्यवहार है न? यह आवश्यक का परिणाम आता है। भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बात है, यह मुखारविन्द से छह आवश्यक की व्याख्या आती है, वह आगम में रचना है, परन्तु वह छह आवश्यक का व्यवहारभाव जो है, वह भी परवश है। वह प्राणी परवश है, पराधीन है, स्वतन्त्र स्ववश नहीं है। आहाहा! यहाँ तो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, ज्ञान का पुंज है। उस पूर्ण का आश्रय लेने से आवश्यक अर्थात् जो क्रिया आवश्यक करने योग्य है, वह क्रिया यह है, अवश्य करने योग्य तो यह है। आहाहा!

वहाँ (प्रवचनसार की) ८०वीं गाथा में लिया है, जिसे अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होता है, उसे आत्मा का ज्ञान होता है, ऐसा कहा है। वह निमित्त से व्याख्या की है। यहाँ तो स्व-आत्मा, उसके तीन भाग का विचार करे कि यह द्रव्य है, यह गुण है, पर्याय है, वह भी विकल्प और राग और परवश / पराधीन दु:खी है। आहाहा! कठिन बात है। ८०वीं गाथा में तो परद्रव्य की बात की है। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने, तो परद्रव्य का ज्ञान तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया है और सीधे दिव्यध्वनि सुनी है। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। महाविदेह में तीर्थंकर का विरह कभी नहीं होता।

त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। क्या कहा? त्रिकाल ज्ञेय है तो त्रिकाल में त्रिकाल को जाननेवाले का विरह कभी होता ही नहीं। आहाहा! जैसे त्रिकाल वस्तु है, वैसे त्रिकाली जाननेवाला भी अनादि से है। मनुष्य क्षेत्र में सर्वज्ञ का अभाव कभी नहीं होता। आहाहा! परन्तु उन सर्वज्ञ का विरह, द्रव्य-गुण-पर्याय का निर्णय किया तो आत्मा को जानता है, ऐसा कहना, वह भी व्यवहार से कथन है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु वह द्रव्य-गुण और पर्याय जैसे भगवान को देखे, वैसे मेरी चीज़ द्रव्य परिपूर्ण, गुण परिपूर्ण है, पर्याय में अल्पज्ञता है; वह पर्याय, द्रव्य का आश्रय करे, तब पर्याय और गुण अभेद होकर सम्यग्दर्शन होता है, तब अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान लक्ष्य में नहीं रहता। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। क्यों? कि **( कारणपरमात्मा )...** भगवान आत्मा कारणपरमात्मा आहाहा! कहा था न? अभी एक प्रश्न आया था। वीरजीभाई का लड़का आया था। वारिया, गुजर गया। इस काठियावाड़ में दिगम्बर का अभ्यास पहला-पहला वीरजीभाई को था। बहुत वर्ष हुए। जामनगर में वीरजी वकील थे। वे तो ९०-९१ वर्ष की उम्र में गुजर गये। उनका एक लड़का है। त्रिभुवनभाई ने प्रश्न किया - महाराज! कारणपरमात्मा कहते हो। कारणपरमात्मा कहते हो, तो कारण होवे तो कार्य तो होना ही चाहिए। यह कारणपरमात्मा है न?

कारणपरमात्मा-त्रिकाली भगवान आत्मा-एक समय की पर्याय से भिन्न। आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा स्वरूप भगवान! उसे कारण कहा तो कार्य होना चाहिए। प्रभु! कारण पूर्णानन्द है, यह प्रतीति किसे आयी? जिसे प्रतीति आयी, उसे कारणपरमात्मा है। जिसे

प्रतीति नहीं हुई, उसे तो विकल्प और पर्याय की प्रतीति है, वहाँ कारण वस्तु पूर्णानन्द के नाथ की तो प्रतीति नहीं। समझ में आया? मार्ग बहुत मुश्किल है, बापू! आहाहा! परन्तु इसकी अपनी वस्तु है। सतत् सुलभ है, ऐसा भी कहा है। निरन्तर सुलभ प्रभु अन्दर है। आहाहा! भगवान विराजता है। तेरी नजर (वहाँ नहीं)। अन्य मत में कहते हैं 'मेरी नजर के आलसे... रे मैं निरख्या न नयने हरि।' हरि अर्थात् आत्मा। पंचाध्यायी में कहा है, 'हरते इति हरि' जो मिथ्यात्व और दोष का नाश करे, वह हरि, वह भगवान आत्मा, उसे यहाँ हरि कहते हैं। वह हरि 'नयन की आलसे रे' नयन की आलसे रे। ज्ञाननेत्र तो है, परन्तु उस ज्ञाननेत्र ने पर के ऊपर लक्ष्य करके ज्ञान किया परप्रकाशक, तो उस परप्रकाशक ज्ञानपर्याय का स्वभाव नहीं। स्वभाव तो स्व-परप्रकाशक है, तथापि अकेला पर का ज्ञान किया, उसमें स्वभगवान आया नहीं, इसलिए वह परप्रकाशक ज्ञान मिथ्या है। समझ में आया? आहाहा!

यह समयसार की १७वीं गाथा में कहा है न? पहले में पहले प्रभु! क्या करना? तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, पहले में पहले आत्मा को जानना। वहाँ आगे पहले विकल्प से निर्णय करना, नय-निक्षेप से निर्णय करना। जैसे १३वीं गाथा में आया है, ७३ गाथा में आया है। अमुक निर्णय करना, फिर विकल्प छोड़कर अनुभव करना। वहाँ १७वीं गाथा में तो सीधी बात की है। प्रथम **तावत्** पहले आत्मा जानना। आहाहा! आत्मा को जानना ऐसा कहा। वहाँ ऐसा कहा है कि अपने ज्ञान की पर्याय में अनादि से आत्मा जानने में आता है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, तो स्वप्रकाशक इसकी ज्ञानपर्याय में आता तो है, परन्तु इसकी नजर वहाँ नहीं है। आहाहा!

क्या कहा? १७वीं गाथा में। कि जो ज्ञान की पर्याय है, तो ज्ञान की पर्याय में अज्ञानी को भी आत्मा जानने में आता है क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से स्वप्रकाशक उसमें आता है। अनादि अज्ञानी के ज्ञान में भी स्वप्रकाशक (जानने में) आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! तथापि उसकी नजर पर्याय और राग पर होने से, पर्याय में जानने में आने पर भी जानने में नहीं आया। क्या कहा समझ में आया? पर्याय का धर्म, ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है।

**'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि**
**ज्ञेयशक्ति दुविधा प्रकाशी निजरूपा पररूपा भासी॥'**

निज और पर को जानना, वह ज्ञान की पर्याय का स्वरूप ही ऐसा है। अज्ञानी की ज्ञान की

पर्याय का सामर्थ्य इतना है। आहाहा! परन्तु ऐसी ज्ञान की पर्याय में आत्मा जानने में आता है, तथापि नजर उस ओर नहीं है। नजर में राग और पर्याय की नजर में, पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, वह सब रुक गया। आहाहा! क्या कहा ? समझ में आया ?

पर्याय में राग से नहीं, राग में नहीं। ज्ञान की पर्याय में भगवान त्रिलोकनाथ यहाँ आत्मा जो कहते हैं, वह उसका स्वभाव है, इसलिए ज्ञान में तो आता है। आता है, तथापि उसकी दृष्टि द्रव्य पर नहीं है; उसकी दृष्टि पर्याय पर होने से पर्याय को ही जानता है। पर्याय में द्रव्य जानने में आता है, यह बात भूल जाता है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! वीतरागमार्ग अलौकिक है। यह कहीं साधारण मनुष्य का काम नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **( कारणपरमात्मा ) द्रव्यकर्म,...** जड़। ज्ञानावरणीय आदि जड़कर्म से रहित प्रभु है। भावकर्म और दया, दान के विकल्प से तो प्रभु भिन्न है। आहाहा! अन्दर में त्रिकाली प्रभु भिन्न है। दया, दान, भगवान की भक्ति, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव भावकर्म है, उससे भी प्रभु तो रहित है। आहाहा! ऐसे पूर्णानन्द आत्मा की अन्दर में प्रतीति आना.. आहाहा! और प्रतीति आकर अन्दर अनुभव करने में आना। आहाहा! प्रतीति व्यवहार कहा। समझ में आया ? वह द्रव्यकर्म से रहित है, भावकर्म से रहित है। **और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों रहित है...** आहाहा!

वास्तव में तो राग से-विभाव से तो रहित है परन्तु मति-अज्ञान आदि को भी विभाव गुण-पर्याय कही है। अरे! नियमसार में पहले शुरुआत में उपयोग के अधिकार में तो सम्यक् मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। उससे भी रहित है। जिस मतिज्ञान में... आहाहा! स्व जानने में आया, परन्तु उस मतिज्ञान से भी वस्तु रहित है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है। मतिज्ञान, वह सम्यग्ज्ञान का अंश है, वह केवलज्ञान का अंश है। एक बार यह भी प्रश्न हुआ था कि केवलज्ञान का अंश कहाँ है ? वह मिथ्या है, क्योंकि केवली को तो चार घाति का नाश करके पूर्ण केवलज्ञान होता है। उसका अंश नीचे नहीं होता। बड़ी चर्चा चली थी... कि तुम केवलज्ञान का अंश कैसे कहते हो ? मतिज्ञान और श्रुतज्ञान सम्यक्ज्ञान है, वह केवलज्ञान का अंश है, तो केवलज्ञान तो घातिकर्म का नाश करके पूर्ण होता है। तो क्या वह पूर्ण का अंश है ? हाँ। समझ में आया ?

जयधवल में एक पाठ आया है कि एक स्तम्भ है, स्तम्भ। स्तम्भ में एक भाग होता है न ? एक भाग देखने से पूरा अवयवी है, उसका यह अवयव है। पूरे स्तम्भ का एक

हाशिया देखने से, पूरा स्तम्भ अवयवी है। उसकी हाश होती है न? तुम्हारे क्या शब्द है? भाग। एक भाग। एक भाग देखते हैं, वह अवयव है। जो उसे देखता है, वह अवयवी को भी देखता है। आहाहा! उसी प्रकार मतिज्ञान को भी यथार्थ देखता है तो वह मतिज्ञान भी केवलज्ञान का अंश है, अवयवी का अवयव है, अत: मतिज्ञान में भी केवलज्ञान की यथार्थ प्रतीति होती है। आहाहा! और केवलज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, वह सर्वज्ञ स्वभाव में से उत्पन्न होती है, अत: जिसे मतिज्ञान में यथार्थ आया, उसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा की भी प्रतीति आ गयी। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! वीतराग का मार्ग अलौकिक है। लोगों ने तो लौकिक जैसा बना दिया है। यह तो अलौकिक बातें हैं, यह ऐसा कहते हैं, देखो!

**(कारणपरमात्मा) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरूप उपाधि से जनित विभावगुणपर्यायों...** तो मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। समझ में आया? राग से तो भिन्न है, परन्तु मतिज्ञान विभावगुणपर्याय से भी प्रभु तो भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? **उपाधि से जनित...** आहाहा! **विभावगुणपर्यायों रहित है...** क्योंकि मतिज्ञान में भी अभी ज्ञानावरणीय का निमित्तपना है और अपने में हीनपना स्वयं से है। ऐसी हीनदशा है, उसे वहाँ विभावगुणपर्याय कहा है। उससे भगवान रहित है। आहाहा!

जिस ज्ञान में वस्तु ज्ञात हो, मतिज्ञान में वस्तु ज्ञात हो, उस विभावगुणपर्याय से वस्तु रहित है। आगे है। मतिज्ञान आदि चार को विभावगुणपर्याय कहा है। उपयोग में आ गया है। १०-११ गाथा में। मतिज्ञान को भी विभावगुणपर्याय कहा है। अब जानने में मतिज्ञान से आता है। सम्यक् मतिज्ञान जहाँ अन्तर में ढलता है... आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु जहाँ विराजता है, उसके तल में जाता है, उसके पाताल में जाता है। इस पाताल का तो अन्त है। कहा था न? यहाँ पानी के पाताल का अन्त है क्योंकि पानी चाहे जितना गहरा हो... यह समुद्र है न? वहाँ नहीं कहा था? कि समुद्र बहुत गहरा लगता है। बहुत गहरा समुद्र परन्तु उस समुद्र के तल में तो नारकी का एक हजार योजन का पासडा है। समझ में आया? उस हजार योजन के नीचे नारकी है। इसलिए पानी का समुद्र कोई कहता था अमुक जगह बहुत गहरा। अपने में से कोई कहता था।

**मुमुक्षु :** प्रशान्त महासागर.........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ। यह कहता था। अमेरिका का महासागर बहुत गहरा... बहुत

गहरा कहते हैं, तो भी उसके नीचे नारकी का स्थल है, अत: पाताल का तो अन्त आ गया। यहाँ तो पाताल का अन्त लेनेवाली चीज़ है, वह चीज़ (पर्याय) अन्दर में नहीं। आहाहा! उस पाताल में तो अनन्त-अनन्त गुण हैं न? तो पाताल का अन्तिम अन्त तो उसमें नहीं। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुणा अनन्त बार करो। अनन्त को अनन्त बार.. अनन्त बार.. अनन्त बार गुणा करो। एक अनन्त को एक अनन्त से गुणा करने पर जो आवे, उसे वापस दूसरे अनन्त गुणे, ऐसा अनन्त बार गुणा करो तो भी आखिर का अन्त आत्मा के गुण की संख्या में नहीं आता। आहाहा! ऐसा गहरा पाताल तल है। अपनी एक समय की पर्याय में अन्तर आत्मा अन्तर में तल है। पर्याय उसका पता (थाह) भी लेती है, परन्तु वह पर्याय विभावगुणपर्याय होने से अन्तर में नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अब वे (कहते हैं), व्रत करो, अपवास करो, सीधा-सट्ट (था)। देवदर्शन करना, मन्दिर बनाना, हमेशा भगवान की स्तुति करना, गा-गाकर स्तुति करे, वह भाषा तो जड़ है और स्तुति करने का विकल्प, वह तो राग है। आहाहा! आत्मा में उस राग का तो अभाव है, परन्तु मतिज्ञान में जो आत्मा ख्याल में आया, वह मतिज्ञान विभावगुणपर्याय है। आहाहा! है?

**उपाधि से जनित...** कहा है। जनित का अर्थ निमित्त। इतना कर्म अभी निमित्त है न? आहाहा! चार भाव को भी आवरणसहित कहा है। इसमें चार भाव को आवरणसहित कहा है। आवरणसहित का अर्थ? कि आवरण उदय में निमित्त है और तीन में आवरण का अभाव है, इतनी अपेक्षा आयी तो इन्हें आवरणसहित कहा है और त्रिकाली परमात्मस्वरूप सकल त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ से आती है? यह तो पूरे दिन भगवान के दर्शन करना और भटका-भटक करे, क्या कहलाता है वह? झांझर बजावे और भगवान की स्तुति की, भगवान का मन्दिर बनाया, पाँच लाख खर्च किये, पच्चीस लाख खर्च किये। लो! अफ्रीका में बीस लाख का मन्दिर बनता है। दो हजार वर्ष में कभी भी दिगम्बर मन्दिर नहीं बना। तो उन्हें कहा कि देखो भाई! मन्दिर तो मन्दिर से बनता है। तुम्हारा भाव है, वह तो शुभभाव है; धर्म-वर्म नहीं। वह व्याख्यान में आये थे। एक रायचन्दभाई हैं। कहाँ गये रामजीभाई? रामजी... के भानेज हैं। लड़का-लड़की नहीं, माँ है। दो लाख और दो हजार तो मन्दिर में, क्या कहलाता है वह? शिलान्यास। शिलान्यास के समय दो लाख और दो हजार रुपये दिये हैं। अफ्रीका, नैरोबी। रामजीभाई हैं। नहीं आये? उस ओर ओहो..! ठेठ बैठे। उनकी बहिन का लड़का है। पति-पत्नी दो ही हैं और

माँ है, बस। बाकी लड़का-लड़की नहीं। बहुत पैसा होगा, तो मन्दिर का मुहूर्त किया। नैरोबी में दिगम्बर मन्दिर। वे लोग श्वेताम्बर थे। आठ घर तो करोड़पति हैं और दूसरे १५-२०-२५ लाख वाले के घर। यह हमारे किशोरभाई के भाई आये हैं न, इनके पास भी बहुत पैसा है। बहुत लाख हैं, परन्तु वह कहीं पैसे से धर्म हो और मन्दिर बनाने से धर्म होता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि विभावमतिज्ञान है, उसका भी तुझमें अभाव है। तुझमें अभाव है तो उसके आश्रय से तुझे अनुभव कैसे होगा? आहाहा! जिसका तुझमें अभाव है, उसके आश्रय से भाव ज्ञान में किस प्रकार आवे? आहाहा! कपूरचन्दजी! यह कपूर की सुगन्ध अन्दर ऐसी है। आहाहा! भगवान अन्दर आनन्द का नाथ **विभावगुणपर्यायों रहित है तथा अनादि-अनन्त...** आहाहा! वह तो आदि और अन्त रहित चीज़ है.. है... है.. है। जिसकी आदि (शुरुआत) नहीं, जो सत् है उसकी आदि क्या? है, उसकी शुरुआत क्या? है, उसकी शुरुआत या यह हुआ, ऐसा कहाँ है? समझ में आया? आहाहा!

यह हमारे पालेज में चर्चा हुई थी। (संवत्) १९६५-६६ की बात है। पालेज में दुकान थी न, वहाँ एक बड़े वेदान्ती आये थे और एक कबीर के साधु आये थे। वहाँ दुकान के पीछे धर्मशाला है। दोनों के बीच बड़ी चर्चा हुई। हम जैन थे तो वहाँ गये थे। छोटी उम्र थी। तब १८-१९ वर्ष की उम्र थी। दोनों के बीच चर्चा चलती थी, वह हम जैन सुनते थे। कबीर उनसे पूछते थे कि इस जगत को ईश्वर ने बनाया, तब ईश्वर कहाँ खड़ा था? ईश्वर कहाँ खड़ा था तो यह बनाया? खड़ा रहा तो वह एक चीज़ हो गयी। यह कबीर (पंथी) ने प्रश्न किया था। उसको कहा, मुझे जबाव दो। वह कहे, मेरा शिष्य हो तो जबाव दूँगा, परन्तु पहले मुझे जबाव तो दे। हम जैन लोग देखने गये थे। कबीर के साधु ने हमारी ओर नजर की और कहा - क्यों भाई? मैंने कहा, बात बराबर है। ईश्वरकर्ता हो तो पहले तो ईश्वर को किसने बनाया, इसके बाद बात है परन्तु ईश्वर जहाँ खड़ा है, तो उसे बनाने की सामग्री कहाँ से लाया? बनाने की सामग्री तो नहीं थी। समझ में आया? पहले से हमारे छोटी उम्र में चर्चाएँ होती थी न! घर की दुकान थी। मैंने कहा, तेरी बात सत्य, भाई! ईश्वर कर्ता हो तो...

श्रीमद् ने तो ऐसा कहा कि ईश्वर कर्ता होवे तो, ईश्वर (कर्ता) नहीं, (ऐसा कहनेवाले को) उसने जन्म क्यों दिया? समझ में आया? श्रीमद् ने ऐसा कहा कि ईश्वर नहीं, ऐसा

कहनेवाले जैन हैं, उन्हें ईश्वर कर्ता हो तो जन्म क्यों दिया ? श्रीमद् लिखते हैं, मोक्षमाला में लिखा है। परमात्मा यदि कर्ता हो तो, 'परमात्मा ईश्वर जगत का कर्ता नहीं है', ऐसा माननेवाले को जन्म क्यों दिया ? तुम्हारी सब बात मिथ्या है।

यहाँ क्या कहा ? अनादि-अनन्त के ऊपर से यह बात चली है।

**अनादि-अनन्त...** है। यह आदि भी नहीं। आहाहा ! है, उसकी शुरुआत क्या ? और है, उसका अन्त कैसा ? और है, उसे स्वभाव से रहित कहाँ ? समझ में आया ? तीन बोल कहे। ये तीन समयसार की ७६ गाथा में है। है, उसकी आदि कैसी ? और है, उसका नाश किस प्रकार हो ? और है, चीज़ जो है, वह स्वभाव से खाली कहाँ है ? आहाहा ! वह अनादि-अनन्त है। अब स्वभाव कहते हैं। इससे पहले काल कहा।

**अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला...** देखो ! क्योंकि जो है, वह स्वभाववान है, तो स्वभाववान स्वभाव बिना नहीं रहता। स्वभाववान आत्मा, वह स्वभाव बिना नहीं रहता। कैसा स्वभाव ? अतीन्द्रिय अमूर्त। अतीन्द्रिय स्वभाववाला.. आहाहा ! भाई ! थोड़े शब्दों में यह तो सन्तों की वाणी है, बहुत गूढ़ है, बहुत गूढ़ है। एक तो प्रभु का आदि-अन्त नहीं; और अतीन्द्रिय-स्वभाववाला, उसका अतीन्द्रियस्वभाव है। इन्द्रिय से तो पता नहीं लगता। आहाहा ! परन्तु पर्याय से अथवा पर्याय के आश्रय से भी पता नहीं लगता, ऐसा उसका अतीन्द्रियस्वभाव है। आहाहा ! उस अतीन्द्रियस्वभावी चीज़ का अतीन्द्रियस्वभाव से पता लगता है। उसकी पर्याय में अतीन्द्रियस्वभाव प्रगट हो, उसे अतीन्द्रिस्वभाव का अनुभव होता है। समझ में आया ? आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द से तो परिपूर्ण भरपूर है। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द तो उसका स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् ? स्व-भाव—अपना भाव—भाववान का स्वभाव—स्वभाववान का स्वभाव। ऐसा **( अमूर्त ) अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध...** प्रभु तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा ! पर्याय में अशुद्धता दिखती है, वस्तु में अशुद्धता नहीं। आहा..हा.. !

**सहज..** स्वाभाविक **परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है...** आहाहा ! देखो ! जिसका स्वभाव परमपारिणामिकभाव। मात्र पारिणामिकभाव नहीं कहा। क्योंकि पर्याय को भी पारिणामिक कहते हैं। क्या कहा ? जयधवल में पर्याय को भी पारिणामिकभाव कहा है। अरे ! राग को पारिणामिक कहा है। उदय, उपशम, क्षयोपशम को भी पारिणामिक कहा

है। पर्याय है, उसे पारिणामिक कहा, परन्तु परमपारिणामिक नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है...** आहाहा! सहजस्वरूप त्रिकाल है। परमपारिणामिक अर्थात् सहज स्वभाव। जिसे गाथा ६ में ज्ञायक कहा, ११वीं गाथा में भूतार्थ कहा, उसे यह पारिणामिकभाव कहा है। (समयसार) ६ गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय से रहित है, ऐसा कहा और वह प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित न हो तो शुभ-अशुभभावसहित हो, तो शुभ-अशुभभाव तो अचेतन जड़ है। भगवान तो ज्ञान से भरपूर परिपूर्ण चैतन्य रसकन्द है। वह चैतन्यरस कभी भी जड़रूप नहीं होता। शुभ-अशुभभाव, वे जड़ हैं। आहाहा! है इसमें? समयसार गाथा ६ में है। समझ में आया?

वह तो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, आहाहा! परमपारिणामिकभाव। जयधवल में तो राग को भी पारिणामिकभाव कहा है। शुभ-अशुभभाव को भी पारिणामिकभाव कहा है। क्योंकि पारिणामिकभाव की पर्याय है, इसलिए (कहा है)। यहाँ तो कहते हैं कि उस वस्तु से रहित यह तो परमपारिणामिकभाव है। केवलज्ञान की पर्याय को भी पारिणामिक कहा है। वह है व्यवहारनय-सद्भूतव्यवहारनय। अंश है न? यह तो परमपारिणामिक प्रभु, त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु। आहाहा!

**परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! त्रिकाली वस्तु को यहाँ कारणपरमात्मा कहा है। कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, ध्रुव कहो, सामान्य कहो, भूतार्थ कहो, ज्ञायक कहो, सब एक ही है। आहाहा! ऐसी बात अलौकिक है, बापू! अनन्त काल हुआ। दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ परन्तु अन्तर स्पर्श नहीं किया। इस क्रियाकाण्ड में धर्म है और इससे लाभ होगा, ऐसा मानकर उसमें घुस गया। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वह राग / उदयभाव है। उदयभाव से पारिणामिकभाव प्रगट होगा, (ऐसा माना)। आहाहा! यहाँ तो परमपारिणामिक-स्वभाव प्रगट ही है।

(समयसार) ११वीं गाथा में कहा है। जहाँ **भूदत्थमस्सिदो** कहा न? वहाँ ऐसा कहा है कि ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है। ऐसी टीका है। ज्ञायकभाव आविर्भाव होता है? पाठ तो ऐसा है। ११वीं गाथा में। **भूदत्थमस्सिदो** और ज्ञायकभाव तिरोभूत होता है, ऐसा कहा है। संस्कृत टीका है। ११वीं गाथा। इसका अर्थ कि जिसे पर्याय में ख्याल में नहीं

आया, उसे ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है और ज्ञायकभाव प्रगट हुआ, आविर्भाव हुआ। ज्ञायकभाव तो प्रगट है वह है, परन्तु जिसकी पर्याय में ख्याल आया, उसे ज्ञायकभाव है, ऐसा प्रगट हुआ। प्रतीति में आया तो प्रगट हुआ, (ऐसा कहा)। है, वह प्रगट हुआ। आहाहा! और वहाँ तो ऐसा कहा कि ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। द्रव्य कभी तिरोभूत होता है? द्रव्य कभी आवरण में आता है? द्रव्य तो त्रिकाली निरावरण है। द्रव्य को त्रिकाल निरावरण कहना और फिर तिरोभूत कहना! आहाहा! यह तो अपनी पर्याय में परलक्ष्य है तो ज्ञायकभाव जो वस्तु है, उसके ख्याल में आयी नहीं तो पर्यायवाले को (अर्थात्) पर्यायदृष्टिवाले को तिरोभूत हो गया। वह तो है वह है। वहाँ कोई तिरोभूत और आविर्भूत नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

वह यहाँ कहते हैं। **ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! **वह वास्तव में 'आत्मा' है।** देखो! पर्याय को छोड़कर मात्र त्रिकाली स्वभाव, वही वास्तव में आत्मा है। आहाहा! जो पर्याय से ख्याल में आया, वह पर्याय भी आत्मा नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसका विषय आत्मा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो उसे विषय किया है न? विषय हुआ वह आत्मा... आहाहा! जो त्रिकाली आत्मा, वह निश्चय आत्मा है। पर्यायरहित त्रिकाली, वही निश्चय आत्मा है। आहाहा! सबेरे तो ऐसा आया था कि जीव अपने परिणाम से परिणमे, वह जीव ही है। बापू! कौन सा अधिकार चलता है और किस अपेक्षा से चलता है, यह बात समझनी चाहिए। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ-वहाँ समझना वह।' जहाँ-जहाँ योग्य है, तद्नुसार समझना। सबेरे ऐसा कहा था, जीव तावत् क्रमबद्ध अपने परिणाम से उत्पन्न होनेवाला जीव ही है। परिणाम से उत्पन्न हुआ, जीव ही है। यहाँ कहते हैं कि परिणाम आत्मा में है ही नहीं।

**मुमुक्षु :** सबेरे ऐसा कहते हैं, शाम को ऐसा कहते हैं.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा कहते हैं? यह हमारे फावाभाई कहते थे। हमारे फावाभाई थे न? बुद्धि थोड़ी और यहाँ सुनें। महाराज! तुम सबेरे कुछ कहते हो और दोपहर को कुछ कहते हो। निर्णय करने की ताकत नहीं होती। फावाभाई थे न? उनके पुत्र सूरत में हैं न! मनहरभाई करोड़पति हैं। एक करोड़ रुपये हैं। सूरत में हैं। यहाँ रहते थे। वहाँ हमारे पालेज में रहते थे। हमारे सगे-सम्बन्धी। दुकान पालेज में है। यह तो ७० वर्ष पहले की बात है।

उनकी बुद्धि साधारण। सबेरे कुछ आवे और दोपहर को कुछ आवे। इसमें हमें निर्णय क्या करना ?

भाई ! सबेरे किस अपेक्षा से कहा ? सबेरे तो ऐसा कहा कि अपने में निर्मल परिणाम से आत्मा उत्पन्न होता है, उसे जीव कहा है। वह निर्मल स्वभाव है न, निर्मल गुण है, उसके आश्रय से निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई तो इस अपेक्षा से उसे आत्मा कहा। यहाँ तो कहते हैं कि जो निर्मल परिणाम हैं, उनसे रहित जो त्रिकाली है, उसे हम तो आत्मा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? है ?

**शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वह वास्तव में आत्मा है। पर्याय भी आत्मा तो है, परन्तु व्यवहारनय से है, अभूतार्थ। आहाहा ! साधारण लोगों को अभ्यास न हो, उन्हें ऐसा लगता है। बापू ! अभ्यास करना पड़ेगा। ऐसा समय और मनुष्यपना मिला, मनुष्यपना चला जायेगा। आहाहा ! और कहाँ जायेगा ? कहाँ अवतार होगा ? आहाहा ! क्या कहलाता है उड़े उसे, आँधी, उड़ती है न ? क्या कहते हैं आँधी को ? उसका तिनका कहाँ जाकर पड़ेगा ? वायु होती है न ? तिनका ऐसे-ऐसे होता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व में पड़े हुए प्राणी का अवतार क्या होगा ? आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं ? दूसरी जगह कहते हैं कि पर्यायरहित आत्मा होता नहीं। '**पर्यायविजुत्तंदव्वं**' पंचास्तिकाय में पाठ है। '**पर्यायविजुत्तंदव्वं**' वह बात बराबर है। परन्तु यहाँ कहते हैं कि जो त्रिकाली आत्मा है, उसे ही हम आत्मा कहते हैं। पर्याय को हम निश्चय आत्मा नहीं कहते। निर्मल पर्याय को भी हम निश्चय आत्मा नहीं कहते; वह व्यवहार आत्मा है। आहाहा ! भाई ! अरे ! मोक्षमार्ग की पर्याय को भी व्यवहार आत्मा कहा है। यहाँ तो परद्रव्य कहा है न ! आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

**वह वास्तव में 'आत्मा' है।** आहाहा ! स्वभाव से परिपूर्ण प्रभु एकरूप, कभी भी हीन नहीं होता, कभी भी आवरण नहीं, कभी भी विपरीत नहीं। अविपरीत, आवरणरहित, पर्यायरहित पूर्ण स्वरूप जो है, उसे यहाँ वास्तव में आत्मा कहने में आया है। वह आत्मा उपादेय है। है न ? आहाहा ! **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा ! अति निकट, जिनका संसार अल्प है, ऐसे भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कुछ उपादेय नहीं है। फिर विशेष बात आयेगी......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

**प्रवचन-३६, श्लोक-५४, गाथा-३८, सोमवार, श्रावण कृष्ण १, दिनांक ११-०८-१९८०**

नियमसार गाथा, ३८। यहाँ तक आया है। एक लाईन बाकी है। पहले क्या कहा? कि यह आत्मा जो त्रिकाली चीज़ है; धर्मी जीव को वह एक ही उपादेय है। उसका अनुभव करना, वही उसका (धर्मी का) कर्तव्य है। इसमें सात पर्याय है – अजीव का ज्ञान, जीव की पर्याय, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। ये सातों ही पर्यायें परद्रव्य हैं। स्वद्रव्य का इनमें अभाव है; तो संवर, और निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी परद्रव्य है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा! उस पर्याय का आश्रय करने से तो विकल्प और राग उत्पन्न होता है। चाहे तो मोक्ष का मार्ग हो, उसका आश्रय करने से भी विकल्प और राग उत्पन्न होता है। उस मोक्ष के मार्ग को भी यहाँ परद्रव्य कहा है। सूक्ष्म बात है, भाई!

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में—दिव्यध्वनि में आया, उसे सन्त आड़तिया होकर जगत में प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! कि संवर-निर्जरा और मोक्ष भी परद्रव्य है, क्योंकि उनके आश्रय से तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! एक त्रिकाल, चार भाव से रहित, उदयभाव—पुण्य-पाप आदि; क्षयोपशमभाव, उपशमभाव और क्षायिकभाव, इन चार भावों से रहित... आहाहा! और चार भावों से अगोचर अथवा चार भावों से अगम्य अर्थात् चार भावों के आश्रय से अगम्य.... आहाहा! ऐसी चीज़ है। यह चीज़ अनादि-अनन्त प्रभु! अनादि-अनन्त है। है, उसकी आदि (शुरुआत) कैसी? और है, उसका अन्त कैसा? और है, वह अतीन्द्रिय स्वभाववाला है। है, वह स्वभाववान होता है। स्वभावरहित की चीज़ कभी नहीं रहती।

वह **अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध-सहज-परम-पारिणामिकभाव...** शुद्ध अर्थात् कि सहज अर्थात् परमपारिणामिकभाव। आहाहा! अर्थात् ज्ञायकभाव। पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है। आत्मा के अतिरिक्त, पाँच द्रव्यों में द्रव्य जो हैं, वह पारिणामिकभाव से ही है, परन्तु यहाँ पारिणामिकभाव, वह ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, त्रिकालीभाव, शुद्धभाव...

शुद्धभाव का अधिकार है न ? तो यह पर्याय के शुद्धभाव की बात नहीं है। त्रिकाली चीज़ है जो भगवान पूर्णानन्द है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। उस शुद्धभाव को यहाँ परमपारिणामिकभाव कहा है। समझ में आया ? ऊपर है न, शुद्धभाव अधिकार ? शुद्धभाव कहो, ज्ञायकभाव कहो, परमपारिणामिकभाव कहो। मात्र पारिणामिक नहीं, क्योंकि मात्र पारिणामिक तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—इन चार पर्यायों को भी पारिणामिकभाव कहने में आता है, परन्तु वह परद्रव्य है। आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

धर्मी जीव को **पारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है — ऐसा कारणपरमात्मा,...** आहाहा! **वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वास्तव में आत्मा तो उसे ही कहते हैं। पर्याय है, वह तो व्यवहार आत्मा है और व्यवहार को अभूतार्थ कहकर, पर्याय को गौण करके, त्रिकाली परम स्वभावभाव को मुख्य करके, वही कारणपरमात्मा उपादेय है-(ऐसा कहा है)। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के सब भाव हैं, वे क्या हैं ? वह तो उदयभाव / विकार है, वह बन्ध का कारण है परन्तु जो क्षयोपशम आदि जो मोक्ष का कारण है, उसे भी परद्रव्य कहने में आया है, क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय-शुद्धि नहीं आती। इस कारण जैसे परद्रव्य में से पर्याय नहीं आती, वैसे संवर-निर्जरा और मोक्षमार्ग की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती, तो वह नयी पर्याय जो आनेवाली चीज़ है, वह तो त्रिकाली परमपारिणामिकभाव है। आहाहा! अरे रे! मनुष्यपने में करना हो तो यह कर्तव्य है। बाकी सब प्रपंच जाल है। आहाहा!

शुभभाव को भी संसार और प्रपंच भाव कहा है। आहाहा! यह तो ठीक, परन्तु अपनी चीज़ जो द्रव्य, गुण और पर्याय है, उन तीन का जो विचार करता है, वह भी विकल्प राग और पराधीन है। आहाहा! अन्तर एकरूप चीज़ आनन्द कारणपरमात्मा वास्तव में आत्मा यह है। वास्तव में आत्मा इसे कहा जाता है। आहाहा! भाषा तो सादी है परन्तु भाव तो बापू! कठिन है। आहाहा! उसका जानपना हो जाये, उससे भी कोई लाभ नहीं है। आहाहा! उसका आश्रय हो जाये, वह लाभ का कारण है। समझ में आया ? वास्तव में तो आत्मा वह है।

**वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वह वास्तव में आत्मा निश्चय त्रिकाल स्वभाव, जिसका अनुभव करने से आनन्द आता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में है तो पर्याय, परन्तु उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को परद्रव्य

कहा जाता है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद, वह पर्याय है। त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, प्रभु! आहाहा! **वह वास्तव में...** यथार्थ में वही आत्मा है। आहाहा! सच्चे मोक्षमार्ग की पर्याय, निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय, वह भी वास्तव में आत्मा नहीं है। वह वास्तव में आत्मा नहीं है, वह व्यवहार आत्मा है। आहाहा! यहाँ तक तो आया है। अब यहाँ कहते हैं, **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! जिसे अल्पभव रहे हैं, संसार का किनारा आ गया है और मोक्ष की पर्याय की प्राप्ति का काल अल्प रहा है। आहाहा! ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** अकेला भव्य जीव नहीं लिया। आसन्न-जिसे मोक्ष निकट है, संसार का किनारा नजदीक है। आहाहा! अकेला आसन्न भी नहीं लिया। **अति-आसन्न भव्यजीवों...** आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव जो निश्चय आत्मा है, वह **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! **ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** ऐसे भव्यजीवों को **ऐसे निजपरमात्मा...** परमात्मा कहो, कारणपरमात्मा कहो, निजपरमात्मा कहो, परमपारिणामिकभाव कहो, त्रिकाली शुद्धभाव कहो—सब एक ही चीज़ है। यह अधिकार शुद्धभाव का है। आहाहा!

ऐसे **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** आहाहा! **ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त....** पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अनन्त-अनन्त पूर्ण गुण से भरपूर प्रभु-ऐसा अपना परमात्मा, उस निजस्वरूप **के अतिरिक्त ( अन्य ) कुछ उपादेय नहीं है**। निमित्त तो उपादेय नहीं, राग तो उपादेय नहीं, परन्तु संवर-निर्जरा आदि पर्याय भी उपादेय नहीं। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! आहाहा! यहाँ तो कहे, व्रत करो, प्रतिमा ले लो, यह ले लो, ऐसा करो परन्तु अभी तुझे सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा आयी कहाँ से? समझ में आया? और सम्यग्दर्शन है तो पर्याय, परन्तु उस सम्यग्दर्शन का विषय पर्याय नहीं है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन का ध्येय सम्यग्दर्शन नहीं है। सम्यग्दर्शन का ध्येय परम परमात्मस्वरूप जो त्रिकाली, वह ध्येय है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** इसकी विधि क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्तर में जाना, वह विधि; दूसरी क्या? जो त्रिकाली चीज़ पाताल में है... एक समय की पर्याय परद्रव्य है, उसके पाताल में निजपरमात्मा पड़ा है, उस ओर नजर करना, वह उसकी विधि है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** आपके पास तो आ गये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आ गये। आप अर्थात् यह आत्मा। वह आप अर्थात् अन्दर यह आत्मा, उसके पास जाना, वह चीज़ है। आहाहा! वैसे तो समवसरण में अनन्त बार गया, प्रभु! महाविदेह में तो... कल एक बार कहा था न? त्रिकाल में त्रिकाल जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। क्या कहा? तीन काल, तीन लोक में, तीन काल और तीन लोक को जाननेवाले का विरह कभी नहीं होता। सदा अनादि-अनन्त केवलज्ञानी विराजमान हैं। आहाहा! ऐसे महाविदेह में तो भगवान केवली शाश्वत् विराजते हैं और महाविदेह में जन्म लेकर अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। अनन्त पुद्गलपरावर्तन। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्त भाग में अनन्त भव होते हैं। आहाहा! बहुत बड़ी बात है, प्रभु!

एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त भव होते हैं। ऐसा एक पुद्गलपरावर्तन, ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन में जन्म लिया और जहाँ जन्म लिया तो अनन्त बार त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का समवसरण तो कायम वहाँ महाविदेह में है। उस समवसरण में गया। आहाहा! बात सुनी, परन्तु अन्दर में आत्मा का स्पर्श नहीं किया। यह सुनने के विकल्प में सुनी कि ये भगवान ऐसा कहते हैं। ऐसा ज्ञान भी ख्याल में आया, परन्तु वह आत्मा जो त्रिकाली भगवान है, उसके समीप नहीं गया। आहाहा!

कहते हैं कि **अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निजपरमात्मा...** भाषा है? निजपरमात्मा। परपरमात्मा नहीं। पंच परमेष्ठी और अरिहन्त तीर्थंकर भी नहीं। आहाहा! **निजपरमात्मा...** यह आत्मा, परमात्मा ही है। 'घट घट अन्तर जिन बसे।' भगवान वीतराग मूर्ति घट-घट में विराजमान हैं। चैतन्य प्रतिमा वीतरागमूर्ति अन्तर में विराजमान है। आहाहा! चैतन्य रत्नाकर है। अनन्त चैतन्य के रत्न से भरपूर भगवान समुद्र है। जिसमें पर्याय का भी अभाव है। जो पर्याय उसका विषय करती है, उस पर्याय का भी उस चीज़ में अभाव है और उस पर्याय में भी उस द्रव्य का अभाव है। ऐसा होने पर भी वर्तमान पर्याय निजपरमात्मा की ओर झुकती है, तो पर्याय में निजपरमात्मा का ज्ञान और श्रद्धा होते हैं, परन्तु पर्याय में, निज परमात्मा है, वह आता नहीं। आहाहा! **अति-आसन्न भव्यजीवों को...** अल्पकाल में जिन्हें संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहा है। प्रवचनसार के पहले अधिकार की शुरुआत में (कहा है)। जिनका संसार का किनारा निकट आ गया है, ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य का कहा हुआ यह प्रवचनसार है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **निजपरमात्मा के अतिरिक्त...** निर्मलपर्याय भी निजपरमात्मा से अन्य है। राग तो अन्य है, देव-गुरु-शास्त्र तो अन्य है और देव-गुरु-शास्त्र का लक्ष्य करने से तो राग होता है, परन्तु पर्याय का आश्रय करने से भी राग होता है। समझ में आया? आहाहा! क्या करना? यह करना। जहाँ प्रभु विराजता है, वहाँ पर्याय को ले जाना। आहाहा! अभी तो पर्याय क्या, द्रव्य क्या - यह सुना नहीं होगा। आहाहा!

भगवान पूर्णानन्द का नाथ... यहाँ तो आचार्य, भगवान कहकर बुलाते हैं। आहाहा! यह तो भगवानस्वरूप ही विराजमान है। भगवानस्वरूप है तो पर्याय में भगवान प्रगट होता है। यदि भगवानस्वरूप न हो तो पर्याय में भगवानस्वरूप कहाँ से आयेगा? प्राप्त की प्राप्ति है। है, उसमें से आता है। नहीं है, उसमें से आता है? आहाहा! यह पूर्णानन्द का नाथ अस्ति तत्त्व प्रभु महा निजपरमात्मा, वही अति-आसन्न भव्यजीवों को आदरणीय स्वीकार और उसमें श्रद्धा-ज्ञान तथा आचरण करने योग्य है। उसमें... आहाहा! पर्याय में नहीं; द्रव्य में। आहाहा!

निजपरमात्मद्रव्य में... इसके **अतिरिक्त ( अन्य ) कुछ उपादेय नहीं है।** कोई उपादेय नहीं है। पंच परमेष्ठी तो उपादेय नहीं, परन्तु पंच परमेष्ठी की भक्ति का राग, वह भी उपादेय नहीं, परन्तु मोक्ष का मार्ग उत्पन्न हुआ, वह भी उपादेय नहीं। आहाहा! है? **कुछ उपादेय नहीं है।** कुछ अंगीकार करने योग्य नहीं है। आहाहा! जहाँ तीन लोक का नाथ अन्दर विराजता है। जिनस्वरूपी, त्रिकाल जिनस्वरूपी प्रभु है। उसके समीप जा और उसका स्वीकार कर, वही तुझे आदरणीय है; दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। आहाहा! यह **कुछ** शब्द है न? '**न किंचिदुपादेयम**' संस्कृत में है न? पण्डितजी! संस्कृत में है। '**न किंचिदुपादेयमस्तीति**' संस्कृत में अन्तिम शब्द है। '**न किंचिदुपादेयमस्तीति**' आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव के शब्द हैं, उनकी टीका है न? '**न किंचिदुपादेयमस्तीति**' आहाहा! तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु विराजता है, वही आत्मा को, अति-आसन्न भव्य जीव को, जिसकी भव्यता पक गयी है... आहाहा! योग्यता हो गयी है, ऐसे जीव को परमात्मा निज प्रभु ही उपादेय है। आहाहा! यहाँ तो (अभी कुछ लोग) कहते हैं दया, दान, व्रत, प्रतिमा के परिणाम वे आदरणीय हैं और उन्हें करते-करते निश्चय होगा। आहाहा! प्रभु! (बात में) बहुत अन्तर है। समझ में आया?

## श्लोक-५४

(अब, ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं — )

( मालिनी )

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः।।५४।।

(वीरछन्द)

सर्व तत्त्व में एक सार जो सकल क्षणिक भावों से पार।
जिसने दुर्जय काम नशा है पापवृक्ष को तीव्र कुठार॥
शुद्धबोध अवतरणरूप है सुखसागर की बाढ़ अहो।
क्लेशोदधि का यही किनारा समयसार जयवन्त रहो॥५४॥

*श्लोकार्थः*—सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है, जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है, जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है और जो क्लेशोदधि का किनारा है, वह समयसार (शुद्ध आत्मा) जयवन्त वर्तता है।।५४॥

### श्लोक-५४ पर प्रवचन

आहाहा! प्रत्येक शब्द की रचना में अन्त में 'रः' (रखा है)। बीच में और अन्त में 'रः'

जयति समयसारः सर्व-तत्त्वैक-सारः,
सकल-विलय-दूरः प्रास्त-दुर्वार-मारः।
दुरित-तरु-कुठारः शुद्ध-बोधावतारः,
सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः।।५४।।

ये पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,....** क्या कहा ? सात तत्त्व में। पदार्थरूप से नौ तत्त्व हैं। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। इन सर्व तत्त्वों में सार त्रिकाली निजपरमात्मा है। संवर-निर्जरा और मोक्ष भी सार नहीं है। आहाहा! कठिन पड़े। मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! सुनकर ज्ञान में ख्याल में आया, वह कोई चीज़ नहीं। ज्ञान में ख्याल आया कि भगवान ऐसा कहते हैं कि यह, वह भी कोई चीज़ नहीं। वह परलक्ष्यी ज्ञान है। अपना-पर्याय लक्ष्य जब त्रिकाल पर जाता है, तो वह वस्तु सार है। यहाँ पर्याय को भी सार नहीं कहा। मोक्षमार्ग भी सार नहीं। आहाहा!

मोक्षमार्गप्रकाशक में तो संवर को उपादेय कहा है; निर्जरा को हितकर कहा है; मोक्ष को परमहितकर कहा है। वह उत्पन्न करने की अपेक्षा से कहा है। परन्तु उत्पन्न होता है किसके आश्रय से ? आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं और तत्त्वार्थ एकवचन है। तत्त्वार्थश्रद्धान का एकवचन है। एकवचन में वह तत्त्व एक स्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय करने से, दूसरी जो सात पर्यायें हैं, वे उसमें नहीं है – ऐसा अन्दर में ज्ञान हो जाता है। स्व-अस्ति के ज्ञान में जितनी परपर्याय है, वे उसमें नहीं है, ऐसा ज्ञान उसमें हो जाता है। उस ज्ञान में द्रव्य की प्रतीति हुई। आहाहा!

**सर्व तत्त्वों...** तत्त्व है सही। **सर्व तत्त्वों...** कहा न ? है अवश्य। वेदान्त की तरह पर्याय है ही नहीं, (ऐसा नहीं है)। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि आत्मा का अनुभव करना ? आत्मा अनुभव करे तो द्वैत हो जाता है। वह नहीं। आत्मा, बस। ऐसा वे लोग कहते हैं। ऐसा नहीं है। वह तो एकान्त मिथ्यात्व है। यहाँ सर्व तत्त्वों की अस्ति तो कही। संवर, निर्जरा, पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, हैं अवश्य। हैं उनका नाश करना, है उनका लक्ष्य छोड़ना है। नहीं है, उसका लक्ष्य छोड़ना कहाँ से आया ? आहाहा!

**सर्व तत्त्वों...** कहने से अस्ति तो सिद्ध की। आस्रव है, संवर है, निर्जरा है, बन्ध है, मोक्ष है... आहाहा! और जीव की एक समय की पर्याय भी है और पर्याय में अजीव का ज्ञान होता है, वह भी है। पर्याय में अजीव नहीं आता। सात तत्त्व में जीव-अजीव कहा न ? तो अजीव कहीं अन्दर आ नहीं जाता, परन्तु अजीव के ज्ञान को यहाँ अजीव कहा है। समझ में आया ? आहाहा! भगवान आत्मा की एक समय की पर्याय में अजीव का ज्ञान हुआ, और उस पर्याय में संवर-निर्जरा मोक्ष भी होते हैं और उस पर्याय में आस्रव तथा बन्ध भी होता है, अत: उस पर्याय से सर्व तत्त्व हैं अवश्य, परन्तु **सर्व तत्त्वों में जो एक सार**

**है,...** निजपरमात्मा है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ है, वहाँ नजर करनी है। पर्याय को अन्दर पाताल में ले जाना है। एक समय की पर्याय है, उसके पास इस ओर अन्तरात्मा स्थित है। इस ओर देखे तो राग और पुण्य दिखता है और वह पर्याय अन्दर में जाये तो परमात्मा दिखता है। आहाहा! यह कहीं बात नहीं है, बापू! आहाहा! समझ में आया?

एक समय की पर्याय वह अन्तर्मुख–अन्तर्मुख। इस ओर पर्याय की समीप में भगवान विराजता है। इस ओर पर्याय की समीप में रागादि हैं। आहाहा! तो यहाँ कहते हैं **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है,...** वापिस भाषा ऐसी है न? तत्त्वों–बहुवचन लिया। उनकी अस्ति कही है। उनमें एक सार। आहाहा! अन्दर परमात्मा कैसा है? **जो एक सार है,...** कि जो सम्यग्दर्शन का विषय है और जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। वह सार कैसा है? आहाहा!

**जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? एक समय की पर्याय संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय की पर्याय है, तो वह नष्ट होने योग्य भाव है। आहाहा! मोक्षमार्ग की पर्याय भी नाश पाने योग्य है क्योंकि एक ही समय की पर्याय है। **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य...** समस्त क्यों कहा? कि आस्रव तो नष्ट होने योग्य है ही; राग का बन्ध है, वह भी नाश होने योग्य है ही; परन्तु संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी एक समय की है, वह भी नाश होने योग्य है। आहाहा! ऐसी बात है। कहो, भभूतमलजी! यह तुमने आठ लाख डाले (मन्दिर बनाने में दिये), इसलिए धर्म हो गया, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। मन्दिर बनाया न, मन्दिर? बैंगलोर में। आठ लाख इन्होंने दिये हैं। चार लाख जुगराजजी ने दिये हैं। बारह लाख। अभी तो पन्द्रह लाख का हो गया है। वह जड़ की पर्याय जड़ में, जड़ से हुई है परन्तु तेरे भाव में उस ओर का लक्ष्य था, वह शुभभाव भी नाशवान है। आहाहा! और शुभभाव को जानने की पर्याय जो है, वह भी नाशवान है। क्योंकि पर्याय की अवधि एक समय की है। केवलज्ञान भी एक समय रहता है। दूसरे समय में वैसा परन्तु वह नहीं रहता। क्या कहा? दूसरे समय में केवलज्ञान वह नहीं रहता। वैसा परन्तु दूसरा। जैसा पहले समय में है, वैसा दूसरे समय में वैसा परन्तु वह नहीं। पहले समय में जो पर्याय थी, वह दूसरे समय में नहीं है। आहाहा! यह शरीर, वाणी, मन को अनित्य और नाशवान कहा। परन्तु यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय को नाशवान कहा। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उसके जैसी है परन्तु वह नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वैसी ही है। भगवान आत्मा! वह एक समय की पर्याय है परन्तु वह नाशवान है और भगवान जो है वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. शाश्वत् वर्तमान एकरूप रहता है। शाश्वत् वर्तमान एकरूप रहता है। त्रिकाल रहता है, इस अपेक्षा से वर्तमान वह वस्तु है। जैसे पर्याय वर्तमान है, वैसे यह वस्तु वर्तमान है। आहाहा! जैसे पर्याय वर्तमान है, वैसे वस्तु भी वर्तमान है, परन्तु पर्याय वर्तमान है, वह नाशवान है और यह (वस्तु) वर्तमान है, वह अविनाशी है। समझ में आया? आहाहा! दोनों को वर्तमान तो कहा। समझ में आया? ध्रुव कहा। वहाँ पाठ में ऐसा लिया है निरन्तर वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान.. वर्तमान पर्याय है, वह नहीं। वस्तु वर्तमान त्रिकाल है, वह। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाल वर्तमान पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... एक समय में वर्तमान में पूर्ण है। वह अविनाशी है और पर्यायमात्र नाशवान है। मोक्ष का मार्ग भी नाशवान है, क्योंकि एक समय की पर्याय है। व्यवहारमोक्षमार्ग तो सच्चा है ही नहीं। वह तो उपचार से कहा है, वह नाशवान है, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग स्वद्रव्य के आश्रय से निजपरमात्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह उत्पन्न हुआ न? उत्पन्न हुआ तो व्यय भी होता है। यह (वस्तु) ध्रुव है, वह उत्पन्न भी नहीं होता और व्यय भी नहीं होता। आहाहा!

जिसे उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् कहा न? सबेरे कहा था। उत्पाद-व्यय-ध्रुव, वह अपना एक गुण है, तो गुण के कारण अन्दर उत्पाद, व्यय और ध्रुवपना रहता है। उत्पाद-व्यय और ध्रुव गुण है। उसका गुण है, उस गुण के कारण उत्पाद होता है, पूर्व की पर्याय का व्यय होता है, तथापि निश्चय में वह उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं गुण, उसका उत्पाद होता है, वह भी नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? अरे! क्षायिक समकित लो, वह भी एक समय की स्थिति है। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती और समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अभी नरक में भी समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। अभी पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं। वहाँ से निकलकर पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। आगामी चौबीसी के पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। वे माता के गर्भ में आयेंगे तो भी दृष्टि तो द्रव्य पर है। आहाहा!

एक बात तो ऐसी है, बहुत विचार किये हैं न? वहाँ (माता के गर्भ में) शुद्धोपयोग, ध्याता-ध्यान-ध्येय का विकल्प छूटकर शुद्धोपयोग होता है या नहीं? यह बहुत लक्ष्य में नहीं आया। वैसे तो लिखा है न? कि अनुभव कितने काल में होता है? रहस्यपूर्ण चिट्ठी

में आता है। चौथे गुणस्थान से अनुभव होता है। भले काल अल्प हो परन्तु अनुभव चौथे गुणस्थान में होता है, परन्तु यहाँ तो कहना है कि अनुभव की पर्याय जो है... आहाहा! वह भी एक समय में उत्पन्न हुई है। उत्पन्न हुई है। ध्रुव वस्तु जो त्रिकाली परमात्मा उत्पन्न हुआ नहीं। आहाहा! उसमें एक लिया है। तत्त्वार्थसूत्र में, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् और सत्द्रव्यलक्षणं, ऐसा लिया है। शक्ति में भी ऐसा लिया है। अनन्त शक्ति (में से) सैंतालीस शक्ति में एक उत्पादव्ययध्रुवयुक्त शक्ति है और सदृश-विसदृश परिणमनेवाली (शक्ति ली है)। सदृशरूप अर्थात् त्रिकाल और पर्याय विसदृश है, विसदृश है। उत्पाद-व्यय.. उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय... भाव-अभाव... भाव-अभाव... और ध्रुव सदृश है। एकरूप त्रिकाल रहनेवाला है। आहाहा! वहीं आदरणीय है और उसके अतिरिक्त सब (हेय है)। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् ऐसा गुण है और उस गुण के कारण उत्पाद पर्याय होती है। आहाहा! आत्मा उत्पाद करे तो उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। यह आत्मा का गुण जो है, उस गुण को धरनेवाले निजपरमात्मा की दृष्टि हुई तो पर्याय में उत्पन्न होता ही है। आहाहा! परन्तु जो पर्याय में उत्पन्न होता है, वह पर्याय नाशवान है। आहाहा! त्रिकाली गुण अविनाशी है। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप भगवान अविनाशी है और उसके अवलम्बन से (पर्याय) उत्पन्न हुई, ऐसा कहो। उत्पन्न हुई, ऐसा कहा न? है? आहाहा! नयी उत्पन्न होती है न? इसलिए उससे भिन्न है। सर्वनाश होने योग्य कहो (जो) उत्पन्न होनेवाले हैं, वे व्यय होने योग्य हैं, ऐसा कहते हैं। जो उत्पन्न होने योग्य है, वह व्यय होने योग्य है। आहाहा! भगवान त्रिकाली चीज़ उत्पन्न होने योग्य नहीं और नष्ट होने योग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात प्रभु की कहाँ है? अलौकिक बात है।

तथापि वह क्षायिक समकिती भगवान की प्रतिमा को वन्दन करे, भक्ति करे, पूजा करे, हों! परन्तु वह जानता है कि यह शुभभाव है। यह अनादि का व्यवहार है परन्तु इस शुभभाव को जानता है। हेयरूप से है तो भी आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव तो हेय और नाशवान है ही परन्तु शुद्धभाव के अवलम्बन से शुद्धपर्याय हुई, क्षायिक समकित, क्षायिक यथाख्यातचारित्र, क्षायिक यथाख्यातचारित्र, क्षायिक केवलज्ञान, क्षायिक केवलदर्शन, क्षायिक वीर्य, और क्षायिक आनन्द (प्रगट हुए), वह भी पर्याय है तो नाशवान है।

वह **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...**

आया ? यह संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय है, उनसे तत्त्व दूर है। आहाहा! गजब बात, भाई! एक बात सुनने मिले नहीं और सुनने मिले तो क्या आशय कहते हैं, वह समझना कठिन पड़ता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं **नष्ट होनेयोग्य भावों से...** भाव तो कहा। चीज़ है तो अवश्य, परन्तु वह उत्पन्न हुई है तो वह नाश होनेयोग्य है। भगवान त्रिकाली उत्पन्न हुआ नहीं तो वह नष्ट नहीं होता। शास्त्र में है या नहीं ?

यह कुन्दकुन्दाचार्य का शास्त्र है और कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे (ऐसा कहते हैं)। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी....' तीसरे नम्बर में 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो...' ये कुन्दकुन्दाचार्य जो तीसरे नम्बर में हैं, वे ऐसा कहते हैं कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। अन्तिम गाथा में है। आहाहा! और उसकी टीका करनेवाले पद्मप्रभमलधारिदेव ने पहले ऐसा कहा है, अरे! टीका करनेवाले हम कौन ? यह टीका तो अनादि से हुई है। शुरुआत की गाथा में है। शुरुआत में है न ? पहले शुरुआत में। आहाहा! कहाँ है ? पाँचवां (श्लोक) है न ? देखो! **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त किये गये इस परमागम के अर्थसमूह का कथन करने में हम मन्दबुद्धि तो कौन ?** आहाहा! ऐसी टीका हमने नहीं की, यह टीका तो अनादि से चली आ रही है। सन्तों से चली आ रही है। **गुण के धारण करनेवाले गणधरों से रचित....** टीका, हों! **और श्रुतधरों की परम्परा से अच्छी तरह...** चली आयी है। श्रुत के धारकों से परम्परा से यह टीका चली आती है। मैंने अकेले ने बनायी है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! और वह किस प्रकार बनी ? कि **इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है।** विकल्प आया करते हैं कि इसकी टीका हो, इसका सार निकालें, ऐसा विकल्प आया करते हैं, इसलिए यह टीका बनी है। आहाहा! दो बातें की हैं। एक तो यह टीका गणधरों और श्रुतधरों से चली आयी है और यहाँ मैंने बनायी, उसका कारण कि मुझे मन में ऐसा विकल्प आया करता था कि यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं के लिये नियमसार बनाया, तो इसकी टीका रच जाये तो ठीक, ऐसा विकल्प आता था, इसलिए टीका बन गयी है। आहाहा! ये दो बातें।

**जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** किसने ? एक साररूप जो तत्त्व त्रिकाली

ज्ञायकभाव, उसने **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् काम की इच्छामात्र वस्तु में नहीं है, वह नाश करनेवाला है तो पर्याय में नाश करनेवाला हुआ। परन्तु इसका अर्थ यह कि उसमें काम की इच्छा का अन्तर में अभाव है। इसलिए वे सब दुर्वार काम को निवारण नहीं किया जा सकता। आहाहा! मुनि भी कहते हैं... यहाँ आया है। बाद में क्या था? आहाहा! क्या है? समाधि। भक्ति, भक्ति। उसमें ऐसा आया है, भावलिंगी मुनि ऐसे हैं... आहाहा! परन्तु अपने में कोई विकल्प उठता है, इसलिए ऐसा कहते हैं। आहाहा! कि हमें हमारे मन में किसी समय काम का विकल्प घर कर जाता है तो जो कामरहित मुनि-सन्त हैं, उन्हें मेरा नमस्कार। ऐसा है। ऐसा अन्दर है। आवश्यक है न? परम-आवश्यक में। कहीं लिखा है। है इसमें? २९५ ठीक। यह पुस्तक दूसरी है। श्लोक २५० है।

**कामदेवीरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले का-भवरूपी अरण्य में शरण है।** देखो! भाषा। यह पुस्तक दूसरी है। इसमें है। मैंने कहा, हाथ क्यों नहीं आया? जिसने स्वर्ण की ओर सुन्दर स्त्रियों की स्पृहा को नष्ट किया है, ऐसे हे योगी समूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी! तुम हमारे कामदेवरूपी भील के तीर से... आहाहा! घायल चित्तवाले हम हैं। अरर..! मुनि को भी कोई विकल्प आ जाये तो कहते हैं कि... आहाहा! हमारा चित्त घायल है। समझ में आया? है? यह तो दूसरी पुस्तक है। मैं पढ़ता हूँ, उसमें चिह्न किया है। है न इसमें? यह २९५ है न? वह इसमें है। इसमें है। श्लोक २५० है।

**हे योगीसमूह में श्रेष्ठ स्ववश योगी!...** योगी अपने पूर्णानन्द में लीन हैं, तो हमारा कामदेवरूपी भील के तीर से... आहाहा! कुछ भी बाहर की सुन्दर चीज़ में विकल्प आता है तो हमारा चित्त घायल है। आहाहा! मुनि कहते हैं। है? **हमारा कामदेवीरूपी भील के तीर से घायल चित्तवाले को भवरूपी अरण्य में शरण तुम है।** हे मुनि! आहाहा! छद्मस्थ है। किसी समय किसी सुन्दरता के लक्ष्य से विकल्प आवे तो ऐसा लगता है कि हमारा चित्त घायल है। आहाहा! और एक ओर ऐसा कहते हैं कि केवली और मुनियों में किंचित् अन्तर है। दूसरी ओर ऐसा कहते हैं कि केवली और मुनि को... २५३ कलश।

**सर्वज्ञ वीतराग में और इन स्ववश योगी में...** २९६ पृष्ठ, २९५ के बाद तुरन्त। २९५ के बाद तुरन्त। २५३ कलश। ऊपर है। **सर्वज्ञ वीतराग में और इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है।...** आहाहा! २५३ श्लोक है। २९६ पृष्ठ पर है। आहाहा! यह तो उसे हाथ आना हो, तब आवे न? उसकी पर्याय होनी हो, तब हो न! **सर्वज्ञ वीतराग**

**में और इन स्ववश योगी में कभी भी कुछ भी भेद नहीं है।....** २५३ श्लोक। **तथापि अरे रे! हम जड़ हैं...** आहाहा! भाषा तो देखो! कितनी निर्मानता! **अरे रे!** कहाँ सर्वज्ञ और कहाँ मुनि! दोनों समान हैं। **अरे रे! हम जड़ हैं कि उनमें भेद मानते हैं।** आहाहा! इतनी निर्मानता.. इतनी निर्मानता। आहाहा! मिला? ऊपर है। पहला श्लोक है। २५३, यह बात पहले आ गयी है। थोड़ा अन्दर है, ऐसा श्लोक आ गया है। वह २८८ पृष्ठ पर। २८८ है न? २८८। २४३ (कलश)। बस वह।

**जो जीव अन्यवश है, वह भले मुनिवेशधारी है तो भी संसारी है...** है? २४३ कलश। **नित्य दुःख को भोगनेवाला है; जो जीव स्ववश है, वह जीवन्मुक्त है। जिनेश्वर से किंचित् न्यून...** जिनेश्वर से किंचित् न्यून। २४३ कलश। यहाँ कहा कि हमारे में और उनमें कोई अन्तर नहीं। अपेक्षा से (कथन) है न? आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप है, तो मुक्तस्वरूप की पर्याय में जो दशा मुक्त हुई, तो हम मुक्त ही हैं। आहाहा! यह समयसार के कलश में आता है। मुक्त ही है। क्योंकि मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा निरावरण त्रिकाली। सहज निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निजपरमात्मतत्त्व मैं द्रव्य हूँ। मैं मुक्तस्वरूप हूँ। मुक्तस्वरूप का अनुभव हुआ, तो मैं तो पर्याय में भी मुक्त हो गया। आहाहा! समझ में आया?

अपने यहाँ ५४ (कलश) यहाँ आया? **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** इसका अर्थ ऐसा है... अपने चलता कलश। **सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है,...** दूर है। संवर-निर्जरा से तत्त्व दूर है। केवलज्ञान की पर्याय से तत्त्व दूर है। आहाहा! दूर का अर्थ कि पर्याय में वह नहीं और वह पर्याय इसमें नहीं। आहाहा! यह तो अलौकिक मार्ग! तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि है। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा कहना है कि **जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** तो यह तो पर्याय हुई। पर्याय में नाश पाता है। यहाँ तो कहते हैं कि जिसमें दुर्वार काम है ही नहीं। जिस काम का निवारण नहीं किया जा सकता, ऐसा नाश करनेवाला मैं हूँ। इसका अर्थ कि मुझमें वह काम है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** अर्थात् दुर्वार काम मेरी वस्तु में है ही नहीं। एक ओर ऐसा कहे कि संवर, निर्जरातत्त्व भी सार नहीं; सार तो यह (त्रिकाली जीव) तत्त्व है। और दूसरी ओर ऐसा कहे कि यह आत्मा काम को नाश

करनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? परन्तु इसके आश्रय से नाश को प्राप्त होता है, इसलिए इसे काम का नाश करनेवाला कहने में आया है। आहाहा! है? आहाहा! **दुर्वार काम को नष्ट किया है,...** आहाहा! **जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** यह भी निमित्त से कथन है अर्थात् इसमें पाप है ही नहीं। पापरूप वृक्ष। पाप तो सब पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। आगे लेंगे। समझ में आया? ये दो पापरूपी वृक्ष। आहाहा! **छेदनेवाला कुठार है,...** कुठार। अर्थात् उसके आश्रय से पापरूपी वृक्ष का नाश होता है। अर्थात् वह पापरूपी वृक्ष है, वह स्वरूप में ही नहीं है, ऐसा कहना है। **छेदनेवाला कुठार है,...** वह तो पर्याय हो गयी। यह तो द्रव्य की बात है। समझ में आया? आहाहा!

**जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है,...** उसमें पुण्य-पाप ही नहीं, ऐसी चीज़ मैं हूँ। आहाहा! धर्मी जीव की दृष्टि में वह आत्मा है कि जिसमें काम की वासना का त्रिकाल अभाव है और पुण्य-पाप के भाव का भी त्रिकाल अभाव है। उसे यहाँ (पापरूपी) वृक्ष को छेदनेवाला कुठार कहा है। इसके दो अर्थ हैं - एक तो उसमें पुण्य-पाप है नहीं और दूसरा उस पुण्य-पाप का नाश उसके आश्रय से होता है, इस अपेक्षा से इसे पुण्य-पाप का नाश करनेवाला कुठार कहा है। तीसरा अर्थ तो ऐसा है कि वे पुण्य और पाप इसमें है ही नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! अब लिखा है कुछ और अर्थ करना कुछ!

**जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्धज्ञान का अवतार है,...** यह वस्तु, हों! पर्याय प्रगट हुई, वह नहीं। **जो शुद्धज्ञान का अवतार है,...** पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण ज्ञानस्वरूप का ही अवतार है। अवतार में जन्म लेना पर्याय, वह बात यहाँ नहीं है। यह वस्तु ऐसी है। आहाहा! **जो शुद्धज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है...** वस्तु, सुखसागर के जल से भरपूर पूर है। आहाहा! नित्यानन्द नाथ, पर्याय के नाश से नष्ट नहीं होती, ऐसी चीज़; सर्वतत्त्वों में सार है, वह **जो सुखसागर की बाढ़ है और जो क्लेशोदधि का किनारा है,...** क्लेशरूपी समुद्र का किनारा, अर्थात् उसमें क्लेश है ही नहीं। अत: ऐसा शब्द भी कहने में आता है। क्लेशोदधि=क्लेशवरूपी सागर / समुद्र, उसका किनारा। **वह समयसार ( शुद्ध आत्मा ) जयवन्त वर्तता है।** सदा वर्तमान, सदा जयवन्त वर्तता है। किसी समय में नहीं है, ऐसा नहीं। सदा जयवन्त वर्तता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## गाथा-३९

णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा।।३९।।

न खलु स्वभावस्थानानि न मानापमानभावस्थानानि वा।
न हर्षभावस्थानानि न जीवस्याहर्षस्थानानि वा।।३९।।

निर्विकल्पतत्त्वस्वरूपाख्यानमेतत्। त्रिकालनिरुपाधिस्वरूपस्य शुद्धजीवास्तिकायस्य न खलु विभावस्वभावस्थानानि। प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तमोहरागद्वेषाभावान्न च मानापमान-हेतुभूतकर्मोदयस्थानानि। न खलु शुभपरिणतेरभावाच्छुभकर्म, शुभकर्माभावान्न सन्सारसुखं, सन्सारसुखस्याभावान्न हर्षस्थानानि। न चाशुभपरिणतेरभावादशुभकर्म, अशुभकर्माभावान्न दुःखं, दुःखाभावान्न चाहर्षस्थानानि चेति।

---

मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।
होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥

अन्वयार्थः—[ जीवस्य ] जीव को [ खलु ] वास्तव में [ न स्वभावस्थानानि ] स्वभावस्थान ( -विभावस्वभाव के स्थान ) नहीं हैं, [ न मानापमानभावस्थानानि वा ] मानापमानभाव के स्थान नहीं हैं, [ न हर्षभावस्थानानि ] हर्षभाव के स्थान नहीं हैं [ वा ] या [ न अहर्षस्थानानि ] अहर्ष के स्थान नहीं हैं।

टीकाः—यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।

त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान ( विभावरूप स्वभाव के स्थान ) नहीं हैं; ( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं; ( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) शुभपरिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है, शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है, संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं; और ( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) अशुभपरिणति का अभाव होने से अशुभकर्म नहीं है, अशुभकर्म का अभाव होने से दुःख नहीं है, दुःख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं है।

प्रवचन-३७, गाथा-३९, श्लोक-५५, मंगलवार, श्रावण शुक्ल २, दिनांक १२-०८-१९८०

निर्विकल्प तत्त्व का स्वरूप। यह आत्मा निर्विकल्प क्या है? यही दृष्टि करनेयोग्य, आचरण करनेयोग्य और ज्ञान करनेयोग्य है। निर्विकल्प वस्तु अन्दर क्या है, उसकी बात है।

**णो खलु सहावठाणा णो माणवमाणभावठाणा वा।**
**णो हरिसभावठाणा णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा।।३९।।**

हरिगीत—

**मानापमान, स्वभाव के नहिं स्थान होते जीव के।**
**होते न हर्षस्थान भी, नहिं स्थान और अहर्ष के॥३९॥**

**टीका:—यह, निर्विकल्पतत्त्व के स्वरूप का कथन है।** इसकी विशिष्टता क्या है? देखो! कि **णो खलु सहावठाणा णो** शब्द है। पाठ ऐसा है कि जीव को स्वभाव के स्थान नहीं, परन्तु उस स्वभाव का अर्थ, विकार और उदयभाव की बात है। समझ में आया? भाषा स्वभाव ली है। कोई विवाद करे कि विकार को स्वभाव क्यों कहा? यह बड़ी चर्चा हुई थी। कर्म के निमित्त से जो विकार होता है, उसे स्वभाव क्यों कहा? पाठ तो यहाँ यह है **णो खलु सहावठाणा** क्या कहते हैं? त्रिकाल निरूपाधि जिसका स्वरूप है। भगवान आत्मा... आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु, दृष्टि में जो उपादेय / आदरणीय है, तब इसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन। उस सम्यग्दर्शन का विषय क्या? आश्रय क्या? किसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है? निर्विकल्प तत्त्व के अवलम्बन से होता है। तो निर्विकल्प तत्त्व क्या है? सूक्ष्म बात है, भाई!

**त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** भगवान द्रव्यस्वभाव तो **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** आहाहा! जिसमें शरीर, वाणी, मकान, पैसा यह तो है ही नहीं; जिसमें राग, दया, दान के विकल्प हैं, उन्हें यहाँ **सहावठाणा** कहा है। है विभाव, परन्तु पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! यह (संवत्) २०१३ के वर्ष में बहुत बड़ी चर्चा हुई थी। ऐसा कि विकार है, वह कर्म के निमित्त से उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। निमित्त से कहने में आता है। वह तो स्वयं से उत्पन्न होता है। तो कहे – यदि स्वयं से उत्पन्न होता है तो वह तो स्वभाव हो जाता है। परन्तु वह स्वभाव ही है। पर्याय का विकाररूप स्वभाव ही है। यह

यहाँ कहते हैं। **णो खलु सहावठाणा** शुद्धस्वभाव की बात नहीं है। है ? देखो! **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है,...** भगवान आत्मा... आहाहा! कभी दृष्टि नहीं की, कभी भी नजर में निधान को नहीं लिया। आहाहा! और क्रियाकाण्ड करके मानो कल्याण हो जायेगा। व्रत, नियम, ऐसे शुभयोग की क्रिया से अन्दर में कल्याण हो जायेगा... तो यहाँ यह कहते हैं कि शुभयोग विकार स्वभाव, वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? **त्रिकाल-निरुपाधि...** यहाँ त्रिकाल शब्द लिया है, देखो! है तो वर्तमान त्रिकाली निरुपाधि, परन्तु त्रिकाल रहनेवाली चीज़ जो भगवान आत्मा, शुद्ध (आत्मा) आनन्दकन्द कारणपरमात्मा, ज्ञायकभाव कहो, परमपारिणामिकस्वभाव कहो, द्रव्यस्वभाव कहो, **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** जीव शब्द नहीं लिया। जीवास्तिकाय लिया है, क्योंकि असंख्य प्रदेशी है। यह जैन परमेश्वर के अतिरिक्त किसी ने देखा ही नहीं। तो जीवास्तिकाय। यह एक शब्द। एक-एक आत्मा। जीव, अस्ति, असंख्यप्रदेशी काय, वह जीवास्तिकाय। असंख्यप्रदेश का समूह है न! समझ में आया ?

भगवान आत्मा अन्दर में राग-द्वेष के सब विकल्प हैं, उनसे प्रभु तो अन्दर भिन्न है और वे राग-द्वेष, दया, दान, व्रत, भक्ति को यहाँ स्वभावस्थान कहने में आया है। है इसका विभाव, परन्तु इसकी पर्याय में होता है और वही पर्याय का स्वभाव है; द्रव्य का स्वभाव नहीं। आहाहा! **ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय...** ऐसा शुद्ध जीव, ऐसा नहीं लिया। अधिकार कौन सा चलता है ? शुद्धभाव। अतः शुद्धभाव कहो, या त्रिकाली निरुपाधि शुद्ध जीवास्तिकाय कहो। क्या कहा ? शुद्धभाव कहो या **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय...** कहो। यह शुद्धभाव पर्याय की बात नहीं है। शुद्धभाव अधिकार है, वह शुद्धभाव पर्याय की बात नहीं है। आहाहा! अरे! इसे कहाँ नजर है। आहाहा!

जहाँ भगवान परिपूर्ण स्वभाव विराजता है। **त्रिकाल-निरुपाधि जिसका स्वरूप है, ऐसे शुद्ध जीवास्तिकाय को...** आहाहा! शुद्ध जीव अस्ति तो है परन्तु साथ में काय लगाया, क्योंकि असंख्य प्रदेश हैं, वह जीवास्तिकाय है। यह जैन परमेश्वर के सिवाय दूसरे किसी ने जीव को असंख्य प्रदेशी नहीं कहा। समझ में आया ? आहाहा! इस कारण से कहा। श्रीमद् में भी एक ऐसा शब्द लिया है 'शुद्धबुद्ध चैतन्यघन' ये तीन शब्द पड़े हैं, तो शुद्ध है, वह त्रिकाल पवित्र है, बुद्ध वह ज्ञान का पिण्ड है और चैतन्यघन, वह असंख्य प्रदेश है। समझ में आया ? शुद्धबुद्ध चैतन्यघन। आहाहा! मूल बात पड़ी रही। ऊपर से सब

करे। यह भगवान आत्मा शुद्धबुद्ध चैतन्यघन। चैतन्यघन, यह असंख्य प्रदेश है। आहाहा! श्रीमद् में ऐसा लेख है।

यह यहाँ कहा, शुद्ध जीव अर्थात् आत्मा। कोई आत्मा को जीव न कहे। जीव दूसरा और आत्मा दूसरा है, ऐसा कहे; इसलिए जीव शब्द प्रयोग किया गया है। आत्मा और जीव अलग चीज़ नहीं। वेदान्त कहता है कि रागसहित है, उसे जीव कहना और रागरहित निर्लेप शुद्ध चैतन्य है, उसे आत्मा कहना। समझ में आया? वेदान्त ऐसा कहता है परन्तु ऐसा नहीं है। इसलिए यहाँ शुद्ध जीवास्तिकाय शब्द प्रयोग किया है। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर में शुद्ध पवित्र और अस्ति अर्थात् है और काय अर्थात् असंख्य प्रदेश है। समझ में आया? ऐसी चीज़... हम बहुत वर्ष पहले एक बार बड़ोदरा गये थे (संवत्) १९६४ का वर्ष होगा। अठारह वर्ष की उम्र थी। माल लेने गये थे – दुकान का माल लेने गये थे। तो हमने माल ले लिया, बाद में रात्रि को निवृत्ति थी तो हम नाटक देखने गये। वहाँ आगे अनुसूईया का नाटक चलता था। अनुसूईया कौन थी? भरुच के किनारे नर्मदा नदी है। वह नर्मदा और अनुसूईया दो बहनें थीं। हमें तो छोटी उम्र में बहुत अभ्यास था। क्या कहना है, सुनो, इसमें माल है।

नाटक में अनुसूईया स्त्री थी। वह कुँवारी स्वर्ग में जाती थी। कुँवारी समझते हो, विवाह किये बिना। उन लोगों में ऐसा है न कि अपुत्रस्य गति नास्ति। जिसे पुत्र न हो, उसे गति नहीं मिलती। ऐसी आवाज आयी। हमने उस दिन देखा है। यह तो अठारह वर्ष की उम्र की बात है। बहुत वर्ष हो गये। ७१ वर्ष पहले की बात है। तो वह स्त्री जाती थी तो कहा कि यहाँ स्वर्ग नहीं मिलेगा। क्यों? कि पुत्र नहीं। बाद में श्राद्ध डालते हैं न श्राद्ध? क्या कहते हैं? श्राद्ध को तुम्हारे हिन्दी में क्या कहते हैं? मर जाने के बाद श्राद्ध डालते हैं न? कौवे को खीर। तो उसका पिता वहाँ कौवा होकर आया होगा?

उस अनुसूईया को वहाँ स्वर्ग में से ऐसा कहा, तुम्हें पुत्र के बिना स्वर्ग नहीं मिलेगा। अब क्या करना? नीचे गिर। जो हो उससे विवाह कर। नीचे एक अन्धा ब्राह्मण था, उसके साथ विवाह किया, उसे एक पुत्र हुआ। ऐसा नाटक में बताते थे। पुत्र को झुलाती है। क्या कहते हैं तुम्हारे? झुलाना। झुलाना। झूलाते-झूलाते ऐसा कहती है, निर्विकल्पोसि बेटा! उदासीनोसि, सुद्धोसि, बुद्धोसि, निर्विकल्पोसि – ऐसा कहती थी। धन्नालालजी! ऐसा नाटक में सुना। मैंने कहा, यह क्या कहती है? भाई! तुम्हारी पुस्तक लाओ। तुमने बनायी

है, वह पुस्तक लाओ। तब बारह आने की टिकट थी और बारह आने की पुस्तक ली थी। तुम क्या बोलते हो, वह ख्याल में तो आना चाहिए। ऐसे के ऐसे सुन लें, ऐसे हम नहीं हैं। पुस्तक में ऐसा लिखा था। इसलिए वह स्त्री ऐसा बोलती थी। बेटा! निर्विकल्पोसि। अपने इसमें-बन्ध अधिकार में अन्त में है और सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में और परमात्मप्रकाश में पीछे (आता है)। वे शब्द बहुत जगह हैं, परन्तु ये तो चार याद रह गये हैं।

सेठ! नाटक में ऐसा सुना था। तुम्हारे सम्प्रदाय में ऐसा कहते नहीं। नाटक में ऐसा कहते हैं कि बेटा! तू निर्विकल्प है। आहाहा! यह निर्विकल्प कहा न? यह १९६४ के वर्ष में बड़ोदरा में नाटक में सुना था। शुद्धोसि। बेटा! तू शुद्ध है, पवित्रता का पिण्ड है। नाटक में ऐसा कहते थे। आहाहा! शुद्धोसि, बुद्धोसि और उदासीनोसि। बेटा! तेरा आसन तो राग से भिन्न उदासीन होकर चैतन्य में तेरा आसन है, तेरी बैठक तो वहाँ है। दया, दान, व्रतादि विकल्प में तेरी बैठक, वह तू नहीं। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसा नाटक में कहते थे। यहाँ तो अभी के सम्प्रदाय में एकान्त है.. एकान्त है.. अरे! सुन तो सही, प्रभु!

**मुमुक्षु :** नाटक में कहाँ से आया होगा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा नाटक बनाया था। पहले के नाटक तो वैराग्यवाले थे। अभी तो फिल्म-विल्म सब व्यभिचारी जैसी भाषा। नाटक बतावे ऐसे स्त्री को हाथ डाले। बड़े शहर में फोटो बताते हैं न? अनैतिक। साठ वर्ष पहले नीति थी। नाटक में भी ऐसा करते थे। आहाहा! हमने तो अठारह वर्ष की उम्र में जहाँ सुना कि यह क्या कहती है? बेटा! तू निर्विकल्प है। आहाहा! विकल्प अर्थात् राग की पर्याय और रागादि। वे लोग इतना तो नहीं जानें परन्तु निर्विकल्प—विकल्प अर्थात् राग के भेदरहित निर्विकल्प प्रभु तू है। आहाहा! शुद्धोसि, बेटा! तू शुद्ध है, बुद्धोसि-ज्ञान का पिण्ड है। तू तो ज्ञान के स्वभाव का रसकन्द है। मात्र ज्ञानस्वभाव तुझमें भरा है। परिपूर्ण ज्ञान है। आहाहा! और उदासीनोसि - इतने चार शब्द याद रहे गये हैं। बहुत वर्ष हो गये न? ७१ वर्ष (हो गये)। बेटा! तू उदासीनोसि! तेरा आसन, तेरी बैठक राग और पुण्य और निमित्त में तेरी बैठक नहीं है। वह तू नहीं है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया?

यहाँ नहीं कहते? साधारण में बैठने जाते हैं। साधारण में बैठने जैसा वह तेरी योग्यता नहीं है। बड़ी अच्छी सभा में जाना, वह तेरी योग्यता है। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं उदासीनोसि। बेटा! इस राग, दया, दान के विकल्प में रहना, वह तेरा आसन नहीं है,

वह तेरी बैठक नहीं है। बैठक समझते हो न? आसन। उदासीनो—उद-आसीन। आहा..हा..! यहाँ कहते हैं। यह तो ज्ञानी कहते हैं। वह तो अज्ञानी भी एक नाटक में ऐसा कहते थे। आहाहा! यहाँ तो सम्प्रदाय में ऐसा कहने में आवे कि निर्विकल्प भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, वह राग का कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! दया, दान, विकल्प आदि का कर्ता हो तो पवित्र प्रभु विकार का कर्ता हो तो विकार का कर्ता, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है क्योंकि विकार उसमें नहीं है। आहा..! उसका कर्ता होकर अपने पूरे आत्मा को विकारी माना है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह शुभभाव भी विकार है, इसका स्वयं को कर्ता माने तो पूरे आत्मा को विकारी माना है। आहाहा!

भगवान आत्मा **शुद्ध जीवास्तिकाय को वास्तव में विभावस्वभावस्थान...** पाठ में स्वभाव है। अर्थ में विभाव-स्वभाव कहा। आहाहा! प्रभु! तू कहाँ है? आहाहा! ऊपर का शरीर, वाणी, देह दिखती है, वह तो जड़ है, जड़ की पर्याय है। अन्दर में पुण्य-पाप के भाव हैं, वह उपाधि का विकार का विकारभाव है। यह यहाँ कहते हैं कि विभावस्वभावस्थान। **विभावस्वभावस्थान नहीं हैं;...** तुझमें वे हैं ही नहीं। आहाहा! कैसे जँचे? चेतनजी आये?

**मुमुक्षु :** ...........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो निर्भेद का पूछना था। उन्हें संस्कृत है न थोड़ा, इसलिए। अभी कलश में आयेगा। आहाहा!

(यहाँ) पाठ में है कि **णो खलु सहावठाणा** भगवान पूर्णानन्द का नाथ सम्यग्दर्शन का जो विषय है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, उस चीज़ जीवास्तिकाय में विभावस्वभावस्थान नहीं है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी विभावस्वभाव है, वह अपने आत्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वह विभावरूप। **( विभावरूप स्वभाव के स्थान )...** कहा न? विभावरूप स्वभाव के स्थान नहीं हैं। आहाहा! एक बात।

दूसरी। **णो माणवमाणभावठाणा** इसकी व्याख्या। **( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह-राग-द्वेष का अभाव होने से...** भगवान आत्मा, प्रशस्त अर्थात् शुभराग और अप्रशस्त अर्थात् अशुभराग... आहाहा! और मोह। परसन्मुख की सावधानी का भाव, राग और द्वेष का अभाव होने से। भगवान आत्मा में राग-द्वेष का त्रिकाल अभाव है। जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है,

वह जीवास्तिकाय मोह और राग-द्वेष के भाव से रहित है। आहाहा!

**( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) प्रशस्त या अप्रशस्त समस्त मोह...** शुभ मोह या अशुभ मोह। **राग-द्वेष का अभाव होने से मान-अपमान के हेतुभूत...** आहाहा! **कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;...** आहाहा! समझ में आया? **मान-अपमान के हेतुभूत कर्मोदय के स्थान नहीं हैं;....** है ही नहीं। आहाहा! किसी चीज़ की अनुकूलता हो जाना कि मैं सेठ हूँ, मैं पैसावाला हूँ ऐसा मान, तो कहते हैं वह मान स्वरूप में है ही नहीं, वह तो कृत्रिम खड़ा किया है। आहाहा! जानपने का मान। प्रभु! वह मान आत्मा में नहीं है, भाई! अकेला ज्ञान का पिण्ड पड़ा है। आहाहा! आनन्द का सागर है, इसमें मान कैसा? वह मान-कर्मोदयजनित मान उसमें नहीं और अपमान भी उसमें नहीं। आहाहा! मान-अपमान नहीं है। है न?

अब **हरिसभाव शुभपरिणति का अभाव होने से...** क्या कहते हैं? भगवान प्रभु, अकेला अतीन्द्रिय का सागर, रत्नाकर प्रभु में हर्ष नहीं है। तो हर्ष क्यों नहीं? उसका कारण कहते हैं। किसी चीज़ को देखकर हर्ष होता है न? वह हर्ष आत्मा में नहीं है। वह तो सब कृत्रिम विकार है। आहाहा! तेरी दृष्टि वहाँ रह गयी, वह तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वहाँ आत्मा नहीं है और जहाँ आत्मा है... आहाहा! वहाँ शुभपरिणाम नहीं है। एक बात। क्या कहते हैं? देखो!

**( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) शुभपरिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है,....** आहाहा! शुभपरिणति का अभाव होने से। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप भगवान में शुभपरिणति की पर्याय का अभाव होने से। हर्ष नहीं है, ऐसा कहना है। हर्ष क्यों नहीं? कि उस **शुभपरिणति का अभाव होने से शुभकर्म नहीं है, शुभकर्म का अभाव होने से संसारसुख नहीं है,...** संसार का सुख प्रभु में नहीं है। आहाहा! विषय का सुख, इन्द्रिय के विषय में सुख, वह कल्पना का सुख, वह सुख वस्तु में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पैसे में सुख, स्त्री के शरीर के भोग में सुख... कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही, तुझमें शुभपरिणति का अभाव है। आहाहा! और इस कारण तुझमें शुभकर्म नहीं है, अतः शुभकर्म के अभाव से... आहाहा! वह सांसारिक सुख तुझमें (है ही नहीं)। आहाहा! **णो हरिसभावठाणा** की व्याख्या है। **णो हरिसभावठाणा** है न? तीसरा पद। हर्ष नहीं। क्यों? हर्ष नहीं। क्यों? कि शुभविकारी परिणति भी तुझमें नहीं, तो उससे कर्म बँधे, वह भी तेरा नहीं और शुभकर्म से प्राप्त सामग्री में हर्ष हो, वह भी तुझमें नहीं। भभूतमलजी!

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझ में नहीं आता? आहाहा!

भगवान आत्मा में हर्ष नहीं। हर्ष अर्थात् संसार सुख नहीं। संसार सुख क्यों नहीं? कि उसमें (आत्मा में) शुभपरिणति का अभाव है। शुभपरिणति का अभाव होने से उसमें शुभकर्म नहीं और शुभकर्म का अभाव होने से बाह्य संसार का सुख उसमें है ही नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! शुभकर्म के अभाव से लक्ष्मी आदि मिलना, करोड़ों रुपये के बंगला मिलना (है ही नहीं, आत्मा में) आहाहा!

**मुमुक्षु :** .............आनन्द आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी आनन्द नहीं है। उसे मानता है, वह दुःख है, मूढ़ है। अभी अजमेर में शिक्षण शिविर हुआ, दो करोड़ रुपये के बंगले में हुआ। ऐसा सुना है। अजमेर में शिक्षण शिविर में गये थे या नहीं?

**मुमुक्षु :** हाँ, बंगले पर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बंगले पर ऐसा कहते थे। पन्द्रह करोड़ का लिया था। ओहो..! रत्नलालजी कलकत्तावाले ने करोड़ रुपये का लिया था। उसमें शिविर के लोग आते थे। परन्तु मकान तो यह कहते हैं कि उस मकान से मुझे सुख है, तो हम कहते हैं कि उस सुख का कारण शुभकर्म; शुभकर्म का कारण शुभपरिणति। वह शुभपरिणति ही तुझमें नहीं तो हर्ष का स्थान कहाँ से आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह अधिकार ही सूक्ष्म है। शुद्धभाव अधिकार। शिक्षण शिविर में यह लेना है, ऐसा विचार आया था। हमारे पण्डितजी आये नहीं। वरना पण्डितजी को ही पूछना था, भाई! यह तुम्हारे शिक्षण शिविर बहुत होते हैं तो उसमें क्या लेना? एक दिन देरी से आये। तुम तो सर्वत्र जाते हो न? शिक्षण शिविर चलता है तो अपने यहाँ क्या लेना? शुद्धभाव का विचार हुआ। रामजीभाई कहते हैं, यह अच्छा है और इसमें शुद्ध (भाव) अधिकार लेना है। वरना समयसार का निर्जरा अधिकार चलता था और दोपहर को प्रवचनसार का अधिकार चलता था, परन्तु प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार सूक्ष्म है। लोगों को... आहाहा!

आत्मा में संसार में सुख है, ऐसी कल्पना जो होती है, वह आत्मा में क्यों नहीं? कि आत्मा में शुभपरिणति से पुण्य बँधे और पुण्यबंध से सुविधा मिले और उसमें सुख

मानना... परन्तु तुझमें शुभपरिणति का ही अभाव है। आहाहा! समझ में आया? जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, उस भाव का तेरे स्वभाव में अभाव है। आहाहा! आत्मा पर दृष्टि करना.. आहाहा! कैलाशचन्दजी का लेख आया है। कि जहाँ हो, वहाँ समयसार.. समयसार.. पूरे हिन्दुस्तान में। इसका कारण कानजीस्वामी है, ऐसा लिखा है। समयसार में निश्चय की बात है, परन्तु व्यवहार को छोड़ देना, ऐसा कैसे बने? ऐसा करके थोड़ा लिखा है। सन्मतिसंदेश दिल्ली में आया है। हितैषी।

अरे भगवान! यहाँ तो तुझमें शुभपरिणति है ही नहीं—ऐसा पहले निर्णय हुए बिना तुझे आत्मा का निर्णय नहीं, तो तेरी शुभपरिणति की कीमत क्या? आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु आत्मा में हर्ष के स्थान नहीं अर्थात् अनुकूल सामग्री में हर्ष आता है, प्रसन्नता होती है, प्रमोद आता है, वह संसार सुख का विकल्प है। वह सुख आत्मा में नहीं है। क्यों नहीं? इस सुख का कारण कर्मबंधन शुभ और शुभकर्म का कारण शुभपरिणति और शुभपरिणति का तो आत्मा में अभाव है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। सेठ! पैसे का सुख आत्मा में नहीं है, ऐसा कहते हैं। रामजीभाई तर्क करते हैं कि यहाँ तो ऐसा कहा जाता है, वहाँ घर जाकर कैसे कहा जाये? घर में जायें तो घर आत्मा का घर, वह घर है। वह स्व में जाने का है। वहाँ शुभपरिणति का कारण शुभबन्ध और शुभबन्ध का कारण संयोग और उसमें कल्पना करना कि स्त्री का सुख, अच्छी रूपवान सुन्दर स्त्री मिली और पाँच, पच्चीस, पचास लाख लेकर आयी। पिताजी करोड़पति थे। लड़का नहीं था, अकेली लड़की ही थी। आहाहा! अभी एक लड़की गुजर गयी न? उसके पिताजी ने उसके विवाह में तीस-चालीस हजार खर्च किये थे। एक ही लड़की थी। अभी कौन (विवाहित हुआ था?) वह अपने को कहाँ सब याद रहता है? परन्तु अभी समाचार पत्र में आया था। अपने सम्बन्ध में था। उस लड़की के विवाह में खर्च किये और उसके पिताजी को एक ही लड़की थी तो विवाह में चालीस हजार खर्च किये थे परन्तु एकदम कुछ का कुछ हो गया और देह छूट गयी।

**मुमुक्षु :** वढ़वानवाले .....जी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चुढगढ़। चुढ़गढ़ की लड़की। उस चुढ़गढ़ की लड़की के विवाह में चालीस हजार खर्च किये थे। लड़का नहीं था। चुढ़गढ़। किसने कहा? चुढ़गढ़ है। वे वेरिस्टर थे न? भाई! वे व्याख्यान सुनने आये थे। बेरिस्टर क्या नाम कहा?

**मुमुक्षु :** पोपटलाल।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पोपटलाल बेरिस्टर। बड़े बेरिस्टर थे। यहाँ व्याख्यान सुनने आये थे। (संवत्) १९९३ के वर्ष की बात है। व्याख्यान सुनने आये थे, तब यह मकान नहीं था – यह स्वाध्यायमन्दिर नहीं था, चारों ओर जंगल था। गुरुकुल है न ? वहाँ व्याख्यान में आते थे। गुरुकुल आर्य समाज में व्याख्यान चलते थे। सब आये थे। भावनगर दरबार के दीवान आये थे। क्या नाम ? प्रभाशंकर दीवान। वे भी व्याख्यान सुनने आये थे। १९९३ के वर्ष। सुनकर ऐसा कहा कि हम तो कर्म के आधीन पड़े हैं। कोई जीव स्वभाव के साधनवाला है, कोई कर्म के आधीन हुआ है। अरे! कर्म के आधीन तू पड़ा है तो वह कर्म से नहीं, तेरी विपरीत दृष्टि से। बड़े दीवान थे। व्याख्यान में आये थे। प्रभाशंकर पट्टणी आते थे। सब दरबार भी आते थे। बड़े दरबार भी व्याख्यान में आते थे। लीमड़ी में आते हैं, वढवाण में आते हैं। यहाँ आये थे। पालीताणा के दरबार, भावनगर के दरबार। नाम सुनकर सब आते हैं और अन्दर पुण्य प्रकृति भी है न, वह देखकर आते हैं, परन्तु भाई! वस्तु दूसरी है। यह पुण्य प्रकृति शुभभाव से बँधती है और पुण्य प्रकृति से संयोग मिलते हैं, उसमें सुख मानना, यह मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा! उसे जैन की खबर नहीं है। जैनपना किसे कहना, इसकी उसे खबर नहीं है। आहाहा! कपूरचन्दजी! ये भी पैसेवाले हैं। बहुत लाखोंपति।

**मुमुक्षु :** यह कब पैसेवाला था ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु दुनियावाले कहते हैं न, कि कपूरचन्द बहुत पैसेवाला है, बहुत लाखोंपति है, ऐसा कहते हैं। ये हमारे भभूतमलजी यहाँ रहे। दो करोड़ रुपये, यह हमारी घीयाजी, करोड़ों रुपये। करोड़ से ऊपर है। इसमें क्या है ? वह तो पूर्व की धूल है। इस शुभभाव की धूल है। यह हमारे माणिकचन्दजी हैं, इनके पास बहुत पैसा है। हम इनके गाँव में गये थे। इनके मकान के सामने ही उतरे थे। इनके पिताजी हैं, प्रेम है। दोनों को प्रेम है, हों! बापू! सुनने की यह चीज़ है। वह बाह्य की चीज़ प्रभु! अरबों पैसा (रुपया) हो, परन्तु उसमें सुख मानना, वह मिथ्यादृष्टि है। क्यों ? कि उस सुख की कल्पना, स्वरूप में नहीं है।

त्रिकाली भगवान आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु अन्दर में विराजमान है, उसमें हर्ष के स्थान क्यों नहीं ? जगत की अनुकूलता की प्रपंच सामग्री में से हर्ष अर्थात् प्रसन्नता होना, वह प्रसन्नता आत्मा में नहीं है। क्यों नहीं है ? क्योंकि उसमें शुभपरिणति नहीं और

शुभपरिणति पर्याय नहीं तो शुभबन्धन भी नहीं; शुभबन्धन नहीं तो शुभ से अनुकूलता मिलती है, वह भी उसमें है ही नहीं और अनुकूलता मिलने के बाद हर्ष होता है, वह भी वस्तु में नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई ऐसा! सम्यग्दर्शन। आहाहा! एक बात।

**संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं;...** इतने बोल लिये। देखो! एक हर्षस्थान नहीं, इसमें कितना लिया! एक तो शुभपरिणति नहीं, शुभविकार जो दया, दान, व्रत, वह आत्मा में नहीं। शुभपरिणति नहीं तो शुभकर्म नहीं; शुभकर्म नहीं तो शुभसामग्री अनुकूल (सामग्री) नहीं, तो अनुकूल है, उसमें हर्ष मानना, वह संसारसुख आत्मा में नहीं है। है? **संसारसुख का अभाव होने से हर्षस्थान नहीं हैं;...** आहाहा! किसी भी बाह्य चीज़ में अनुकूलता में कुछ भी अन्तर में विस्मयता, अधिकता, विशेषता, अपनी चीज़ से पर में विस्मयता भासित हो, वह स्वरूप आत्मा में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपनी चीज़ जो '**णाणसहावाधियं**' आहाहा! (समयसार) ३१वीं गाथा में तो यहाँ तक कहा है, भगवान इन्द्रियजिणित्ता। वह तो इन्द्रियों को जीतनेवाला है। इसका अर्थ कि पाँच इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय जड़ और क्षयोपशमभाव पाँच इन्द्रिय - दो और इन्द्रियों के विषय देव-गुरु-शास्त्र सब इन्द्रिय।

तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी समवसरण में विराजते हैं, उन्हें यहाँ इन्द्रिय कहते हैं। अपने अनीन्द्रिय आत्मा की अपेक्षा उन्हें इन्द्रिय कहा है। आहाहा! तो उस इन्द्रिय से भिन्न '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' यह शब्द ३१ (गाथा में) है। यह तो भगवान आत्मा, भगवान और भगवान की वाणी से भी भिन्न है। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि और यहाँ तो भगवान को इन्द्रिय में गिनने में आया है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय है और यह सब इन्द्रिय है। जड़ इन्द्रिय, भावेन्द्रिय, भाव इन्द्रिय एक-एक विषय को जानेनवाले भावेन्द्रिय और उसका जो विषय है, उन तीनों को इन्द्रिय कहा है। आहाहा!

परमागम भगवान की (वाणी) सुनना, उसे कहते हैं कि वह तो इन्द्रिय है। आहाहा! गजब बात है। एक ओर ऐसा कहे कि भाग्य उदय से भगवान की दिव्यध्वनि आती है। आता है न? 'भविजन भाग्य उदय से...' बात सत्य है। पुण्य हो तो ऐसी वाणी (सुनने को मिलती है) परन्तु उस चीज़ का लक्ष्य करना, वह उस अनीन्द्रिय स्वभाव को भूलकर इन्द्रिय (सन्मुख लक्ष्य करना) है। अपने अनीन्द्रिय स्वभाव में वह चीज़ नहीं है, अत: उसे इन्द्रिय कहा गया है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, उसे सुनने से हर्ष होता है, वह आत्मा

में नहीं है। सुनने में जो हर्ष-राग आया, राग, हों! कठिन बात है, प्रभु! वह हर्ष आत्मा में नहीं है। आहाहा! फिर दु:ख।

**( शुद्ध जीवास्तिकाय को ) अशुभपरिणति का अभाव होने से...** भगवान में अशुभपरिणाम नहीं। प्रभु द्रव्यस्वभाव त्रिकाली चैतन्य ज्योत प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो सम्यग्दर्शन को अवलम्बन लेने की चीज़ है, वह जीवास्तिकाय जो शुद्ध चैतन्यघन प्रभु है, उसमें अशुभपरिणति का अभाव है और अशुभ पर्याय जो विकृत अशुभ होती है, उसका उसमें अभाव है। आहाहा! **अशुभकर्म ( परिणति ) का अभाव होने से...** अशुभकर्म नहीं है। अशुभपरिणति का अभाव होने से अशुभकर्म का बन्ध आत्मा में नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात! और **अशुभकर्म का अभाव होने से दु:ख नहीं है,...** अशुभपरिणति नहीं होने से अशुभकर्म नहीं है; अशुभकर्म नहीं होने से दु:ख नहीं है। सांसारिक दु:ख। पूर्व के पाप के कारण प्रतिकूलता आ जाये, पापबन्धन हो, पाप हुआ; इसलिए पाप से बन्धन हुआ और बन्धन से प्रतिकूलता हुई। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि पाप ही आत्मा में नहीं, तो फिर अहर्षस्थान-दु:ख, वह तो आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** सब आत्मा को दु:ख तो देखने में आता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह दु:ख तो दशा में है। वस्तु में नहीं। जिसकी दृष्टि द्रव्य पर है, वह अपने में दु:ख है, ऐसा मानता ही नहीं। आहाहा! कहो, डाह्याभाई! यह तुम्हारे जज में भी ऐसे शब्द वहाँ नहीं आये होंगे। सरकार ने गप्प मारी हो, वह जज में चलता है। अहमदाबाद में बड़े जज हैं। अब तो छोड़ दिया। नौकरी छोड़ दी। आहाहा! सरकार जो कानून बनावे, तद्नुसार करे। यह तो वीतराग के कानून हैं। यह तो वीतरागी कॉलेज है। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा में दु:ख नहीं। क्यों नहीं? अशुभपरिणति ही नहीं तो दु:ख कहाँ से आया? और अशुभपरिणति नहीं, इसलिए उसमें अशुभकर्म भी नहीं। अशुभकर्म नहीं, इसलिए प्रतिकूल संयोग भी उसमें नहीं। प्रतिकूल संयोग नहीं तो, प्रतिकूल संयोग में मुझे दु:ख होता है, यह वस्तु उसमें नहीं। आहाहा! पहले अभी दृष्टि का ठिकाना नहीं। आहाहा! यह प्रतिमा ले ली और व्रत ले लिये... हमारे रामजीभाई तो कहते हैं कि ग्यारह प्रतिमा क्या,

सोलह होवे तो सोलह प्रतिमा ले ले। भान कहाँ है ? यह तो ग्यारह है, अधिक (हो तो वह ले ले)। भान तो कुछ है नहीं। आहाहा!

**अशुभकर्म का अभाव होने से दु:ख नहीं है, दु:ख का अभाव होने से अहर्षस्थान नहीं है।** आहाहा! अब श्लोक।

## श्लोक-५५

**( अब, ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं- )**

( शार्दूलविक्रीडित )

**प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख-**
**निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृतावात्मनि ।**
**चैतन्यामृत-पूर-पूर्ण-वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,**
**बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ।।५५।।**

---

( वीरछन्द )

**प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद अन्तर्मुखी प्रगट सुखरूप।**
**नभमंडलवत् अकृत, चैतन्यामृत से भरपूर स्वरूप॥**
**अहो विचारक पुरुष गम्य जो उसमें रुचि क्यों नहीं करे ?**
**पापरूप सांसारिक सुख की अभिलाषा क्यों मूढ़ करे॥५५॥**

**टीका:—जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है; जो सर्वथा अन्तर्मुख और प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ, नभमण्डल समान आकृतिवाला[१] ( अर्थात् निराकार-अरूपी ) है; चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है; जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है।।५५।।**

---

१. अकृत=किसी से नहीं किया गया। (जिस प्रकार आकाश को किसी ने बनाया नहीं है, उसी प्रकार आत्मा को किसी ने नही बनाया है; आत्मा अन्तर्मुख प्रकट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है, स्वयंसिद्ध शाश्वत है।)

## श्लोक-५५ पर प्रवचन

**( अब, ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं- )**

**प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद अन्तर्मुखी प्रगट सुखरूप।**
**नभमंडलवत् अकृत, चैतन्यामृत से भरपूर स्वरूप॥**
**अहो विचारक पुरुष गम्य जो उसमें रुचि क्यों नहीं करे ?**
**पापरूप सांसारिक सुख की अभिलाषा क्यों मूढ़ करे॥५५॥**

अब क्या आया ? देखो ! प्रश्न ऐसा था कि इसमें निर्भेद शब्द पड़ा है। दूसरी लाईन में। निर्भेद का अर्थ यहाँ ऐसा किया कि भेदरहित। भेदरहित अर्थात् अभेद। भगवान अभेदस्वरूप है। उसमें पर्याय का भेद भी उसके स्वरूप में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? यह... चेतनजी को यह पूछना था कि इस निर्भेद का अर्थ 'प्रगट' किया है, वह क्या है ? वे व्याकरण जानते हैं। हमारे पण्डितजी को तो पहले पूछा था, परन्तु इस निर्भेद का अर्थ यह। भगवान आत्मा में भेद है नहीं। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य, सम्यग्दर्शन का विषय जो आत्मा, वह तो अभेदस्वरूप अखण्डानन्द है। आहाहा! उसमें तो पर्याय भी नहीं, ऐसा कहते हैं। निर्भेद करने से, पर्यायभेद है। आहाहा! भगवान अन्दर विराजमान परमात्मा में भेद ही नहीं है। निर्भेद-अभेद है। आहाहा! आचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। इसमें यह लेख आया है। आहाहा! मेरी भावना के लिये मैंने नियमसार बनाया है। अन्तिम गाथा में है न ? आहाहा!

भगवान आत्मा में **जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;...** आहाहा! प्रीति-अप्रीति तो क्षणिक विकृतदशा है। भगवान तो शाश्वतपद है। नित्यानन्द प्रभु ध्रुव है। आहाहा! भारी कठिन। **जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है; जो सर्वथा अन्तर्मुख...** है ? '**निःशेषतोऽन्तर्मुख**' यह संस्कृत में लिखा है। '**निःशेषतोऽन्तर्मुख**' सर्वथा प्रकार से अन्तर्मुख चीज़ है। बहिर्मुख विकल्प आदि में आत्मा नहीं है। आहाहा! ज्ञानी को भी शुभराग आता है, परन्तु उस शुभराग में मैं हूँ, ऐसा नहीं मानते। मैं तो रागरहित हूँ। मेरा जीवास्तिकाय शाश्वत् टंकोत्कीर्ण पद है। जैसा है, वैसा अनादि टंकोत्कीर्ण शाश्वत मैं हूँ।

मेरी चीज़ में अशाश्वत्ता भी नहीं है तो राग और पुण्य-पाप की बात ही कहाँ है ? आहाहा ! ऐसी व्याख्या अब।

सर्वथा अन्तर्मुख। है ? अन्तर्मुख वस्तु है। बहिर्मुख विकल्प या पर्याय उसमें है ही नहीं। प्रगट प्रकाशमान उसका इतना अर्थ किया। निर्भेद का अर्थ यह किया। निर्भेद और उदित दो शब्द पड़े हैं। मैंने यहाँ प्रश्न किया कि निर्भेद का अर्थ प्रगट क्यों किया ? परन्तु उसका अर्थ यह हुआ, निर्भेद अर्थात् अभेद, अभेद अर्थात् त्रिकाल प्रगट स्वरूप अभेद है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसा उपदेश है। इसे मूल सत्य बात तत्त्व की ( कान में पड़ी नहीं) । नवतत्त्व स्वतन्त्र किस प्रकार है, इसकी भी खबर नहीं। उसे धर्म किस प्रकार हो ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, प्रगट प्रकाशमान। निर्भेद उदित। अभेदरूप से प्रकाशमान, प्रगट प्रकाशमान है। चैतन्यसूर्य... आहाहा ! और शीतलता से भरपूर जैसे चन्द्र शीतल है, वैसा अनन्त-अनन्त चन्द्र की शीतलता से विपरीत यह शीतलता है। आहाहा ! ऐसा शीतलता का पिण्ड प्रभु प्रगट है। वस्तु है, वह प्रगट है। आहाहा !

(समयसार) ४९ गाथा में ऐसा कहा कि पर्याय व्यक्त है और आत्मा अव्यक्त है। ४९ (गाथा में) अव्यक्त के छह बोल है न ? उनमें ऐसा लिया है। खबर है न ! आत्मा अव्यक्त है। क्यों ? वह तो पर्याय प्रगट है, इस अपेक्षा से अव्यक्त है परन्तु वस्तु अन्तर में तो प्रगट है। आहाहा ! छह बोल हैं न ? अव्यक्त के छह बोल हैं।

छह द्रव्यों का समूह। छह द्रव्यों का समूह, तो छह द्रव्यों में भगवान भी आ गये। पंच परमेष्ठी आ गये। छह द्रव्यों का समूह व्यक्त है, उससे भगवान भिन्न है, इसलिए अव्यक्त है। पहला बोल है। छह बोल में पहला बोल है। वहाँ व्यक्त है, बाह्य की चीज़ व्यक्त है, ज्ञेय है, उससे भिन्न ज्ञायक अभेद है और अव्यक्त है। आहाहा ! परन्तु वह अव्यक्त तो पर्याय की प्रगटता की अपेक्षा से, पर्याय में उस द्रव्य की प्रगटता नहीं, इस अपेक्षा से अव्यक्त कहा है। बाकी वस्तु तो विद्यमान प्रगट है। निर्भेद उदित। अभेद प्रकाशमान चैतन्यसूर्य प्रभु विराजमान है। आहाहा ! तेरी नजर, पर्याय में उस ओर का झुकाव नहीं हुआ। बाकी क्रियाकाण्ड, व्रत और दिगम्बर का मुनिपना अनन्त बार लिया। आहाहा ! अपना स्वरूप

निर्भेद प्रगट है, उसकी दृष्टि नहीं की, विश्वास में नहीं आया, रुचि में नहीं लिया। इस कारण उसका चार गति में भ्रमण है। आहाहा!

बाह्य की सामग्री छोड़ दी और दिगम्बर नग्न मुनि हुआ, परन्तु मैं बाहर का छोड़ूँ और अन्तर का राग ग्रहण करूँ, यह ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। अमुक सामग्री छोड़ूँ और अमुक सामग्री नग्नपना आदि ग्रहण करूँ, यह आत्मा में है ही नहीं। पर के त्याग-ग्रहण से आत्मा शून्य है। आहाहा! ४७ शक्ति में त्याग-उपादान शून्यत्वशक्ति है। शरीर से, कर्म से त्याग और कर्म का तथा शरीर का ग्रहण, उससे भगवान रहित है। आहाहा! त्रिकाल रहित है। शरीर और कर्म से त्रिकाल ग्रहण-त्याग से रहित है। ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! अरे! परन्तु तेरी दृष्टि पर के ऊपर है। जाननेवाले को जाना नहीं, देखनेवाले को देखा नहीं और इस पर को जानने में और देखने में रुक गया है, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बात है। आहाहा! जाननेवाला अन्दर... यह कहा, देखो!

**प्रगट प्रकाशमान ऐसे सुख का बना हुआ,...** है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से बना हुआ है। बना है अर्थात् है। पाठ तो ऐसा है न? संस्कृत में '**निर्मित**' शब्द है न? '**निर्भेदोदितशर्मनिर्मित**'... **शर्म** अर्थात् सुख और '**निर्मित**' अर्थात् है। आहाहा! **सुख का बना हुआ,...** है। अतीन्द्रिय आनन्द से बना हुआ भगवान आत्मा है। आहाहा! **बना हुआ,...** इसका अर्थ? अतीन्द्रिय सुखस्वरूपी ही है। उसे अतीन्द्रिय सुख बाहर से लाना है, ऐसा नहीं है। अतीन्द्रिय सुख का सागर है। आहाहा! **ऐसे सुख का बना हुआ,...** भाषा निर्मित है न? सुख से निर्मित है, आनन्द से निर्मित है। प्रभु आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से निर्मित है अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का बना हुआ है।

**मुमुक्षु :** पर्याय में आना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय-फर्याय नहीं, यहाँ तो त्रिकाली चीज़ है।

**मुमुक्षु :** पर्याय में आना चाहिए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय नहीं। जो पर्याय दृष्टि करती है, उसमें यह नहीं। जो पर्याय दृष्टि करती है, उसमें वह पर्याय है ही नहीं। आहाहा! **सुख का बना हुआ,...** अर्थात् पर्याय में सुख आया, यह बात नहीं है। आहाहा! पर्याय में सुख...

**मुमुक्षु :** उसका बना हुआ है अर्थात्.....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उस बने हुए का अर्थ कि वह तो सुखस्वरूप ही है। आहाहा! वह तो त्रिलोक में छह द्रव्य की रचना है, ऐसा कहने में आता है। त्रिलोक छह द्रव्य से रचा हुआ है, ऐसा पंचास्तिकाय में आता है। इसका अर्थ कि छह द्रव्य स्वरूप ही लोक पड़ा है। अकृत्रिम-किसी ने बनाया नहीं। आहाहा! कोई ईश्वरकर्ता नहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय सत् है, वह स्वयं से है। सत् है, वह स्वयं से है, पर से नहीं। वह बना हुआ है, ऐसा वहाँ भी कहा, उसका अर्थ यह कि छह द्रव्य है। छह द्रव्य से बना हुआ लोक है, उसका अर्थ कि छह द्रव्यस्वरूप है; ऐसे यहाँ कहते हैं सुखसागर से बना हुआ है। आहाहा! इसका अर्थ कि सुखस्वरूप है। आहाहा!

**नभमण्डल समान अकृत है;...** क्या कहते हैं ? आकाश किसी से बना हुआ नहीं है। आकाश किसी ने बनाया नहीं है। जिस प्रकार आकाश को किसी ने नहीं बनाया, उसी प्रकार आत्मा को भी किसी ने नहीं बनाया। आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। स्वयंसिद्ध शाश्वत है। उसे किसी ईश्वर ने बनाया है ? आहाहा! है, उसे बनावे कौन ? न होवे, उसे बनावे कौन ? आहाहा! परन्तु विश्वास आना.. आहाहा! पर्याय को अन्तर में झुकाना, यह साधारण बात नहीं है। अपूर्व पुरुषार्थ है। पर्याय को अन्तर्मुख ले जाना, जहाँ पूर्ण प्रभु है, वहाँ पर्याय को ले जाना, पर्याय को झुकाना... आहाहा! तो कहते हैं, पर्याय जिसमें झुकती है, वह वस्तु कैसी है ? आहाहा!

**नभमण्डल समान अकृत है;...** जैसे आकाश को किसी ने बनाया नहीं। आकाश को कौन बनावे ? सर्व व्यापक को कौन बनावे ? वैसे भगवान **नभमण्डल समान अकृत है;...** आहाहा! **चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** चैतन्य के अमृत के पूर से... अमृत का पूर। पानी का प्रवाह-पूर होता है न ? वैसे भगवान (अमृत के प्रवाह का पूर है) आहाहा! ध्रुव अमृत का पूर। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... प्रवाह अनादि-अनन्त चलता है। आहाहा! कहो, यशपालजी! ऐसी बात है। आहाहा! है ?

**चैतन्यामृत....** चैतन्य का अमृत। आहाहा! यहाँ तो आम हो और ऐसा हो तो अमृत समान है, ऐसा लोग लगा लेते हैं। धूल में भी कुछ नहीं है, वह तो पुद्गल है। मिट्टी की दशा है। यह भी मिट्टी है। आहाहा! नोंक शरीर में लगती है न ? शरीर में लोहखण्ड की

कील लगे तो कहता है मेरी मिट्टी पकनेवाली है, इसलिए पानी लगाना नहीं। कहते हैं न? मेरी मिट्टी, यह मिट्टी पकनेवाली है, इसलिए पानी नहीं लगाना। नोंक या लोहखण्ड की जंगवाली कील लगी हो... काट (जंग) को क्या कहते हैं? जंग। लोहखण्ड की जंगवाली कील लगी हो तो कहे, मेरी मिट्टी पकाऊ है, इसलिए पानी नहीं लगाना। यह तो मिट्टी है। फिर एक ओर मिट्टी कहे और एक ओर कहे मेरा शरीर है। आहाहा! यह शरीर तो नहीं परन्तु अकृत्रिम चैतन्यमृत के पूर से भरपूर है।

**चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है; जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है...** देखो! पहले ऐसा कहा कि चार भाव से अगोचर है। यहाँ कहते हैं, विचारवन्त पुरुषों से गोचर है। वह तो चार भाव के आश्रय से अगोचर है। समझ में आया? **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** देखो! उन्हें चतुर कहते हैं। ज्ञानी पुरुष को चतुर कहते हैं और उस चतुर पुरुष को गम्य है। आहाहा! बाहर का वकालात आदि का जानपना, वह कोई चतुराई नहीं, वह तो सब कुज्ञान है। आहाहा! चतुराई तो उसे कहते हैं,... कहते हैं... आहाहा! **विचारवन्त चतुर पुरुषों को...** है? '**प्रेक्षावतां**' है न? '**प्रेक्षावतां**' '**प्रेक्षावतां**' संस्कृत में '**प्रेक्षावतां**' देखनेवाले के विचारवन्तवाले के। आहाहा! ऐसा पाठ में शब्द पड़ा है। यह तो अपनी बात अपने से होती है, ऐसी बात है। दूसरे कोई विकल्प से और बाहर से होता है, ऐसी बात नहीं है। ऐसी बात है।

**ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** ऐसे भगवान में तेरा पोषण क्यों नहीं होता? और तू अज्ञान को, राग को, 'मेरा' मानकर मिथ्यात्व का पोषण करता है। आहाहा! **तू रुचि क्यों नहीं करता और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है?** ऐसा उलहाना दिया है। जहाँ अन्तर का सुख पड़ा है, वहाँ रुचि क्यों नहीं करता? और जिसमें सुख नहीं है, वहाँ रुचि क्यों करता है? यह तेरा अज्ञान है, उसे छोड़ दे- ऐसा कहते हैं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३८, श्लोक-५५, गाथा-४० शुक्रवार, श्रावण शुक्ला ११ दिनांक ०१-०४-१९६६

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार। **( अब, ३९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं- )**

**प्रीत्यप्रीतिविमुक्तशाश्वतपदे निःशेषतोऽन्तर्मुख–**
**निर्भेदोदितशर्मनिर्मितवियद्बिम्बाकृतावात्मनि ।**
**चैतन्यामृत–पूर–पूर्ण–वपुषे प्रेक्षावतां गोचरे,**
**बुद्धिं किं न करोषि वाञ्छसि सुखं त्वं सन्सृतेर्दुःकृतेः ।।५५।।**

प्रगट। निर्भेद, निर्भेद का अर्थ कहाँ गया ? निर्भेद। निर्भेदस्वरूप प्रगट है। **निर्भेदोदित** का अर्थ प्रगट इतना ही ? निर्भेद का अर्थ ऐसा है। भेदरहित उदयमान सुखमय निराकार प्रकाशमान है।

शुद्धभाव, शुद्धभाव अधिकार है न ? शुद्धभाव अर्थात् आत्मा। एक समय में आत्मा ध्रुवस्वभाव, उसे यहाँ शुद्धभाव अथवा उसे आत्मा कहते हैं। वह आत्मा **जो प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद है;...** आत्मा शाश्वत् है, ध्रुव है। उसमें राग और द्वेष के स्थान तथा प्रकार हैं ही नहीं। समझ में आया ? आत्मा... वह प्रीति-अप्रीति राग, वह तो आस्रव है। वह स्वरूप में नहीं है। अभी, हों ! वह प्रीति-अप्रीति के विकल्प हैं, वे पर्याय में, अंश में भले हो; वस्तु में नहीं है। वस्तु जिसे आत्मा, शुद्धभावरूप आत्मा ( कहते हैं ), वह तो प्रीति-अप्रीति रहित है। नास्ति से बात की है। अस्ति से कहा, शाश्वत् पद है।

ऐसा शाश्वत् पद अन्तर्मुख दृष्टि करने का जो विषय है, जिससे लक्ष्य और रुचि करने पर सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा शाश्वतपद चैतन्यध्रुव, वह प्रीति-अप्रीति के विकल्प से रहित निर्विकल्प तत्त्व है। समझ में आया ? शाश्वत है। शाश्वत है। तत्त्व है अरूपी, विज्ञानघन शाश्वतपद है, वस्तु। उसकी रुचि क्यों नहीं करता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? दूसरी सब रुचि करता है परन्तु ऐसा भगवान आत्मा एक समय का शाश्वत स्वरूप

प्रभु, पुण्य-पाप के विकल्प और भाव से रहित, उसकी रुचि क्यों नहीं करता ? जो करना है, वह तो यह है। धर्म की स्थिति की शुरुआत में धर्मी को करने का तो यह है। समझ में आया ? शाश्वत वस्तु सत्... सत्.. सत्, उसकी रुचि, पुण्य-पाप के विकल्परहित तत्त्व की रुचि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और प्रथम धर्म है। उसके बिना इसे एक भी धर्म सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

जो सर्वथा अन्तर्मुख। कैसा है आत्मा वस्तु शुद्धभाव ? ध्रुवस्वभाव अर्थात् अशुद्ध उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो चार पर्यायें हैं, ऐसी अपेक्षा की पर्यायरहित का तत्त्व है, वह सर्वथा अन्तर्मुख है, सर्वथा अन्तर्मुख है। समझ में आया ? बाहर की जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि पर्याय या क्षायिक समकित, चारित्रपर्याय आदि, इससे यह सर्वथा अन्तर्मुख है। वे तो बहिर पर्याय है। समझ में आया ? धर्म की सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि पर्याय, चारित्रपर्याय, क्षायिक समकित आदि पर्याय, वह अन्तर्मुख वस्तु नहीं है; वह तो बहिर्मुख की पर्याय प्रगट हुई है। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ तत्त्व बहिरतत्त्व है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** .......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सर्वथा कहा है न ? किसी अपेक्षा से भी उस बाह्य पर्याय के अंश में वह तत्त्व आता ही नहीं। सर्वथा (कहा तो) अनेकान्त वीतराग का मार्ग है तो कथंचित् अन्तर्मुख और कथंचित् बहिर्मुख, ऐसा होना चाहिए या नहीं ? भाई ! ध्रुववस्तु जो है, चैतन्यशुद्धभाव, एक समय का परमात्मा स्वयं वर्तमान, वह सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व ध्रुव है। एक समय की पर्याय में वह ध्रुव आवे, ऐसा वह तत्त्व नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ..........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कथंचित् किसका आया ? वस्तु है सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व चैतन्यपिण्ड, विज्ञानघन, शुद्ध ध्रुव जो है, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय में ध्रुव सर्वथा नहीं आता। गजब, भाई ! समझ में आया ? आहाहा !

वस्तु है न, वस्तु ? एक समय की पर्याय के अंश का लक्ष्य न लेकर वस्तु जो है, एक समय का ध्रुव वस्तु है, वह तो सर्वथा अन्तर्मुख ही तत्त्व है। समझ में आया ? यहाँ कहते हैं कि अरे ! प्रभु, उसकी तू रुचि क्यों नहीं करता ? समझ में आया ? इस निमित्त की रुचि, राग की रुचि, पुण्य की रुचि, पाप की रुचि, इस देह की क्रिया मैं करता हूँ-ऐसी रुचि; दया, दान, व्रत के विकल्प उठते हैं, वह विकल्प शुभराग है, उसकी रुचि, वह तो

सब मिथ्यात्वभाव है। उसकी रुचि अर्थात् यह मैं, ऐसा भाव तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? वह अन्तर्मुख तत्त्व सर्वथा है, ऐसे तत्त्व को रुचि में न लेकर, बहिर्मुख का विकल्प एक समय का क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय विकास का उघाड़ है उतना मैं, वह तो बहिर्तत्त्व है। उतना मैं, वह तो मिथ्यादृष्टि की श्रद्धा का वह भाव है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** निहाल हो जाने की यह बात।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो निहाल की ही बात है न, भाई! वस्तु अन्तर्मुख महान पदार्थ है। उसकी नजर तूने की नहीं, कहते हैं, भाई! यह सब नजर तेरी बाहर में वर्तती है। एक समय की पर्याय या राग की मन्दता का राग, उस पर तेरी रुचि और वह अस्तित्व और सत्व मैं हूँ, ऐसा जो भाव, वह तो मिथ्याभाव है, भ्रमभाव है, वह चार गति में उत्पन्न करने के बीज हैं। मोक्ष का बीज तो सर्वथा अन्तर्मुख तत्त्व, वह है। आहाहा!

**सर्वथा अन्तर्मुख..** अन्तर्मुख। सर्वथा एक समय की पर्याय में बिल्कुल न आवे ऐसा, ऐसा। अन्तर्मुख.. अन्तर्मुख। पूरी चीज़ ही स्वसन्मुख पड़ी है। उसकी रुचि कर। समझ में आया? लोग ऐसा कहते हैं, ऐसा सर्वथा ऐसा है तो फिर एक समय की पर्याय रागादि है या नहीं इसमें? इसमें है ही नहीं। उसमें है नहीं, तब सर्वथा अन्तर्मुख स्थिति का सत्व सिद्ध होता है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं न, भाई! यह पूरा द्रव्य है। यह जो पूरा द्रव्य और एक समय की पर्याय, उसे लक्ष्य में ले न, वह पूरा द्रव्य कहलाता है, वह पदार्थ कहलाता है। (तो ऐसा कहे) वह नहीं, वह वस्तु नहीं। समझ में आया?

जिसमें एक समय की दशा विकास और विकार। विकास ज्ञान, दर्शन, वीर्य का विकास और विकार, यह सब अपूर्ण और विपरीत, इस तत्त्व में अन्तर्मुख तत्त्व आता नहीं। अन्तर्मुख तत्त्व जो सर्वथा वह पर्याय में नहीं और वह पर्याय अन्तर्मुख तत्त्व में नहीं। आहाहा! लोगों को भारी कठिन पड़े, इसलिए फिर यह रास्ता ऐसा कर दिया है न। लोगों को वह अच्छा लगता है—भक्ति करे, पूजा करे, दान, दया, करे, ऐसे करते-करते धर्म होगा। आहाहा! भाई! वह धर्म नहीं। समझ में आया?

वस्तुस्वभाव जो सत्व है, चैतन्य का सत्व है, तत्त्व है, भाव है, शुद्ध है, एकरूप है, ऐसा जो भाव, उसे सर्वथा अन्तर्मुख वस्तु और वह निर्भेद (तत्त्व है)। निर्भेद पर लक्ष्य गया, इसलिए फिर तुम्हारे प्रगट खटका। भाई! प्रगट खटका। कि एकरूप उदय है, ऐसा।

निर्भेद उदय है। एकरूप उदय है। उदय अर्थात् एकरूप है, ऐसा। एकरूप वस्तु प्रकाशमान है। समझ में आया? प्रगट कहो तो भी प्रगट है, वह बराबर है। वस्तु, वस्तु है। एक समय का ध्रुव अनन्त सत्व का एक सत्व स्वरूप। वह प्रगट ही है। वस्तु प्रगट है, वह वस्तु है न? है। है वह है, वह अस्तिरूप से प्रगट। प्रगट अर्थात् है। वह प्रकाशमान है। निर्भेद प्रकाशमान है। प्रगट प्रकाशमान वस्तु स्वरूप ध्रुव, पारिणामिक चैतन्यभाव, स्वभावभाव वह व्यक्त, वस्तुरूप से व्यक्त है। वस्तु अव्यक्त है? पर्याय में व्यक्त प्रगट नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वस्तुरूप से तो निर्भेद, प्रगट, प्रकाशमान वस्तु अन्तर्मुख प्रकाशमान है। अन्तर्मुख प्रकाशमान। उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। ऐसे आत्मा को सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मारूप से कहा है और उसे शुद्धभाव कहा है। ऐसे भाव की अन्तर रुचि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! समझ में आया? ऐई! कान्तिभाई! यह निर्भेद। 'एक देखिये जानिये...' वीरजीभाई बहुत कहते थे न! आहाहा! 'एक देखिये जानिये, रमी रहिये इक ठौर, समल विमल न विचारिये, यही सिद्धि नहीं और।' यह निर्मल पर्याय और यह समल, ऐसे दो भेद भी नहीं। निर्भेद अकेला तत्त्व है। एक समय में पूरा भगवान, महापरमात्मा, महापरमात्मा स्वयं एक समय में है। उसे यहाँ सर्वथा अन्तर्मुख प्रगट प्रकाशमान वस्तु स्वरूप से ऐसा **सुख का बना हुआ,...** लो! और बना हुआ लिखा है।

निर्भेद '**शर्म-निर्मित**', '**शर्म-निर्मित**'। '**शर्म**' अर्थात् आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द से बना हुआ अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द जिसका रूप ही वह है। आहाहा! समझ में आया? बना हुआ अर्थात्? शास्त्र में भाषा तो ऐसी ही आवे। तीन लोक छह द्रव्य से बने हैं, ऐसा आता है। पंचास्तिकाय में (आता है)। है, और बना हुआ, इस शब्द से कथन करना है। बना हुआ अर्थात् आत्मा और अनन्त आनन्द जो अतीन्द्रिय आनन्द, बेहद अतीन्द्रिय अमृत का आनन्द, उसरूप ही आत्मा है। उसे यहाँ सुख का बना हुआ, ऐसा कथन किया जाता है। आहाहा! अरे! आत्मा क्या परमात्मस्वरूप, इसका इसे कभी श्रवण करने में आया नहीं कि वह ऐसा है और श्रवण करने में आवे, उसे आनन्द बैठ न जाये, ऐसा नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे श्रवण किया कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो समझ में आया, अर्थात् ? यह तो लड़कियाँ हैं, लड़के-लड़कियाँ हों, सब शरीर से पहिचाने जाते हैं। अन्दर में वह कुछ है ही नहीं, ऐसा कुछ कहते हैं। जो एक समय की वस्तु है, उसमें यह कहीं शरीर का यह अवयव, राग और कर्म, भेद और विकल्प और निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह भी वस्तु ध्रुव में तो है ही नहीं। फिर किसे कहना यह और किसे कहना यह नहीं। यह स्त्री और यह पुरुष.. परन्तु वह वस्तु में ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, सुमेरचन्दजी! समझ में आया या नहीं? ..अपने यहाँ बराबर। आहाहा! गजब भाई! बाहर में विवाद करके। अरे! भगवान! बाहर से प्रभु यह नहीं मिलेगा, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी ने, जिनने अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु एक समय में देखे। भगवान दिव्यध्वनि द्वारा कहते हैं, भाई! तू तो ऐसा अन्तर्मुख तत्त्व है, सर्वथा, कि जो अनन्त अतीन्द्रिय बेहद.. बेहद अपरिमित अचिन्त्य जिसके सुख का स्वभाव बेहद है, ऐसा आत्मा वह ध्रुव है, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह दु:ख की विकृत अवस्था का अंश जो दिखता है, संसार का उदयभाव दु:खरूप दशा, वह वस्तु में नहीं है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ........समाता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समाता नहीं, ऐसा ये कहते हैं। इससे यहाँ समाता नहीं।

वस्तु, वस्तु और वस्तु का स्वभाव। यहाँ भाव की व्याख्या है न? भाव, शुद्धभाव। वह अनन्त, बेहद अतीन्द्रिय एक आनन्द, एक आनन्द, अभेद आनन्द, निर्भेद प्रगट प्रकाशमान आनन्द, ऐसा स्वरूप ही उसका है। इसलिए बना हुआ अर्थात् ऐसा है, ऐसा कहने में आता है। अरे! भगवान! कहते हैं कि ऐसे आत्मा के तू सन्मुख होकर रुचि क्यों नहीं करता? करना तो यह है। आहाहा! समझ में आया? भाव इसके ख्याल में आवे नहीं कि यह क्या है? तब तक इसकी सन्मुखता की इसे रुचि कैसे होगी? समझ में आया इसमें?

**सुख का बना हुआ,...** गजब भाषा, भाई! '**निर्मित**' शब्द पड़ा है न? यह निर्मायेलो ही है। अतीन्द्रिय आनन्द से ही निर्मित है, अनादि से निर्मित है। ऐसा भगवान आत्मा, उसमें तेरी नजर करनेयोग्य है। बाकी अन्यत्र से नजर उठानेयोग्य है। आहाहा! यह तो व्यवहार कहीं.. एक व्यक्ति को लगे। यह व्यवहार साध्य और.. क्या कहलाता है? व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। ऐई..! पंचास्तिकाय (में ऐसा आता है।) आहा! अरे! भगवान! वे कहें व्यवहार साधक, निश्चय साध्य। व्यवहार पहले निश्चय बाद में। सुन,

भाई! वह तो साधन अपेक्षा से विकल्प की मन्दता (हुई हो), उसे व्यवहार निमित्त की योग्यता गिनकर साधन का उपचार किया है।

भगवान आत्मा में एक साधन नाम का जैसे अनन्त अपरिमित प्रगट निर्भेद सुखस्वभाव है, वैसा इस भगवान आत्मा में करण नाम का निर्भेद, अभेद, एकरूप प्रगट 'करण' नाम का स्वभाव पड़ा है, उसे शुद्धभाव जीव कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसी यह कथा किस प्रकार की? बेचारे कितने ही नये आवे, उन्हें तो ऐसा लगे। ऐई! जयचन्दभाई! यह.. कल पूछते थे न? सुरेन्द्रनगर के थे। क्षत्रिय, ब्रह्म क्षत्रिय, लुहाना थे। यह सब आत्मा की बात तुम ऐसा कि आत्मा और आत्मा। सेवा-बेवा का कुछ है या नहीं? परन्तु यह सब.. आहाहा! बड़ा बंगला, बड़ा.. यह क्या? कहते हैं। यह क्या कहलाता है तुम्हारा? आडम्बर-आडम्बर। भाई! भगवान! बापू! शान्त हो। ये चीज़े किसी की करी हुई नहीं होती। वे तो उनके काल से हुई पर्यायें हैं। भाई! यह बातें गम्भीर है, कहा। समझ में आया? आहाहा! यह पुद्गल के परमाणु के परिणमन के समूह के काल में उनकी पर्याय रचे और उस काल में वहाँ रुक कर पड़ा हुआ है। आत्मा कर्ता है नहीं। आहाहा! यह बात। वीतरागमार्ग को सुने नहीं।

एक ओर आत्मा की बात ऐसी करो, एक ओर ऐसे सब मन्दिर, हाथी के वे बड़े.. क्या कहलाते हैं? महोत्सव। ऐई! ज्ञानचन्दजी! पंच कल्याणक। मुम्बई में देखो तो ऐसे हाथी। दो हाथी थे। नहीं? दो हाथी थे न? दो हाथी थे। तुम थे? किसी को शंका पड़ जाये, तुम मास्टर सही न। इसलिए तुम आओ या न आओ, क्या कहलाता है? दल। हेयू हेयू वह कहते हैं न, क्या कहलाता है? अत्यधिक भीड़ - ऐसा लोग नहीं कहते? अत्यधिक भीड़ अर्थात् इतने अधिक लोग। ऐसा। परन्तु ए.. तुम कहते हो कि धर्म तो ऐसे होता है, तो यह क्या? ऐई! भाई! शान्त हो, बापू! यह जगत के अजीवतत्त्व हैं और अजीवतत्त्व की भी उसके क्रमसर हुई पर्याय, उस पर्याय का कर्ता वह परमाणु है। कोई जीव कहे कि हम मन्दिर बनाते हैं, वह भ्रम है, अज्ञानी का भ्रम है। आहाहा! समझ में आया? उसे शुभभाव हो। शुभभाव हो। यह शुभभाव भी पुण्य-बन्ध का कारण है, परन्तु पाप के भाव से बचने के काल में अथवा उस काल में वही आने का उसका काल होता है। आहाहा! ऐसा शुभभाव होता है, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है। इतनी इसकी मर्यादा है। इससे आगे

मर्यादा करो कि किसी ने रचा है और शुभभाव था तो यह बना है और शुभभाव था तो उससे आत्मा का धर्म हुआ है तो इस बात की सत्यता नहीं है। समझ में आया?

अरे! दान, पूजा में कुछ संवर-निर्जरा तो कहो। भाई! यह बहुत करते हैं, हों! ..भगवान! भाई! तुझे भगवान के भेंट की खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह परमात्मा स्वयं एक समय का प्रभु। परमेश्वर दिव्यध्वनि द्वारा पुकार करते हैं। इन्द्र के मध्य में, करोड़ों मनुष्यों के (बीच) ध्वनि में ऐसा आवे, भाई! तू तो अखण्ड आनन्द का कन्द बना हुआ तत्त्व है न! ऐसा ही तेरा स्वरूप है न, भाई! उस पर रुचि कर। बाकी सब आवे, वह जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! यह तो क्या बात! इसे अनेकान्त नहीं कहा जाता, कहते हैं। एकान्त कहा जाता है। भाई! भाषा में ऐसा आवे। व्यवहार उपादेय है, ऐसा आवे। परन्तु वास्तव में तो आत्मा के स्वभाव का शुद्ध ध्रुव के उपादेय के अतिरिक्त उसकी प्रगट हुई पर्याय भी जहाँ प्रगट करनेयोग्य है, वह उपादेय नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान प्रगट निर्भेद-भेदरहित चीज़ है। यह गुणी और यह उसका सुख गुण, ऐसा जिसमें नहीं। वस्तु और उसका यह गुण सुख, ऐसा जिसमें भेद नहीं। भाई! इसके ऊपर जरा लक्ष्य गया। '**निर्भेदोदित**' है? अर्थात् निर्भेद उदित, ऐसा सुख का बना हुआ अर्थात् एक गुण को पृथक किया न? ऐसा गुण, तो कहते हैं कि बापू! यह गुण जो कहा न, तो वह निर्भेद एकरूप ही वस्तु है। उसमें फिर यह आनन्दगुण है और उसका धारक यह आत्मा है, ऐसा भी भेद नहीं। समझ में आया? ऐसे आत्मा की, भाई! तू रुचि क्यों नहीं करता? आहाहा! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता? भाई! उसमें रुचि करनेयोग्य चीज़ तो पोसाण की चीज़ तो यह है। पोसाण समझते हो? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। व्यापारी को माल देना हो तो पोसाण का माल कहलाता है। पोसाण का अर्थात्? चार रुपये मण मैथी मिलती हो। गेहूँ लो न, गेहूँ, अभी चार रुपये मण कहाँ मिलते हैं। मैथी भी नहीं मिलती होगी। यह तो पहले की बात है। बीस रुपये मण लो न, भाई? तुम्हारे जो हो। वहाँ से बीस रुपये मिलते हों। एक रुपया खर्च हो और फिर बाईस रुपये में बेचा जाता हो तो वह माल व्यापारी को पोसाता है। बीस रुपये में वहाँ ले और रुपया चढ़े और वहाँ बिके साढ़े बीस रुपये, तो वह माल पोसाता है? उसका नाम यहाँ पोसाये। यह हमारी काठियावाड़ी भाषा है। बनिये को पोसाये वहाँ से माल लाये। जहाँ गेहूँ पकते हों, वहाँ से लावे, मैंथी जहाँ पकती हो वहाँ से लावे। ऐई! पीतल जहाँ से होती हो, वहाँ से लाते होंगे न बर्तन-फर्तन। बर्तन जहाँ सस्ते

मिलते हों वहाँ। यह होता है.. वहाँ ही होता है। अमुक जगह मैथी पकती है, अमुक जगह मिर्च बहुत पकती है। ऐसे ढेर के ढेर। यह 'उगामेढी' लो न मिर्च.. मिर्च। मिर्च लेने के लिये सब वहाँ आते हैं।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वहाँ बहुत मिर्च। मात्र मिर्च की गन्ध आती है। उगामेड़ी वहाँ मैथी का पाक अमुक जगह है। यह हमारे सब व्यापारी जानें, गेहूँ अमुक जगह से लाना, मूँग की दाल कहीं से लाना, ऐसा सब जानते हैं। क्या कहलाते हैं बीड़ी के ? पत्ते, पांदड़े। उसके दो प्रकार के नाम आते हैं न ? एक टीमरु और एक आपटो। वह फिर कहीं सस्ता पकता होगा, वहाँ सब जाये। वह पोसाये तो जाये, नहीं तो नहीं जाये। आहाहा!

यहाँ पोसाये ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई! ऐसा भगवान आत्मा **नभमण्डल समान आकृतिवाला ( अर्थात् निराकार-अरूपी ) है;...** देखो! दृष्टान्त कैसा दिया है ! आकाश का मण्डल सर्व व्यापक एक है न ? आकाश का मण्डल सर्व व्यापक एक चीज़। सर्व व्यापक, व्यापक। उसकी तरह भगवान आत्मा अकृत तत्त्व है, नीचे है ? देखो! **अकृत=किसी से नहीं किया गया।** कोई ईश्वर इसका कर्ता-भर्ता नहीं। ऐसा यह शुद्ध ध्रुवतत्त्व है। ज्ञायकभाव एक समय का परमानन्द मूर्ति। जैसे आकाश को किसी ने बनाया नहीं, वैसे आत्मा को किसी ने बनाया नहीं। कौन बनावे ? सत् है, उसे कौन बनावे ? सत् है।

आत्मा अन्तर्मुख प्रगट अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। आत्मा अन्तर्मुख अभेद अतीन्द्रिय सुख का पिण्ड है। स्वयंसिद्ध शाश्वत् है। लो! स्वयंसिद्ध शाश्वत् है। उसके भाव में, ज्ञान के ख्याल में ऐसा तत्त्व है, ऐसा पहले ख्याल में आना चाहिए। आकर फिर अन्तर्मुख रुचि करने योग्य यह है, ऐसा कहते हैं। अकृत है।

**चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ जिसका स्वरूप है;...** जिसका चैतन्यरूपी अमृत, चैतन्य अमृत, उसका पूर है। दल है न ? चैतन्य अमृत का दल है। स्वभाव है, सत्व है, भावरूप, एकरूप सत्वस्वभाव है। इससे भरा हुआ अर्थात् चैतन्यामृत के पूर से भरा हुआ। और एक कोई बर्तन हो और उसमें दूध रहे, ऐसा होगा यह ? जैसे दूध में सफेदी भरी हुई है, वह अभेद है। जैसे मिश्री में मिठास भरी हुई है, वह अभेद एकरूप है। वह मिश्री और मिठास कहीं दो भिन्न चीज़ें नहीं हैं। मिश्री कैसी है कि मिठास से भरी हुई। भरी हुई अर्थात्

अभेद एक स्वरूप ही है। इसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य महाप्रभु, शाश्वत वस्तु वह सम्यग्दर्शन का विषय, जिसकी रुचि करने से आत्मा को आत्मसाक्षात्कार और सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

**चैतन्यामृत के पूर से..** इन्हें शब्द बहुत थोड़े पड़ते हैं। **चैतन्यामृत के पूर से..** दल पड़ा है न! जागृत प्रकाश चैतन्यज्योत, जागृत प्रकाश का सत्व का सत्व, उससे भरपूर भरा हुआ स्वरूप है। यह शुद्धभाव की व्याख्या चलती है। इसलिए यहाँ कहते हैं कि आत्मा। समझ में आया?

**जो विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है...** जो विचारवन्त, ईहा, अवाय, निर्णय, करनेवाले जीवों को, ऐसे विचारवन्त चतुर पुरुषों को '**प्रेक्षावतां गोचरे**।' ऐसा है न? '**प्रेक्षावतां गोचरे**।' जिसकी विचारधारा स्वभावसन्मुख होती है। ऐसे विचारवन्त चतुर पुरुषों को गम्य आत्मा ऐसा आत्मा है। वह है पर्याय। अभी तक जो कहा, वह कहा। वह शुद्धभाव ध्रुव और विचारवन्त चतुर पुरुषों को गम्य है। पर्याय विचारवन्त, वह ज्ञान की दशा। ऐसा आत्मा है। ऐसे विचारवन्त की निर्मलपर्याय को गम्य है। उससे वह जाना जा सकता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** चतुर अर्थात्?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चतुर अर्थात् विचारवन्त, वही चतुर है। विचार करनेवाला चतुर (गुजराती शब्द डाह्या) है। वह आत्मा, उसे चतुर कहते हैं। 'चतुर तेरी चतुराई कब कहें?' आहाहा! उसमें नहीं आता था? बांकानेर का, था न वह? डाह्याभाई होलसा। यह बहुत मानता है। मरने पड़ा तब बोला, डाह्या! तेरा डाह्यापण कब कहें? अब मरने के समय शान्ति रख तू। अभी तक सब नाटक किये न! एक-एक रात के १५००-१५००। तब, हों! बाबूभाई! खबर है न? अपने मीराबाई का नाटक देखने गये थे। भरूच (में गये थे)। मीराबाई का नाटक उसका था। देखने गये थे। वे मोहनलालजी आये थे। डाह्याभाई होलसा। एक रात के १५००, तब हों! वह तो कौन सा वर्ष होगा? (संवत्) १९६५-६६। १९६५-६६ के वर्ष की बात है। तब शरीर युवा। एक-एक रात्रि के ऐसे सत्ता के तीन (नाटक) करते थे। साढ़े चार-पाँच हजार की आमदनी, तब थी, हों! ६५ के वर्ष में। हमें तो ऐसा लगता है कि ओहो..हो..! एक रात के १५००! वह मरने के समय में उसे हें.. हें.. हो गया उसे। एक डाह्या! तूने यह सब अभी तक किया है न! अब मरने के समय समाधान

किस प्रकार करना ? एं.. मैं.. होता है। ऐसे अंतड़िया, कफ और उसे यह। सब इन्तजार देखे भाई को कैसा है ? भाई को कैसे है ? भाई चतुर होकर प्रसिद्ध हो, वह मरने के समय हाय.. हाय.. करे। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चतुर अर्थात् आत्मा को समझने की विचारधारा में वर्ते, वह चतुर। विचार और डाह्याभाई को पृथक् पाड़ते थे। खबर है, ख्याल है न। समझ में आया ? विचारवन्त चतुर, ऐसा, ऐसा है। यह तो ख्याल है, इसलिए पहले से शुरु किया। हमें खबर नहीं ? वह विचारवन्त वह चतुर, ऐसा। किसका विचारवन्त ? ऐसा ध्रुवस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसका विचारवन्त वह चतुर। समझ में आया या नहीं ? आहाहा! वहाँ दो भेद करना है। विचारवन्त.. चतुर। आहाहा! भाई! यह विचारवन्त, वह चतुर। किसका विचारवन्त ? ऐसा आत्मा एक समय में परमात्मस्वरूप है। उसका विचारवन्त चतुर, ऐसे पुरुषों को–ऐसे आत्मा को गम्य है। पुरुष शब्द से अकेला कहीं यह पुरुषवेदवाला, ऐसा कुछ नहीं। विचारवन्त चतुर आत्मा को गम्य है। समझ में आया ? आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी आत्मज्ञान करे तो उसे विचारवन्त चतुर कहने में आता है। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ............

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पुरुष अर्थात् आत्मा। समझ में आया ? यह पुरुष नहीं। यह (शरीर) तो एक पहिचानने की चीज़ है। यह जड़ की–मिट्टी की चीज़ है। इसमें पुरुष किसे कहना ? यह तो (शरीर को) मिट्टी, जड़ रजकण हैं। अन्दर पुरुषवेद का उदय है, वह विकार है, उसमें आत्मा कहाँ आया ? वह आत्मा नहीं। वह भी आत्मा नहीं और उदय का विकल्प होता है, वह भी आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? और उस विकल्प को जानते प्रगट ज्ञान की पर्याय, वह भी आत्मा ध्रुव, यह शुद्ध है, इस नय से। समझ में आया ? निरालम्बी मार्ग है, बापू! सूक्ष्म है। उसे यहाँ विचारवन्त और चतुर कहा है। दूसरे विचार.. विचार.. विचारकर विपरीत विचार करके सब उल्टे को पकड़ते हैं। यह विचारवन्त चतुर वह इसे पकड़े तो उसे विचारवन्त चतुर कहने में आता है। समझ में आया ? दुनिया के चतुर लिप्त हैं, कर्म से भटकते हैं, वे चतुर कहने में नहीं आते। वे बड़े मूर्ख हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसके परिणाम में नरक की गति मिले, जिसके परिणाम में मक्खी और गधा हो, वह चतुर कैसा ? आहाहा! समझ में आया ?

ऐसे भगवान आत्मा के विचार की मतिधारा से चतुर पुरुष किसकी ओर ढले हैं। उन्हें वह गम्य है अर्थात् राग को गम्य नहीं, पुण्य को गम्य नहीं, व्यवहार को गम्य नहीं, ऐसा यहाँ कहा है। आहाहा! समझ में आया? कोई कषाय की मन्दता करके, राग की मन्दता, दया, दान, भक्ति, व्रत बहुत किये, इसलिए उससे आत्मा ज्ञात हो जाये। नहीं, बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं। आहाहा! अरे! तू ऐसा निर्बल किसलिए मानता है? ऐसे राग की मन्दता की सहायता हो तो भी मैं ज्ञात होऊँ। यह तो तूने तेरे आत्मा को तेजहीन मानकर यह बात ली है। तू ऐसा तेजहीन नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

**विचारवन्त चतुर पुरुषों को गोचर है—ऐसे आत्मा में...** यह व्याख्या पूरी हुई। **ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता...** अर्थात् ऐसे क्यों कहा? कि कोई कर्म तुझे रोकता है, इसलिए रुचि नहीं करता, ऐसा नहीं है। आहाहा! तूने रुचि अन्यत्र की है। समझ में आया? पुण्य के परिणाम में, पाप के परिणाम में, धूल में और भोग में (रुचि की है)। आहाहा! ऐसे आत्मा में तू रुचि क्यों नहीं करता? '**बुद्धिं किं न करोषि वांछसि सुखं त्वं**' है न? तू का अर्थ.. देखो! भाई! उस रुचि का तू ही कर्ता है। विपरीत रुचि का कर्ता तू है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ............

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खड़ी की है। पुण्य-पाप के विकल्पों को मैं करूँ और वह मेरा कार्य। उसका यह करूँ, धूल करूँ, देश का करूँ, गाँव का करूँ, धूल भी नहीं करता, सुन न! विकल्प का कर्ता, वह भी तूने खड़ी की हुई विपरीतदृष्टि से है। आहाहा! पहले ऊपर निर्विकल्प तत्त्व कहा है न? भाई! ऐसे निर्विकल्प तत्त्व की रुचि क्यों नहीं करता? तेरे करने से होती है। वह कहीं कोई करावे तो होती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ऐसा मार्ग। स्वतन्त्र निर्लेपमार्ग। ऐसा परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का कहा हुआ, अरे! जगत को सुनने को मिलता नहीं और सुने बिना वह क्या है, इसकी खबर नहीं पड़ती। खबर पड़े बिना कहाँ झुकना, उसकी इसे (खबर नहीं)। झुकाव कैसे करना, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अरे! **ऐसे आत्मा में...** ऐसा आत्मा, ऐसा। समझ में आया? जो विचारवन्त चतुर

पुरुषों को गम्य है और ऊपर कहा गया वैसा है। ऊपर कहा गया वैसा है और विचारवन्त को गम्य है। उसमें तो रुचि क्यों नहीं करता? अब ऐसा कहते हैं। अर्थात् तू विचारवन्त होकर, चतुर होकर तू रुचि क्यों नहीं करता? ऐसा हुआ या नहीं? आहाहा! रुचि.. आहाहा!

**और दुष्कृतरूप संसार के सुख की वांछा क्यों करता है।** अरे! इस भगवान आत्मा की रुचि करता नहीं और शुभ-अशुभराग.. है न ऊपर? प्रीति-अप्रीति। ऐसे दुष्कृतरूपी संसार। ऐसे यह शुभ-अशुभभाव सब दुष्कृत है। उनसे हर्ष-हर्ष बिना का कहा है न उन्हें? वह शुभ-अशुभभाव तो दूष्कृत है, ऐसे संसार के स्वरूप को सुख को, जिसका फल संसार की अनुकूलता-प्रतिकूलता मिले, ऐसे को क्यों चाहता है? भाई! उसमें धूल में कहीं सुख नहीं है। समझ में आया? दोनों कहा। इसे करता नहीं और दुष्कृत / संसार के सुख को क्यों चाहता है? ऐसा। ऐसे करता नहीं और ऐसे क्यों करता है? यह श्लोक पूरा हुआ। अब ४० (गाथा)।

**मुमुक्षु :** यह क्यों नहीं करता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कैसे करता होगा अर्थात्?

**मुमुक्षु :** .........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस विपरीत मान्यता के कारण, यहाँ कहा क्या? यह रुचि नहीं करता इसलिए। ऐसी रुचि नहीं करता, इसलिए ऐसी रुचि करता है। इसके लिये (बात है) सीधी बात है। एक और एक दो जैसी बात है। मिठास चढ़ गयी है न, मिठास ऐसे बाहर की, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु, यह कौन है, इसके ख्याल में महत्ता और माहात्म्य ही नहीं आता। बाह्य क्रियाकाण्डी अनन्त बार साधु हुआ। पंच महाव्रत का पालनेवाला, अट्ठाईस मूलगुण (पालनेवाला) दिगम्बर सन्त, हों! दिगम्बर द्रव्यलिंगी। इस प्रकार यह ऐसा आत्मा, ऐसी रुचि तू नहीं करता, तूने नहीं की और ऐसे शुभादि भाव में-रुचि में पड़ा हुआ इस संसार सुख को क्यों चाहता है। भाई! समझ में आया?

## गाथा-४०

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा।।४०।।

न स्थितिबन्धस्थानानि प्रकृतिस्थानानि प्रदेशस्थानानि वा।
नानुभाग-स्थानानि जीवस्य नोदय-स्थानानि वा।।४०।।

अत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धोदयस्थाननिचयो जीवस्य न समस्तीत्युक्तम्। नित्यनिरुपरागस्वरूपस्य निरञ्जननिजपरमात्मतत्त्वस्य न खलु जघन्यमध्यमोत्कृष्टद्रव्य-कर्मस्थितिबन्धस्थानानि। ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मणां तत्तद्योग्यपुद्गलद्रव्यस्वाकार: प्रकृति-बन्ध:, तस्य स्थानानि न भवन्ति। अशुद्धान्तस्तत्त्वकर्मपुद्गलयो: परस्परप्रदेशानुप्रवेश: प्रदेशबन्ध:, अस्य बन्धस्य स्थानानि वा न भवन्ति। शुभाशुभकर्मणां निर्जरासमये सुखदु:खफलप्रदानशक्तियुक्तो ह्यनुभागबन्ध:, अस्य स्थानानां वा न चावकाश:। न च द्रव्यभावकर्मोदयस्थानानामप्यवकाशोऽस्ति इति।

तथा चोक्तं श्री अमृतचन्द्रसूरिभि: ह्न

( मालिनी )

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी,
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्,
जगदपगत-मोहीभूय सम्यक्स्वभावम्।।

तथाहि ह्न

(हरिगीत)

**नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थान नहिं।**
**नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥**

**अन्वयार्थ : [ जीवस्य ] जीव को [ न स्थितिबन्धस्थानानि ] स्थितिबन्धस्थान नहीं हैं, [ प्रकृतिस्थानानि ] प्रकृतिस्थान नहीं हैं, [ प्रदेशस्थानानि वा ] प्रदेशस्थान नहीं**

हैं, [ न अनुभागस्थानानि ] अनुभागस्थान नहीं हैं [ वा ] अथवा [ न उदयस्थानानि ] उदयस्थान नहीं हैं।

टीका : यहाँ ( इस गाथा में ) प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध के स्थानों का तथा उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है—ऐसा कहा है।

सदा निरुपराग[१] जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन ( निर्दोष ) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं। ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व -आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व को ) नहीं हैं। अशुद्ध अन्तःतत्त्व के ( अशुद्ध आत्मा के ) और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश वह प्रदेशबन्ध है; इस बन्ध के स्थान भी ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व को ) नहीं है। शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है; इसके स्थानों का भी अवकाश ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व में ) नहीं है और द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व में ) नहीं है।

इस प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—

( वीरछन्द )

जिसमें बद्धस्पृष्ट आदि सब भाव सदा ऊपर तिरते।
फिर भी वे चैतन्यरूप में कभी प्रतिष्ठित नहिं होते॥
अहो जगतजन! मोह रहित होकर निज का अनुभवन करो।
सर्व ओर से सदा प्रकाशित सम्यक् एक स्वभाव लखो॥

*श्लोकार्थ :*— जगत को मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक् स्वभाव का ही अनुभवन करना चाहिए कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।

---

१. निरुपराग=उपरागरहित। (उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से होनेवाली उपाधि के अनुरूप विकारीभाव; औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।)

## गाथा-४० पर प्रवचन

४० (गाथा) इस शुद्धभाव की यह व्याख्या है। शुद्धभाव कहो या आत्मा वस्तु... वस्तु... वस्तु... ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित पूरा तत्त्व। यह वस्तु क्या है, उसे यहाँ आत्मा को शुद्धभाव कहने में आता है और उसके आश्रय से नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग प्रगट होता है। ऐसा यहाँ कहना है। यह नियमसार है न? मोक्षमार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। वह ऐसे स्वरूप के आश्रय से प्रगट होता है। बाकी तीन काल में दूसरा इसका प्रकार, पन्थ और पद्धति नहीं है। समझ में आया?

**णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।**
**णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा।।४०।।**

पुकार करते हैं। अरे! परन्तु अभी यह सब है न? तुम अबद्धस्पृष्ट अभी मानते हो? परन्तु यह अभी की बात है, वस्तुदृष्टि की। वे कहते हैं, एकान्त हो जाता है, एकान्त हो जाता है। परन्तु पर्याय में है, वस्तु में नहीं, यह तो यहाँ बात चलती है। और पर्याय में है, वह तो लक्ष्य और रुचि अनादि की है। अब तुझे करना क्या है? यह तो वे कहते हैं ए...? सोनगढ़वाले ऐसा करते हैं। वे तो पर्याय और अशुद्धता नहीं मानते। भगवान! सुन तो सही, भाई! पर्याय में तो यह सब है। न हो तो फिर इसमें नहीं, ऐसा कहाँ से आया? उसमें है, इसमें नहीं। इसमें हो तो फिर एकदम तत्त्व हो गया यह तो। रागादि का अंश या प्रकृति के सम्बन्ध का विकार वस्तु में हो तो यह दो तो रहे नहीं। आहाहा! परन्तु इसमें होवे किसका? वस्तु है पूरी चिदानन्दघन, आनन्दकन्द। एक समय का विकृतभाव खड़ा किया हुआ है। है अवश्य। वह इसमें (वस्तु में) नहीं। व्यवहारनय का विषय, व्यवहारनय का विषय वह पर्याय है अवश्य। वेदान्त की भाँति नहीं कि कुछ नहीं, वह भ्रम है, भ्रमणा है। भ्रमणा भी है या नहीं? समझ में आया? वेदान्त ऐसा कहता है, ऐसा नहीं है। यह तत्त्व वीतराग का कहा हुआ दूसरा है। वेदान्तवाले तो कहते हैं अकेला सर्वव्यापक आत्मा शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. सब शुद्ध। ऐसा नहीं है। उन्हें अज्ञान में एक भी तत्त्व की खबर नहीं है। समझ में आया? ऐसी बात सुनें, इसलिए मानो... वेदान्त की बात आवे तो ऐसी अपने में भी ऐसी बात है, ऐसी वे कहते हैं। दूसरे में धूल में भी नहीं है।

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, जिन्होंने एक समय में छह द्रव्य, नौ तत्त्व समय में प्रत्यक्ष जाने हैं, उन्होंने पर्याय में ऐसा जाना है, परन्तु वस्तु में नहीं, ऐसी दृष्टि करानी है। पर्याय तो है। है नहीं तो फिर यह किसे कहे ? इसमें नहीं... इसमें नहीं, इसकी रुचि कर। तो फिर इसका क्या अर्थ ? विकार नहीं ? कर्म का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं ? जड़ है ? यहाँ विकारभाव करे, उसे विकार नैमित्तिक है और कर्म निमित्त है। व्यवहार है। वस्तु में नहीं। जिसकी रुचि करनी है और जिससे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, उस चीज़ में यह नहीं। छूटने का मार्ग जिससे प्राप्त होता है, उसमें बन्ध और बन्ध के भाव कैसे होंगे ? समझ में आया ?

नीचे—

**नहिं प्रकृति स्थान-प्रदेश स्थान न और स्थिति-बन्धस्थाननहिं।**
**नहिं जीव के अनुभागस्थान तथा उदय के स्थान नहिं ॥४०॥**

यह नहीं-नहीं करके इसलिए वे मानो कि नहीं। तो सब व्यवहार का लोप हो जायेगा। परन्तु सुन न ! यह व्यवहार के लोप की ही बात है। व्यवहार है। यह है, उसका लोप या न हो उसका ? समझ में आया ?

**यहाँ ( इस गाथा में ) प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध,..** ज्ञानावरणीय आदि प्रकृति है न ? उसका स्वभाव। स्थिति अर्थात् उसकी अवधि। **अनुभागबन्ध..** अर्थात् उसका पाक-रस। **और प्रदेशबन्ध..** अर्थात् संख्या। रजकणों की संख्या। कर्म के चार प्रकार। एक प्रकृति कर्म का स्वभाव; एक स्थिति कर्म की अवधि, परमाणु के अन्दर; एक अनुभाग में फल लाने की उनमें शक्ति, हों ! और प्रदेश अर्थात् परमाणु की संख्या, गणना। उसे यहाँ प्रदेशबन्ध कहा। ऐसे **स्थानों का..** उनके प्रकारों का। वापस सब प्रकार हैं न ? प्रकृतिबन्ध के आठ प्रकार हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरण आदि, स्थितिबन्ध के बहुत प्रकार, अनुभाग के (प्रकार)।

इन **स्थानों का..** समझ में आया ? ...दूसरा बोल है न ? **उदय के स्थानों का समूह जीव को नहीं है...** यह प्रकृति आदि के चार प्रकार आत्मा में नहीं है और उनसे वापस उदय होता है। उदय हो और आत्मा में विकार हो, उसमें से यह हो, ऐसा कोई प्रकार शुद्ध

ध्रुवस्वभाव में नहीं है। जिसे शुद्धभाव कहते हैं, जिसे आत्मा कहते हैं, आत्मा ध्रुव कहते हैं, उसमें कर्म और प्रकृति का उदयधर्म कुछ नहीं है। आहाहा! यह गोम्मटसार कितने भरे हैं, लो! यह कहा है, भाई! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के व्यवहार के सब कथन हैं। वस्तु नहीं कर्म? कर्म की प्रकृति आदि सब है। आत्मा में तो नहीं, परन्तु उनके सम्बन्ध में जुड़ान होता है, योग्यता, वह भी आत्मा के द्रव्य में नहीं। जड़बन्ध तो नहीं, परन्तु भावबन्ध की जो योग्यता है, वह वस्तु में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

चार भाव लिये हैं न, अनुभाग के? **जीवस्स ण उदयठाणा** उसका फिर पाक होता है न उदय होकर, ऐसा होता है, उदय होकर ऐसा होता है, उदय का यह प्रकार, जीव का ऐसा प्रकार। ऐसा तत्त्व जो चैतन्य ध्रुवस्वरूप भगवान में वह स्पर्श भी नहीं हुआ है। उसे स्पर्श भी नहीं किया है। आहाहा! समझ में आया? यह अभी, हों! अभी।

वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वह आनन्द शान्ति आदि, उस तत्त्व में चार प्रकार के वे कर्म प्रकृति स्थिति, अनुभाग, प्रदेश और उदय.. वह आत्मा को उदय आया। विपाको अनुभव: तत्त्वार्थसूत्र में आता है या नहीं? आता है या नहीं? विपाको अनुभव: यह और विपाक अर्थात् कर्म का विपाक और अनुभवे वह आत्मा। ऐसा तो नहीं परन्तु कर्म का विपाक भी आत्मा में नहीं और उसके सम्बन्ध से जरा विकार होकर वेदन करे, ऐसा विपाक भी जीव में नहीं। ऐसा शुद्धभाव, उसकी रुचि करके सम्यग्दर्शन करनेयोग्य है। उसमें करके फिर स्थिर होने योग्य है, ऐसा यहाँ कहना है। स्थिर होना अर्थात् चारित्र। पहले दर्शन और ज्ञान तथा फिर स्थिरता। यहाँ तो तीन लेना है न? मोक्षमार्ग।

**सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** लो! ठीक! भगवान आत्मा वस्तु जो है, वह सदा **निरुपराग=उपरागरहित**। ( **उपराग=किसी पदार्थ में, अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से...** ) अन्य उपाधि की निमित्त की समीपता के निमित्त से अथवा उपाधि के अनुरूप विकार। उपाधि हो, उसके अनुरूप विकारभाव। उसे यहाँ ( **औपाधिकभाव; विकार; मलिनता।** ) यह उपराग की इतनी व्याख्या की। समझे न? उससे रहित। भगवान आत्मा में कोई उपराग ही नहीं। कर्म की उपाधि के निमित्त से होनेवाला भाव, वह आत्मा में नहीं। वापस सदा, हों! तीनों काल। भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव, वह **सदा निरुपराग..** मलिन, उपाधिभाव और विकार बिल्कुल नहीं। पर्याय में है। अंश के विकृतरूप

से। ऊपर से उत्पन्न किया हुआ भाव, वह वस्तु में नहीं है। वस्तु जो महान पदार्थ भगवान, उसमें नहीं। उसमें तो शान्ति और आनन्द बसे हुए हैं। उसमें यह विकार, निरुपाधि में यह उपाधि अन्दर कहाँ से हो ? समझ में आया ?

**ऐसे निरंजन ( निर्दोष ) निज परमात्मतत्त्व को..** निज परमात्मतत्त्व को, हों! यहाँ अपने आत्मा की बात है। **वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं।** लो! ऐसा जो निज परमात्मतत्त्व, प्रभु! उसे निश्चयस्वरूप की दृष्टि से वस्तु को देखने पर वास्तव में, निजप्रभु को वास्तव में द्रव्यकर्म जघन्य.. जघन्य अर्थात् थोड़ा, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसी स्थिति। स्थिति थोड़ी, अन्तर्मुहूर्त, कोई विशेष और कोई पूरी इत्यादि ऐसी स्थितिबन्ध के स्थान निज प्रभु आत्मा, शुद्धभावरूपी आत्मा उसे यहाँ निज परमात्मतत्त्व कहा। उसे शुद्धभाव कहना, उसे आत्मा कहना, उसे शुद्ध जीवास्तिकाय कहना। उसमें यह नहीं है। इससे ऐसा नहीं, उसकी दृष्टि करना, इसका सम्यग्दर्शन कहने में आता है। विशेष लेंगे।....

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-३९, गाथा-४०, श्लोक-५६ शनिवार, चैत्र शुक्ला १२ दिनांक ०२-०४-१९६६

यह आत्मा, इसे कर्म जो संयोग है न? कर्म जड़। वास्तव में वह कर्म का बन्धन और इसका भाव ही आत्मा में नहीं है अर्थात् यह आत्मा जो है, वह शुद्धभाव, पूर्णानन्द प्रभु आत्मा शुद्ध है। उसमें यह शरीर, वाणी, मन तो उसमें नहीं। वह तो मिट्टी पर है। इसी प्रकार कर्म जो है, कर्म जड़, वह भी जड़ कर्म है, वह आत्मा के स्वरूप में नहीं है। नहीं समझ में आता? ऐई! भाईलालभाई! यह सब तुम्हारी ओर से सब तर्क करते हैं।

जिसे प्रथम सम्यग्दर्शन, जिसे प्रथम धर्म-सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो, पहले में पहला धर्म। जो अनादि से दुःखी, कर्म मेरे और राग-द्वेष मेरे, परवस्तु मेरी और स्ववस्तु शुद्ध चैतन्य वह मेरी नहीं, ऐसी मान्यता से अनादि काल से यह दुःखी.. दुःखी.. दुःखी हो रहा है। समझ में आया? वस्तु भगवान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में.. शुद्ध (भाव) अधिकार चलता है। शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु शुद्ध है। उसे अपना न मानकर.. वह स्व है, उसे अपना न मानकर इस कर्मबन्धन, शरीर, वाणी, मन और कर्म के भेदों के सब प्रकार, वे मुझमें हैं, ऐसी मान्यता वह मिथ्यादृष्टि की दुःखदायक पापदृष्टि अनादि की है।

**मुमुक्षु :** ..........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्म कहाँ है? यहाँ तो भाव कहा। यह दृष्टि अनादि की विपरीत है। कर्म भी अनादि का क्रम-क्रम से उसके कारण चला आता है।

**मुमुक्षु :** दुःखी है अर्थात् क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह दुःखी अर्थात् आत्मा, आत्मा जो वस्तु है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ अनुभव नहीं, वहाँ उसे शरीर, वाणी, कर्म, पुण्य, पाप मेरे—ऐसी मान्यता है, वह मान्यता दुःखरूप और आकुलता है। अर्थात् उसे आत्मा के आनन्द का भान नहीं परन्तु यह दुःख है। दुःख संयोग की यहाँ व्याख्या नहीं। प्रतिकूल

संयोग, वह दुःख और अनुकूल संयोग, वह सुख, यह वस्तुस्वरूप में है ही नहीं। वह तो परचीज़ है। पर में सुख-दुःख का कारण है नहीं, परन्तु स्वयं सिद्ध समान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जो आत्मा अन्तर (में) देखा, सबका, हों! वह आत्मा तो शुद्धचैतन्यघन अनाकुल आनन्दकन्द आत्मा है, उसे यहाँ शुद्धभावरूप से वर्णन किया जाता है। ऐसे शुद्धभाव की अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण वह अनादि काल से राग और द्वेष, पुण्य और पाप मेरे तथा कर्म मेरे, ऐसे परवस्तु को मेरेपने की मान्यता से मिथ्यापने के सेवन से अनादि से दुःखी, दुःखी और दुःखी है। पोपटभाई!

**मुमुक्षु :** नयी बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि की है परन्तु इसे ख्याल में नहीं न! अरे! यह वह मैं कौन हूँ? जो आत्मा अर्थात् कि यहाँ शुद्धभाव। ज्ञान, चैतन्यज्योति पूर्णानन्द का नाथ, जिसकी एक अन्तर्दृष्टि करने से जिसे शान्ति और आनन्द आवे, ऐसा आत्मा है। ऐसे आत्मा की अनादि काल से अज्ञानी को (खबर नहीं)। त्यागी हुआ.. समझ में आया? साधु नाम धराया, पंच महाव्रत की क्रिया पाली, ऐसा माना परन्तु वह सब मिथ्यादृष्टि अनादि से दुःखी है। आहाहा! आत्मा.. देखो!

कहते हैं, **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है..** देखो, पहली लाईन। ४०वीं गाथा। **सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है..** भगवान आत्मा तो निरुपराग अर्थात् मलिनता का विकार, वह स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा! वह निरुपराग अर्थात् विकारभाव, मलिनता, दुःखरूप भाव, मिथ्यात्वभाव, यह शरीर मेरा और मैं शुद्धभाव वह (मैं) नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प हों, विकारभाव, शुभ-अशुभभाव, दया, दान, वृत्ति के भाव, पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, तप का विकल्प / राग उठता है, वह पुण्य राग विकार है। हिंसा झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना की वृत्ति उठती है, वह पाप है। ये दोनों विकार, वह मैं हूँ और विकाररहित निरुपराधि चीज़वाला मैं हूँ, यह भूल गया है; इसलिए इसकी दृष्टि में मिथ्यात्व का दुःख वेदन में आता है। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** दुःखी होवे तो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुःखी क्या? दिखता नहीं? कहाँ है? आनन्द कहाँ है? लाओ। क्या दुःखी अर्थात् क्या? रोटियाँ नहीं मिले, इसलिए दुःखी? निर्धनता, (इसलिए)

दु:खी ? उसे कहता है कौन ? समझ में आया ? और स्वर्ग के इन्द्र हुए, इसलिए सुखी ? कौन कहता है ? भगवान इनकार करते हैं कि ऐसा है ही नहीं। समझ में आया ? सुख तो उसे कहते हैं-स्वाधीनता। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप शुद्ध आत्मा है, उसकी अन्तर्दृष्टि करके आस्वाद-अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उसे भगवान सुख कहते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को सुख होता है, अज्ञानी को सुख नहीं होता। समझ में आया ?

**सदा निरुपराग जिसका स्वरूप है...** भगवान आत्मा, वह तो सिद्धसमान अपना स्वरूप अन्दर है। उसकी इसे खबर नहीं। **ऐसे निरंजन ( निर्दोष )...** भगवान आत्मा पवित्र का धाम निज परमात्मतत्त्व, वह अपना परमस्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द का तत्त्व आत्मा, उसे **वास्तव में द्रव्यकर्म के-जड़कर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के...** जिसे कर्म ही नहीं, फिर उसके स्थान स्थितिबन्ध कहाँ से आये ? अरे.. अरे.. ! गजब बात, भाई ! इस वर्तमान अवस्था के लक्ष्यवाले जीव को कर्म का सम्बन्ध है, वह व्यवहार है परन्तु वह सम्बन्ध स्वीकारना और सम्बन्धरहित त्रिकाल को न स्वीकारना, इसका नाम भगवान मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मिथ्यात्वी दु:खी कहते हैं। समझ में आया ?

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ...सम्बन्धरहित स्वभाव सम्बन्धवाला, आनन्द सम्बन्धवाला मैं.. मैं आत्मा अर्थात् आनन्द और ज्ञान की मूर्ति। चैतन्यसूर्य और सुख के सागर से भरपूर भगवान। सुख कौन सा ? इस धूल में सुख माने, वह तो मूढ़ जीव है। समझ में आया ? इस पुण्य में सुख, पैसे में सुख, स्त्री में सुख, माँस, हड्डियों के भोगने में सुख, वह तो मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि की मान्यता है। वह सुख नहीं, वह मान्यता दु:ख की है। आहाहा ! समझ में आया ?

सुख अर्थात् कि जो आत्मा में शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, उसे इस बन्धन के विकारी भाव जो वर्तमान समय के सम्बन्धरूप वर्तते हैं, उनकी रुचि, आश्रय, अवलम्बन छोड़कर, शुद्धभाव त्रिकाल ज्ञानानन्द आत्मा हूँ, उसका अन्तर आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट हो, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का आंशिक स्वाद आता है, उस जीव को धर्मी और सुखी कहा जाता है। समझ में आया ?

अनन्त काल से मूल बात ही इसने लक्ष्य में नहीं ली। ऐसे का ऐसा मूढ़रूप से मर

गया। चौरासी के अवतार में, नरक और निगोद, भिखारीरूप से देव और राजा, रंक, सब भिखारी। भगवान आत्मा बादशाह अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी दृष्टि और उसकी अधिकाई न मानकर, अपने स्वभाव की शुद्धता से पुण्य-पाप के राग को अधिकरूप से-विशेषरूप से, उसमें प्रसन्नतारूप से, उसे अधिकरूप से स्वीकार करता है, वह मिथ्यादृष्टि दु:खी और अज्ञानी है। वह चार गति के राह के भाव लेकर घूमता है। समझ में आया? आहाहा! वह चार गति में भटकने का कलेवा लेकर घूमता है। समझ में आया? राह खर्च। राह खर्च समझ में आया या नहीं? यह मार्ग में जाये, वहाँ हाथ में खर्ची-बर्ची रखते हैं या नहीं? कलेवा-बलेव रखते हैं या नहीं? मैसूर ले जाते हैं, गाठिया ले जाते हैं या ढेबरा ले जाते हैं। मार्ग में जाये कहीं वहाँ। इसी प्रकार यह आत्मा कहते हैं कि चार गति की राह में पड़ा हुआ अनन्त काल से नरक और निगोद और चार गति के पन्थ में पड़ा हुआ, अपना शुद्ध चैतन्यभाव, स्वभावभाव, पिण्डभाव की दृष्टि का अनादर करके, इतना वह मैं, ऐसा अनादर करके और पुण्य तथा पाप और उनके फल वे मेरे, वह मैं, ऐसी मिथ्यादृष्टि का भाव इसे चार गति के पन्थ का राह का खर्च लेकर घूमता है। पोपटभाई! आहाहा! गजब बात! परन्तु बात सुनी न हो, अब उसे यह क्या होगा? यह वीतराग भगवान कहते होंगे? वीतराग के वाड़ा में ऐसा सुनने को मिले नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल का केवलज्ञान था। वे केवलज्ञानी ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरा भाव जो त्रिकाली नित्यानन्द अनाकुल कन्द है, उस स्वरूप तू है, वह तेरा जीव स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जितने विकृतभाव उत्पन्न हों या उनके सम्बन्ध से कर्म हों या उनके सम्बन्ध से यह धूल आदि का संयोग मिले, वह सब चीज़ पर है। उस पर में मैं हूँ और मुझमें मैं नहीं - ऐसी मान्यता मिथ्यात्व की, अज्ञान की, चार गति के निगोद की राह की गति का भाव है। समझ में आया? और मोक्ष की राह का पन्थ भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द अनाकुल हूँ—ऐसी अन्तर में दृष्टि में शुद्धस्वभाव का अन्तर्मुख होकर उसका स्वीकार (करना कि) उतना मैं और रागादि मैं नहीं, ऐसी दृष्टि का अनुभव, वह आत्मा को मोक्ष के पन्थ में ले जाने का मार्ग है। समझ में आया? अरे रे! गजब बातें यह।

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह धर्म अर्थात् यह धर्म। दूसरा कौन-सा धर्म ? धर्म करो.. धर्म करो.. कहाँ धूल में धर्म है ? पैसे में, शरीर में ? वह तो मिट्टी है, धूल है, वह तो पुद्गल मिट्टी-जड़ है। कहीं के रजकण कहीं से आकर यहाँ आये हैं। वापस आकर राख हो जायेंगे। वह कहाँ आत्मा था ? समझ में आया ? पैसा कहाँ आत्मा है ? वह तो धूल है, अजीव पुद्गल है। उसके द्वारा आत्मा को धर्म होगा ? ऐ..ई ! धूल में भी नहीं होगा। मर गया.. मूढ़ होकर ! समझ में आया ? शरीर ही यह पिण्ड, माँस का पिण्ड, अरे ! चैतन्य पवित्र को इस अपवित्र के पिण्ड के साथ रखना, कहते हैं कि मान्यता में तुझे कलंक है, प्रभु ! समझ में आया ?

यहाँ तो सदा निरुपाधि भगवान आत्मा को आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव हों, वह तो आस्रवतत्त्व है। शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम हों, वह पुण्यपरिणाम आस्रव है। वह आत्मा नहीं और उनसे बन्धन होता है, वह कर्म रजकण अजीवतत्त्व है और उससे बाहर का संयोग मिले, वह भी परतत्त्व है। उसमें आत्मा कहाँ आया ? समझ में आया ?

**ऐसे निरंजन ( निर्दोष ) निज परमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थितिबन्ध के स्थान नहीं हैं।** जिसे कर्म ही नहीं, उसे फिर स्थिति कहाँ से आयी ? आहाहा ! समझ में आया ? यह **ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों में के उस-उस कर्म के योग्य ऐसा जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार, वह प्रकृतिबन्ध है; उसके स्थान ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व को ) नहीं हैं।** वे शुद्धभाव में नहीं हैं। उसने फिर स्व-आकार का अर्थ स्वीकार किया है। स्वीकार करके क्या किया है ? है पाठ में स्व-आकार। उसने स्वीकार लिखा है। आत्मा.. भाई ! यह आत्मा अर्थात् स्फटिक शुद्ध आनन्दकन्द का चैतन्यरत्न। आत्मा अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का और ज्ञान के प्रकाश के नूर के तेज का चैतन्य स्फटिक रत्न है। भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव उसे आत्मा कहते हैं। उस आत्मा के अतिरिक्त उसे कर्म के सम्बन्ध में कर्म की आकृति-कर्म के रजकण की प्रकृति पड़ती है, वह आत्मा में कहाँ है ? वस्तु में होवे तो पृथक् नहीं पड़े। वस्तु में नहीं है। वह तो उसके घर में-उसके रजकण में रजकण है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य दल में उस कर्म का स्पर्श नहीं है। आहाहा ! यह इसे गले उतरना (कठिन पड़ता है)। कभी दरकार ही नहीं की। बाबूभाई ! सुना नहीं। वहाँ मुम्बई में जहाँ-तहाँ गोला (गप्पा) मारे, उल्टे-सीधे मारे, सुने,

जाओ हो गया धर्म। एक तो कमाने में पूरे दिन पाप। फिर सुनने में ऐसा कहे कि यह करो और यह करो तो उसमें तुम्हें धर्म होगा, वह भी मिथ्यादृष्टि का पाप। ऐ..ई! आहाहा!

यहाँ भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, भाई! तू शुद्ध जीव स्वभाव तेरा भाव है। तू कोई चीज़ है या नहीं? चीज़ है या अचीज़ है? वस्तु है या अवस्तु है? पदार्थ है या अपदार्थ है? भले अरूपी है, परन्तु अरूपी आनन्दकन्द अनाकुल शान्त और अनन्त गुण का रस अरूपी कन्द आत्मा है। ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने में शुद्ध जीव भाव में इस कर्म का कोई लेप-वेप उसे है नहीं। ऐसी अन्तर्दृष्टि करने का नाम आत्मा का स्वीकार, आत्मा का आस्तिक और उसे सम्यग्दर्शनरूपी धर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और इस सम्यग्दर्शन में ऐसे स्वीकार धर्म बिना व्रत और दया, काम-क्रोध, दान, तपस्या करके मर जाये। वह चार गति में भटकने का इकाईरहित शून्य है। समझ में आया?

कहते हैं, वह पुद्गल की जो आठ (कर्म) की प्रकृति है न? कहते हैं न? ज्ञानावरणी की प्रकृति, दर्शनावरणी का स्वभाव। कैसा? कि आत्मा के ज्ञान को रोके। कौन? ज्ञानावरणी का स्वभाव है। कहते हैं कि परन्तु वह स्वभाव जो कहते हैं, वह तेरे आत्मा में नहीं है। अब सुन न! आहाहा! अनादि से हाँ-ना का बैर हो गया है। भगवान कहते हैं कि तुझमें जो नहीं है, उसे तू मानता है। ना है, उसकी हाँ करता है, यह तेरे मिथ्यादृष्टि का बैर तूने खड़ा किया है। आहाहा! गजब बातें, भाई!

श्रीमद् ने एक पत्र में लिखा है न कि प्रभु में अनन्त गुणलक्षण। अनन्त गुण प्रभु के, पूरे गुण से प्रभु है, परन्तु इसके अपलक्षण का भी पार नहीं होता। तब फिर वे लोग ऐसा कहे, प्रभु के अपलक्षण कहे हैं। अरे! सुन तो सही, प्रभु! अर्थात् तू, ऐसा कहते हैं। तू बड़ा प्रभु है, भाई! वह सिद्धभगवान होंगे, कहाँ से होंगे? वह पद बाहर से आवे ऐसा है? केवलज्ञान, केवलदर्शन, अरिहन्तपद और सिद्धपद हुए, वह तो पर्याय निर्मल हुई। वह कहाँ से आयी? शरीर में से आयी? दया, दान के विकल्प / राग में से आयी? समझ में आया? यह अन्तरशक्ति का पूरा तत्त्व अनन्त गुण की राशि पिण्ड, पूरा गुण का पिण्ड अकेला भगवान है। उसके अन्तर में एकाग्र होने से प्रथम सम्यग्दर्शन हो, तब शक्ति का विकास आंशिक होता है, उसे धर्म कहा जाता है। आहाहा! गजब व्याख्या, भाई! पूरी जिन्दगी भ्रम में और भ्रम में बितावे। आँखें बन्द करके जाये चौरासी के अवतार में जोर से।

कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा जहाँ तेरी दृष्टि स्थिर हो और स्थिर होनेयोग्य ऐसा तत्त्व है। ऐसे तत्त्व में इस पुद्गल के ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय (प्रकृति का अभाव है।) कहते हैं न कि इस ज्ञानावरणीय प्रकृति ने ज्ञान को रोका, दर्शनावरणीय ने दर्शन को रोका, अन्तराय ने वीर्य को रोका। अरे, सुन न अब! वह तो पर्याय के ऊपर एकत्व तू होता है, इससे तेरी दशा रुकी है, तब कर्म को निमित्तरूप से कहा जाता है परन्तु वह निमित्त और उसके ओर की रुकी हुई पर्याय का अंश वह त्रिकाल वस्तु में नहीं है। आहाहा! भारी कठिन बात।

यहाँ तो निज परमात्मतत्त्व कहा है न? आहाहा! भाई! आठ वर्ष की बालिका हो तो भी उसका आत्मा ऐसा है। डेढ-भंगी का शरीर हो, उसका आत्मा तो ऐसा ही है। आहा..!

**मुमुक्षु :** छह काय....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** छह काय कहाँ? छह काय आत्मा ही नहीं। भगवान इनकार करते हैं। आत्मा तो ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, वह आत्मा है। छह काय के शरीर तो जड़ हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु के शरीर तो अजीव जड़ हैं। वह कहाँ आत्मा था? ऐई! आहाहा! यह आत्मा है? यह तो मिट्टी है। अजीवतत्त्व जड़, पुद्गल की दशा मिट्टी है। दाल, भात, रोटी में से खड़ा हुआ पिण्ड है यह। यह आत्मा है? यह तो जगत की मिट्टी है। अजीव, पुद्गल, मिट्टी, धूल तो जगत की चीज़ है। त्रस, यह त्रस है?

इसने कभी अपने भाव की महत्ता को लक्ष्य में नहीं लिया; इसलिए इसने पर को महत्ता दी और जिसे महत्ता दी, वह इससे पृथक् कैसे पड़े? समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में, आठ वर्ष की बालिका सम्यग्दर्शन कर सकती है, हों! और मेंढ़क, ऐसा मेंढ़क, इतना मेंढ़क भगवान के समवसरण में है, वह ऐसा भान कर सकता है। ऐसा नहीं कि बड़ा मनुष्य हो, ऐसा पढ़ा हो और ऐसा किया हो, ऐसा कुछ नहीं है। अक्षर का ज्ञान न हो और आत्मा का भान कर सकता है। आहाहा!

यहाँ तो परमेश्वर भगवान तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं, वैसा सन्त कहते हैं कि भाई! कि तेरा शुद्धभाव है न अन्दर? पवित्रधाम, ध्रुवधाम, ध्रुवधाम, वह एकरूप चिदानन्द भगवान है। उसकी तू दृष्टि कर। उसके बिना ये सब चीजें तुझमें नहीं है। ऐसी मान्यता किये बिना तुझे सम्यग्दर्शन की, धर्म की शुरुआत का पहला सोपान निर्मल नहीं होगा।

आहाहा! और सम्यग्दर्शन के बिना ये व्रत और तप और क्रियाकाण्ड सब रण में शोर मचाने जैसा है। तेरे आत्मा को कुछ लाभदायक नहीं है। नुकसानकारक है। मिथ्या, मेरे हैं, ऐसा माना, (वह) मिथ्यात्व ही है। समझ में आया? पोपटभाई! अरे! यह तो मनुष्य का गर्व उतर जाये ऐसा है।

**मुमुक्षु :** सच्चा खोटा....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खोटे की ही बात कहते हैं न?

**उसके स्थान ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व को ) नहीं हैं।** देखो! है न? ये कर्म के प्रकार की प्रकृतियों के भेद, उनका अस्तित्व उनमें है। शुद्धभाव चैतन्य के अस्तित्व में वे नहीं है। ऐसे शुद्धभाव की अन्तर्दृष्टि करना, उसका नाम भगवान, सम्यग्दर्शन (कहते हैं)। पहले में पहली धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। आहाहा! एक तो सुनने को मिलता नहीं। अब यह कब सुने? यह कब विचार करे? और कब प्रयोग में लावे? आहाहा! ऐसे का ऐसा अविवेक और अविवेक में, मूढ़ता में और मूढ़ता में। पागलपन में सब जिन्दगी गयी। अनन्त काल से जाये, ऐसी अभी तक जिसे यह भान नहीं, वह सब पागलरूप से जिन्दगी बिताते हैं। पोपटभाई! ये सब चतुर हों वे भी? कहाँ गये? वे गये? नटुभाई गये? गत कल तक नहीं रहे? कल आयेंगे। ठीक। वकील हैं न!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चतुर किसे कहते हैं? इसके लिये तो चतुर याद किया। वकील अर्थात् क्या परन्तु अब? पाँच हजार का वेतन लेता हो तो भी बड़ा मूर्ख है, कहते हैं। आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को स्वीकार नहीं करता और पुण्य के फल मेरे और हम कमाते हैं, हमारा जो वकालात का क्षयोपशम है, वह हमारा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि पाखण्डी अज्ञानी की है। ऐई! कनुभाई! ये जज हैं, लो न ये। अहमदाबाद। समझ में आया? यह भाव जो ज्ञान के उघाड़ का है, जो पर का, वकालात का, व्यापार का यह क्षयोपशमभाव है, वह बन्ध का कारण दुःखदायक है। वह आत्मा का भाव ही नहीं है, ऐसा यहाँ भगवान कहते हैं। आहाहा! यह क्या कहा? ऐई! तुम्हारे यह क्या कहलाता है? टाईल्स। बाबूभाई! तुम्हारे सोने का (काम) है? क्या है? लोहे का? लोहे की कला की वह कला, सोने की कला, यह वकालात की कला, टाईल्स की कला। भगवान कहते हैं, यह उघाड़ जो है ऐसा..

ऐसा.. ऐसा.. करे, वह पर का तो कर नहीं सकता, परन्तु जो उघाड़ (क्षयोपशम) भाव परसम्बन्धी का है, वह दु:खदायक है। वह मेरा है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** विकार मेरा नहीं तो किसका है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह तो जड़ का है। उसमें तुझे हो तो शान्ति मिलनी चाहिए न? वह तो जड़ के उघाड़ का जानने को मिला। उसमें चैतन्य का उघाड़ कहाँ आया?

**मुमुक्षु :** पर्याय तो ज्ञान की है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह इसकी पर्याय नहीं। वास्तव में इसकी पर्याय शान्ति और ज्ञान की है। स्व को पकड़े, वह पर्याय इसकी। कठिन बात है, भाई! यह। समझ में आया? ऐसे तो अनन्त बार ग्यारह अंग के शास्त्र के ग्यारह अंग की-शास्त्र के ग्यारह अंग की जानकारी की। तो भी कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। वस्तु शुद्ध एक समय में पूर्णानन्द प्रभु आत्मा जिसे हम कहते हैं, भगवान कहते हैं, आत्मा जिसे हम कहते हैं, वह आत्मा शुद्धभाव से भरपूर आनन्दकन्द है, उसकी तुझे रुचि और सन्मुख की दृष्टि नहीं। इसमें यह मान बैठा है, वह मिथ्यात्व का दु:ख वेदता है।

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वीकार करे परन्तु किसका स्वीकार करे? यहाँ विष्टा को स्वीकारते होंगे वहाँ? ऐ..ई! आहाहा! ओहो..!

यहाँ तो जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव स्वरूप में नहीं है। ऐसे स्वीकार की दृष्टि किये बिना, उसकी सत्यता का स्वीकार नहीं आता। और सत्य का स्वीकार हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं आता। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र नहीं होता। आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर अनन्त तीर्थंकर हुए, उन्होंने कहा। अभी भगवान विराजते हैं, वे ऐसा कहते हैं। महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकरदेव विराजते हैं। सीमन्धर भगवान विराजते हैं। बीस तीर्थंकर और लाखों केवली (विराजते हैं)। अनन्त तीर्थंकर होंगे, वे एक ही आवाज से यह बात करते हैं। समझ में आया? ऐसा भी लोगों को कठिन लगे, ऐसा न! ऊपर चढ़ गया हो, उसे नीचे उतरना (कठिन पड़े ऐसा है)।

इसे मानो कहीं पास हो गया। सातवीं पुस्तक में (कक्षा में) पास हो गया। वह

अच्छा (शिक्षक) परीक्षा लेने आवे (वह कहे), ऐ! नीचे उतर नीचे, एकड़िया में। कहाँ गया यहाँ? तुझे चढ़ाया किसने? चढ़ावा किसने किया? भाई! सेठ के लड़के, इसलिए चढ़ावा किया। नहीं थे? तलकचन्दभाई कहते हैं अपने। पढ़ने में बहुत ध्यान नहीं। नारणसेठ के पुत्र के पुत्र, इसलिए चढ़ावा करके ऊपर चढ़ा दे। लाठी। ऐ! परन्तु छठी पुस्तक का (कक्षा का) कुछ आता नहीं, यह चौथी पुस्तक का कुछ आता नहीं और छठी पुस्तक में कहाँ से बैठा? सेठ का लड़का चढ़ावा करके चढ़ गया।

इसी प्रकार यह श्रद्धा का भान नहीं होता। अज्ञानी आकर चढ़ावा करके (कहे) तुम तो धर्मी हो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। जहाँ सच्चा डिकोटी में परीक्षा लेने गया तो कहे, यह तो मूढ़ है। इसे कुछ भान कहाँ है? नीचे उतर जा। तुझे धर्म में किसने चढ़ाया? वापस निकाल दे। अंक ला, जवाब तो ला। छठी कक्षा में बैठा है तो छठी कक्षा का जवाब ला। हम तो चढ़ाये चढ़ाया। चढ़ाये चढ़ाया तो रह सके। नीचे उतर जा।

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर की परीक्षा में वीतरागी डिकोटी यहाँ तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ है। समझ में आया? उनकी परीक्षा.. ऐसा आता है, हों! ज्ञानार्णव में बहुत आता है। परीक्षा किये बिना माने वे सब मूढ़ है, कहते हैं। ऐसा आता है और मैं तो पहले कहता था। 'सूयगडांग' का सातवाँ अध्ययन है न? ...यह शब्द पहले आता था। है न? परीक्षा किये बिना माना है, उसमें आत्मा को कुछ सिद्धि नहीं है। परीक्षा नहीं कि आत्मा कौन है? यह विकार उठे, वह क्या है? यह जड़, वह क्या है? सात तत्त्व में सात तत्त्व की भिन्नता के विवेक के भेदज्ञान की खबर नहीं। शरीर, वाणी, मान और पैसा, वह तो मिट्टी, धूल, अजीव है। वह तू है? कर्म, वह जड़ है। वह तू है?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु कौन? तीन काल में परवस्तु लाभदायक होगी? यह तो सबेरे बहुत आया था। ऐई! पोपटभाई! धन और स्त्री-पुत्र अच्छे से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा माननेवाले जीव मूढ़ हैं। यह तो परमेश्वर है, सर्वज्ञदेव। जिनके सेवक इन्द्र, बत्तीस लाख विमान के स्वामी शकेन्द्र, ईशानइन्द्र, गणधर, ऐसा जो चक्रवर्ती ज्ञानी समकिती का राज। यह तो केवली का राज है। सर्वज्ञ परमेश्वर का शासनराज। उस शासन में कहते हैं, जिसने भगवान आत्मा को ऐसे कर्म के सम्बन्धवाला पर्याय में स्वीकार किया, अंश में स्वीकार किया, उस अंश को आत्मा माना। उसने त्रिकाल शुद्धभाव को आत्मा नहीं माना।

वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। उसके ख्याल की खबर तो करे। खबर के बिना रुचि किसकी ओर करेगा? अन्तर्मुख भगवान महाप्रभु स्वयं विराजता है। आहाहा! बात की। प्रकृति की की।

अब प्रदेश की करते हैं। **अशुद्ध अन्तःतत्त्व...** आत्मा की जो मलिन पर्याय है न? मलिन। मलिन के साथ सम्बन्ध है न? स्वभाव के साथ कहाँ सम्बन्ध है? भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमात्मा स्वयं निज आनन्दकन्द है। उसकी वर्तमान में पुण्य-पाप की भ्रमणा की जो पर्याय है, उस पर्याय के साथ कर्म पुद्गल का सम्बन्ध है। समझ में आया? उस **( अशुद्ध आत्मा के ) और कर्मपुद्गल के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश...** अशुद्ध पर्याय विकारी और कर्म के परमाणु, दोनों एक जगह इकट्ठे होते हैं, ऐसा वह प्रदेशबन्ध। **इस बन्ध के स्थान भी ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व को ) नहीं है।** आहाहा! अशुद्धता ही जहाँ नहीं, अशुद्धता की पर्याय के साथ कर्म के प्रदेश का सम्बन्ध था। आत्मा के साथ कुछ नहीं है। सत्य बात का स्वीकार (करना कठिन पड़ता है)। वह निज परमात्मा जो है निरंजन निजस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें इस अशुद्धता के प्रदेश का सम्बन्ध नहीं है।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होवे कहाँ? साथ में होता है। यहाँ अशुद्धता हो, वहाँ रजकण होते हैं। यह है न यह? आत्मा अन्दर असंख्यात प्रदेशी है या नहीं? जहाँ अशुद्धता समय-समय की जो दशा है, उसके साथ वे रजकण साथ में हैं। रजकण परमाणु अन्दर है न? ये कहीं बाहर ऊपर अध्धर नहीं है। साथ में है। उनका प्रवेश कहा है। यह मिट्टी है, वह तो भिन्न तत्त्व है परन्तु वे कर्म के सूक्ष्म, मूर्त, धूल रजकण है न? वह अरूपी भगवान आत्मा के साथ रहे हुए हैं। उस अशुद्धता और इन्हें सम्बन्ध है। ऐसा प्रवेश कहा है। वह वस्तु के स्वभाव में है नहीं। यह भी कहाँ विचारा होगा कि अन्दर क्या होगा? आहा..! समझ में आया?

आत्मा की दशा का एक समय की मलिनता का अंश और कर्म के प्रदेश, रजकण की संख्या-परमाणु की (संख्या) है, भगवान ने जिसे प्रदेशबन्ध कहा है। उन दोनों का सम्बन्ध इस स्वरूप में नहीं है। समझ में आया? लोगों को ऐसा (होता है), ऐसा तत्त्व क्या होगा यह? यह कहीं वीतरागमार्ग का तत्त्व होगा ऐसा? उसमें तो आवे, एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया.. तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। लो इसमें कुछ समझने का? ऐई! मोहनभाई! यह तो कहते हैं कि वह तो शुभविकल्प की बात है। यह

तो शुभविकल्प भी तेरे स्वरूप में नहीं है, ऐसे तत्त्व की बात है। आहाहा! ओहोहो..!

**मुमुक्षु :** .......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह ....शुभराग, अशुभ से टलकर उस समय शुभ का विकल्प न हो। परन्तु वह कहाँ (धर्म है)। वह तो परलक्ष्यी विकार है। वह कहाँ स्वरूप में है? समझ में आया? रट जाये ऐसा का ऐसा। ....अप्पाणं बोसरे। आत्मा को पूरा छोड़ दो। परन्तु आत्मा को तू छोड़ता है, वह कौन सा आत्मा छोड़ता है और कौन सा आत्मा अंगीकार करता है? है कुछ खबर? अप्पाणं बोसरामि। यह कहते हैं यहाँ। भाई! तू अप्पाणं को आत्मा कहे और शुद्धभाव की तो तुझे खबर नहीं और रागादि विकल्प होते हैं, उसे तू आत्मा मानता है, उसे छोड़ता हूँ, परन्तु क्या छोड़ना है? परन्तु इस ओर समझे बिना छोड़ना कहाँ से टले? श्रीमद् ने टीका की है कि अप्पाणं वोसरावे इसमें अज्ञानी पूरा आत्मा छोड़ देता है। जिसे आत्मा की खबर नहीं है। ज्ञानचन्दजी!

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी खबर पड़ी। ५० वर्ष में। कितने वर्ष हुए? ५२। तो ५२ वर्ष मुँडाया, तब खबर पड़ी कहते हैं, परन्तु अभी तक वस्त्र ऐसा आधा रखकर घूमते और ऐसा करके घूमते। सब भाषण देते। यह कहे, यह बराबर है।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बस यह लेना, यह करना। हो गया। अरे! भाई! बापू! धर्म अर्थात् एक समय का धर्म अपूर्व मोक्ष की शुरुआत करा दे। एक समय का धर्म अनन्त जन्म-मरण का अन्त ला दे। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरण के भाव ही जिसमें नहीं। ऐसे भाव की दृष्टि अन्तर में होने से भव कहाँ और भव का भाव कहाँ? समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसने इनकार किया? आहाहा!

इस वस्तु का क्या स्वरूप है, विकार क्या है? और संयोग, वह कर्म क्या और फल क्या? इसका जब तक भाव में ख्याल न आवे, तब तक इससे भिन्न पड़कर स्वभाव की प्रतीति नहीं कर सकता। समझ में आया? ये बन्ध के स्थान नहीं हैं। लो!

**शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्तिवाला वह अनुभागबन्ध है;...** कर्म में, हों! **कर्म की निर्जरा के समय...** देखा? **शुभाशुभकर्म की निर्जरा...** रजकण में होती है न? उस **समय सुख-दुःखरूप फल देने की शक्ति...** उस कर्म में, हों! वह तो सुख-दु:खरूप फल देने की शक्ति जड़ में है। **वह अनुभागबन्ध है;...** जड़ में है, वह आत्मा को नहीं। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो आनन्द के अनुभाग रस से भरपूर है। जिसके अतीन्द्रिय आनन्द के एक समय के स्वाद में इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके, कचरे जैसे लगते हैं, इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए कचड़े के तिनके जैसे लगते हैं। ऐसा भगवान सम्यग्दर्शन में भान होने पर, सुख का स्वाद आने पर, उस चीज़ का भान होने पर दुनिया तीन लोक और तीन काल सड़े हुए तिनके जैसी लगती है। समझ में आया? चैतन्य की कीमत के समक्ष पर की कोई कीमत नहीं रहती और जिसे चैतन्य भगवान की कीमत नहीं, उसने पर की कीमत और महत्ता दी है। उसने भगवान आत्मा का अनादर करके मिथ्यात्वभाव का सेवन किया है। समझ में आया?

**इसके स्थानों का भी अवकाश ( निरंजन निज परमात्मतत्त्व में ) नहीं है...** आत्मा.. वस्तु.. वस्तु है। उसमें होवे तो पृथक् पड़े कहाँ से? और भिन्न पड़े, वे उसमें नहीं। समझ में आया? वे महिलायें रोती हैं न, जब बहुत प्रिय मर गया हो। महिलायें, फिर उसे जलावे जलाना हो तो। भाई! अपना हो तो किसलिए जाये? ऐसी बातें करे। खोटे, ढोंग-ढोंग। उन्हें और वे रोते हों, उन्हें भान कहाँ है? वह बुढ़िया होती है न? बाद में रोती है न जरा?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ....क्या है? ढ़ोंग के ढ़ोंग अन्दर सबको। क्या है? किसी को लगा हो तो राग-द्वेष लगता है। वह भी ढ़ोंग है न परन्तु? एक जवान लड़का मर गया है। वहाँ बोलने में हाथ उठता नहीं था। स्त्री को और उसकी माँ को... हाय.. हाय। नजरों से देखा हुआ, हों! नजरों से देखा हुआ। नजरों से देखा हुआ सब। यह तुम्हारे सगो के सम्बन्ध की बात। साधु होने के बाद। अच्छा घर और लड़का इकलौता मर गया। लोग बहुत आवे, परन्तु हाथ उठता नहीं था। वह तो अन्दर शोक में मूढ़ता में उलझ गया था। किसका लड़का? किसका बाप तेरा? किसी की चीज़ कहीं आयी थी? और शरीर रजकण, यह आत्मा भिन्न, उसके (शरीर के) रजकण भिन्न। उनकी अवधि से आये और अवधि से चले गये। तुझमें कहाँ घुस गये? लड़का कहाँ तेरा था? आहाहा! नौ महीने पेट में रहे और

बाहर में आवे तब.. आहाहा! हमारा पुत्र। परन्तु तेरा हो वह भिन्न कैसे पड़े? भिन्न हो किसका? सुन न! ऐई! अरे रे! गजब बात, भाई!

सम्यग्दृष्टि जीव जहाँ राग के शुभपरिणाम भी मेरे नहीं मानता, वहाँ स्त्री-पुत्र में पड़ा हुआ परन्तु वे मेरे, (ऐसा) नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? यह निरंजन निज भगवान आत्मा में वह वस्तु है ही नहीं। **और द्रव्यकर्म...** यह सामान्य सब जड़ रजकण। **तथा भावकर्म...** विकार और **उदय के स्थान...** देखा? दोनों लिये। विकार के स्थान शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप के भेद पड़ते हैं न? दया, दान, शुभभाव के; हिंसा, झूठ के अशुभभाव के, इन शुभाशुभभाव के जितने असंख्य प्रकार पड़ते हैं, वे वस्तु में नहीं है। वे विकारी भाव, शुभाशुभभाव हैं, आत्मा में नहीं। वह तो आस्रवतत्त्व हुआ। द्रव्यकर्म तो अजीवतत्त्व हुआ, नवतत्त्व हैं या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। अब नव तत्त्व में ये पुण्य के परिणाम हों, वह कौन सा तत्त्व? वह तो आस्रवतत्त्व है। पुण्यास्रव जिससे आवे। हिंसा, झूठ के परिणाम पापतत्त्व, उनसे पाप रजकण आवें। रजकण, वे अजीव हैं, वह द्रव्यकर्म में और पुण्य-पाप के भाव हों, दया, दान, व्रत के, भक्ति के, दान के, वह सब भावकर्म विकारी परिणाम है। वह आत्मा में नहीं है। उन्हें अपना माने, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। जो तत्त्व इसका नहीं, उसे इसका मानना; जो तत्त्व इसका है, उसका इसे न मानना, (वह मिथ्यात्व है)। जरा पसीना उतर जाये ऐसा है। आहाहा!

भगवान परमेश्वर तीन लोक के नाथ, वे समवसरण की सभा में महाविदेहक्षेत्र में ऐसा वर्णन कर रहे हैं। परमेश्वर के मुख में से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे, बाद में आकर यह शास्त्र बनाया। संवत् ४९। समझ में आया? और वहाँ न गये हों और दूसरे ज्ञानियों ने बनाया हो तो भी भगवान के पास गये हुए ही उन्हें समझने और वे कहते हैं। स्वयं आत्मा भगवान है न? आहाहा! कहो, मोहनभाई! इस सुख-दु:ख का और सब क्या करना अब इसमें? चौड़ा होकर घूमा, कहते हैं। यह सब तेरा नहीं। चौड़ा होकर घूमा कि पुण्य-परिणाम मेरे, पाप परिणाम मेरे, कर्म मेरा, कर्म बाँधे, उनका फल यह, यह पुत्र मेरा, यह स्त्री मेरी, यह धूल मेरी, यह पैसा मेरा। परन्तु तेरा होगा नहीं तीन काल में। सुन न! भिन्न पड़े वे तेरे होंगे? पुण्य-पाप के परिणाम भी पृथक् पड़ जाते हैं। सिद्ध में रहते हैं?

**मुमुक्षु :** वर्तमान में ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वर्तमान में भी पृथक् हैं। इसके लिये तो यहाँ कहते हैं। सिद्ध में नहीं, इसलिए तुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह द्रव्यकर्म और आठ कर्म सामान्य। भावकर्म के उदय के स्थान। पश्चात् उसमें तो सब ज्ञान की हीनता आदि के प्रकार हैं न? दर्शन की हीनता, वीर्य की हीनता, राग-द्वेष के परिणाम, उन सबका अवकाश निरंजन निज परमात्मतत्त्व को नहीं है।

**मुमुक्षु :** ऐसी अच्छी लाभ की बात होने पर भी...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसने सुनी नहीं। इसे यह बाहर का रुचा है। अनादि से साधु हुआ न, साधु? नामधारी। दिगम्बर हुआ, हों! हजारों रानियों को छोड़कर जंगल में गया, परन्तु यह अन्तरतत्त्व पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी इसे रुचि की खबर पड़ी नहीं। यह क्रिया करते हैं, यह करते हैं, यह करते हैं, यह हमारा साधुपना। इससे अपना कल्याण हो जायेगा, ऐसी अनादि काल की दशा सेवन करता आया है; इसलिए यह बात इसे सुनना कठिन लगती है। आहाहा! यह तो गजब कठोर धर्म, कहते हैं। वीतरागमार्ग भारी कठिन, बापू! वीतरागमार्ग ही यह है। दूसरा मार्ग है ही नहीं। समझ में आया?

**इस प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ११वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि —**

( मालिनी )

**''न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावदयोऽमी**
**स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।**
**अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्**
**जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥''**

देखो! यह स्वभाव आया न यह? इस सम्यक् स्वभाव का, यह शुद्धभाव है। आहाहा! भगवान कहते हैं, हे जगत! हे जगत! जगत अर्थात् जगत में रहनेवाले जीवों। ऐसा, काठियावाड़ी ऐसा कहते हैं न? काठियावाड़ी आये। काठियावाड़ आया, ऐसा कहते हैं न? काठियावाड़ आता होगा? काठियावाड़ के लोग आये। दक्षिण आया, यह पंजाब आया, ऐसा कहते हैं न? इसी प्रकार हे जगत अर्थात् हे जगत के जीवों! ऐसा। समझ में आया?

हे जगत के जीवो ! **मोहरहित होकर...** भगवान ! एक बार तो पर की सावधानी के विकल्प, इस स्वरूप में नहीं है, ऐसा निर्णय करके एक बार मिथ्यात्वभाव को छोड़कर, एक बार भगवान आत्मा के सावधान स्वभाव की ओर जुड़ान कर और पर की ओर के सावधानी के विकल्प की एकता तोड़कर **सर्व ओर से प्रकाशमान...** भगवान आत्मा चारों ओर से प्रकाशमान। असंख्य प्रदेश में चैतन्य के तेज के नूर का पूर। आहाहा ! यह आत्मा।

इन असंख्य प्रदेश में.. यह असंख्य प्रदेश सर्वज्ञ में, वीतराग में ही होते हैं। अन्यमत में ये नहीं होते। वीतराग के अतिरिक्त अन्यमत में एक भी बात सत्य होती ही नहीं। जितने गप्प मारते हों, वे सब आत्मा की बातें बहुत करे न ? वह सब गप्प ही गप्प। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए तत्त्वों के अतिरिक्त किसी तत्त्व में सच्ची गन्ध एक भी नहीं है, परन्तु इस वीतराग का तत्त्व ऐसा है, भाई ! एक-एक आत्मा तेरा मोहरहित होकर, भाई ! एक बार पर की कीमत की महिमा घटा दे। एक बार पुण्य-पाप के विकल्प, शरीर, कर्म, फलादि सबके.. महिमा, अधिकता, विशेषता ऐसा जो माना हुआ मोहभाव, उसे छोड़कर **सर्व ओर से प्रकाशमान..** भगवान चैतन्य के नूर हैं। परमात्मस्वरूप अन्दर तेरा है, भाई !

**ऐसे उस सम्यक् स्वभाव...** यह शुद्धभाव कहा न ? शुद्धभाव अधिकार चलता है न ? यह सम्यक्स्वभाव। त्रिकाल ध्रुव शुद्धभाव एकरूप परमस्वभावभाव, ऐसा जो जीव शुद्धभाव, शुद्ध जीवास्तिकाय, ऐसा सम्यक्स्वभाव, सत्य स्वभाव। अर्थात् ? कि पुण्य-पाप का भाव वह भी सम्यक्स्वभाव नहीं है। शुभ-अशुभभाव, वह सम्यक्स्वभाव नहीं है। कर्म और शरीर और बाह्य चीज़ें, भगवान ! वह सम्यक्स्वभाव नहीं। वह तो सब विपरीत भाववाला तत्त्व है।

कहते हैं कि **उस सम्यक् स्वभाव का ही...** ऐसा कहा है न ? मिश्र न कर अब, कहते हैं। अकेला भगवान आत्मा चैतन्य के प्रकाश का तत्त्व जो अकेला। चारों ओर जिसमें प्रकाश चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य प्रकाश का तेज है, उसका अनुभव करो, उसकी दृष्टि करो और उसका अनुभव करो। वह धर्म है।

**अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप**
**अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप॥**

यह अनुभव, वह धर्म है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सन्त यह अनुभव करके परमात्म पद

को प्राप्त हुए हैं। सिद्ध भी इसी अनुभव का आचरण सेवन कर रहे हैं। आता है न, भाई! अनुभवप्रकाश में आता है। अरिहन्त, सिद्ध, ऐसा शब्द है। अनुष्ठान। सिद्ध भी आचरण सेवन कर रहे हैं। अपने शुद्ध का अनुसरण... समझ में आया? अरे! यह आचरण किस प्रकार का? भाई! यह बाहर की क्रियायें, यह करना, वह करना, (वह आचरण हम तो समझते हैं)।

भाई! यह अंगुली ऐसे चले, बापू! वह तेरा कर्तव्य नहीं, प्रभु! वह तो पक्षघात हो तो इच्छा हो तो भी कहाँ हिला सकता है? ऊं.. ऊं.. ऊं.. करे, तोतडायी करे–भाषा में तोतडायी, गले में तोतडायी, हाथ में तोतडायी। तोतडायी अर्थात्.. सब। क्यों जयचन्दभाई! यह तो स्वयं है न, जड़ का, तुम्हारे नहीं। वह स्वयं अभी हो रहा है। उस जड़ को ऐसा है, ऐसा कहते हैं। परन्तु यह मानता है कि मुझे है, परन्तु वह तो जड़ को है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** किसका आँसू आता है? वह किसका आता है? कि इस शरीर में कुछ होने पर मुझे होता है, ऐसी मान्यता का दु:ख होता है उसे। शरीर का बिल्कुल नहीं। भगवान इनकार करते हैं। जड़ के कारण आत्मा को दु:ख तीन काल में, तीन लोक में हो नहीं सकता और पर के कारण सुख... जगत का सुख, हों! जगत का माना हुआ, वह पर के कारण नहीं। तेरी कल्पना में खड़ा किया हुआ राग, उसे सुख-दु:ख की कल्पना से मान रहा है। समझ में आया? अरे! यह तो कोई एल०एल०बी० की बात अर्थात् मोक्ष की बातें होंगी! यह पहले धर्म की शुरुआत की यह बात है। यह तो अभी सम्यग्दर्शन की बात है। पहले चौथा गुणस्थान जिसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, पश्चात् पाँचवाँ आवे और फिर छठा आवे, चौथे के बिना पाँचवाँ-छठा कहाँ से आ गया अध्धर से एकदम? चौथे का ठिकाना नहीं होता; चारित्रवन्त हो गये और व्रतधारी हो गये। धूल भी नहीं व्रतधारी। सुन न!

कहते हैं अरे! जगत के जीव मोहरहित होकर **अपगतमोहं** है न? भगवान चैतन्य तो प्रकाशवन्त है न, प्रभु! यह विकल्प उठता है, वह तो अचेतन अन्धकार है। यह दया, दान का विकल्प उठता है, वह अन्धेरा, अचेतन विकार है। भगवान चैतन्य प्रकाश का नूर है, भाई! तुझे खबर नहीं। आहाहा! उसे **अनुभवन करना चाहिए कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** यह कर्म से बँधा हुआ, स्पर्शवाला, भेदवाला, रागवाला, ये भाव **उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** ऊपर तैरते हैं, ऊपर। **वास्तव में स्थिति को प्राप्त**

**नहीं होते**। इस अन्दर भगवानस्वरूप में है नहीं। ऊपर के ऊपर तैरते हैं। वस्तु चैतन्य गोला, सिद्धभाव, शुद्धभाव का गोला (उससे) ऊपर के ऊपर लटकते है सब। अन्दर में प्रवेश नहीं। (समयसार की) १४वीं गाथा का यह श्लोक है। १४वीं गाथा है न?

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चाहे जैसा आत्मा हो, आत्मा समझ सकता है। नरक के नारकी का आत्मा भी समझ सकता है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आत्मा चाहिए, जड़ हो तो न समझे। वह तो मिट्टी है। श्रेणिक राजा। सुना है या नहीं? भगवान के भक्त, क्षायिक समकिती थे। उन्होंने तीर्थंकरगोत्र बाँधा है। वे अभी पहले नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में हैं।

**मुमुक्षु :** वहाँ क्या करते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वे इस आत्मा के आनन्द का अनुभव करते हैं। हम आत्मा शुद्ध हैं, हम नरक में नहीं, हम राग में नहीं, हम दु:ख में नहीं। वे नरक में ऐसा अनुभव करते हैं। भविष्य में आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होनेवाले हैं। हम अबद्धस्पृष्ट चैतन्यमूर्ति (हैं)। वे सब ऊपर तैरते हैं। जाननेयोग्य हैं, आदरनेयोग्य नहीं।

**ऊपर तैरते होने पर भी...** अर्थात् ऊपर है इसलिए, ऐसा। वास्तव में अन्तर शुद्ध ध्रुवस्वभाव जो शुद्धभाव अथवा सम्यक्स्वभाव जो ऊपर कहा है, उसमें इनका प्रवेश नहीं है। पुण्य-पाप का नहीं, भेदों का उसमें प्रवेश नहीं। कर्म का नहीं, ऐसा वह तत्त्व है। उसे भाई! तुम दृष्टि करो, अनुभव करो। उस अनुभव होने के योग्य ही आत्मा है। समझ में आया? वह यह कर सकने योग्य है। वास्तव में विकार करने के योग्य है ही नहीं। वह तो नया खड़ा किया है। आहाहा! ऐसे को अनुभव करो कि जिससे तुम्हें आनन्द हो और जन्म-मरण से मुक्त हुआ जाये।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन-३८, श्लोक-५६, गाथा-४०, बुधवार, श्रावण शुक्ला ३, दिनांक १३-०८-१९८०**

नियमसार ४०वीं गाथा के बाद कलश है। एक कलश में आयेगा। किसी का लेख है कि यह नहीं पढ़ना, जानने की चीज़ है। यह कलश में आयेगा। देखो! कलश है न?

**( मालिनी )**

**''न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावदयोऽमी**
**स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।**
**अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्**
**जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥''**

यह अबद्धस्पृष्ट की बात चलती थी न? पश्चात् १४वीं गाथा पढ़ना। किसी ने कहा था कि १४, ३८, ७३ पढ़ना। यह १४ का सार आ गया। यह कलश १४वीं का है?

**जगत...** अर्थात् जगत में रहनेवाले जीवों। जगत शब्द है। जगत में रहनेवाले जीवों, ऐसा अर्थ है। संसार में भी ऐसा कहते हैं न कि लोग आये हों तो मालवदेश आया, काठियावाड़ आया। काठियावाड़ आता है? मालवदेश आता है? वहाँ के रहनेवाले आते हैं। इसी प्रकार यहाँ जगत कहने से जगत में रहनेवाले जीवों को सम्बोधित करते हैं। समझ में आया?

**मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान...** आहाहा! समयसार में ऐसा आया है कि जब तक अज्ञानी है, तब तक जैन हो तो भी पुण्य-पाप का कर्ता है, ऐसा मानना। अन्यमती की भाँति नहीं मानना। समयसार में पीछे यह श्लोक है। पुण्य और पाप का भाव, जब तक स्वरूप का भान नहीं, तब तक अज्ञान से अज्ञानी कर्ता होता है। कर्म से विकार होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? पहला श्लोक है कि जब तक अरिहंत को माननेवाले अन्यमती की भाँति मानते हैं कि विकार अपना है ही नहीं और अपने से हुआ ही नहीं, ऐसा न मानो। जब तक अज्ञान है, तब तक राग-द्वेष का कर्ता आत्मा है। पर्याय में अशुद्धता का (कर्ता है)। अज्ञानी, मिथ्यात्व जब तक है.. आहाहा! स्वरूप शुद्ध

चैतन्यघन आनन्द का अनुभव नहीं, तब तक जैन लोग भी अरिहन्त को माननेवाले, राग-द्वेष का कर्ता अशुद्धता की पर्याय मेरी है, मैं कर्ता हूँ, (ऐसा मानो)। सूक्ष्म बात है, भगवान। आहाहा! भेदज्ञान होने के बाद राग-द्वेष का कर्ता मैं नहीं, तो राग-द्वेष का कर्ता कर्म है, ऐसा भी नहीं। राग-द्वेष होता है तो अपनी पर्याय में अपनी कमजोरी से, परन्तु जब स्वरूप का ज्ञान हुआ कि मैं तो ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, तो ऐसी दृष्टि में राग आता है तो राग का जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? यह श्लोक है। भेदज्ञान होने के पहले, अरिहन्त को माननेवाले राग-द्वेष, पुण्य-पाप का कर्ता आत्मा है, ऐसा मानो।

यहाँ तो वास्तविक दृष्टि का विषय जहाँ बताना है। क्रमबद्ध में भी यह बताना है—अकर्ता। वह अकर्ता कब? कि राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन हुआ, तब राग का कर्ता आत्मा नहीं। परन्तु अज्ञान में भी राग का कर्ता आत्मा नहीं और कर्म राग का कर्ता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? घड़ीक में कर्ता, घड़ीक में अकर्ता। भगवान का स्याद्वाद मार्ग है। पर्याय में पुण्य-पाप के मलिनभाव होते हैं तो जब तक भेदज्ञान नहीं.. ऐसा समयसार में श्लोक है, तब तक अरिहन्त को माननेवाले की पर्याय का विकार होता है शुभ, दया, दान, काम, क्रोध—वह पर्याय का अपराध है और मैं ही कर्ता हूँ, ऐसा मानना। समझ में आया? और भेदज्ञान होने के बाद.. यह अभेदज्ञान की बात है। आहाहा!

**जगत को मोहरहित होकर...** ऐसा शब्द पड़ा है न? यह पुण्य-पाप का भाव विकृत भाव है। वह पर्यायबुद्धि में मैं कर्ता था, परन्तु मेरी चीज़ जो है, वह आनन्द का नाथ प्रभु है, उसकी दृष्टि होकर सम्यग्ज्ञान हुआ तो उस राग का मैं कर्ता नहीं, मैं मोहरहित हूँ। आहाहा! समझ में आया? **मोहरहित होकर...** इसका अर्थ कि पहले मोहसहित था। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है, भाई! **मोहरहित होकर...** इसका अर्थ कि पहले मोहसहित था। ऐसा मानता था और ऐसा था। आहाहा! बिल्कुल मुझमें राग नहीं और अज्ञानभाव में राग का कर्ता कर्म है, ऐसा मत मानो। समयसार में ऐसा कलश है। डाह्याभाई! आहाहा! अभी तक यह बात की और अब यह बात! ऐसी बात है, प्रभु! स्वच्छन्द न हो जाए कि हम तो सम्यग्दृष्टि हैं, फिर हमारे चाहे जैसा विकार हो, वह तो हमारा नहीं; हम भोग करते हैं, वह भी हमारा नहीं, ऐसा स्वच्छन्द न हो जाए। आहाहा! जब तक जैन में रहा, जैन के पक्ष में आया, जैन वाड़ा में आया, जैन का सुना, परन्तु जब तक राग से भिन्न अपनी चीज़ जानने में न आवे, तब तक तो जैन और अज्ञानभाव से रागभाव

का कर्ता मैं हूँ, ऐसा मानो, ऐसा आचार्यदेव का हुकम है। आहाहा! डाह्याभाई!

परन्तु जब मोहरहित दृष्टि हुई.. आहाहा! कि विकार का जो दया, दान का विकल्प, उससे भी मेरी चीज़ तो भिन्न है। ऐसी चीज़ वाले को-जगत के प्राणी को सम्बोधन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि **मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान...** ऐसा भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति राग से भिन्न होकर, मोह से रहित होकर... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का मार्ग (ऐसा है)।

कोई ऐसा प्रश्न करे कि भाई! इसमें त्याग का क्या? त्याग तो आता नहीं। ऐसा प्रश्न अजमेर से आया था। प्रभु! पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा का स्वभाव ही त्याग-ग्रहणरहित है। आहाहा! यह सैंतालीस शक्ति में है। प्रभु! पर के त्याग और पर के ग्रहण से तो प्रभु शून्य है। मात्र अज्ञानभाव से मैं राग-द्वेष का कर्ता हूँ, ऐसा ग्रहण किया, वह अज्ञानभाव से है। पर का त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं और मिथ्यात्व का त्याग, वह भी निमित्त से कथन है। अपनी चीज़ जो मोहरहित है... आहाहा! ऐसा अनुभव करो।

जो प्रकाशमान, उस सम्यक्स्वभाव का अनुभव करना चाहिए। आहाहा! उस राग की रुचि छोड़कर, राग की एकताबुद्धि छोड़कर मोहरहित अर्थात् रागरहित मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि करके, हे जगत के प्राणियों! सन्त, दिगम्बर सन्त पुकार करके, करुणा करके जगत को कहते हैं। आहाहा! यह भगवान अन्दर चैतन्य प्रकाशमूर्ति, ऐसा इस सम्यक्स्वभाव का.. सम्यक्स्वभाव, रागादि, पुण्यादि इसका मूल स्वभाव नहीं है, यह तो उपाधि है। जब तक राग का कर्ता होता है, तब तक तो अज्ञानी है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं, कि एक बार प्रभु! तू मोहरहित हो जा। आहाहा! तेरी चीज़ में यह राग और विकल्प है ही नहीं। (गाथा) ४० में यह कहना था। उसका सार यहाँ कलश में कहा। (समयसार की) १४वीं गाथा का आधार दिया कि अनुभव करना चाहिए। क्या?

**जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** आहाहा! क्या कहते हैं? यह १४वीं गाथा का सार है कि कर्म का सम्बन्ध मुझमें है, उससे मैं रहित हूँ। बद्ध से रहित हूँ। आहाहा! और स्पृष्ट अर्थात् विस्रसा पुद्गल जो है, उसके स्पर्श से रहित मैं हूँ। बद्धस्पृष्टरहित। आहाहा! और अनन्य। नरकगति, मनुष्यगति, देवगति आदि मैं नहीं। वे अन्य-अन्य है, मैं अनन्य हूँ। उन चार गति से भिन्न मैं अनन्य हूँ। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियदम्।

पर्याय में अनेक प्रकार की हीनाधिकता की दशा उत्पन्न होती है, वह अनियत है। मैं तो नियत हूँ। आहाहा! मैं तो निश्चयस्वरूप भगवान पूर्णानन्द में कोई घट-बढ़ नहीं होती और पर्याय में आना और जाना, वह मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। है?

जिसमें बद्धस्पृष्ट। बद्धस्पृष्ट तो नहीं, अन्य-अन्य गति, वह भी मैं नहीं और अनियत अर्थात् पर्याय में हीनाधिकता होती है, वह भी मैं नहीं और दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो विशेष दिखता है, वह विशेष भी मैं नहीं। मैं तो सामान्य एकरूप चैतन्य हूँ। आहाहा! ४० गाथा में यह कहना है। उसका सार यह है। आहाहा! समझ में आया? मैं बद्धस्पृष्ट अन्य और अनियत.. आहाहा! यह नहीं, नियत हूँ। निश्चय मेरी वस्तु एकरूप है और अविशेष-मैं अविशेष हूँ। विशेष नहीं। क्या? दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसे भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! मैं तो विशेषरहित सामान्य हूँ। रागरहित तो हूँ परन्तु विशेषरहित मैं हूँ। आहाहा! प्रभु! मार्ग अलग, भाई! इस दुनिया में पैसे में घुस जाता है और मजा मानता है। ...नहीं सूझता। बैंगलोर, दो करोड़ रुपये, धूल-धूल। आहाहा!

**मुमुक्षु :** चार कोने में...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चार कोने में यह कह सके, बाहर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने कहा, वैसा दिगम्बर सन्त आड़तिया होकर जगत को भगवान का माल बताते हैं। पसन्द आये तो लो, न पसन्द आये तो तुम्हारी मर्जी। आहाहा! कहते हैं कि मैं विशेष भी नहीं। राग का सम्बन्ध तो नहीं, कर्म का सम्बन्ध तो नहीं... आहाहा! यह बद्धस्पृष्ट में आता है। यह व्याख्या बद्धस्पृष्ट की है। है?

**बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! ये विशेष भाव और कर्म का सम्बन्ध भाव और असंयुक्त। राग से असंयुक्त - सहित नहीं। राग से संयुक्तपना (नहीं)। यह राग, दया, दान, व्रतादि का विकल्प ऊपर तैरता है। मेरी चीज में उनका प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये पाँच भाव आये। बद्धस्पृष्टरहित, अनन्य अर्थात् गति अन्य-अन्य होती है, उससे रहित और पर्याय में अनेकता-विविधता-हीनाधिकता होती है, वह भी नहीं; और विशेष दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद भी मैं नहीं और असंयुक्त—राग से संयुक्त भी नहीं। आहाहा! ऐसे ये पाँच **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! यह मार्ग।

४०वीं गाथा में यह क्यों डाला ? समझ में आया ? यह ऊपर तैरते हैं, मेरी चीज़ में नहीं।

जैसे पानी है न, पानी ? मण-दो मण पानी, उसमें तेल-तेल डालो तो तेल अन्दर प्रवेश नहीं करता। तेल की चिकनाहट। तेल समझते हो न ? वह चिकनाहट ऊपर रहती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। जल का दल है-पानी का दल है... आहाहा! उसमें तेल की बूँद ऊपर तैरती है, अन्तर में प्रवेश नहीं करती।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि हे जगत के जीवो! प्रभु! तेरा स्वभाव अन्दर ऐसा है। वे बद्धस्पृष्ट रागादि भाव ऊपर तैरते हैं, अन्दर द्रव्य में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कहो, अब ऐसी बात! अभी तो यह शुद्धनय के विषय की बात है। १४वीं गाथा शुद्धनय के विषय की अर्थात् सम्यग्दर्शन की बात है। १५वीं गाथा में सम्यग्ज्ञान की बात है। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात है। तथापि सम्यग्दर्शन में भी शुद्धनय का यह विषय लिया है। नय तो ज्ञान है। वह शुद्धनय जो पवित्र दृष्टि पर्याय, उसका यह विषय है। आहाहा! धीरे-धीरे अब तो पढ़ना पढ़ेगा न इसे ? आहाहा! बापू! कहाँ से आये हैं ? देखो, कहाँ-कहाँ से आये हैं ? अपनी सुविधा छोड़कर। वहाँ के जैसी सुविधा यहाँ नहीं मिलती। परन्तु क्या चीज़ है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक राग-द्वेष, कर्म, पर्याय की अनेकता, गति की अनेकता, भेद का विशेष भाव और रागभाव, ये आत्मद्रव्य के ऊपर तैरते हैं; द्रव्य में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! यह १४वीं गाथा। है नय का अधिकार, परन्तु यह दर्शन का अधिकार है। १५वीं गाथा में ज्ञान का अधिकार है कि बद्धस्पृष्टरहित अपने आत्मा को अनुभव करता है, वह पूरे जैनशासन का अनुभव हुआ। जैनशासन में यह कहना है। '**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' जिसमें भगवान आत्मा में... आहाहा! जिसने विशेष और राग-द्वेष से रहित भिन्न आत्मा देखा और अनुभव हुआ, वह '**अपदेससंतमज्झं**' सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है और अनुभव, वह जैनशासन है। यह देखनेवाले ने पूरा जैनशासन देखा। आहाहा!

इस गाथा के अर्थ में... गाथा है न ? उसका कलश है। उसके अर्थ में और भावार्थ में तो ऐसा लिया है। भाई! यह अबद्धस्पृष्ट ऐसा कहा, परन्तु पर्याय में मलिनता है, पर्याय में राग है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर अबद्धस्पृष्ट की दृष्टि करना। टीका में है। समयसार की १४वीं गाथा में पण्डित जयचन्दजी ने इस टीका का अर्थ लिखा है। आहाहा! पर्याय

में राग-द्वेष है, ऐसा ज्ञान तो लक्ष्य में रखना। बिल्कुल ज्ञान का लक्ष्य छोड़ दे तो एकान्त हो जाएगा। यह ज्ञान के लक्ष्य में रखकर उनसेरहित मैं चैतन्य हूँ, ऐसा दृष्टि का विषय बना ले। तेरे भव का अन्त हो जाएगा। आहाहा! यह नरक और निगोद, भाई! आहाहा!

वादिराज तो कहते हैं, वादिराज का बनाया हुआ एकीभाव स्तोत्र है न? स्तुति। उस स्तुति में कहते हैं कि हे नाथ! मैं विगत काल के दुःख याद करता हूँ तो मुझे आयुध की चोट लगती हो, ऐसा लगता है, मुनि कहते हैं। मेरी पूर्व की नरक और निगोद की पर्याय में दुःख (भोगे), उन दुःखों को मैं याद करता हूँ। मुनिराज कहते हैं। एकीभाव में भगवान की स्तुति करते हैं। हे नाथ! आपने कहा, ऐसा शरण लिया नहीं और हम दुःखी हुए। ऐसे दुःखी कि उस दुःख की स्मृति जहाँ करते हैं, नरक और निगोद के दुःख... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त का दुःख। करोड़ भव में करोड़ जीभों से नहीं कहे जा सकते, प्रभु! ऐसी दुःखदशा है। तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसा कैसे कहा जाये? समझ में आया?

अपने जीवन में पहले बारह महीने में जन्मने के बाद क्या हुआ? माता ने क्या किया, यह खबर है? दस्त करते समय तो माता ने पैर लम्बे करके पैर पर बैठाकर दस्त करायी है। बालक है, उसे अब दस्त कहाँ लाना, तो पैर लम्बे करके दो पैरों के बीच बालक को बैठाते हैं। देखा है या नहीं? आहाहा! यह माँ है। इसके दस्त होने की तैयारी हो गयी। यहाँ बैठा था तो थोड़ा बिगड़ा। अब इसे दस्त कैसे करावे? वहाँ चूल्हे में बैठावे? बाहर बैठावे? कहाँ बैठावे? तो माता पैर लम्बे करके पैर पर बैठाती है। पैर के बीच खाली हो, वहाँ दस्त जाए। आहाहा! पण्डितजी! यह तो सब देखा है न, आहाहा! माता ने ऐसा किया है। प्रभु! तुझे याद नहीं है। याद नहीं, इसलिए नहीं है, ऐसा कैसे कहें? आहा..!

इसी प्रकार अनन्त भव में कितने दुःख भोगे? वे दुःख तुझे याद नहीं, इसलिए दुःख नहीं था - ऐसा कौन कहे? कपूरचन्दजी! आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐवी बातों छे, यह गुजराती भाषा। ऐसी बात है, यह हिन्दी भाषा।

**बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव...** भाव तो कहा। कोई अभाव / शून्य है, ऐसा नहीं। रागादि, विशेषादि बद्धस्पृष्ट आदि भाव तो हैं। आहाहा! परन्तु वे स्पष्टरूप से... आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश की मूर्ति, उसके स्पष्टरूप से अर्थात् प्रत्यक्षरूप से... आहाहा! जहाँ यह ज्ञान और आनन्द का सम्यग्दर्शन में प्रतीति / अनुभव हुआ... आहाहा! वह अनुभव होकर प्रतीति हुई तो उसमें स्पष्टरूप से **ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! अपनी चीज़

में **ऊपर तैरते होने पर भी,...** प्रत्यक्ष आत्मा को तैरते देखा। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! यह तो धर्म कथा है। यह तीन लोक के नाथ की कथा है। यह कोई वार्ता नहीं। बालपने में कथा आती थी न, चिड़िया लायी चावल का दाना, चिड़ा लाया मूँग का दाना और फिर बनायी खिचड़ी। यह बालपने में कथा आती थी। वह खिचड़ी कुम्हार को दी, कुम्हार ने घड़ा दिया, घड़े में खजूर दिया। आहाहा! ऐसी बात नहीं है, प्रभु! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि...** अर्थात् ये पाँच भाव। **स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! ये दया, दान, व्रत के विकल्प भी ऊपर तैरते हैं। आहाहा! बाहर की चीज़ तो अन्तर में है ही नहीं, उसका त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं, परन्तु रागादिभाव ऊपर तैरते हैं। आहाहा! तो द्रव्य पर जहाँ दृष्टि होती है, तो दृष्टि में उनका तो अभाव हो जाता है। आहाहा! दृष्टि में उनका अभाव हो जाता है। पर्याय में भले हों। यह ज्ञान करने में रहे, परन्तु बद्धस्पृष्ट, अन्य-अन्य आदि भाव जो हैं, उनसे रहित जो भगवान को देखा और आत्मा का-चैतन्य का अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया तो स्पष्टरूप से प्रत्यक्ष ज्ञान से आत्मा को देखा और आनन्द का भी प्रत्यक्षरूप से स्वाद आया। आहाहा!

**ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** पर्याय में ऊपर रहने पर भी उन्हें द्रव्य में आधार नहीं मिलता, प्रतिष्ठा नहीं मिलती। आहाहा! धन्नालालजी! क्या कहते हैं? दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसे भेद ऊपर तैरते हैं, उस विशेष को उस द्रव्य में आधार नहीं मिलता। आहाहा! यह ४०वीं गाथा का सार है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** दृष्टान्त तो बराबर बैठ जाता है (समझ में आ जाता है)।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दृष्टान्त, दृष्टान्त के कारण से है या दृष्टान्त, सिद्धान्त के कारण से है? आहाहा! पहले हमारे पटारा थे। पटारा समझते हो? घर में माल रखने का पटारा। पटारा को क्या कहते हैं? बड़ी सन्दूक। पहले सन्दूक रखते थे न, विवाह में भी देते थे। तो सन्दूक के ऊपर गैलरी हो, उसमें थाली होती है। ऊपर अभेरायी भरी होती है, तो बालक को ऊपर बैठावे, नीचे तो आदमी और महिला न चढ़े, इसलिए बालक को ऊपर बैठावे। बालक को ऊपर बैठावे तो बालक को वहाँ देखने के लिये बैठाते हैं या बालक को लम्बे हाथ करके थाली लेने के लिये बैठाते हैं? थाली समझते हो? ऊपर बर्तन रखते हैं न? सन्दूक होती

है, उसके ऊपर बर्तन रखते हैं। हमारे घर में यह सब था, इसलिए हमने देखा है। यहाँ तो दूसरा कहना है कि मेहमान आये हों और पाँच-दस थाली चाहिए हो, घर में दस व्यक्ति हो तो दस थाली नीचे हो। दूसरे दस मेहमान आवें तो दूसरी दस थाली ऊपर से उतारने के लिये बालक को सन्दूक पर चढ़ाते हैं। बालक को कहे, यहाँ चढ़ जा, तो बालक को वहाँ बैठने के लिये कहा है? चढ़कर वह थाली उतार ले। इसी प्रकार दृष्टान्त को दृष्टान्त तक रखना है? दृष्टान्त को सिद्धान्त की ओर ले जाना है। आहाहा! हमने तो पूरा संसार का अनुभव...

नाटक में जाते थे, ये कहा न, तो नाटक में जाते थे तो हम उनका कुछ सुनते नहीं थे। जो तुम्हारे बोलना है, वह पुस्तक लाओ। तुम क्या बोलते हो, यह समझे बिना हम नहीं बैठेंगे। बारह आने की पुस्तक, टिकिट बारह आने की, पुस्तक बारह आने की। हमने तो सब देखा है। घर की दुकान थी तो माल लेने जाते थे। छोटी उम्र की बात है, १८-१९ वर्ष की बात है, ७० वर्ष पहले की बात है। आहाहा! तुम क्या बोलते हो, वह तुम धीरे-धीरे बोलो, हजारों लोग हैं। हमें ख्याल तो आना चाहिए कि क्या बोलते हो? लाओ, पुस्तक लाओ। आहाहा!

नाटक में पहले नारद आता है। नारद आता है। नाटक की पुस्तक में ऐसा लिखा है। 'ब्रह्मा सुत हूँ, ब्रह्मा सूत नारद कहाऊँ, जहाँ जाऊँ वहाँ कलह कराऊँ'। ब्रह्मा सुत में, नारद कहाऊँ, जहाँ क्लेश न हो, वहाँ क्लेश कराऊँ। राम! मोक्ष पधारनेवाले रामचन्द्रजी महापुरुष, उनकी भी उनके पुत्र के साथ लड़ाई हुई। लव और कुश। लव और कुश वहाँ जन्मे नहीं थे। सीताजी को रावण ले गये थे। उनका जन्म दूसरी जगह हुआ था, तो लड़कों को लोगों ने कहा कि ये तुम्हारे पिताजी हैं, परन्तु पहले मुझसे जीतते हैं या नहीं? पिताजी मुझसे जीतते हैं या नहीं? पहले मैं युद्ध करूँगा। यह नारद ने कहा। हमने सब नाटक में देखा है। तब निवृत्ति थी न। आहाहा!

पश्चात् लव-कुश के साथ युद्ध करते.. करते.. करते.. रामचन्द्रजी के साथ इतना युद्ध हुआ कि पहले लव-कुश को खबर नहीं कि यह हमारे पिता हैं। पश्चात् रामचन्द्रजी-लक्ष्मणजी का पराजित होने का समय आया। अरे! यह दूसरा वासुदेव कौन पका? लक्ष्मण कहे, मैं वासुदेव हूँ। रामचन्द्रजी महापुरुष बलदेव हैं। यह कौन पका है कि हमें भी पराजित करता है? पश्चात् नारद बीच में पड़ गये। नारद ने कहा, ये तुम्हारे पुत्र हैं। हें!

तुम इनके पिता हो तो वे लड़के हथियार छोड़कर पिताजी के चरणों में गिर गये। पिताजी! हमें खबर नहीं। तुम मेरे पिताजी हो। हम तो वन में जन्में हैं। हमें खबर नहीं। पिताजी! यह युद्ध नारद ने कराया है और नारद अन्त में युद्ध में पूरा हुआ रामचन्द्रजी हार गये।

रामचन्द्रजी महापुरुष। पुरुषोत्तम पुरुष, अन्तिम शरीर, मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! वासुदेव तो नरक में जानेवाले हैं। लक्ष्मण, उन्हें भी ऐसा हुआ कि कौन है यह? मेरी हार हुई और इसकी जीत! ये वासुदेव है या कौन है यह? नारद बीच में आये और कहा ये तुम्हारे पुत्र हैं। ये सीताजी के पुत्र हैं। तुम्हारे गाँव में आने से पहले ऐसी परीक्षा करके आयेंगे, तो वहाँ ऐसा लिखा था। युद्ध करना, ऐसा करना, वैसा करना।

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! एक बार.. समयसार नाटक है या नहीं? समयसार को नाटक का रूप दिया है। आहाहा! जहाँ अन्तर में आनन्द का वेश लेकर परमात्मा प्रवेश करता है.. आहाहा! मोक्ष भी एक वेश है। मोक्ष उसका कायमी स्वरूप नहीं है, वेश है, पर्याय है न? संवर-निर्जरा भी एक वेश है, स्थायी चीज़ नहीं है। आहाहा! दृष्टि का जो विषय है, उसमें स्पष्टरूप से ऊपर भिन्न तैरते हैं, उस दृष्टि के विषय में तो वे ऊपर तैरते हैं, अन्तर में नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने पर रागादि दिखते हैं परन्तु वे मेरे नहीं। जानने में आते हैं। मेरे ज्ञान का ज्ञेय पररूप से ज्ञेय है। स्व रूप से ज्ञेय तो मैं ज्ञाता हूँ, वह स्व रूप से मेरा ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? वह इस गाथा में कहा है। देखो!

**ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** द्रव्य में प्रवेश नहीं पाते। आहाहा! है? कलश में है या नहीं? सेठ! सेठ को मिला? यह तो कहीं अलग प्रकार की बात है, प्रभु! यह श्लोक, **वास्तव में स्थिति को...** स्थिति अर्थात् प्रतिष्ठा। समझ में आया? '**तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्**' पाठ है। कलश के दूसरे पद का अन्तिम शब्द। प्रतिष्ठा नहीं मिलती। वे **ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** अन्दर में प्रवेश नहीं कर सकते। आहाहा! पर्यायमात्र द्रव्य से ऊपर तैरती है। आहाहा! तो रागादि की बात क्या और पर-स्त्री-कुटुम्ब-परिवार मेरे, यह कहीं रह गये। प्रभु! आहाहा! द्रव्य में पर्याय प्रवेश नहीं करती, पर्याय ऊपर तैरती है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु!

**मुमुक्षु :** भाव गम्भीर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भाव गम्भीर है। आहाहा! यह गाथा (श्लोक)।

## श्लोक-५६

और ( ४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं )—

( अनुष्टुप् )

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम् ।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम् ।।५६।।

( वीरछन्द )

नित्य शुद्ध जो चिदानन्दमय सम्पत्ति की खान महान।
जो अत्यंत अपद विपदा को उसका अनुभव करूँ सुजान॥५६॥

**श्लोकार्थः—जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है ( अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है ) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।।५६॥**

### श्लोक-५६ पर प्रवचन

अब स्वयं टीकाकार दो श्लोक कहते हैं।

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम् ।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम् ।।५६।।

**जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** आहाहा! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव शुद्ध पवित्र ज्ञानानन्द-चिदानन्द ज्ञानरूपी सम्पदा। यह सम्पदा। वह धूल की सम्पदा, वह तो विपदा है। आहाहा! कहो। **चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** खान। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर में नित्य और शुद्ध ऐसे चिदानन्द ज्ञान और आनन्द दो मुख्य लेना है। ज्ञानानन्दरूपी **सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** खान में से जितना निकालो, उतना निकलेगा। वह खाली नहीं होगी। आहाहा!

भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय सम्यक् शुद्धनय का विषय, वही आदरणीय

है। वह आदरणीय चीज़ है कैसी ? वह नित्य रहनेवाली चीज़ है। नित्य तो परमाणु भी रहते हैं। परन्तु शुद्ध है। आहाहा ! भगवान आत्मा नित्य शुद्ध है। पवित्रता का पिण्ड प्रभु अन्दर है। आहाहा ! **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदा...** ज्ञानानन्दरूपी अपनी सम्पदा की **उत्कृष्ट खान है...** आहाहा !

तथा **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** रागादि पर्याय, वह अपद है, वह विपदा है। आहाहा ! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, वे विपदाओं का स्थान **अत्यन्तरूप से अपद है...** आहाहा ! भगवान नित्यानन्द उत्कृष्ट चिदानन्दरूपी गुण की खान है, तो पुण्य और पाप है, वे **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** वह तो विपदारूप से अपद है, अपना पद नहीं। आहाहा ! ऐसी बात ! फिर लोग तो कहे न ? सोनगढ़वाले एकान्त है.. एकान्त है.. अरे भाई ! बापू ! भाई ! तेरी चीज़ की महिमा की खबर नहीं तो तुझे व्यवहार दया, दान की महत्ता आती है। जिसकी महत्ता छोड़नी है, उसकी महत्ता आती है और जिसकी महत्ता करनी है, उसकी महत्ता नहीं आती। आहाहा !

जिनका अन्दर में प्रवेश नहीं है, ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम। उन्हें तो यहाँ **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...**, (ऐसा कहते हैं)। वह तेरा स्थान नहीं, प्रभु ! आहाहा ! तेरा धाम नहीं। वह तेरा धाम नहीं, चैतन्य का वह धाम नहीं। वह राग की आपदाओं का धाम है। आहाहा ! ऐसी बात सुनते हुए लोगों को एकान्त लगता है। प्रभु ! यह सम्यक् एकान्त की बात है। सम्यग्दर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है। जब मैं चिदानन्दरूपी नित्य शुद्ध की खान हूँ। मेरी चीज़ में राग का प्रवेश नहीं। ओहोहो ! राग भी मेरी वस्तु से ऊपर तैरता है। आहाहा ! हैं अवश्य। रागादि हैं अवश्य, परन्तु ऊपर तैरते हैं; अन्दर में प्रवेश नहीं करते। आहाहा ! वह पर्दा होता है न ? पर्दा। (गुजराती में) ओजल कहते हैं न ? रानी। पर्दा हो। पर्दे की ओट में रानी कैसी होंगी, ऐसा लगता है।

एक बार हम वडिया गये थे। जूनागढ़ के पास वडिया गाँव हैं। रामजीभाई थे, आनन्दभाई थे, सब बहुत थे। राजा स्वयं व्याख्यान में आये। दरबार (आये) तो उन्होंने कहा, महाराज ! हमारे घर में रानी को दर्शन करना है। लोगों को ऐसा कि रानी कैसी होगी ? ओहोहो ! पर्दे में रहती है न ? बाहर नहीं रहती। महाराज ! हमारी रसोई ब्राह्मण की रसोई है। निर्दोष आहार (लो)। हमारी रसोई अलग (बनायी) ब्राह्मण की रसोई में पधारो और हमारी रानी को दर्शन दो। तो लोगों को ऐसा कि रानी कैसी होगी ? जहाँ अन्दर गये। ऐसा

मुँह मोटा और खून नहीं.. रानी कैसी होगी मानो ? यह ऐसा नहीं। राग से रहित भगवान पर्दे में विराजता है, वह ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहा ?

वह वडिया है जूनागढ़ के पास। वडिया दरबार है, वहाँ हम गये थे, तो लोग तो सब आवे। दरबार भी व्याख्यान में आते थे। और वे दरबार इतने होशियार थे कि दूसरे दरबार राज्य कैसे चलाना, यह सीखने आते थे। वे दरबार ऐसे थे। नाम भूल गये। (संवत्) १९९५ के वर्ष में। १९९५ में राजकोट में चातुर्मास था न ? १९९६ के वर्ष में। १९९६ के वर्ष में वहाँ गये थे। जूनागढ़ दर्शन करने गये थे, फिर 'वलता', वहाँ उतरे थे तो वह राजा ऐसा था कि उसके पास आजू-बाजू के राजकुमार सीखने आते थे। व्याख्यान में सब आये। वे राजकुमार आये थे, वे सब आये थे। १९९६ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए ? ३९ वर्ष। जहाँ अन्दर गये तो रानी में कुछ ठिकाना नहीं। अर र! दुनिया को ऐसा कि रानी कैसी होगी ?

यहाँ कहते हैं कि राग से रहित, पर्दे से रहित भगवान अन्दर कैसा है ? वह तो अलौकिक बात है। राग का पर्दा तोड़कर अन्दर में जाना। आहाहा! वह बादशाह, चैतन्य बादशाह के तुझे दर्शन होंगे। आहाहा! ऐसी सम्पदा कहीं नहीं है, ऐसी सम्पदा की खान तू है, प्रभु! आहाहा! उसकी महिमा न आवे और बाहर की महिमा आवे! मिथ्यादृष्टि है। इन दया, दान, व्रत और भक्ति के परिणाम की महिमा आती है, वह मिथ्यादृष्टि है। अपनी चीज़ की महिमा की खबर नहीं और उस परचीज़ की महिमा! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** देखो! अत्यन्तरूप से। साधारण नहीं। वह पद ही नहीं। अपना पद ही नहीं, अपना स्वरूप ही नहीं। आहाहा! **(अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! यह आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ राग का पर्दा तोड़कर मैं अन्दर में जाता हूँ तो मुझे मेरा अनुभव होता है। यह चीज़ है, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ? बाकी मान ले कि हम जैन में जन्में, इसलिए सम्यक्त्वी हैं, नवतत्त्व और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, वह कुछ नहीं, भाई! आहाहा!

**इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** कैसा ? आहाहा! कि **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहा! राग को नहीं, राग नहीं। वह तो परपद है। आहाहा! तीसरा श्लोक—५७ है न ?

## श्लोक-५७

( वसंततिलका )

य: सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शय: क: ।।५७।।

( वीरछन्द )

**निज से भिन्न तथा कर्मों के विषवृक्षों के फल को त्याग।**
**सहज चिदातम का भोक्ता जो, क्या संदेह लहे निर्वाण ॥५७॥**

**श्लोकार्थ:—( अशुभ तथा शुभ ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव, इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है, वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है ? ।।५७।।**

### श्लोक-५७ पर प्रवचन

य: सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शय: क: ।।५७।।

आहाहा ! **( अशुभ तथा शुभ ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** वे जो जहर के वृक्ष हैं। आहाहा ! शुभकर्म और अशुभकर्म जड़, वे जहर के वृक्ष हैं। आहाहा ! तीर्थंकर प्रकृति बाँधी हो... समयसार में कहा है, १४८ प्रकृतियाँ जहर का वृक्ष है। अमुक प्रकृति में तीर्थंकर प्रकृति भी आ गयी और आहारक, आंगोपांग... मुनि का आहारकशरीर होता है न ? भगवान को प्रश्न पूछने जाए। वे सब जहर के वृक्ष हैं। प्रकृति जहर के वृक्ष हैं। भगवान

आत्मा अमृत का वृक्ष। अमृत का चिन्तामणि महावृक्ष। आहाहा! रागादि भाव की जो प्रकृति है... आहाहा! **सर्व कर्मरूपी...** ऐसा लिया है न? सर्व कर्म में कोई तीर्थंकर प्रकृति गौण रखी है, ऐसा नहीं है। भले तीर्थंकर प्रकृति पड़ी हो, परन्तु वह तो कर्म जड़ है। १४८ प्रकृति है, वह सब जड़ है। आहाहा!

वे **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** जहर के वृक्षों से। **उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण...** मेरे स्वरूप से विलक्षण अर्थात् विपरीत लक्षणवाले। पुण्य और पाप मेरे स्वरूप से विपरीत लक्षणवाले हैं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन की चीज़! इसे उस सम्यग्दर्शन का अभी भान नहीं और इसे त्याग हो जाए, (ऐसा नहीं होता)। त्याग करो, स्त्री, पुत्र का त्याग किया, यह सब मिथ्यात्व है। पर का त्याग मैंने किया, यह मिथ्यात्वभाव है। पर के ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं, वह तो भिन्न चीज़ है। कभी स्पर्श नहीं किया तो त्याग करने का कहाँ आया? आहाहा! गजब कठिन काम, भाई! दुनिया बाह्य त्याग को देखकर लगे त्यागी है... त्यागी है। धर्म के त्यागी हैं। यह अन्दर आता है। भाई! नियमसार में आता है। नियमसार में आता है, कौने में आता है। स्व-धर्म त्याग, ऐसा मोह। आता है, इस ओर आता है। यह सब कहीं याद रहता है? स्व-धर्म का त्याग, ऐसा मोह। है अवश्य कहीं? २५७? २५७ पृष्ठ न? २१० कलश। देखो! **स्वधर्मत्यागरूप...** है? त्याग किया इसने। क्या त्याग किया? स्वधर्म का त्याग किया। **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप)...** है? बाह्य के त्याग में तो स्वधर्म का त्याग-मोह है। गजब बात है, बापू! स्वधर्म, है? **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है और जो उस अघसेना की ध्वजा को हर लेता है।** आहाहा! मोह की व्याख्या की है कि स्वधर्म के त्यागरूप मोह। आहाहा! मैं पर का त्याग करूँ, पर को छोड़ूँ, यह तो मोहभाव है। अरे! राग का त्याग करना, वह भी नाममात्र आत्मा में है। समयसार की ३४वीं गाथा में आता है। राग का त्याग भी आत्मा में नाममात्र है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में नहीं है। क्योंकि आत्मा रागरूप हुआ ही नहीं। ऐसे स्वभाव की दृष्टि और अनुभव हुआ तो राग का त्याग उसने किया, वह नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! लोग बाहर के त्याग, स्त्री-पुत्र छोड़े, वस्त्र बदल डाले, एक वस्तु ओढ़े-पहने, वहाँ हो गया त्यागी।

यहाँ ऐसा कहते हैं, देखो! यह पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है, हों! मुनिराज का श्लोक है। आहा..! **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत**

**में नित्य जयवन्त है—कि जिसने प्रगट हुए सहज तेज:पुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप ( मोहरूप ) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है...** आहाहा! स्वधर्म का त्याग ऐसा जो मोह, उसे दूर किया है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अनन्त-अनन्त काल का अन्त लाकर भव का अन्त लाने की बात है। भव का अन्त नहीं हो तो नरक और निगोद मिलेगा, बापू! आहाहा! अरबोंपति मरकर पशु में जायेगा। आहाहा! खिसकोली। खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी में जायेगा। ढेढगरोली होता है, उसमें जन्में। आहाहा! बापू! अनन्त बार ऐसे भव किये हैं, भाई! तेरी चीज़ की खबर नहीं और तिर्यंच गति में जाता है। क्यों? गोम्मटसार में लिखा है कि क्यों? (तिर्यंच होता है?) कि इसने स्वरूप से विपरीतता / वक्रता बहुत की है। वक्रता अर्थात् विपरीतता बहुत की है तो विपरीतता के कारण इसका शरीर भी तिर्यंच में आड़ा हो गया। मनुष्य में ऐसे (सीधा शरीर) हुआ तो हाथी, घोड़ा, गिलहरी का आड़ा शरीर है। शरीर आड़ा हो गया। वक्रता बहुत की तो आड़ा शरीर हो गया। आत्मा में तो वक्रता हुई। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कौन सा अधिकार है? समाधि अधिकार। समाधि अधिकार में यह गाथा है।

यहाँ यह कहा **जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं। भगवान शुद्ध चिदानन्दमूर्ति में राग की आपदा बिल्कुल नहीं। उसमें विपदा है ही नहीं। विपदा-राग, वह विपदा है, आकुलता है, दु:ख है। आहाहा! अन्दर आत्मा में वह बिल्कुल नहीं। आहाहा!

**ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** अब, **( अशुभ तथा शुभ ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,...** आहाहा! शुभ और अशुभ जो कर्म है, वे जहर के वृक्ष से उत्पन्न होनेवाले, **निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर...** विषवृक्ष जो जहर पुण्य-पाप के परमाणु पड़े हैं, उनके कारण से यह लक्ष्मी-पैसा, मकान, करोड़ों आदि मिले, वे विषवृक्ष के फल हैं। जहर के फल हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो सन्त ऐसा कहते हैं; लोगों को बैठे न बैठे (जँचे या न जँचे)।

कोई अरबोंपति हो तो कहते हैं कि वह तो विषवृक्ष के जहर का फल है। कहो, पोपटभाई! पोपटभाई के साले थे न! दो अरब चालीस करोड़। गोवा, गुजर गये हैं। पैसा है अभी। दो लड़के हैं। एक लड़के ने ख्रिस्ती से विवाह किया है। पैसा बहुत, दो अरब चालीस करोड़, ढाई अरब और एक वर्ष में बहुत करोड़ की आमदनी। इनके साले हैं। वे

तो गुजर गये। भाई बैठे हैं न ? इनके साले। वे तो गुजर गये। उनके लड़के हैं। ढाई अरब पैसा (रुपये)। दो सौ पचास करोड़। धूल में क्या है ? भाई !

यह कहते हैं, वे कर्मरूपी जहर के फल हैं। वह निजरूप से विलक्षण हैं। अपने आनन्दस्वरूप भगवान से लक्ष्मी आदि स्त्री आदि, अनुकूल, पुत्र अनुकूल, इज्जत अनुकूल, यह जहर का फल है। आहाहा ! इसकी मिठास छूटे... आहाहा ! तब प्रभु की मिठास आवे। बाहर की मिठास अन्दर से छूटे। बिल्कुल जहर का वृक्ष, जहर फल है। अरबों रुपये हों और दस-बारह लड़के हों। एक-एक लड़के की पाँच-पाँच, दस-दस लाख की आमदनी हो, सब जहर के वृक्ष हैं।

**मुमुक्षु :** जहर के वृक्ष.. इत्यादि के लिये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो सबके लिये है। अन्दर है या नहीं ? आहाहा !

**विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव, इसी समय...** इसी समय। **समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,...** राग को नहीं भोगता, पर को नहीं भोगता और स्वयं को भोगता है। **वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है ?** अपने आत्मा का अनुभव करता है, वह अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करे, इसमें संशय क्या है ?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

## गाथा-४१

**णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।**
**ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।**

न क्षायिकभावस्थानानि न क्षयोपशमस्वभावस्थानानि वा।
औदयिकभावस्थानानि नोपशमस्वभावस्थानानि वा।।४१।।

चतुर्णां विभावस्वभावानां स्वरूपकथनद्वारेण पञ्चमभावस्वरूपाख्यानमेतत्। कर्मणां क्षये भव: क्षायिकभाव:। कर्मणां क्षयोपशमे भव: क्षायोपशमिकभाव:। कर्मणामुदये भव: औदयिकभाव:। कर्मणामुपशमे भव: औपशमिकभाव:। सकलकर्मोपाधिविनिर्मुक्त: परिणामे भव: पारिणामिकभाव:।

एषु पञ्चसु तावदौपशमिकभावो द्विविध:, क्षायिकभावश्च नवविध:, क्षायोपशमिकभावोऽष्टादशभेद:, औदयिकभाव एकविन्शतिभेद:, पारिणामिकभावस्त्रिभेद:।

अथौपशमिकभावस्य उपशमसम्यक्त्वं उपशमचारित्रं च।

क्षायिकभावस्य क्षायिकसम्यक्त्वं, यथाख्यातचारित्रं, केवलज्ञानं केवलदर्शनं च, अन्तरायकर्मक्षयसमुपजनितदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि चेति।

क्षायोपशमिकभावस्य मतिश्रुतावधिमन:पर्ययज्ञानानि चत्वारि, कुमतिकुश्रुतविभङ्गभेदादज्ञानानि त्रीणि, चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनभेदाद्दर्शनानि त्रीणि, कालकरणोपदेशोपशमप्रायोग्यताभेदाल्लब्धय: पञ्च, वेदकसम्यक्त्वं, वेदकचारित्रं, संयमासंयमपरिणतिश्चेति।

औदयिकभावस्य नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवभेदाद् गतयश्चतस्र:, क्रोधमानमायालोभभेदात् कषायाश्चत्वार:, स्त्रीपुन्नपुन्सकभेदाल्लिङ्गानि त्रीणि, सामान्यसङ्ग्रहनयापेक्षया मिथ्यादर्शनमेकं, अज्ञानं चैकं, असंयमता चैका, असिद्धत्वं चैकं, शुक्लपद्मपीतकापोतनीलकृष्णभेदाल्लेश्या: षट् च भवन्ति।

पारिणामिकस्य जीवत्वपारिणामिक:, भव्यत्वपारिणामिक:, अभव्यत्वपारिणामिक: इति त्रिभेदा:। अथायं जीवत्वपारिणामिकभावो भव्याभव्यानां

सदृशः, भव्यत्वपारिणा-मिकभावो भव्यानामेव भवति, अभव्यत्वपारिणामिकभावो-ऽभव्यानामेव भवति। इति पञ्चभावप्रपञ्चः।

पञ्चानां भावानां मध्ये क्षायिकभावः कार्यसमयसारस्वरूपः स त्रैलोक्यप्रक्षोभ-हेतुभूततीर्थकरत्वोपार्जितसकलविमलकेवलावबोधसनाथतीर्थनाथस्य भगवतः सिद्धस्य वा भवति। औदयिकौपशमिकक्षायोपशमिकभावाः सन्सारिणामेव भवन्ति, न मुक्तानाम्। पूर्वोक्तभावचतुष्टयमावरणसंयुक्तत्वात् न मुक्तिकारणम्। त्रिकालनिरुपाधिस्वरूपनिरञ्जन-निजपरमपञ्चम-भावभावनया पञ्चमगतिं मुमुक्षवो यान्ति यास्यन्ति गताश्चेति।

---

(हरिगीत)

नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥

अन्वयार्थः—[ न क्षायिकभावस्थानानि ] जीव को क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं, [ न क्षयोपशमस्वभावस्थानानि वा ] क्षयोपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं, [ औदयिकभावस्थानानि ] औदयिकभाव के स्थान नहीं हैं [ वा ] अथवा [ न उपशमस्वभावस्थानानि ] उपशमस्वभाव के स्थान नहीं हैं।

टीकाः—चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।

कर्मों के क्षय से[१] जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है।

इन पाँच भावों में, औपशमिकभाव के दो भेद हैं, क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं।

अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र।

क्षायिकभाव के नौ भेद इस प्रकार हैं—क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र,

१. कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में; कर्मक्षय के सद्भाव में। (व्यवहार से कर्मक्षय की अपेक्षा, जीव के जिस भाव में आये, वह क्षायिकभाव है।)

केवलज्ञान, और केवलदर्शन तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य।

क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान—ऐसे ज्ञान चार; कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान, ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन; काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि, उपशमलब्धि और प्रायोग्यतालब्धि, ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदकसम्यक्त्व; वेदकचारित्र और संयमासंयमपरिणति।

औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं—नारकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति, ऐसे भेदों के कारण गति चार; क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय, ऐसे भेदों के कारण कषाय चार; स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग, ऐसे भेदों के कारण लिंग तीन; सामान्यसंग्रहनय की अपेक्षा से मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक और असंयमता एक, असिद्धत्व एक; शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या, पीतलेश्या, कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या, ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह।

पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं—जीवत्वपारिणामिक, भव्यत्व -पारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक। यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है; भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है; अभव्यत्वपारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है।

इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया।

पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है। वह ( क्षायिकभाव ) त्रिलोक में प्रक्षोभ[१] के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को ( तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को ) अथवा सिद्धभगवान को होता है। औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं; मुक्त जीवों को नहीं।

पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं। त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव ( पारिणामिकभाव की ) भावना से पंचम गति में मुमुक्षु ( वर्तमान काल में ) जाते हैं, ( भविष्य काल में ) जायेंगे और ( भूतकाल में ) जाते थे।

---

१. प्रक्षोभ=खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।

प्रवचन-३९, गाथा-४१, श्लोक ५८-५९, गुरुवार, श्रावण शुक्ला ४, दिनांक १४-०८-१९८०

नियमसार गाथा ४१।

**णो खइयभावठाणा णो खयउवसमसहावठाणा वा।**
**ओदइयभावठाणा णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।**

(हरिगीत)

**नहिं स्थान क्षायिकभाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।**
**नहिं स्थान उपशमभाव के, होते उदय के स्थान नहिं॥४१॥**

गाथा सूक्ष्म हैं। शुद्धभाव का अधिकार है। शुद्धभाव, जो सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाल, उसमें ये चार भाव भी नहीं हैं। आहाहा! वस्तु जो वस्तु है, वह पंचम पारिणामिक ज्ञायकभाव स्वरूप। उसमें उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव का भी अन्तर में अभाव है। आहाहा! यह कहते हैं।

**चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन, वह क्षायिकभाव। उन्हें यहाँ विभाव-स्वभाव (कहा है)। आहाहा! विभाव क्यों? (इसलिए) कि एक समय की पर्याय है, वह विशेष भाव है; इसलिए उसे विभाव कहा है। उससे भी भगवान तो भिन्न है। सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन का विषय पंचम पारिणामिक स्वभावभाव, ऐसी वस्तु में **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** चार विभावस्वभाव। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव तो विभाव हैं, परन्तु यहाँ तो उपशम क्षयोपमशम और क्षायिक को भी विभाव कहा है। वि-भाव अर्थात् विशेष भाव। आहाहा! उस विशेष भाव का भी त्रिकाली जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में इन चार भाव का अभाव है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो वैराग्य की अकेली बातें करे, परन्तु वैराग्य-वैराग्य कब होता है? आहाहा! एक स्वरूप एक समय में शुद्ध घन आनन्दकन्द प्रभु शुद्धभाव में चार भाव का अभाव है, ऐसी दृष्टि हो तब सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन होता है, तब पुण्य-पाप के उदयभाव से विरक्त (होता है)। मुझमें तो नहीं। यह तो पहले आया। परन्तु भाव से भी विरक्त हुआ। वर्तमान दशा नहीं। क्या कहा? उदयभाव जो है... उसमें आयेगा। राग-द्वेष आदि चार गति, वह आत्मा में है नहीं। यह एक बात। परन्तु जो आत्मा में नहीं ऐसी चीज़

की दृष्टि हुई, तब पर्याय में भी पुण्य-पाप के विकल्प से विरक्तपना होता है। आहाहा! इसका नाम वैराग्य कहते हैं। व्याख्या बहुत कठिन, बापू! आहाहा!

ऐसा वैराग्य (करे कि) यह स्त्री, कुटुम्ब ऐसा है और वैसा है-वह तो श्मशान वैराग्य है। आहाहा! श्मशान वैराग्य अर्थात् समझते हो? यह मुर्दा मर जाये तब.. यहाँ तो प्रभु! एक समय में वर्तमान पूर्णानन्द का नाथ ज्ञायकभाव, जिसमें परमपारिणामिकभाव का भेद भी जिसमें नहीं। भव्य और अभव्य पंचम पारिणामिक का भाव है, वह भी जिसमें नहीं। आहाहा! जिसमें भव्य और अभव्य की योग्यता, ऐसा भी अन्तर में नहीं। आहाहा!

**चार विभावस्वभावों...** आहाहा! उनके **स्वरूपकथन द्वारा...** कहना क्या है? हेतु क्या है? उसका तात्पर्य क्या है? कि **पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** आहाहा! जिसमें—भगवान आत्मा में शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार कर्म जड़ आदि पदार्थ को तो त्रिकाल अभाव है, परन्तु यहाँ तो वर्तमान क्षायिक आदि भाव प्रगट हुए हों... आहाहा! उनका भी द्रव्यस्वभाव में अभाव है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय प्रभु आत्मा है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, परन्तु उसका विषय जो पंचम स्वभावभाव ध्रुव है, उसमें तो सम्यग्दर्शन की पर्याय का भी अभाव है। अरे! क्षायिकभाव का भी अभाव है। आहाहा! अरे रे!

इन **चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा...** बहुत सूक्ष्म गाथा है, भाई! **पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है।** अब चार भाव की व्याख्या (करते हैं)। **कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है।** नीचे अर्थ है। **कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में;...** कर्म का क्षय तो कर्म के कारण से होता है। यह तो सबेरे आ गया। पर निरपेक्ष अपनी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! वह कर्म का क्षय हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! मात्र निमित्त का कथन है, झूठे व्यवहारनय का कथन है। कलश-टीका में लिया है। यह कलश-टीका है न? उसमें झूठा व्यवहारनय-ऐसा शब्द लिया है। आहाहा! पूरी बात ही गजब है, बापू!

कहते हैं कि **कर्मों के क्षय से...** सबेरे तो कहा था कि अपनी पर्याय में पर का निमित्त और निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं है। स्वद्रव्य की पर्याय उत्पन्न होती है, वह द्रव्य के अवलम्बन से होती है। उसमें परचीज़ की अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! परन्तु उस पर की अपेक्षा में भी यहाँ क्षायिकभाव की भी उसमें अपेक्षा नहीं और क्षायिकभाव के आश्रय से पंचमभाव की प्राप्ति होती है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अरे रे! यहाँ तो अभी

दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रतिक्रमण, पूजा करोगे तो आगे बढ़ा जायेगा—यह तो बहुत विपरीतदृष्टि है। अरे रे! समझ में आया?

यह उदयभाव है, वह तो विकृत भाव है। उसका तो अपने में अभाव ही है, परन्तु यहाँ तो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो निर्मल परिणाम है, जो मोक्ष का मार्ग है और मोक्ष की पर्याय है। मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, वह उपशम, क्षयोपशम और मोक्ष की पर्याय है, वह क्षायिक। मोक्ष के मार्ग की पर्याय और क्षायिक मोक्ष की पर्याय का आत्मा में अभाव है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** पुद्गल में सद्भाव है? आत्मा में नहीं तो पुद्गल में सद्भाव है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह बात यहाँ नहीं है। पर की अपेक्षा रखे बिना पर्याय है तो स्वयं में, परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं।

**मुमुक्षु :** पर्याय, पर्याय में है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय, पर्याय में है। पर्याय, पर्याय में तो है, परन्तु सम्यग्दर्शन का विषय क्या है, वह बताना है। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है... आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान। उस सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय ध्रुव त्रिकाल पंचम स्वभावभाव जो है, उसमें सम्यग्दर्शन की पर्याय का भी अभाव है और क्षायिकभाव का भी उसमें अभाव है। आहाहा! अन्दर है? लोगों ने सत्य सुना नहीं। यह क्रिया करो, व्रत करो, तप करो, बाह्य त्याग करो... आहाहा! मैं पर का त्याग करता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है क्योंकि पर का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। त्याग-उपादानशून्यत्व शक्ति। भगवान आत्मा में एक गुण ऐसा है कि त्याग-उपादानशून्यत्व (शक्ति है)। पर का ग्रहण और पर के त्यागरहित अपना स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! उसके बदले ऐसी दृष्टि हो गयी कि बाहर का थोड़ा त्याग करे तो धर्म हो। स्त्री छोड़े, परिवार छोड़े, ब्रह्मचर्य पाले। हो गया धर्म। धूल में भी नहीं।

**मुमुक्षु :** प्रतिमा तो लेता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह प्रतिमा आदि विकल्प है, पुण्य-बन्ध है और माने धर्म, वह तो मिथ्यात्व की पुष्टि है।

**मुमुक्षु :** मिथ्यात्व....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यात्व का पाप है। महापाप मिथ्यात्व है। यह प्रतिमा का विकल्प है, वह भी अपने स्वरूप में नहीं है और प्रतिमा का... तो सबेरे आ गया कि राग जो प्रतिमा का विकल्प राग है, इस सम्यग्दर्शन की पर्याय में उसकी अपेक्षा ही नहीं। सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट करने में स्वद्रव्य की अपेक्षा है। उस राग की अपेक्षा नहीं। राग के अभाव की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा जो भाव में से प्रगट हुआ, वह भाव अन्दर शुद्धभाव-शुद्ध ( में से प्रगट हुआ)। उस पर्याय की बात नहीं। यह शुद्धभाव जो ऊपर अधिकार लिया, वह त्रिकाली चैतन्य प्रभु परमपारिणामिक स्वभाव पंचम स्वभावभाव पारिणामिकभाव को यहाँ शुद्धभाव कहने में आया है। ऐसा पंचम स्वभाव ऐसा शुद्धभाव, उसमें इन चार विभावस्वभावों ( का अभाव है)। आहाहा!

राग-द्वेष को विभाव कहे, उपशम को विभाव कहे, क्षयोपशम को विभाव कहे, यहाँ तो क्षायिक को विभाव कहा है। आहाहा! विभाव का अर्थ विशेष अवस्था है। विशेष अवस्था द्रव्य में-सामान्य में नहीं है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन—आत्मा का अनुभव, वह स्वद्रव्य की दृष्टि से और स्वद्रव्य के स्वीकार से होता है। वह कोई वर्तमान राग से या उदय, उपशम से उत्पन्न हो, समकित होता है ( ऐसा नहीं है)। उसके आश्रय से भी शुद्धि की वृद्धि नहीं होती। आहाहा! अरे! क्षायिक समकित हुआ हो तो उसके आश्रय से भी शुद्धि की वृद्धि नहीं होती। आहाहा! शुद्धि की वृद्धि तो त्रिकाली पंचमभाव भगवान पूर्णानन्द प्रभु के अवलम्बन से और उसके आश्रय से शुद्धि की उत्पत्ति और शुद्धि की वृद्धि और शुद्धि की पूर्णता (होती है)। शुद्धि की उत्पत्ति, वह संवर-निर्जरा है। समझ में आया? संवर, वह शुद्धि की उत्पत्ति; निर्जरा, शुद्धि की वृद्धि; मोक्ष, वह शुद्धि की पूर्णता, इन तीनों का द्रव्यस्वभाव में अभाव है। अरर! अब इसमें तो अभी स्त्री मेरी, पैसा मेरा, परिवार मेरा, कहीं धूल रह गयी बाहर। आहाहा! वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** फँस गये, उसका क्या करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** फँस गये, वह तो मान्यता में फँसे हैं। मान्यता में सब फँसे हैं। जो वस्तु इसमें नहीं... यहाँ तो ( कहते हैं) क्षायिकभाव इसमें नहीं। आहाहा! वह ( स्त्री, पुत्र) तो परद्रव्य है। यह तो अपनी जो पर्याय क्षायिक... आहाहा! वह भी अपने स्वभाव

में नहीं है। जहाँ दृष्टि का विषय बनाना है, वहाँ तो क्षायिकभाव भी नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु! कठिन बात है, भाई! आहाहा! बस, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा.. सम्यग्दर्शन सराग है, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। वह भी वीतरागी पर्याय क्षायिकभाव से उत्पन्न हुई, तो भी वह वीतरागी पर्याय, त्रिकाली वीतरागी स्वभाव में नहीं है। आहाहा! कभी सुना नहीं, सेठ! सेठ को प्रेम है। छोड़कर आये हैं। बात बहुत कठिन है, बापू! प्रभु! क्या कहें? आहाहा!

यहाँ तो चार विभावस्वभाव में **कर्मों के क्षय से...** अब यहाँ कहते हैं कि तुम तो सबेरे कहते थे कि अपनी पर्याय में, किसी भी द्रव्य की पर्याय में पर की पर्याय के अभाव की ओर भाव की अपेक्षा नहीं है। यहाँ तो कर्म के क्षय की अपेक्षा है। यह तो बताना है कि अन्दर जो केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह कर्म का क्षय-नाश होकर, उस कर्म का क्षय होकर अकर्म पर्याय होती है। कर्म का क्षय होने पर केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा? केवलज्ञानावरणीय एक जड़ प्रकृति है, उसका नाश... नाश का अर्थ? वह कर्म की पर्याय है, तो कर्म की पर्याय का व्यय होता है और अकर्म की पर्याय उत्पन्न होती है, उसका नाम चार घातिकर्म का नाश कहने में आता है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग।

यहाँ तो अभी दया-व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, प्रतिमा ले लो.. मूल चीज़ का.. आहाहा! ईकाई का ठिकाना नहीं और शून्य। कोरे कागज पर शून्य लाख, करोड़ शून्य चढ़ावे, उनकी संख्या में गिनती नहीं होती। कोरे कागज पर लाख शून्य करे, वह एक कहलायेगा? वे एक के बिना के शून्य हैं। इसी प्रकार अपना शुद्ध चैतन्य प्रभु, जिसमें चार भाव का भी अभाव है, उसका अनुभव होने पर जो सम्यग्दर्शन होता है, उसके बिना सब व्यर्थ है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

समयसार, ७२ गाथा में तो आचार्यों ने भगवान कहकर बुलाया है। प्रभु! तेरी पर्याय में जो शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि पूजा के भाव आते हैं, वे अशुचि हैं, मैल हैं। आहाहा! भगवान अन्दर में अति निर्मलानन्द है। भगवान आत्मा कहकर बुलाया है। आहाहा!

एक बार तो नहीं कहा था? नाटक में भी ऐसा कहा था। (संवत्) १९६४-६५ के वर्ष में। नाटक ऐसा था। अभी तो नाटक में भी बदलाव हो गया। लौकिक नैतिक जीवन (रहा नहीं)। आहाहा! नाटक में ऐसा आया था। पुत्र को (माता) झुला रही थी। बड़ोदरा

में माल लेने गये थे, (वहाँ) रात्रि में नाटक देखने गये थे। बेटा! निर्विकल्पो, यह अपने समयसार में है। समयसार है न? जयसेनाचार्य की टीका। परमात्म प्रकाश में (भी) है.. जयसेनाचार्य की टीका में है कि बन्ध के नाश का उपाय क्या – ऐसा पाठ संस्कृत में है। समझ में आया? समयसार भी नहीं? समयसार भी नहीं। है? कहाँ है? समयसार। मिला? बन्ध अधिकार है न? उसमें आया है। पुस्तक में चिह्न किये हैं। आया देखो!

'**बंधो भणितः स च हेयस्याशेषस्य नरकादिदुःखस्य कारणत्वद्धेयः। तस्य बंधस्य विनाशार्थं**' उस बंध के नाश के लिये। संस्कृत है, विशेष भावना यह। '**सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं**' तीन जगह है। यहाँ बन्ध अधिकार में है, सर्वविशुद्ध अधिकार में अन्त में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में है। सम्यग्दृष्टि की कैसी भावना है? आहाहा! **सहज**–स्वाभाविक त्रिकाल, **शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव**। पर्याय भी नहीं। आहाहा! बारह भावना में भी यह भावना करना। आहाहा! सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव। भेद भी नहीं। आहाहा! जिसमें क्षायिक, उपशम आदि की पर्याय भी नहीं। एक कहा न? एक स्वभाव। '**निर्विकल्पोऽहं**' यह तो नाटक में भी कहा था। चार बोल याद रहे। पुस्तक भी ली थी, परन्तु बहुत वर्ष हो गये (संवत्) १९६४-६५। ७० वर्ष पहले की बात है। तुम्हारे यहाँ क्या कहते हैं? ७०। दुकान का माल लेने बड़ोदरा गये थे, तो रात्रि को नाटक देखने गये थे। वहाँ एक स्त्री यह बोलती थी। निर्विकल्पो बेटा! आहाहा! यहाँ यह शब्द पड़ा है। तब तो यह कहाँ देखा था? यह (समयसार) तो (संवत्) १९७८ में..

'**निर्विकल्पोऽहं**' सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को '**निर्विकल्पोऽहं**' (ऐसा भाता है)। मैं तो अभेद हूँ। विकल्प भी नहीं, भेद नहीं। आहाहा! '**उदासीनोऽहं**' '**उदासीनोऽहं**' मेरा आसन तो पर्याय और राग से भिन्न द्रव्य में है। पर से उदासीन हूँ, पर्याय से उदासीन हूँ। आहाहा! समझ में आया? मेरा जो द्रव्यस्वभाव है, वह उदासीन–उदास आसन। पर्याय में उससे उदासीन होकर द्रव्य में आसन, वह मेरा आसन है। सूक्ष्म बात है, भगवान! है?

'**निरंजननिजशुद्धात्म**' निरंजन–मुझमें अंजन नहीं। '**निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धान-ज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक**' निश्चयरत्नत्रयस्वरूप। '**निर्विकल्पसमाधिसंजात**' ऐसी निर्विकल्प समाधि से भगवान आत्मा के दर्शन होते हैं। सम्यग्दर्शन उससे होता है। आहाहा! '**वीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन**' आहाहा! ये दया, दान, व्रत, भक्ति से आत्मा का पता नहीं लगता। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं '**वीतरागसहजानंदरूपसुखानुभूति**' -सुख का आनन्द का अनुभव। वह '**मात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन संवेद्यो गम्यः**' में तो स्वसंवेदन ज्ञान से स्वसंवेद्य हूँ। उसके स्व-अपना अपने से अनुभव हो, उस स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से मैं अनुभवगम्य हूँ। उसमें मैं गम्य हूँ; दूसरे प्रकार से गम्य नहीं होता। आहाहा! संस्कृत है। यहाँ तो हजारों श्लोक-करोड़ों श्लोक पहले देखे हैं। दुकान में भी सैकड़ों देखे थे। सुनने से जो ज्ञान होता है, उससे भी मैं गम्य नहीं होता। आहाहा! प्रभु! तेरी महिमा तो देख, तेरी महिमा तो देख। आहाहा! वह राग से गम्य नहीं, पर्याय से गम्य नहीं। पर्याय के लक्ष्य से और आश्रय से गम्य नहीं। आहाहा! दो जगह है। जयसेनाचार्य की टीका - संस्कृत टीका है।

'**संवेद्यो गम्यः प्राप्यः**' उस स्वसंवेदन से मैं प्राप्य हूँ। तीन काल, तीन लोक में दूसरे किसी उपाय से मैं प्राप्य नहीं हूँ। आहाहा! '**भरितावस्थोऽहं**' क्या कहते हैं ? भरित अवस्था शब्द पड़ा है। वहाँ अवस्था पर्याय नहीं लेना। भरित अवस्थ-निश्चय से भरा हुआ—पूर्ण अवस्था से भरा हुआ मैं हूँ। द्रव्यस्वभाव। शब्द ऐसा है। '**भरितावस्थोऽहं**' भरित अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं लेना। अवस्थ - निश्चय भरित पूर्ण भरा हुआ, वह मैं हूँ। आहाहा! तीन जगह यह टीका आती है। हमने तो बहुत बार देखा है न! (संवत्) १९७८ के वर्ष में समयसार मिला। १९८२ में तो मोक्षमार्गप्रकाशक (मिला) सम्प्रदाय में व्याख्यान पढ़ते थे। लोग सुनते थे। हमारी प्रसिद्धि बहुत थी न! सब सुनते थे। कोई ऐसा नहीं कह सकता कि श्वेताम्बर में.. सत्य है, उसकी बात रखें। हजारों लोग (आते थे)। आहाहा!

राजकोट में तीन-तीन हजार लोग। (संवत्) १९८९ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? ११ और ३५ = ४६ वर्ष पहले व्याख्यान पढ़ते थे। राजकोट में दो-ढाई हजार स्थानकवासी के घर की बस्ती है। उसमें हम व्याख्यान पढ़ते थे, तब तीन-तीन हजार लोग आते थे। १९८९ के वर्ष। एक घण्टे, डेढ़ घण्टे तो मोटर और गाड़ी के ठाठ जम जाये। राय.. पढ़ते थे। परदेसी राजा का.. अज्ञानी। फिर आत्मज्ञान हुआ उसकी बात बहुत लम्बी है। तीन हजार लोग, दो हजार घर। बहुत लोग। हम तो वहाँ भी यह कहते थे। परन्तु थोड़ा.. श्वेताम्बर के शास्त्र कल्पित हैं ऐसा।

यहाँ (कहते हैं) '**भरितावस्थोऽहं**' राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पंचेन्द्रिय विषय के व्यापार से मैं रहित हूँ। '**मनोवचनकायव्यापार.... भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म-ख्याति-पूजा-लाभ**' इनसे मैं रहित हूँ। '**दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूप**' देखे हुए,

सुने हुए, अनुभव किये हुए भोगों की आकांक्षारूप। '**निदानमायामिथ्याशल्यत्रयादि-सर्वविभावपरिणामरहितः शून्योऽहं**' आहाहा! '**जगत्रये**' तीन लोक में मैं ऐसा हूँ। आहाहा! जहाँ-जहाँ मैं हूँ '**जगत्रये**' शब्द पड़ा है। तीन लोक में और '**कालत्रये**' तीन काल में। तीन लोक में और तीन काल में। '**मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयेन**' मैं ऐसा हूँ। '**तथा सर्वे जीवाः इति**' सर्व जीव ऐसे हैं। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि अपनी ऐसी भावना करता है, इस समय भी सर्व जीव ऐसे हैं, ऐसा जानता है। भगवान सब आत्मा (ऐसे हैं) पाठ है, देखो! '**सर्वे जीवाः इति निरंतर भावना कर्तव्या**।' तो फिर खाना, पीना कब? आहाहा! निरन्तर भावना (भाना)। समयसार की जयसेनाचार्य की टीका है। लाल कवरवाला। जयसेनाचार्य की टीकावाला। जयसेनाचार्य की टीका में है। दो जगह है। तीन काल, तीन लोक में मन-वचन-काया, कृत-कारित-अनुमोदन से रहित मैं तो त्रिकाल शुद्ध चिदानन्द आत्मा हूँ। आहाहा!

यह यहाँ कहा। **कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह...** भाव है तो सही। केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि क्षय से होते अवश्य हैं, परन्तु क्षय की अपेक्षा का निमित्त से कथन है। बाकी उत्पन्न होने में किसी पर की अपेक्षा नहीं है परन्तु लोगों को संक्षिप्त में समझाने के लिये कहते हैं कि कर्म के क्षय से केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

**कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है। सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो वह...** आहाहा! सकल परिणाम से रहित हो, वह पारिणामिकभाव मैं हूँ। आहाहा! अभी पारिणामिकभाव सुना न हो। यहाँ पारिणामिकभाव लेना है। बाकी तो पारिणामिकभाव पाँचों द्रव्य में है। पारिणामिकभाव आत्मा के अतिरिक्त पाँचों द्रव्य में (भी) है, परन्तु यहाँ पारिणामिकभाव का अर्थ करके ज्ञायकभाव जो छठी गाथा में लिया। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से चौदहवें गुणस्थान तक अप्रमत्त, ये दोनों मैं नहीं। आहाहा! प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्था मुझमें नहीं। इन प्रमत्त-अप्रमत्त अवस्थाओं से भिन्न मेरी चीज़ ज्ञायकभाव है। जो यहाँ पारिणामिक कहा वह (है)। आहाहा! ऐसी बात! लोगों को मूल चीज़ के ऊपर लक्ष्य ही नहीं गया। ऊपर-ऊपर से सब (किया)। आहाहा!

**( सकल कर्मोपाधि से विमुक्त ), ऐसा परिणाम से जो भाव हो...** चार भाव से रहित **जो भाव हो, वह पारिणामिकभाव है**। पारिणामिक ऐसा शब्द लिया है। संस्कृत में जयसेनाचार्य ने परिणाम लिखा है। परिणाम। पंचास्तिकाय की ५६ गाथा में चार भाव का अर्थ करते हुए, पारिणामिक का परिणाम इतना शब्द लिया है। परिणाम इतना लिया है। उस परिणाम का अर्थ यह - पारिणामिकभाव। सहजस्वभाव। आहाहा! जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त नहीं, जिसमें आदि-अन्तवाली पर्याय का अभाव है। केवलज्ञान भी सादि-अनन्त है। आहाहा! क्षायिक समकित भी सादि-अनन्त है। उस पर्याय का भी त्रिकाल में अभाव है। आहाहा! गजब की बात है। अरे! दुनिया कहाँ पड़ी है और प्रभु का मार्ग कहाँ है। आहाहा! और जिसमें भव का अन्त न आवे, प्रभु! उसमें भव मिले, वह कहाँ मिलेगा? कहाँ जायेगा? चौरासी लाख योनि पड़ी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि प्रभु! तेरा स्वभाव ऐसा है कि जिसमें इन चार भावों का भी अभाव है। है? **इन पाँच भावों में,...** अब स्पष्टीकरण करते हैं। **औपशमिकभाव के दो भेद हैं, क्षायिकभाव के नौ भेद हैं, क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद हैं, औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं, पारिणामिकभाव के तीन भेद हैं। अब, औपशमिकभाव के दो भेद इस प्रकार हैं—उपशमसम्यक्त्व, और उपशमचारित्र**। आहाहा! प्रथम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है, वह उपशम। प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, वह उपशम। पश्चात् क्षयोपशम होकर क्षायिक हो जाता है। समझ में आया? परन्तु कहते हैं कि उपशम समकित जो है, वह उपशमभाव है; वह मेरे त्रिकाल में नहीं है। जिस उपशमभाव से पता लगा.. उपशमभाव से, भगवान आत्मा अन्दर कैसा है, उसका पता लगा, उस उपशमभाव से पता लगा, वह इसकी चीज़ में नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा!

(समयसार) ७२ गाथा में भगवानरूप से बुलाया है न? तीन बार भगवान कहा है। प्रभु! भगवन्त! पुण्य-पाप मलिन भाव हैं, उनसे तू भिन्न निर्मलानन्द भगवान है न? प्रभु तेरी दृष्टि कहाँ है? आहाहा! शुभ-अशुभभाव, प्रभु! जड़ है न? ऐसा ७२ गाथा में कहा है। जड़ है न? तू तो चैतन्य है न, नाथ! उनसे भिन्न तेरी चीज़ अन्दर है। भगवान! ऐसा कहा है। तीन बार भगवान कहा है। अशुचि से भिन्न भगवान; जड़ से भिन्न भगवान और पुण्य-पाप के भाव दु:खरूप हैं, उनसे रहित भगवान आत्मा है, ऐसा लिया है। समझ में आया?

समयसार के व्याख्यान की शुरुआत सम्प्रदाय में की थी। (संवत्) १९९० का

चातुर्मास राजकोट में था न ? पहले १९८९ के वर्ष। तीन-तीन हजार। क्या कहलाता है वह ? सदर। सदर में चातुर्मास था। १९९० के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? १० और ३५ = ४५। वहाँ यह समयसार दोपहर को व्याख्यान में पढ़ा था। हमारे प्रति लोगों को प्रेम बहुत था न ! छोटी उम्र, दीक्षा ली, शरीर में भी सुन्दरता दिखाई दे। यह तो ९० वर्ष हुए। आहाहा ! दीक्षा ली, तब साढ़े तेईस वर्ष की उम्र थी। हमें देखकर कहे, यह दीक्षा लेते हैं, अर र ! परीषह कैसे सहन करेंगे ? राजकुमार जैसा शरीर। एकान्त में कहते थे। हमारे तो भाई दीक्षा लेना है। वहाँ समयसार सम्प्रदाय में ही पढ़ा था। (संवत्) १९९० का वर्ष था। रामजीभाई थे। फिर जामनगर में पढ़ा था। यह सत्य बात। ९९ गाथा तक पहले सम्प्रदाय में पढ़ा, स्थानकवासी सम्प्रदाय के उपाश्रय में। और फिर १०० गाथा से जामनगर में पढ़ा।

जामनगर में एक छह लाख का सोलेरियम है। उसके डॉक्टर थे, वे सुनने आते थे। प्राणभाई ! मासिक ढाई हजार का वेतन था। उस समय, हों ! मासिक ढाई हजार का वेतन। सुनने आते थे। (एक दिन कहा) महाराज ! यहाँ पधारना न, सोलेरियम है, छह लाख रुपये की एक मशीन। वह पूरी मशीन को चलावे। उसके लड़के को फोड़ा हुआ न ? घूमड़ा कहलाता है न ? क्या कहे ? फोड़े पर सूर्य की किरणें डाले तो जिस ओर किरण झुके उस ओर पूरी मशीन घुमावे। छह लाख की मशीन। उस समय के छह लाख। आहाहा ! (संवत्) १९९० का वर्ष। अभी तो मशीन की कीमत भी बढ़ गयी। (वह कहे) तुम्हारे न्याय के लिये काम आयेगी। सूर्य की किरणें लगाते थे तो उसका फोड़ा... घूमड़े को क्या कहा ? फोड़ा। फोड़ा मिट जाता था। बालक पर सूर्य किरण सीधे डालते थे। यहाँ कहते हैं कि सीधे किरण तेरे क्षायिकभाव आदि स्वभाव की पर्याय, वह किरण छोड़ दे उसमें। आहाहा ! वहाँ सब देखा था। डॉक्टर बताने आया था। डॉक्टर स्थानकवासी था। हमारे प्रति तो सबको प्रेम था न। आहाहा !

कहते हैं कि उपशमभावरूपी जो सम्यग्दर्शन की किरण प्रगट हुई, वह उपशमभाव अपने द्रव्य में नहीं है। आहाहा ! ऐसा है, प्रभु ! और उपशमचारित्र। ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशमचारित्र होता है। कषाय का उदय बिल्कुल नहीं रहे। ग्यारहवें गुणस्थान में उपशमचारित्र होता है। पूर्ण चारित्र की शान्ति। वह उपशमचारित्र भी त्रिकाल द्रव्य में नहीं है। आहाहा ! शान्तिभाई ! यह तुम्हारे सब जवाहरात में और हीरा में कहाँ है ? कोई अभी आया था कि हम शान्तिभाई के यहाँ काम करते हैं। कौन था ? कोई काम करता था न ? अपना व्यक्ति। तुम्हारा लड़का, नहीं ? आया था न ? परमात्मप्रकाश, वह कहता था कि मैं शान्तिभाई के

यहाँ काम करता हूँ। परमात्मप्रकाश पहले आया था। उसने कहा कि अभी मैं शान्तिभाई के यहाँ काम करता हूँ। शान्तिभाई बड़े गृहस्थ हैं। २५-३० लोग तो हीरा घिसने आते हैं। एक-एक व्यक्ति को पाँच सौ-पाँच सौ तो मिलते होंगे या अधिक मिलते होंगे, अपने को कुछ खबर नहीं। हम दुकान में थोड़ी देर गये, तब सब आये थे। २०-२५ लोग। एक-एक को महीने के पाँच सौ, ऐसे पच्चीस लोग थे। वह सब धूल है। उस पुद्गल का तो प्रभु! तुझमें अभाव है। अरे! पुद्गल का तो अभाव है, परन्तु यहाँ तो उपशमभाव का भी तुझमें अभाव है। आहाहा! तुझे किसे मानना है? नाथ! प्रभु! तू कौन है? आहाहा!

कहते हैं कि उपशमभाव भी उसमें नहीं। फिर क्षायिकभाव के दो भेद। क्षायिक समकित। है? क्षायिक समकित जो तीर्थंकरगोत्र बँधता है। श्रेणिक राजा। श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती थे। उनके लड़के ने भले जेल में डाला था और जेल में डालने के बाद जेल तोड़ने आया। उसकी माँ के पास गया और मैंने ऐसा किया। अर..र! तूने क्या किया? बेटा! तेरा जन्म हुआ, तब मैंने तो फेंक दिया था। मेरे स्वप्न में आया कि यह लड़का श्रेणिक राजा का कलेजा खाता है; इसलिए तू जन्मा तब उकरड़ा... उकरड़ा को क्या कहते हैं? कूड़ा। वहाँ डाल दिया था। वहाँ कूकड़ा... कूकड़ा कहते हैं न? मुर्गा-मुर्गा। तो मुर्गे को, राजकुमार जन्म का पहला दिन, रानी ने डाल दिया। वह मुर्गा चोंच मारे और पीप निकले और चिल्लाहट मचाकर रोवे। अभी एक दिन का बालक था। श्रेणिक राजा.. चेलना के पास.. अरे! क्या हुआ? बालक को फेंक दिया। अरे..! क्यों? स्वप्न में ऐसा आया था कि तुम्हारा कलेजा खाता है। अर र र! ऐसा नहीं करना चाहिए। कहाँ डाला है? श्रेणिक वहाँ गये। आहाहा! उसे पीड़ा होती थी न? दो दिन का बालक था। अरे! तेरे पिताजी ने तो ऐसा किया। तूने यह क्या किया? आहाहा! यह बना है या नहीं? वहाँ गये। कुणिक वहाँ (जेल) में गया। हथियार लेकर तोड़ने गया परन्तु उसने (श्रेणिक राजा ने) ऐसा देखा और ख्याल आया कि यह मारने आया है। वह ज्ञान की भूल कोई अज्ञान नहीं है। समझ में आया? अन्दर में भेदज्ञान है, उसमें ख्याल आया कि यह मारने आया। मारने नहीं आया था... ख्याल में ऐसा आया तो वह ख्याल अज्ञान नहीं है। वह ज्ञान की— क्षयोपशम की भूल है, वह तो होती है। तथापि क्षायिक समकित में जरा भी अन्तर नहीं। आहाहा! जो क्षायिक मिला है, वह केवलज्ञान लेकर सिद्ध में भी वही क्षायिक समकित रहेगा। आहाहा! अभी नरक में है। आगामी चौबीसी में पहला तीर्थंकर होगा। आगामी चौबीसी में। पश्चात् मोक्ष हो जायेगा। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर माता के गर्भ

में आयेगा। फिर जन्म होगा, फिर दीक्षा लेंगे और तीर्थंकर होंगे। आहाहा! उनकी ऐसी भूल हुई। वह मारने आता है। मुझे जेल में डाला है। जेल में डाल दिया है तो मुझे मारने आता है। हीरा चूस लिया। अंगुली में बड़ा हीरा पहना हुआ था, बड़ा राजा था न? देह छूट गयी। हीरा चूस लिया, आपघात हुआ तो भी क्षायिक समकित में दोष नहीं। सेठ!

**मुमुक्षु :** .........

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इसके लिये तो कहा जाता है। आहाहा! क्षायिक समकित का दोष नहीं, यह चारित्र का दोष है। दूसरे गुण का दोष दूसरे गुण को नुकसान करे, ऐसा नहीं होता। आहाहा! वह चारित्रदोष है। क्षायिक समकित को बिल्कुल दोष है नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वह क्षायिक समकित भी आत्मा में नहीं। है? क्षायिकभाव के दो भेद—एक क्षायिक समकित... वह आत्मा में नहीं, द्रव्य में नहीं। जहाँ दृष्टि लगाना है... आहाहा! और जिसकी दृष्टि से सम्यग्दर्शन होता है, उस चीज़ में तो क्षायिक समकित भी नहीं है अरे प्रभु! आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर चैतन्य हीरा। जैसे हीरा में बहुत पासा होते हैं, वैसे अनन्त गुण के पासा अन्दर भरे हैं। पूर्णानन्द प्रभु!

क्षायिक समकित है, क्षायिक का एक भेद, वह भी उसमें नहीं – वस्तु / द्रव्य में पर्याय नहीं। आहाहा! ऊपर तैरती है, सबेरे आया था। पर्याय, द्रव्य में ऊपर तैरती है। चाहे तो क्षायिकभाव हो तो भी वह पर्याय, द्रव्य के ऊपर तैरती है। आहाहा! द्रव्य में प्रवेश नहीं करती, प्रभु! तू इतना बड़ा है, तेरी इतनी महिमा है कि क्षायिक पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय भी तेरे अन्दर प्रवेश नहीं करती, ऊपर-ऊपर तैरती है। अरे! ऐसा परमात्मा का सत्! त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने ऐसा दिव्यध्वनि द्वारा सभा में सुनाया है, वह ये कुन्दकुन्दाचार्य लेकर आये हैं। इस पुस्तक (नियमसार ग्रन्थ) के लिये तो ऐसा कहा कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। अन्तिम गाथा है। अन्तिम गाथा है न? १८७।

'**णियभावणाणिमित्तं**' अन्तिम १८७ गाथा। पृष्ठ ३७१। है? '**णियभावणाणिमित्तं**'.. गाथा। '**णियभावणाणिमित्तं**' मेरी भावना के कारण। लोग समझे या न समझे, इस कारण नहीं। आहाहा! '**णियभावणाणिमित्तं**' आहाहा! '**मए कदं**' यह समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ में भी मैंने यह किया, ऐसा शब्द कहीं नहीं होगा। '**वोच्छामि**' कहता हूँ परन्तु मेरे लिये किया है, ऐसा कहीं नहीं है। यह तो मेरे लिये बनाया है। आहाहा! छठे-सातवें गुणस्थान में भावलिंगी सन्त! एकाधभव करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष में

जानेवाले हैं। अभी वैमानिक में स्वर्ग में गये हैं। वहाँ निकलकर मनुष्य होकर केवलज्ञान पाकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे कहते हैं कि यह नियमसार मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। आहाहा! उस भावना में ऐसा कहते हैं। है न? '**णियभावणाणिमित्तं मए कदं**' मैंने किया। '**णियमसारणामसुदं णच्चा जिणोवदेसं**' जिन-का उपदेश बराबर समझकर मैंने यह कहा है परन्तु जिन के उपदेश को बराबर समझकर। है? '**णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पूर्वापर दोष से रहित है। पहले कुछ कहा और फिर कुछ कहे, ऐसा विरोध यहाँ नहीं है। आहाहा!

**क्षायिकसम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र,...** आहाहा! ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में यथाख्यात। यथाख्यात का अर्थ? यथा / प्रसिद्ध। जैसे स्वरूप की रमणता, जैसी चारित्र की शक्ति है, वैसी पर्याय में यथाख्यात – जैसा चारित्र, स्वभाव में है, वैसा पर्याय में प्रगट हो गया। आहाहा! यथाख्यात्। जैसा है, वैसी प्रसिद्धी पर्याय में चारित्र-अन्तर की अकषायभाव की रमणता पूरी हो गयी। यथाख्यातचारित्र, वह भी आत्मा में / द्रव्य में नहीं है। आहाहा! अरे रे! अभी तो यहाँ यह शरीर मेरा नहीं, यह कहने में पसीना उतरे। आहाहा! दया, दान का राग मेरा नहीं। अरे रे! वह किसका है? जड़ का है? प्रभु! सुन तो सही! वह तो विकार है। विकार की तो गन्ध भी अन्दर में नहीं है। परन्तु निर्विकारी पर्याय क्षायिकचारित्र और क्षायिकसम्यक्त्व की भी अन्दर गन्ध नहीं है। आहाहा! वह तो पंचमभाव आनन्द का नाथ प्रभु, अनन्त गुण का संग्रहालय। बड़ा गोदाम होता है न? गोदाम। हमने तो सब देखा है न।

माल लेने मुम्बई जाते थे, तो एक गोदाम देखा था, जिसमें केसर के डिब्बे, हजारों डिब्बे थे। बड़ा व्यापार था। (संवत्) १९६५-६६ में माल लेने जाते थे। केसर के डिब्बे। उस समय तो एक रुपया भार था। अभी महंगा हो गया है, ऐसा कहते हैं। हमारे व्यापार था, तब केसर के डिब्बे लाते थे। डिब्बे लेने गये थे। बहुत बड़ा गोदाम। केसर के डिब्बे भरे थे। इसी प्रकार यह भगवान... आहाहा! पूर्ण गुण का बड़ा गोदाम है। पूर्ण गुण का गोदाम है। आहाहा! तीन बोल, बहुत बार कहते हैं न? अनन्त गुण का गोदाम है। अनन्त शक्ति का संग्रहालय है। अनन्त शक्ति का संग्रह का आलय-स्थान है और अनन्त स्वभाव का सागर है। तुम्हारा सागर है। आहाहा!

ऐसे भगवान में यथाख्यातचारित्र का अभाव है। अरे! केवलज्ञान का अभाव है। है? क्षायिकभाव का केवलज्ञान। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द सहजात्मस्वरूप। सहजस्वरूप पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. प्रभु में केवलज्ञान की पर्याय का भी अभाव है। क्योंकि वह पर्याय है, वह

द्रव्य के ऊपर तैरती है। केवलज्ञान का भी द्रव्य में प्रवेश नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी पुण्य के परिणाम दया, दान से धर्म होता है, व्यवहार करते-करते धर्म होता है, (ऐसा मानते हैं)। अरे! प्रभु! आत्मा को बहुत कलंक लगा देता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञान क्षायिकभाव और केवलदर्शन क्षायिकभाव **तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित...** निमित्त से कथन है। **दान,...** अपने पूर्ण स्वरूप का दान अपने को दिया। **लाभ,...** पूर्ण स्वरूप का लाभ हुआ। पूर्ण स्वरूप का भोग हुआ। पूर्ण स्वरूप का बारम्बार भोगना और पूर्ण वीर्य। क्षायिकभाव, वह दान; क्षायिकभाव, वह लाभ; क्षायिकभाव, वह भोग; क्षायिकभाव, वह उपभोग; और क्षायिकभाव, वह वीर्य। आहाहा! अनन्त चतुष्टय जो भगवान को प्रगट होता है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य—इस पर्याय का भी त्रिकाली द्रव्य में अभाव है। यह तो लोगों को सुनने को भी नहीं मिलता। आहाहा! दुनिया के भाग्य हैं कि ऐसी चीज़ रह गयी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान समवसरण में विराजते हैं, उनकी यह वाणी है। कुन्दकुन्दाचार्य तो आड़तिया होकर दुनिया को प्रसिद्ध करते हैं कि प्रभु ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा!

तेरी प्रभुता की महिमा में नाथ! केवलज्ञान का भी अभाव है, ऐसी तेरी महिमा है। तेरी महिमा का पार नहीं, प्रभु! आहाहा! तू कहाँ फँस जाता है ? आहाहा! थोड़ी लक्ष्मी मिले, इज्जत मिले, विषयभोग में अनुकूलता मिले, उसमें फँस जाता है, प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। जिसमें केवलज्ञान, केवलदर्शन भी नहीं और ये चार **दान, लाभ,...** भी नहीं। अपने स्वरूप का पूर्ण दान अन्दर आ गया। पूर्ण स्वरूप का सम्प्रदान दान, पर्याय में पूर्ण स्वरूप का दान, अपना दान। पर के दान-फान की बात नहीं है। वह दान और पूर्ण स्वरूप का पर्याय में लाभ हुआ-क्षायिक लाभ। पूर्ण स्वरूप का **भोग,...** बारम्बार भोगना। एक बार भोगने को भोग और बारम्बार भोगना, वह उपभोग, वह क्षायिकभाव प्रगट हुआ। और **वीर्य,...** पुरुषार्थ क्षायिकभाव प्रगट हुआ। वह क्षायिकभाव प्रगट हुआ परन्तु वह क्षायिकभाव आत्मा / द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसी दृष्टि कराने को, सहजात्मस्वरूप प्रभु की दृष्टि कराने को, सम्यग्दर्शन कराने को यह बात की है और उस सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है। यह अपवास करे, लाख-करोड़ करे और अरबों के दान करे और लाखों मन्दिर बनावे, उसमें संसार का अन्त नहीं आता। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन-४०, गाथा-४१, शुक्रवार, श्रावण शुक्ला ५, दिनांक १५-०८-१९८०**

नियमसार, ४१ गाथा। बहुत सूक्ष्म बात है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि मेरी भावना के लिये मैंने तो बनाया है। तुम सुनो और समझो, यह तुम्हारी स्वतन्त्रता है। मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप चैतन्यरत्नाकर द्रव्यस्वभाव। यहाँ शुद्धभाव अधिकार है न? शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाली शुद्ध-पवित्र परमानन्द का सागर, अमृत का पिण्ड, वह द्रव्यस्वभाव, उसमें चार भाव का अभाव है। आहाहा!

शरीर, वाणी, मन तो दूसरी चीज़ रही। यह रोग और निरोग तो कहीं जड़ में रह गये। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय में... चार भाव जो अपनी पर्याय में अपने से स्वतन्त्ररूप से होते हैं, वह पर्याय भी, जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना है - धर्म की पहली सीढ़ी... आहाहा! उसे इन चार भावों का लक्ष्य छोड़ देना। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देश, मकान इन सब पर का लक्ष्य छोड़ देना, वह चीज़ तो दूर रह गयी। यह तो इसकी पर्याय में है—चार भाव इसकी पर्याय में हैं। पंचम भाव द्रव्यभाव है। आहाहा! अरे रे! इन चार भाव में उपशम और क्षयोपशम दो की बात आ गयी।

उपशम के दो प्रकार : समकित और चारित्र आत्मा में नहीं। वे तो पर्याय में हैं। आहाहा! तो पर्यायदृष्टि से जाननेयोग्य है परन्तु आदरने योग्य नहीं। आहाहा! कठिन काम। ऐसे क्षायिक। केवलज्ञान, केवलदर्शन, वह 'है' ऐसा जाननेयोग्य है परन्तु वह भाव द्रव्य में नहीं; इसलिए आदरणीय नहीं। आहाहा! साधक को स्वयं को केवलज्ञान तो है नहीं, परन्तु दूसरे का केवलज्ञान भी अपने को आदरणीय नहीं और अपनी पर्याय में केवलज्ञान होगा, दो तीन भव के बाद होगा, वह भी आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ये दो बातें हो गयी हैं।

आज **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान,...** सम्यक् मतिज्ञान। है? **क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद...** मतिज्ञान जो अपने में नहीं। सेठ को हाथ नहीं आया। ४१ गाथा। **मतिज्ञान,...** जो गणधरदेव मतिज्ञान से और मतिपूर्वक श्रुतज्ञान से बारह अंग की रचना करते हैं। आहाहा! वह मतिज्ञान भी अपने द्रव्यस्वभाव में नहीं है और मतिज्ञान का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। अररर! समझ में आया?

**श्रुतज्ञान,...** पर्याय में बारह अंग का श्रुतज्ञान हो.. आहाहा! परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। वह श्रुतज्ञान की पर्याय द्रव्यस्वभाव में नहीं है। जैसे पानी के दल में तेल की बूँद, तेल की चिकनाई ऊपर-ऊपर तैरती है, वैसे भगवान चिदानन्द का सागर अमृत का पूर प्रभु, उसमें यह श्रुतज्ञान की पर्याय ऊपर-ऊपर तैरती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह श्रुतज्ञान की पर्याय भी अन्दर सम्यग्दर्शन का विषय जो द्रव्यस्वभाव है,... शुद्धभाव है न? वह सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें श्रुतज्ञान का अभाव है। भावश्रुतज्ञान, हों! द्रव्यश्रुतज्ञान तो वाणी है। वह तो वाणी-शब्द है, वह तो जड़ में जाता है। आहाहा! शास्त्र की यह जो रचना है, वह तो जड़ की पर्याय है। उसकी तो यहाँ बात ही नहीं।

अपने में अपने आनन्दस्वभाव का भान भावश्रुत में विकल्प से रहित निर्विकल्परूप से (हुआ)... १४४ गाथा में आया है। श्रुतज्ञान का विकल्प भी छोड़ दे। आहाहा! और श्रुतज्ञान इतना प्रगट हुआ है, उसका लक्ष्य छोड़ दे, उसका आश्रय छोड़ दे। आहाहा! तेरी चीज़ पूर्णानन्द से भरपूर है, उसका यदि आश्रय करना हो, सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान यदि तुझे प्रगट करना हो तो उस मतिश्रुतज्ञान का भी द्रव्य में अभाव है। आहाहा! है?

**अवधिज्ञान,...** (का) द्रव्य में अभाव है। पर्याय में रूपी को जाननेवाला अवधिज्ञान हो, वस्तु में नहीं है। वस्तु तो पंचम पारिणामिक ज्ञायकभाव, परम परमेश्वरस्वरूप है। आहाहा! परम परमेश्वर। पर्याय में परमेश्वर केवलज्ञान होता है, यह तो परम परमेश्वर। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसमें अवधिज्ञान का भी अभाव है। पर्याय में हो; है, इतना जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं है, उपादेय नहीं है। आहाहा! अवधिज्ञान उपादेय नहीं है। अरे! प्रभु! तो फिर दया, दान और व्रत के विकल्प उपादेय (कहे), प्रभु! बहुत अन्तर है। आहाहा! वीतरागमार्ग.. प्रभु! बहुत अन्तर है। आहाहा! यह **अवधिज्ञान,...**

**मनःपर्ययज्ञान...** नहीं। यहाँ क्षयोपशम की बात है न? क्षायिक में तो केवलज्ञान आ गया। मनःपर्ययज्ञान। सामनेवाले के मन के भाव भी जान सके, ऐसा मनःपर्ययज्ञान, वह पर्याय में है, वस्तु में नहीं और इसका आश्रय करने लायक नहीं। आहाहा! एक ओर ऐसा कहे और एक ओर भगवान की प्रतिमा की पूजा के भाव की बात करे। आहाहा! भगवान! स्याद्वाद की शैली कोई अलौकिक है। यह अन्तर में समझना, वह चीज़ कोई अलौकिक

है। आहाहा! क्या कहा? आहाहा! मार्ग बहुत अलग है, बापू! केशुभाई है न? वे तो हैं न? जानते हैं। उनके मकान में रहे थे न।

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की वाणी में आया और अनुभव में मुनि को आया, वे मुनि ऐसा कहते हैं कि मन:पर्यय वह चार ज्ञान। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान ये चार ज्ञान आत्मा में नहीं है। आहाहा! ये द्रव्य-वस्तु जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उस चीज़ में उन चार ज्ञान का अभाव है। अरे रे! सुनने को मिले नहीं बेचारे को, क्या करे? सभी को.. आहाहा!

यह परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान (सीमन्धर भगवान) के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाया है। आहाहा! अभी केवलज्ञानी परमात्मा तो महाविदेह में विराजते हैं। तो कहते हैं कि चार ज्ञान की पर्याय जो सम्यक् है, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं। वह चार ज्ञान की पर्याय, द्रव्य में नहीं। शुद्ध द्रव्य जो सम्यग्दर्शन का ध्येय है, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, उसमें चार ज्ञान का भी अभाव है। आहाहा! तो दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम तो शुभराग जहर जैसे हैं, वे तो कहीं दूर रहे गये। आहाहा! कठिन बात, प्रभु! वीतरागमार्ग कोई (अलग है)।

अनन्त काल में अनन्त भव किये। दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ। आहाहा! श्वेताम्बर साधु तो साधु ही नहीं। जैनदर्शन में यह बात स्वीकार नहीं की, परन्तु दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ।

**मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ**
**पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।**

मुनिव्रत धारण किया, पंच महाव्रत लिये। अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, नग्नपना लिया। पंच महाव्रत निरतिचार पालन किये, परन्तु वह तो राग है। भगवन्त! महाव्रत वह राग है, दु:ख है, आस्रव है। आहाहा! उसका तो आश्रय करने योग्य है ही नहीं, परन्तु चार ज्ञान की उत्पत्ति हुई हो, उसका भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है। है?

**कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान, ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन;...** वह आत्मा में नहीं। कुश्रुत, कुमति और विभंग। विभंग में सात द्वीप, सात समुद्र दिखाई देते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसा क्षयोपशम होता है कि सात द्वीप और सात समुद्र देखे। वह

विभंगज्ञान भी पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? बातें बापू! दुनिया से बहुत अलग चीज़ है। अभी तो इतनी गड़बड़ी हो गयी है कि पूरा मिथ्यात्व का पोषण चलता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि चार ज्ञान और तीन अज्ञान, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है। पहले तो यह आ गया है कि केवलज्ञान की पर्याय भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है, क्योंकि एक समय की पर्याय नाशवान है। प्रभु अन्दर द्रव्यस्वभाव अविनाशी त्रिकाल है। आहाहा! अनादि-अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु, अमृत का पूर और ज्ञान के नूर के तेज का सागर.. आहाहा! उसमें तो चार ज्ञान का भी अभाव है और तीन अज्ञान का भी अभाव है। आहाहा! है ?

दर्शन **चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन;..** है। इन तीन का भी द्रव्य में अभाव है। सम्यग्दर्शन का विषय जो अन्तर ध्रुव त्रिकाली परमात्मा, उसकी दृष्टि से-लक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है। अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान, उसमें तो चार ज्ञान और तीन अज्ञान का भी अन्तर में अभाव है। उस पर दृष्टि करने से (सम्यग्दर्शन होता है)। समझ में आया ? यह तुम्हारे संसार की बहियाँ नहीं हैं। यह दूसरे प्रकार की बहियाँ हैं। धन्नालालजी! आहाहा!

ये दर्शन की तीन पर्याय अन्दर उत्पन्न हुई। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, पर्याय में है, परन्तु वह पर्याय, जैसे पानी का दल होता है, मण-दो मण पानी (होवे) उसमें तेल की बूँद हो। उस तेल की बूँद का पानी में प्रवेश नहीं है। इसी प्रकार भगवान आत्मा एक समय में नित्यानन्द, सच्चिदानन्द प्रभु में ये चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन ऊपर-ऊपर तैरते हैं। पानी के दल में जैसे तेल की बूँद ऊपर तैरती है, वैसे द्रव्य के ऊपर पर्याय तैरती है। उस पर्याय का अन्दर में प्रवेश नहीं है। आहाहा! अरे! ऐसी बात! सम्यग्दर्शन की पहली दशा.. अभी तो चौथा गुणस्थान। श्रावक तो कहीं रह गये, बापू! वे तो है कहाँ अभी ? पाँचवाँ गुणस्थान और मुनिपना ? वह चीज़ तो लोगों ने सुनी नहीं। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह जिसके आश्रय से और ध्येय से उत्पन्न होती है, उसमें ये तीन दर्शन और चार ज्ञान तथा केवलज्ञान का भी अभाव है। आहाहा! ऐसी बात है।

अब यह एक नयी बात आयी। **काललब्धि,...** देखो! है ? काललब्धि अर्थात् ? पाँच के नाम आते हैं ? क्षयोपशमलब्धि, करणलब्धि, देशनालब्धि, विशुद्धिलब्धि

(प्रायोग्यलब्धि), ये पाँच बोल हैं। सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहले पाँच बोल आते हैं, परन्तु उन बोल का आश्रय करने से नहीं। आहाहा! उसमें एक क्षयोपशमलब्धि आती है। सम्यग्दर्शन होने से पहले क्षयोपशमलब्धि होती है, उसे यहाँ काललब्धि कहा है। आहाहा! क्षयोपशम किसे कहना और काललब्धि किसे कहना? अरे! भगवान! अनादि से भ्रमणा में भूला पड़ा है। आहाहा! कहीं बात रह गयी। आहाहा! और चार गति चौरासी में नरक और निगोद। आँधी में जैसे तिनका उड़ता है, वैसे मिथ्याश्रद्धा से चौरासी लाख के भव में तिनके की भाँति उड़ता है। पर्याय के आश्रय से भी विकल्प उठता है तो यहाँ तो अभी दया, दान, और व्रत-तप और भक्ति से धर्म होता है, (ऐसा मानना तो) बड़ा मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह बात तो ऐसी है। भगवान के घर की बात तो ऐसी है भाई! दुनिया को तो सुनने मिलना मुश्किल पड़े – ऐसी है। दुनिया की खबर है। आहाहा!

यहाँ शरीर को तो ९० वर्ष हुए। ६८ वर्ष तो दुकान छोड़े हुए हैं। ६८ वर्ष। इसका अभ्यास तो दुकान के ऊपर से था। अभी बड़ी दुकान है। पालेज है न? पालेज। भरुच और बड़ोदरा के बीच। अभी भी बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चालीस लाख की दुकान, एक वर्ष की चार लाख की आमदनी। भरुच (और बड़ोदरा के बीच) पालेज है, तो दुकान के ऊपर मैंने भी पाँच वर्ष धन्धा किया था। १७ वर्ष की उम्र से लेकर २२ वर्ष की उम्र तक। २२ वर्ष में मैंने छोड़ दिया। मैंने तो कहा भाई! यह तो अकेला पाप है। इसमें कोई धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं। अकेला पाप। पूरे दिन धन्धा करना, ऐसा करना.. ऐसा करना... धन्धे का व्यापार, अकेला पाप और थोड़ा समय मिले, उसमें छह-सात घण्टे नींद में जायें, वह भी पाप। थोड़ा समय मिले वह स्त्री-पुत्र को प्रसन्न करने में, भोग में जाये। अर र र! पाप। धर्म तो कहीं नहीं परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि पुण्यभाव, शुभभाव है, दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, उस शुभभाव का तो द्रव्य में अभाव है और वह शुभभाव कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अरे रे! यह कहाँ सुनना? बापू!

यहाँ तो काललब्धि कहते हैं। पण्डितजी! मुनि का इतना जोर है कि काललब्धि से होता है, उसका लक्ष्य छुड़ा दे, ऐसा है। आहाहा! होता है तो काललब्धि से परन्तु कहते हैं कि उसका लक्ष्य छोड़ दे; नहीं तो इसे तो क्षयोपशमभाव कहा था। सिद्धान्त में दूसरी जगह क्षयोपशमभाव कहते हैं। क्षयोपशम अवस्था। यह क्षयोपशम की बात चलती है।

इसमें काललब्धि को क्षयोपशम कहा है। उस काललब्धि का भी स्वरूप में तो अभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

हम तो पहले से कहते हैं कि काललब्धि का ज्ञान कब होता है? कि स्वरूप चिदानन्द भगवान पूर्णानन्द का अनुभव हो, तब काललब्धि का सच्चा ज्ञान होता है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो (संवत्) १९७२ के वर्ष से हम कहते हैं। १९७२ के वर्ष से। ६३ वर्ष हुए, ६३। आहाहा! काललब्धि का अर्थ यदि कोई ऐसा कहे कि होना होगा तब होगा, अपने कुछ करना नहीं। स्वभाव का पुरुषार्थ करना नहीं। वह काललब्धि धारणा में ली तो उससे क्या हुआ? परन्तु वह काललब्धि.. मुनिराज को बहुत तीव्र पुरुषार्थ है। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, बहुत पुरुषार्थ। काललब्धि तेरे स्वरूप में नहीं। आहाहा!

तेरा स्वरूप की दृष्टि करने से सम्यक् अनुभव होता है, जब समकित होता है, तब अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। चौथे गुणस्थान में समकित। अभी पाँचवाँ, छठवाँ गुणस्थान तो कहीं रहा, बापू! वह तो बहुत आगे बात है। अभी यहाँ तो चौथे गुणस्थान में काललब्धि का लक्ष्य छोड़कर, मेरी चीज़ अन्दर पूर्णानन्द है, उसका आश्रय करने से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। ऐसा का ऐसा समकित मान ले कि यह समकित है, ऐसी बात नहीं है। अतीन्द्रिय आनन्द भगवान आत्मा में पूर्णानन्द पड़ा है। अतीन्द्रिय अमृत का रस पड़ा है, प्रभु! उसके स्वाद का अंश काललब्धि का लक्ष्य छोड़कर, द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करे, (तब आता है)। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ (है)। सर्वज्ञपर्याय जो परमात्मा को प्रगट हुई, तो वह सर्वज्ञस्वभाव में से हुई है। आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव पड़ा है। अरे रे! कहाँ माने? कहाँ सुने? आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव अन्दर में पड़ा है। उस स्वभाव का लक्ष्य करने से काललब्धि का भी लक्ष्य छूट जाता है। गोम्मटसार में काललब्धि को क्षयोपशम कहा है। काललब्धि को क्षयोपशमलब्धि कहा है। क्षयोपशम, उसका भी द्रव्य में तो अभाव है। आहाहा! यहाँ आचार्य की तो तीव्र पुरुषार्थ की जागृति है, तो काललब्धि भी स्वरूप में नहीं। तब काललब्धि परलक्ष्य करना नहीं। आहाहा! कठिन बात है, बापू! वीतरागमार्ग... परमेश्वर जैनेश्वर की बात कोई अलौकिक है। अभी सम्प्रदाय में तो यह बात ही नहीं है। व्रत करो, अपवास करो, तपस्या करो, यह त्याग करो और वह त्याग करो! पर का त्याग और पर का ग्रहण, यह तो मिथ्यात्व का पोषण है। सूक्ष्म बात है, प्रभु! कठिन बात है। आहाहा!

यहाँ तो काललब्धि पर जरा वजन है। काललब्धि कलश-टीका में बहुत आती है और पाँच समवाय में काललब्धि है भी सही। पाँच समवाय है न? पाँच समवाय की भी खबर नहीं होती। पाँच समवाय क्या है? आहाहा! काल, नियति, भवितव्यता, यह सब नियति में जाता है। और पुरुषार्थ, स्वभाव तथा निमित्त का अभाव-ऐसे एक समय में पाँच कारण हैं। आहाहा! तो इन पाँच कारण में काललब्धि का भी लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! दुनिया को तो जानते हैं। पूरी दुनिया क्या है, (खबर है)। यहाँ तो ९० वर्ष हुए। ६७ वर्ष तो दुकान छोड़ी और दीक्षा ली, उसे हुए। ६० और ७। यह तो एक ही धन्धा है।

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि काललब्धि तेरी चीज़ में नहीं है। आहाहा! मुनिराज की दशा तो देखो! मुनि होते हैं, वे तो नग्न होते हैं और अन्तर में निर्विकल्प आनन्द की दशा का उग्र संवेदन मुनि को होता है। उसे यहाँ जैनदर्शन में मुनि कहते हैं। अन्तर में स्वसंवेदन में अतीन्द्रिय आनन्द। सम्यग्दृष्टि हुई, धर्म की पहली दृष्टि, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। सच्चा श्रावक पाँचवें गुणस्थान में जाता है... यह वाड़ा के श्रावक, वे श्रावक-वावक नहीं हैं। पाँचवें गुणस्थान में जाते हैं... ऐई! धन्नालालजी! आहाहा! भाई रतनलालजी आनेवाले हैं, कहते हैं। रतनलालजी हैं न? वे आनेवाले हैं। उनके पास पाँच-छह करोड़ रुपये हैं। पाँच-छह करोड़ धूल है। उस धूल को अपनी माने, वह तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। पैसा मेरा है और लक्ष्मी मेरी है, वह तो मिथ्यादृष्टि जैन ही नहीं, अजैन है। आहाहा! कठिन बात है, बापू!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि काललब्धि-जिस समय में होगा, तब होगा। सम्यग्दर्शन भी जिस समय होनेवाला होगा, वह काललब्धि से होगा। आहाहा! परन्तु कहते हैं, प्रभु! तेरी प्रभुता पर दृष्टि दे, वह पर्याय काललब्धि से लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? ऐई! भभूतमलजी! ये सब करोड़पति बैठे हैं। दो-दो करोड़, पचास लाख और धूल लाख सब पैसेवाले हैं। आहाहा! धूल पैसेवाले हैं? यहाँ तो कहते हैं कि काललब्धिवाला भी आत्मा नहीं। आहाहा! अरे प्रभु! सम्यग्दर्शन कोई वीतराग का...

धर्म की पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन, समकित। आहाहा! उस समकित का विषय जो त्रिकाली शुद्धभाव है न? ऊपर लिखा है। शुद्धभाव कहो, या द्रव्यस्वभाव कहो या त्रिकाली आननद का नाथ, महा अखण्डानन्द नाथ परमस्वभाव परमपारिणामिकभाव, वह सम्यग्दर्शन

का विषय है, तो उस सम्यग्दर्शन के विषय में काललब्धि का अभाव है। आहाहा! हम तो बहुत वर्ष से कहते हैं कि भाई! काललब्धि... काललब्धि... कहते हो तो तुम्हें क्या धारणा करनी है? इस काल में हुआ तो इस काललब्धि का ज्ञान कब होता है? कि स्वद्रव्य के आश्रय से ज्ञान हो तो काललब्धि का ज्ञान होता है। लालचन्दभाई! आहाहा! लोग बहुत कहते हैं। कोई ऐसा कहते हैं। सुनो, प्रभु! होता है तो काललब्धि से; जिस समय होनेवाला है, तब होगा, आगे-पीछे नहीं होगा परन्तु उस काललब्धि का लक्ष्य छोड़कर द्रव्यस्वभाव का ज्ञान होता है, तब जिस समय होना होगा, उसका ज्ञान होता है। अरे रे! ऐसी बात! प्रभु की कहाँ करना?

जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा तो विराजते हैं। पाँच सौ धनुष (की देह है), करोड़पूर्व की आयुष्य है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष पहले, संवत् ४९ (में गये थे)। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। समझ में आया? श्वेताम्बर के शास्त्र तो कल्पित हैं। स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी के जो शास्त्र हैं वे तो कल्पित बनाये हैं। भगवान के नहीं, सम्यक्त्वी के नहीं। अरे रे! जगत को यह कठिन पड़ता है। ऐई! भभूतमलजी! इन्हें जाति से बाहर करते थे। इनके पास दो करोड़ रुपये थे। इस ओर आये न तो जाति से बाहर करते थे। चालीस हजार देकर रखे हैं, परन्तु प्रेम तो यहाँ रह गया। चालीस हजार देकर जाति में रहे। आहाहा! धूल में नहीं। भाई! तुझे खबर नहीं, नाथ! यहाँ तो काललब्धि बहुत अलौकिक बात है।

गोम्मटसार में और दूसरे शास्त्रों में उसे क्षयोपशमलब्धि कहा है। पण्डितजी! यहाँ उसे काललब्धि कहा है। आहाहा! जिस समय में जो सम्यग्दर्शन होनेवाला है, वह होगा, परन्तु उसकी पर्याय का ज्ञान कब होता है? कि त्रिकाली द्रव्य भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव हो, तब पर्याय का ज्ञान सच्चा होता है। आहाहा! कहो, कपूरचन्दजी! ऐसी बात कहीं सुनी भी नहीं। अलौकिक! पैसे तो बहुत हैं। ४०-४०, ५०-५० लाख वाले सब हैं। धूल-धूल, पुद्गल, मिट्टी। आहाहा! यह (शरीर) मिट्टी है तो वह मिट्टी तो क्या?

अरे प्रभु! शास्त्र में तो भगवान ऐसा कहते हैं कि पुण्य के परिणाम वे... आहाहा! क्लेश का शरीर है। अर र! ऐसी बात कहाँ सुने बापू? ये दया, दान, व्रत और अपवास मैं करूँ, ऐसा जो भाव है, वह क्लेश का शरीर है। क्लेशरूप शरीर है। भगवान अन्दर ज्ञानस्वरूप शरीर है। अन्दर यह, हों! अरे रे! कहाँ जँचे?

एक बार कहा था कि चार प्रकार के (शरीर हैं)। एक यह शरीर है औदारिक; एक अन्दर तैजसशरीर है; उसमें एक कार्माणशरीर-कर्म परमाणु तीन। आहारकशरीर है। आहारक, तैजस, औदारिक... देव को वैक्रियक शरीर है। पाँच शरीर हैं। इन पाँच शरीरों का आत्मा में अभाव है। आहाहा! शरीर तो जड़ है। जड़ की पर्याय का स्वरूप में तो अभाव है। एक अंगुली में, दूसरी अंगुली का अभाव है। इसी प्रकार एक चीज़ में दूसरी चीज़ का अभाव है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! यह शरीर तो इसमें (आत्मा में) है नहीं। अब पुण्य और पाप के भाव, वे क्लेशरूप शरीर हैं। शास्त्र में विग्रह ऐसा पाठ है। कि पुण्य और पाप का भाव विग्रह शरीर है, विकारी शरीर है। उसका (आत्मा में) अभाव है। आहाहा! और भगवान आत्मा ज्ञानशरीर है। अन्दर चैतन्य, चैतन्यप्रकाश का पुंज, चैतन्यप्रकाश का चन्द्र; जैसे चन्द्र प्रकाशमय शीतल; उससे अनन्तगुनी शीतलता से भरा हुआ प्रभु यह आत्मा है। अरे रे! कहाँ जाये? कहाँ देखना? उसे ज्ञान विग्रह कहा है। आत्मा के स्वभाव को विग्रह का शरीर कहा है, वह चैतन्य शरीर है। पुण्य-पाप विग्रह जहर शरीर है, राग शरीर है। यह परम औदारिक आदि परमाणु पुद्गल शरीर है। इन तीनों शरीर का, राग का, पर का और पाँच शरीर का आत्मा में अभाव है। आहाहा! कहो, पन्नालालजी!

हस्तिनापुर गये थे न? नाम आया था नाम। पन्नालालजी यहाँ आये थे। आहाहा! वहाँ तो ज्ञानमती सब गप्प मारती है। व्यवहार से लाभ होता है। दिल्ली (हस्तिनापुर) में पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप बनाती है। आर्यिका है। पच्चीस लाख का वहाँ बनाया है। वहाँ मानस्तम्भ (सुमेरुपर्वत) बनाया है। ८० फुट लम्बा, ८५ फुट, हस्तिनापुर में। अपने यहाँ ६३ फुट मानस्तम्भ है। ६३ फुट है। अभी ८५ फुट का बनाया है। बात (ऐसी करे), इससे धर्म होता है और इससे लाभ होता है। धूल में भी धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो काललब्धि आत्मा में नहीं। गजब बात करते हैं। आहाहा! क्या हो? बापू! प्रभु! तेरी चीज़ कोई दूसरी है। यह शरीर तो मिट्टी धूल है। जब लोहे की कील या चोट लगे तो ऐसा कहता है कि मेरी मिट्टी पकनी है, इसलिए पानी नहीं छुआना। तब ऐसा कहता है मेरी मिट्टी पकनी है। उसे मिट्टी कहता है और फिर ऐसा कहता है कि यह शरीर मेरा है। अरे रे! मूर्ख है। पैसा मेरा है, यह मान्यता तो मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि है, वह जैन नहीं। पैसे मेरे हैं, उस जड़ को अपना मानना, जीव में जड़ को अपना मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार से तो है नहीं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार से तो कहने में आता है। भाषा कहो। हम राजकोट के रहनेवाले हैं, ऐसा कहे तो क्या राजकोट इसका हो गया? समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा... आहाहा! काललब्धि। यह जरा सूक्ष्म बात थी न, बापू! इसलिए स्पष्टीकरण किया। यह तो आचार्य ने ही इसमें डाला है। दूसरी एक जगह आगे है। वाद-विवाद नहीं करना, वहाँ भी है। यहाँ नियमसार में है। वाद-विवाद नहीं करना, उस श्लोक में ये पाँच नाम हैं। पर के साथ वाद-विवाद नहीं करना। जैन हो या अन्य हो, क्योंकि चीज़ कोई अलौकिक है। वह चीज़ लोगों को सुनने को मिली नहीं, अतः तुम किसके साथ वाद करोगे? है? आगे है। कौन सी गाथा है... है न कुछ? ऐसा पाठ है। १५६? गाथा, देखो!

'**णाणाजीवा णाणाकम्मं णाण विह**' है? उसमें यह बात है। समझ में आया? '**काल, करण, उपदेश, उपशम और प्रायोग्यतारूप...**' अन्तिम लाईन है, उसमें ये पाँच शब्द पड़े हैं। है? क्या है? '**प्राप्तिरूप लब्धि काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि, उपशमलब्धि और प्रायोग्यतारूप...**' जो शब्द यहाँ हैं, वे ही वहाँ हैं। तो कहते हैं कि जीव अनेक प्रकार के हैं, प्रभु! तू किसके साथ वाद करेगा? लोगों की सम्पत्ति, अपने पैसे, जहाँ-तहाँ पड़े वह मानते हैं। तू किसके साथ यह वाद करेगा? क्योंकि काललब्धि भिन्न है, उनकी करणलब्धि भिन्न है, क्षयोपशम भिन्न है... आहाहा! उनकी देशनालब्धि भिन्न है, विशुद्धि भिन्न है। आहाहा! अरे रे! प्रभु! क्या करे?

वाद-विवाद नहीं करना, उसमें यह आया है। किसके साथ (वाद) करता है तू? यह बात किसे जँचेगी? किसे जँचेगी यह बात? अज्ञानी पूरे दिन पाप करता है। अभी धर्म का तो ठिकाना नहीं, पुण्य का भी ठिकाना नहीं। आहाहा! उसे तू यह कहे कि तुझमें क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय और केवलज्ञान की पर्याय, द्रव्य में नहीं है। उसका माप कहाँ से करेगा वह? समझ में आया? आहाहा!

माप करने की चीज़ ही अलग है। एक बार दृष्टान्त दिया था। रविवार का दिन था। उसके पिताजी पचास हाथ कपड़ा ले आये। आलपात आता है न? आलपात। पचास हाथ। लड़का आठ वर्ष का था। उससे कहा, बेटा! पचास हाथ कपड़ा ले आया हूँ। उसने अपने हाथ से मापा तो सौ हाथ हुए। पिताजी! तुम पचास हाथ कहते हो, यह झूठ बात है। यह तो सौ हाथ है। बेटा! तेरा हाथ काम नहीं आता। तेरा माप हमारे माप में काम नहीं

आता। हमारे हाथ से मापे, वह माप सच्चा है। इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तेरी दुनिया की कल्पना से तू माप निकालता है, वह माप काम नहीं आता। कपूरचन्दजी ! अच्छा आ गया। आहाहा ! प्रभु ! अन्तर की वस्तु का माप निकालना, वह कोई अलौकिक वस्तु है, बापू ! अभी सम्यग्दर्शन, हों ! चौथा गुणस्थान। पाँचवाँ गुणस्थान और मुनिपना तो हिन्दुस्तान में अभी कहाँ है ? बापू ! आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात। आहाहा !

कहते हैं कि काललब्धि नहीं। **करणलब्धि...** करणलब्धि है ? अध:करण, अपूर्व करण, अनिवृत्तिकरण, इतने परिणाम के तीन भेद हैं। समकित दर्शन होने से पहले यह करणलब्धि (होती है)। सिद्धान्त में लेख है। वह करणलब्धि भी स्वरूप में नहीं है। अब वह तुम्हारा कान्तिलाल कहता है कि पहले समकित नहीं और करणलब्धि से समकित होता है तो शुभभाव से होता है। कान्तिलाल है न ?

**मुमुक्षु :** करणलब्धि में शुभभाव...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभभाव तो है परन्तु उसका तो यहाँ अभाव है। जिसमें अभाव है, उसका आश्रय करना है ? करणलब्धि से समकित होता है ? आहाहा ! बड़ी चर्चा है। कान्तिलाल ईश्वर है। गुजराती। बहुत पुस्तकें बनाता है, मासिक निकालता है। हमारे पास आता है। यहाँ भी आता है।

यह करणलब्धि। समकित पाने से पहले तीन प्रकार के परिणाम हैं—अध:करण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण। ये तीन प्रकार के करण अर्थात् परिणाम के प्रकार हैं। समकित होने से पहले। इस करण का भी अपने द्रव्य में अभाव है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! पैसे के कारण निवृत्ति कहाँ है ? पन्नालालजी ! थोड़ी यह धूल मिले। उसमें और रतनलालजी के पास पाँच-छह करोड़ पैसा (रुपये)। इसलिए मानो हम तो बड़े भाई हैं और उनके पास बहुत पैसा है और अपने पास थोड़े हैं... परन्तु थोड़े बहुत (सब) धूल हैं। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि करणलब्धि का अभाव है। आहाहा ! करणलब्धि सूक्ष्म बात है। सिद्धान्त में सम्यग्दर्शन होने से पहले ये करणपरिणाम आते हैं, परन्तु इन परिणामों का द्रव्य में अभाव है। आहाहा ! जिसमें दृष्टि देनी है, उसमें करणपरिणाम का अभाव है। आहाहा ! गजब बात है। तीन लोक के नाथ, वीतराग जिनेश्वरदेव की बातें कोई अलौकिक हैं, बापू ! ऐसी बात जैन के अतिरिक्त कहीं नहीं है। आहाहा !

**उपदेशलब्धि,..** उपदेशलब्धि है न ? अर्थात् देशनालब्धि। उपदेशलब्धि का अर्थ देशनालब्धि। पाँच में देशनालब्धि आती है न ? सच्चे गुरु की वाणी सुने तो सम्यक्त्व होता है। ऐसी बात है। अज्ञानी की वाणी सुने तो तीन काल में कभी सम्यक्त्व नहीं होता है। आहाहा! वह देशनालब्धि भी आत्मा में-द्रव्य में नहीं है। आहाहा! वीतराग और सन्त / सच्चे मुनि, समकिती अन्तर स्वसंवेदन, आनन्द का वेदन, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर वेदन (हुआ है), उन्हें मुनि कहते हैं। उन मुनि की वाणी सुनना, वह देशना है। देशनालब्धि आये बिना सम्यक्त्व नहीं होता परन्तु उस देशनालब्धि से सम्यक्त्व नहीं होता। आहाहा! बाबूभाई! ऐसी बातें हैं। सूक्ष्म बात है, बापू!

यहाँ तो देशनालब्धि का स्वरूप भगवान, द्रव्य ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. प्रभु! नित्यानन्द प्रभु, यह उत्पाद-व्यय की पर्याय है, वह तो एक समय की दशा है। उत्पाद-व्यय की पर्याय जो केवलज्ञानादि है, वह तो एक समय की दशा है और वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल ध्रुव है। ध्रुव नित्यानन्द प्रभु है। भगवान ने जो वस्तु देखी है, वह नित्यानन्दस्वरूप है। उसमें पर्याय है ही नहीं। आहाहा! यह देशनालब्धि उसमें नहीं।

**उपशमलब्धि,...** इसे पाँच लब्धियों में विशुद्धिलब्धि कहा है। पाँच लब्धियाँ हैं न ? उनमें विशुद्धिलब्धि कहा है। उसे यहाँ उपशमलब्धि कहा है। गोम्मटसार आदि दूसरे शास्त्रों में विशुद्धिलब्धि कहा है। उसे यहाँ उपशमलब्धि कहा है। है ? वह आत्मा में नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय आत्मा है, उसमें देशनालब्धि और विशुद्धिलब्धि का अभाव है। उसमें से कान्तिलाल ऐसा कहता है कि विशुद्धिभाव से सम्यक्त्व होता है, देखो! अरे प्रभु! विशुद्धि के तो बहुत प्रकार हैं। शुभभाव को भी विशुद्धि कहते हैं। शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से पवित्रता सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसे विशुद्ध कहते हैं। आहाहा! अरे भाई! यह चीज़ कोई अलौकिक है, प्रभु! आहाहा! क्या कहें ? किसे कहें ? आचार्य कहते हैं, किसके पास यह बात करूँ ? कौन सुने ? आहाहा!

श्रीमद् भी एक बार कह गये, अरे! यह बात कहाँ करूँ ? यह तत्त्व की, सम्यग्दर्शन की बात कौन सुनेगा ? ऐसा कह गये हैं। सम्यग्दृष्टि थे। श्रीमद् राजचन्द्र गृहस्थाश्रम में थे, आत्म अनुभवी थे, सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ था। भव का अन्त हो गया है। एकाध भव में मोक्ष जानेवाले हैं। वर्तमान में स्वर्ग में विमान में हैं, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे भी एक बार कहते थे कि अरे रे! हमारे तत्त्व की बात कौन सुनेगा ? कि राग से भी

धर्म नहीं और अन्दर ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, उसके आश्रय से भी धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

उपशमलब्धि अर्थात् विशुद्धि, कषाय की मन्दता। वहाँ गोम्मटसार के पाँच बोल में विशुद्धि ली है, तो विशुद्धि का द्रव्य में तो अभाव है। केवलज्ञान का अभाव है तो फिर विशुद्धिभाव की बात क्या करना? आहाहा! सेठ! वहाँ कभी सुना नहीं। ये तो प्रमुख हैं। जयचन्दजी हैदराबाद, बड़े प्रमुख हैं। हुकमचन्दजी हैं न? बीस करोड़, राजकुमार, उनके लड़के की लड़की इनके लड़के को विवाही है। इन्दौर। बीस करोड़ रुपये। उनका लड़का राजकुमार है। उसकी लड़की यहाँ है। घर तो बड़ा है, परन्तु यह अन्दर का घर बड़ा है। आहाहा!

अन्दर में भगवान.. आहाहा! इन पाँच प्रकार की लब्धि का भी उसमें अभाव है। अब इन पाँच प्रकार की लब्धि से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी जगत की पुकार है। ज्ञानचन्दजी! है? यहाँ तो कहते हैं कि परन्तु इस पर्याय का द्रव्य में अभाव है। अभाव है, उससे होता है? कि जो अन्दर चिदानन्द प्रभु आनन्द सहजानन्द की मूर्ति। वे स्वामी नारायण सहजानन्द कहते हैं, वह नहीं, हों! स्वामी नारायण को तो खबर भी नहीं। यह तो सहजानन्दस्वरूप अन्दर स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, ऐसा द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, शुद्धस्वभाव, उसमें पाँच लब्धि का अभाव है। विशुद्धि का इसमें अभाव है। विशुद्धि का अभाव है तो विशुद्धि से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसी बात नहीं है। आहाहा! बात जरा सूक्ष्म आयी है, भाई! गाथा एक आयी है। ४१वीं गाथा बहुत सूक्ष्म है। नियमसार, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मेरी भावना के लिये मैंने बनाया है। भगवान के पास गये थे और आठ दिन रहे थे। त्रिलोकनाथ। समझ में आया? आहाहा!

वे ऐसा कहते हैं कि पाँच लब्धि का स्वरूप में अभाव है। **ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदकसम्यक्त्व;...** यह क्षयोपशमसम्यक्त्व सच्चा, वह द्रव्य में नहीं। आत्मा का अनुभव भोगकर सम्यक्त्व हुआ। चैतन्य भगवान पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव होकर आनन्द का स्वाद आया और वह वेदक समकित, क्षयोपशम समकित है, परन्तु वह पर्याय में है; द्रव्य में नहीं। आहाहा! धन्नालालजी! पहले बहुत झोंके (नींद) आते थे। दोपहर को उस समय बहुत झोंके आते थे। आज तो थोड़े आये थे। ये तो परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग की वाणी है, प्रभु! क्या कहें? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसमें वेदक समकित का अभाव है। वेदक चारित्र का अभाव है। आहाहा! वेदक चारित्र अर्थात् क्षयोपशम। क्षयोपशम चारित्र है, सम्यक् अनुभवसहित। आत्मा आनन्दस्वरूप का–आनन्द का स्वाद आया और स्वरूप में रमणता हुई, उसका नाम चारित्र है। तो उस चारित्र की पर्याय का भी द्रव्य में अभाव है। आहाहा! ऐसी बात है। अन्दर है या नहीं? **वेदकचारित्र और संयमासंयमपरिणति**। देखो! क्या कहते हैं? संयमासंयम श्रावक की पंचम गुणस्थान की दशा। उस पर्याय का स्वरूप में अनुभव है, आनन्द का अनुभव है और थोड़ा असंयम राग भी है। जितना अनुभव है, उतना संयम है और जितना राग है, उतना असंयम है, तो संयमासंयम पंचम गुणस्थान श्रावक, परन्तु उस पंचम गुणस्थान की दशा का भी द्रव्य में अभाव है। है? यह क्षयोपशमभाव है न? है?

**संयमासंयमपरिणति**। संयमासंयमपरिणति। पंचम गुणस्थान में जो सच्चा श्रावक है। अभी तो वाड़ा में है, वे कोई श्रावक नहीं, वे सब सावज हैं। आहाहा! अपना स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य अखण्डानन्द प्रभु, उसमें अनुभव आनन्द का स्वाद आया और आनन्द में विशेष लीनता हुई तो पंचम गुणस्थान हुआ, तब श्रावक हुआ। वह श्रावक जितना आनन्द में लीन हुआ, उतना संयम हुआ और उसके अतिरिक्त राग आया, उतना असंयम, तो वह संयमासंयम कहने में आता है। संयमासंयम की अवस्था पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है।

पर्याय में निर्मलता सम्यग्दर्शन की हुई। समकित में चौथे गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया। पंचम गुणस्थान में अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष स्वाद आया और मुनि को तो अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर आनन्द आया। प्रचुर स्वसंवेदन, समयसार की पाँचवीं गाथा में है। प्रचुर स्वसंवेदन। अतीन्द्रिय आनन्द का उफान। आहाहा! जैसे समुद्र में ज्वार आता है। पानी का ज्वार ( आता है )। वैसे मुनि को पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार आता है, तब इसे जैन मुनि कहते हैं। नहीं तो जैन के मुनि नहीं हैं। समझ में आया? कठिन बात है, भाई! यह कहते हैं कि संयमासंयमपरिणति द्रव्य में नहीं है। समझ में आया? यह क्षयोपशम की बात है। इस क्षयोपशम के अठारह भेद हैं। अठारह भेद की व्याख्या हुई। ये अठारह भेद पर्याय में हैं, द्रव्य में नहीं। आहाहा!

अब उदयभाव कहते हैं। **औदयिकभाव के इक्कीस भेद इस प्रकार हैं—**

**नारकगति,...** नीचे नरकगति है न? इस वस्तु में नरकगति नहीं है। नरकगति का अर्थ नारकी का शरीर नहीं। वह पर्याय में नरकगति का जो वेदन है, वह नरकगति। आहाहा! उस नरकगति का द्रव्यस्वभाव में अभाव है। भगवान पूर्णानन्द का नाथ परमेश्वर जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने देखा, ऐसा जो आत्मा... आहाहा! उसमें नरकगति का अभाव है। श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। क्षायिक समकिती हैं और तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। जैसे महावीर प्रभु (तीर्थंकर) थे, वैसे श्रेणिक राजा पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में अभी हैं, परन्तु समकित है और समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। तथापि कहते हैं कि वे समकिती हैं तो समझते हैं कि यह नरकगति मेरे द्रव्य में नहीं है। आहाहा! पहले नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में श्रेणिक राजा है। ढाई हजार वर्ष हुए, साढ़े इक्यासी (हजार) वर्ष रहे। वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में पहले तीर्थंकर होंगे। आहाहा! तो कहते हैं कि नरक में है, तथापि समकिती ऐसा मानता है कि यह नरकगति मेरे द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

**तिर्यंचगति,...** नरक में तो माँस, (खावे) शराब पीवे, वह नरक में जाता है और तिर्यंचगति में तिरछे भाव। तिरछे अर्थात् कषायभाव। माँस, शराब, अण्डा न खाता हो परन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ (किये हों) वक्रता बहुत। अन्दर में वक्रता, आडोढाई समझते हो? टेढ़ापन। जिसे कषाय में वक्रता बहुत है, वह तिर्यंच होता है। मनुष्य खड़े ऐसे हैं। गाय, भैंस, गिलहरी, आड़े हैं। आड़े क्यों हैं? क्योंकि पूर्व में वक्रता बहुत की है। अपने आत्मा की वक्रता तो पर्याय में है ही परन्तु शरीर टेढ़ा हो गया है, तथापि यहाँ तो कहते हैं कि वह तिर्यंचगति और तिर्यंच शरीर आत्मा में नहीं है। आहाहा! जयचन्दजी! हैदराबाद में कभी सुना नहीं। भाग्यशाली कहलाये। ऐसे सेठ सम्प्रदाय का लक्ष्य छोड़कर आवे। बड़े अग्रसर कहलाते हैं। आहाहा! बापू! मार्ग अलग, बापू! आहाहा!

तिर्यंचगति का अभाव है। अरे! मनुष्यगति का आत्मा में अभाव है। है? मनुष्यगति, इस शरीर को मनुष्यगति नहीं कहते। यह तो जड़ है, मिट्टी है। यह कहीं मनुष्यगति नहीं। यह तो शरीर है, मिट्टी है। अन्दर में मनुष्यगति की जो योग्यता है, मनुष्यगति की योग्यता उदयभाव, वह मनुष्यगति आत्मा में नहीं। अरे! मनुष्यगति किसे कहना? मनुष्य शरीर किसे कहना और मनुष्यगति का अभाव किसे कहना?—इसकी कुछ खबर नहीं होती और सम्यग्दृष्टि धर्मी हो गया? आहाहा! समझ में आया? मनुष्यगति, यह शरीर नहीं, यह

तो मिट्टी है। यह तो मनुष्य का शरीर है। मनुष्यगति तो अन्दर में ऐसी योग्यता से मनुष्यगति का उदयभाव है, जो दु:खदायक गति है। गति दु:खदायक है। आहाहा! अब लोग ऐसा कहते हैं कि मनुष्यगति होवे तो केवलज्ञान हो। कोई नरक में, तिर्यंच में केवलज्ञान है नहीं। डाह्याभाई!

**मुमुक्षु :** बात-बात में अन्तर है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात-बात में अन्तर है। 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले और एक त्रांविया तेर....' इसी प्रकार भगवान कहते हैं कि तुझमें और मुझमें बात-बात में अन्तर है। तुझमें और मुझमें कहीं मिलन नहीं है। तूने कभी मेल किया ही नहीं। समझ में आया?

यह यहाँ कहा। अपने में मनुष्यगति नहीं। आहाहा! एक पण्डित आया था। कहाँ का? कुचामन का? एक पण्डित आया था। मनुष्यगति के बिना केवलज्ञान होता है? इसलिए मनुष्यगति केवलज्ञान का कारण है। अब सुन तो सही! तू बड़ा पण्डित है तो... नाम भूल गये। काशीलालजी! लो, काशीलालजी पण्डित है न? यहाँ तो सब पण्डित भी आवे और दूसरे भी सब आते हैं। वे कहे, मनुष्यगति से केवलज्ञान होता है; इसलिए मनुष्यगति कारण है और व्रजनाराचसंहनन होवे, उसे केवलज्ञान होता है, तो संहनन कारण है। (हमने) कहा, बिल्कुल झूठ बात है।

**मुमुक्षु :** व्रजनाराचसंहनन वाला सातवें नरक में (भी) जाता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ; उस समय सातवें नरक गया। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, सोलह हजार देव सेवा करे, वह मरकर अभी सातवें नरक में है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अभी सातवें नरक में है। अभी पिच्यासी हजार वर्ष नरक में व्यतीत हुए हैं। अभी तो असंख्य अरबों वर्ष वहाँ रहनेवाला है। अन्तिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त। सम्यग्दर्शन तो नहीं परन्तु मिथ्यादर्शन में भी महा.. माँस, शराब, महापाप। स्त्री.. स्त्री.. स्त्री.. स्त्री.. कुरुमती एक स्त्री थी। छियानवें हजार स्त्रियों में एक मुख्य स्त्री (रानी) होती है, तो उस स्त्री का इतना प्रेम कि मरते हुए कुरुमती.. कुरुमती.. (करते हुए) मरकर सातवें नरक में गया। अभी सातवें नरक में है। परन्तु वह गति भी पर्याय में है; वस्तु में नहीं।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन-४१, गाथा-४१, शनिवार, श्रावण शुक्ला ६, दिनांक १६-०८-१९८०**

नियमसार, ४१ वीं गाथा। यहाँ बात तो सामान्य यह है कि आत्मा जो है, वह परमेश्वरस्वरूप ही है। आहाहा! परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे परमात्मस्वरूप में चार भाव नहीं है। यह दृष्टि का विषय बताने को चार भाव नहीं है, ऐसा कहा है परन्तु चार भाव, चार भाव में नहीं, ऐसा नहीं है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव हैं, उनकी बात चलती है? तो वह व्यवहारनय का विषय है। है, उसका यहाँ निषेध है। समझ में आया? अन्य कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि बस, एक आत्मा सर्व व्यापक है। आहाहा! कबीर की बात में भी निश्चय की बहुत बातें आती हैं, परन्तु वह एकान्त है। यह तो हम दुकान पर ही 'वाडीलाल मोतीलाल' जैन समाचार था। अहमदाबाद (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात है। हम तो दुकान पर जैन समाचार-पत्र मँगाते थे। उसमें कबीर की पुस्तक भेंट में आयी थी। क्योंकि वे तो स्थानकवासी थे न? इसलिए वे कबीर को मानें, परन्तु वह एकान्त है। उसमें ऐसा आया है... १९६५-६६ के वर्ष में वह दुकान पर पढ़ा था। 'पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ बड़ा पहाड़।' आहाहा! एकान्त है। भगवान की प्रतिमा की पूजा है, वह धर्म नहीं परन्तु शुभभाव होता है और वह प्रतिमा अनादि से है। समझ में आया? अनादि से तीर्थंकर की प्रतिमा शाश्वत् असंख्य मन्दिर, नन्दीश्वर द्वीप में मन्दिर-बावन जिनालय आदि, असंख्य व्यंतर के भवन में मन्दिर हैं, भवनपति के (भवन में) जैन मन्दिर हैं। आहाहा! परन्तु वह शुभभाव का निमित्त है। वह शुभभाव उससे होता है, ऐसा नहीं है। निमित्त का निषेध करना, वह निमित्त से नहीं होता, इस अपेक्षा से है, परन्तु निमित्त चीज़ ही नहीं है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! निमित्त चीज़ ही नहीं और शुभभाव होता है, वह निमित्त से-पर से, भगवान के दर्शन से होता है, ऐसा भी नहीं है और शुभभाव हुआ तो वह धर्म का कारण है और धर्म है, ऐसा भी नहीं। अरे! ऐसी बात!

यहाँ कहते हैं कि ये चार भाव नहीं हैं। अपने यहाँ मनुष्यगति तक आया है कि आत्मा में मनुष्यगति ही नहीं है परन्तु गति, गति में नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय में मनुष्यगति है। व्यवहारनय का विषय है। नय है न? तो नय का विषय है। नय है, वह विषयी है। नय है, वह विषयी है, तो उसका विषय है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं

कि मनुष्यगति से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह मिथ्या है और मनुष्यगति न मिले तो मोक्ष नहीं मिलता, यह भी मिथ्या है। जब केवलज्ञान की प्राप्ति की दशा अपने में होती है, तब मनुष्यगति हो, व्रजनाराचसंहनन भी हो। अनन्त.. अनन्त.. अमृत के सागर से भरा प्रभु है। सुख है, सुख। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनन्त गुण में रूप है। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान विराजता है।

परमात्मा शक्तिरूप से, स्वभावरूप से तो मुक्त ही है। यह तो पर्याय में मुक्त किस प्रकार होता है, उसके उपाय की यह बात चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि मनुष्यगति, गति में है। यह शरीर नहीं, हों! यह मनुष्यगति नहीं। यह तो शरीर जड़, मिट्टी, धूल है, यह तो पुद्गल है। अन्दर में नामकर्म के उदय से, इस गति में रुकना, उस पर्याय को मनुष्यगति कहते हैं। यह शरीर मनुष्यगति नहीं है, यह तो मिट्टी-धूल है। गति कहाँ है? मनुष्यगति तो जीव की विकारी पर्याय है। यह शरीर है, वह तो जड़-मिट्टी की पर्याय है। यह मनुष्यभव यह और इसे मनुष्यगति कहना, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहते हैं कि मनुष्यगति की अन्दर योग्यता है, वह भी आत्मा में नहीं है।

देवगति है। देवगति है और देवगति शुभभाव से मिलती है परन्तु वह शुभभाव और देवगति, वह भी आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! वीतराग की ऐसी बात! अनेकान्त। देवगति है। पंचम काल के सच्चे सन्त वे भी कहीं केवलज्ञान नहीं पाते, वे स्वर्ग में ही जाते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे सन्त भी स्वर्ग में हैं क्योंकि केवलज्ञान की प्राप्ति का अभाव है। तो वहाँ भाव तो था—स्वर्ग की गति मिले ऐसा शुभभाव तो था परन्तु वह शुभभाव और गति, आत्मा के द्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय में लिखा है कि व्यवहारनय, नहीं है—ऐसी बात करता है, परन्तु व्यवहारनय का विषय बिल्कुल नहीं, तो उसका ज्ञान करना, वह रहा नहीं। देवगति है। सर्वार्थसिद्धि में स्वर्ग में (जाता है)। आहाहा! पाँच पाण्डव शत्रुंजय में ध्यान में थे। उसमें दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के गहने बनाये। लोहे के तमतमाते (गहने बनाये) गले में, सिर में (पहनाये)। पहले पंच महाव्रत को विकल्प था परन्तु जब यह उपसर्ग आया तो अन्तर में उतर गये। आहाहा! अन्तर में आनन्दकन्द प्रभु, अमृत का सागर, सरोवर, सागर है, ऐसे परमेश्वर में दृष्टि तो थी, (अब) स्थिरता जम गयी। स्थिरता जमकर तीन को केवलज्ञान हुआ। धर्मराजा, भीम और अर्जुन। तथा सहदेव और नकुल

दोनों साथ में थे परन्तु ऐसा एक विकल्प आया कि अरे! भाई को कैसे होगा? बड़े भाई को कैसे होगा? इतना विकल्प आया तो... विकल्प है सही। उससे सर्वार्थसिद्धि की गति का बन्ध पड़ गया। समझ में आया? परन्तु वह विकल्प और गति, द्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा!

द्रव्यवस्तु जो परमात्मस्वरूप... आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन जिसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होता है, वह ध्येय चीज़ तो पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! तो देवगति और देवगति के कारणरूप भाव, दोनों का द्रव्यस्वभाव में अभाव है, परन्तु पर्याय में है। उसका निषेध नहीं करना कि नहीं (पर्याय में भी नहीं है, ऐसा नहीं मानना); जाननेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय है ही नहीं, ऐसा नहीं जानना; वरना एकान्त मिथ्यात्व होगा। आहाहा! यह चार गति।

आत्मा वस्तु परमेश्वरस्वरूप... आहाहा! पूर्ण वीतराग शक्ति से मुक्तस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे स्वरूप में यह चार गति नहीं है और क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय नहीं है। कषाय की पर्याय में कषाय है। न हो तो समकिती वीतराग हो जाये और केवलज्ञानी हो जाये। सम्यग्दृष्टि को भी कषाय तो आती है। आहाहा! भगवान की पूजा का, दया का, दान का भाव आता है। आहाहा! परन्तु वह भाव... आहाहा! कषाय है। वह कषायभाव, त्रिकाली भगवान आत्मा में नहीं है।

परमात्मा अपने स्वरूप में दृष्टि करने से परमेश्वर की प्राप्ति होती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में परमेश्वर-आत्मा की प्राप्ति होती है। अरे! प्रभु! आहाहा! जिसके गुण का पार नहीं, जिसके आनन्द का पार नहीं, वह जो अतीन्द्रिय आनन्द है, वह भी अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्द, ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द—ऐसी अनन्त शक्तियों के आनन्द से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! उस चीज़ में चार कषाय नहीं है। कषाय की पर्याय में कषाय है। वह जाननेयोग्य है। वीतराग होने के बाद कषाय नहीं होती, परन्तु नीचे समकिती को ज्ञानी को, अरे! क्षायिक समकिती हो। श्रेणिक राजा को ऐसा राग हुआ, सिर फूटकर देह छूट गयी परन्तु वह राग चारित्रदोष है। अन्तर में वह मुझमें है, ऐसा वे नहीं मानते थे। आहाहा! हेयबुद्धि से आता है। ऐसे दया, दान, भक्ति के परिणाम हेयबुद्धि से आते हैं। परन्तु वह चीज़ अन्दर वस्तु में नहीं है।

द्रव्यस्वभाव जो चिदानन्द परमात्मा... आहाहा! वह बात यहाँ चलती है। वह

उदयभाव कषाय आत्मा में नहीं है। यह स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग। शरीर के लिंग नहीं, हों! अन्तर के भाव-लिंग की बात है। शरीर जो यह पुरुष का है, स्त्री का है, वह तो जड़ की पर्याय है। यह तो अन्दर स्त्रीलिंग की वासना का विकल्प, स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग वह पर्याय में है अवश्य। नारकी जीव, श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष (की स्थिति है) क्षायिक समकित है, परन्तु हैं नपुंसक। आहाहा! सब नारकी नपुंसक है। स्त्री-पुरुषवेद वहाँ नहीं है। आहाहा!

असंयमी के प्रकार बहुत हैं, इन्द्रिय का असंयम, मन का असंयम, राग का असंयम, कषाय का असंयम- ये सब असंयम सामान्यरूप से एक हैं। अन्तर्भेदरूप से बहुत हैं ये सब। आत्मद्रव्य है भगवान आत्मा, उसमें तो इनका स्पर्श नहीं। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप का जहाँ स्पर्श करता है। सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु का स्पर्श करता है। नियमसार में एक कलश में पाठ है। स्पर्श, स्वरूप का स्पर्श। स्पर्श का अर्थ स्वरूप का अनुभव। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्दमूल.. आहाहा! कन्द का मूलस्वरूप है, वह कन्दमूल अर्थात् वैसा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, ऐसा मूल वह है। उसका स्पर्श करना, उसका स्पर्श-वेदन (करना), सम्यग्दर्शन से स्पर्श करना, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी जिसे स्पर्श करे, उस चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? कबीर और कितने ही अन्यमतियों ने निश्चय की बहुत बातें की हैं। वे दुकान पर पढ़ी थी। वह वस्तु नहीं। आज भाई लाये थे। हसमुख का लड़का राजू है न? वह टुकड़ा लाया था 'कहत कबीरा सुनो मेरे साधु...' ऐसा लिखा था परन्तु वह पुस्तक तो हमने (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में दुकान पर पढ़ी थी। पूरी पढ़ी थी। कबीर की बहुत बड़ी पुस्तक है। वह नहीं। वह मार्ग नहीं। आहाहा!

यहाँ तो पर्याय में वेद है, कषाय है। है, तथापि द्रव्यस्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया? अकेला आत्मा पवित्र ही है और पर्याय में अपवित्रता है ही नहीं—ऐसा नहीं है। संसार है—शुभ-अशुभपरिणाम वह संसार अपवित्रता है। वह पर्याय में अपवित्रता है, परन्तु त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में उसका प्रवेश नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय है। सम्यग्दर्शन द्रव्य को स्वीकार करता है। आहाहा! सबेरे अन्त में आयेगा। आता है न सबेरे? उसमें आगे आयेगा। सकल निरावरण। प्रभु तो अन्दर सकल निरावरण है।

द्रव्य सत्व भगवान परमात्मा पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसे कोई आवरण है ही नहीं। वह एक समय की पर्याय में राग और कर्म के निमित्त का आवरण ज्ञात होता है; वस्तु में नहीं है। आहाहा! सकल निरावरण। यहाँ तो कहते हैं आठ कर्म से आत्मा रुका है। वह तो पर्याय की बात है, प्रभु! वस्तु है, वह तो त्रिकाली आनन्द का नाथ तत्त्वस्वरूप, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं; पर्यायमात्र मैं नहीं। आहाहा! यह तो दृष्टि की अपेक्षा से बात है। दृष्टि के ध्येय की अपेक्षा से बात है परन्तु पर्याय में है ही नहीं, (ऐसा माने)... नहीं है तो निषेध किसका? गधे के सींग नहीं होते तो निषेध किसका? आकाश के फूल नहीं तो निषेध किसका? समझ में आया? वैसे पर्याय में यह बात है ही नहीं तो निषेध किसका? पन्नालालजी! बहुत सूक्ष्म बात है।

**मुमुक्षु :** .......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, इस सूक्ष्म का अर्थ अपूर्व है। सूक्ष्म की व्याख्या (यह है कि) अपूर्व है। अपूर्व कहने पर इसके ध्यान में बराबर बहुत लक्ष्य हो तो यह बात समझ में आती है। आहाहा! अनन्त बार ग्यारह अंग पढ़ा, वह भी परज्ञेयनिष्ठ है। आहाहा! स्वज्ञेय परमात्मा में तो केवलज्ञान की पर्याय का अभाव है तो फिर शास्त्रज्ञान का तो उसमें अभाव है ही। आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी!

**असिद्धत्व एक;...** असिद्धत्व। चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धत्व है। आहाहा! चौदहवाँ गुणस्थान पाँच अक्षर रहे, वहाँ तुरन्त मुक्ति होती है, परन्तु जब तक चौदहवाँ गुणस्थान पाँच अक्षर हैं*, तब तक असिद्ध है। आहाहा! वह सिद्ध नहीं। केवलज्ञानी परमात्मा को तेरहवें गुणस्थान में कम्पन है। वह कम्पन छूटकर चौदहवें गुणस्थान में अकम्पन हुआ परन्तु अभी चार गुण जो हैं, उनकी विपरीत पर्याय वहाँ चौदहवें में है। आहाहा! अघाति की चार पर्याय है, उनकी विपरीतता वहाँ चौदहवें में है। इस अपेक्षा से वहाँ असिद्धत्व है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि असिद्ध है। पर्याय में, हों! समकिती भी असिद्ध है। तेरहवें गुणस्थान में केवली भी असिद्ध है। अरे! जो कम्पन छूटकर चौदहवें गुणस्थान में गये तो भी असिद्ध है। यह तो समय-समय का विवेक-विचार है। वह असिद्धत्व है, परन्तु वह द्रव्य में नहीं। पर्याय में तो चौदहवें गुणस्थान तक है। आहाहा! डाह्यभाई! आहाहा! वे केवली किसी का

विनय करे, यह वस्तु में नहीं है। कम्पन है। किसी का विनय करे, यह तो विकल्प है। वह तो केवली को होता ही नहीं। सर्वज्ञ में असिद्धत्व है परन्तु वे किसी का विनय करे—ऐसा असिद्धत्व उनमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा केवली, गुरु का विनय करे, यह है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ असिद्धत्व। पहले गुणस्थान से चौदहवें (गुणस्थान) तक असिद्धत्व है। आहाहा! तथापि वह असिद्धत्व की पर्याय, सिद्धत्व की पर्याय हुई नहीं तो वह असिद्धत्व स्वरूप में नहीं। वास्तव में तो सिद्ध की पर्याय है, वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं। गजब बात है। यहाँ तो उदयभाव की व्याख्या करनी है, इसलिए सिद्ध नहीं लिया। वह सिद्ध क्षायिकभाव में गया। आहाहा! केवलज्ञान की, सिद्ध की पर्याय क्षायिकभाव भी द्रव्य / वस्तु में नहीं है, वह तो एक समय की पर्याय है। उत्पन्न हो, वह पर्याय है। द्रव्य-गुण कहीं उत्पन्न नहीं होते। द्रव्य-गुण तो शाश्वत् अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सिद्धान्त हैं। बहुत कठिन।

**असिद्धत्व एक;...** एक लिया है। है तो असिद्धत्व का प्रकार। क्योंकि चार अघाति के कारण से चार विपरीतता है। उन चारों की विपरीतता है, परन्तु असिद्धत्वरूप से, एक और भेदरूप से चार। आहाहा! इस भगवन आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु में असिद्धत्व का अभाव है। आहाहा! अरे! जड़, शरीर, वाणी, मन का तो अभाव; दया, दान के विकल्प का भी अभाव है। असिद्धत्व जो चौदहवें (गुणस्थान) में है, उसका भी द्रव्य में अभाव है, परन्तु द्रव्य में अभाव है तो पर्याय में असिद्धत्व नहीं है-ऐसा नहीं है। आहाहा! कठिन काम है।

**शुक्ललेश्या,...** पहली कृष्ण, नील, कापोत (लेश्या) नहीं ली। क्योंकि मुनि टीका करनेवाले हैं न, तो मुनि शुक्ल आदि लेश्या। वरना तो पहले कृष्ण, नील, कापोत, तेज—ऐसा लेना चाहिए। आहाहा! गजब बात है। कहते हैं कि हमारे में शुक्ललेश्या होती है। मुनि हैं। वे शुक्ललेश्या से हम कहते हैं कि शुक्ल, पद्म और तेज, यह शुभभाव है, यह हमारी चीज़ में नहीं है। पर्याय में है। शुक्ललेश्या है तो शुक्ललेश्या आत्मज्ञानसहित मुनिपना हो तो शुक्ललेश्या में देह छूटे तो वे छठवें देवलोक में जाते हैं। छठे से नौवें ग्रैवेयक तक जाते हैं। शुक्ललेश्या के इतने प्रकार हैं। पाँचवाँ ब्रह्मलोक देव, छठा वान्तक.. मरते हुए शुक्ललेश्या हो वे मरकर छठवें से नौवें ग्रैवेयक में जाते हैं। मिथ्यादृष्टि, हों! और

सम्यग्दृष्टि की शुक्ललेश्या हो तो वे छठे से सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं, क्योंकि सर्वार्थ में वह शुक्ललेश्या है। विजय, जयन्त, वैजयन्त, अपराजित आदि हैं न? शुक्ललेश्यावाले वहाँ जाते हैं। आहाहा! वे दो सर्वार्थसिद्धि में गये, दो पाण्डव। नकुल और सहदेव। शत्रुंजय पर देह छूट गयी, परन्तु वहाँ विकल्प रह गया। वहाँ मुनियों को लोहे के तमतमाते (गहने) पहनाये। स्वयं को भी पहनाये परन्तु वे बड़े हैं, एक माता के पुत्र हैं और वापिस हम साधर्मी मुनि हैं। एक जरा विकल्प आया, वहाँ आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। परन्तु कहते हैं कि वह शुक्ललेश्या और सर्वार्थसिद्धि का बन्धन—भावबन्ध, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की तो द्रव्य पर दृष्टि है। पर्याय का ज्ञान करता है परन्तु दृष्टि का विषय पर्याय नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग!

यह **शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या,...** ये हैं हलकी। तेजोलेश्या **पीतलेश्या,...** तेजो कहो या पीत कहो, यह हल्की। **कापोतलेश्या,...** यह अशुद्ध है। **नीललेश्या और कृष्णलेश्या,...** बाद में तीन लीं। पहले शुभ ली और बाद में अशुभ ली। क्योंकि मुनिराज को तो तेजो, पद्म, शुक्ललेश्या तो होती है, वर्तती है। सच्चे सन्त की बात है, हों! सम्यग्दर्शनसहित प्रभु का दर्शन हुआ है। अन्दर परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार हुआ है और तदुपरान्त स्वरूप में अतीन्द्रिय स्वाद लेने में लीनता हुई है। प्रचुर आनन्द का वेदन है, उन्हें भी तेजो आदि लेश्या के परिणाम होते हैं। नीचे की तीन लेश्या उन्हें नहीं होती। मुनियों को कृष्ण, नील, कापोत लेश्या नहीं होती। उन्हें तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या होती है। तेजो अर्थात् पीत। तो कहते हैं कि पीतलेश्या है, वह मेरे द्रव्य में नहीं। पर्याय में है, ऐसा जानते हैं। आहाहा!

**...कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या, ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह।** यह उदयभाव का वर्णन किया। वह उदयभाव जीवद्रव्य में नहीं है। परमपारिणामिक प्रभु; पारिणामिक अर्थात् सहजरूप वस्तु, जिसमें कर्म के निमित्त और निमित्त के अभाव की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा सहजात्मस्वरूप प्रभु, ऐसे पंचम भाव में यह उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव नहीं है। अरे रे! ऐसी बात! यहाँ तो अभी शरीर मैं नहीं, यह स्त्री मेरी नहीं, यह करना मुश्किल पड़ जाता है। अर..र..! उस स्त्री के विषय की रमणता में राग में एकाकार हो जाये कि उसमें से मुझे आनन्द आया, बहुत आनन्द हुआ। अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि लिंग जो पुरुषवेद है। भाव लिंग, हों! यहाँ जड़ की बात नहीं

है। वह तुझमें नहीं है तो उससे तुझे आनन्द किसप्रकार आयेगा ? वेद का विकल्प उठे, वह तो दु:ख है। आहाहा ! परमात्मा आनन्दमूर्ति प्रभु में दु:ख का अत्यन्त अभाव है। आहाहा ! जगत से निराला अपना आत्मा मानना, वह अलौकिक बात है। आहाहा !

अब **पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं...** अब वापस पारिणामिकभाव के तीन भेद। **जीवत्वपारिणामिक,...** जीवत्वपारिणामिकभाव सहज त्रिकाली है। **भव्यत्वपारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक।** भव्य जीव—अल्प काल में उसकी मुक्ति होती है। किसी को नहीं होती परन्तु मुक्ति के योग्य है, उसे भव्यत्व कहते हैं। भव्य जीव भी निगोद में अनन्त पड़े हैं, जो कभी भी त्रसपना भी प्राप्त नहीं करनेवाले हैं। आहाहा ! निगोद में ऐसे अनन्त भव्य जीव पड़े हैं कि अभी निगोद में से कभी लट हुए नहीं और होंगे भी नहीं। आहाहा ! परन्तु उन्हें भव्यत्व कहने में आता है। मोक्ष के योग्य, ऐसा कहने में आता है। योग्यता प्रगट करे नहीं, वह दूसरी बात है। आहाहा ! परन्तु वह भव्यत्वपना भी जीवद्रव्य में नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? अभव्यत्व उसमें नहीं है।

**यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;...** यह क्या कहते हैं ? भव्य जीव और अभव्य, दोनों में जीवत्वशक्ति समान है। वह परम-पारिणामिकभाव से दोनों में समान शक्ति है। अभव्य की पारिणामिकभावशक्ति कम है और भव्य की पारिणामिकशक्ति विशेष है, ऐसा कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

यह प्रश्न एक बार (संवत्) १९८५ के वर्ष में सम्प्रदाय में बहुत हुआ था। एक मोहनलालजी थे, उन्होंने पुस्तक बनायी थी। मोहनलालजी ! उसमें उन्होंने ऐसा लिखा था, भव्य जीव को समकिती है, उसे भी तीन भाव होते हैं मिथ्यात्व, मिश्र और समकित (मोहनीय)। परन्तु अनादि का अभव्य है, उसे दो ही भाव हैं। मिथ्यात्व और मिश्र। समकित मोहनीय नहीं होता। अभव्य को अकेला मिथ्यात्व है। मोहनमाला (नाम की) पुस्तक बनायी थी। १९८० की बात है। हमें भेजी थी। उनकी दीक्षा को तो बहुत वर्ष हुए। (हमने) कहा, तुम्हारी यह बात मिथ्या है।

अभव्य और भव्य दोनों को मिथ्यात्व का एक ही प्रकार है। मिश्र और समकितमोहनीय तो सम्यग्दर्शन होने के बाद होता है। भव्य जीव मोक्ष जाने के योग्य है, इसलिए उसे समकितमोहनीय है, मिश्र है, ऐसा तुमने लिखा है, यह बात मिथ्या है, कहा। मोहनलालजी ! ५०-५० वर्ष की दीक्षा। तब मेरी दीक्षा छोटी (थोड़े समय की) परन्तु मेरे सामने बोल नहीं

सकते थे। दवाब हो जाये न सबको, कि इनका मानेंगे, तुम्हारा नहीं मानेंगे। कानजीस्वामी की ऐसी प्रतिष्ठा है। थोड़ा-थोड़ा बोलने लगे। मणिलालजी थे। महाराज! सुनो। कानजी मुनि कहते हैं वह सुनो। सामने इनकार मत करो। यह तो १९८५ की बात है। पन्द्रह वर्ष की दीक्षा।

बापू! आत्मा में अनादि से अभव्य जीव को पच्चीस प्रकृति और छब्बीस प्रकृति है। मोहनीय की छब्बीस प्रकृति है, तब उन्होंने लिखा कि सत्ताईस है। क्योंकि भव्य है इसलिए। और अभव्य (मोक्ष) नहीं पायेगा, इसलिए अकेला मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अनादि से मिथ्यात्व एक ही है। भव्य हो या अभव्य हो। आत्मज्ञान होने के बाद मिथ्यात्व के तीन टुकड़े होते हैं—मिथ्यात्व, मिश्र और समकित-मोहनीय। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! हमारे तो बहुतों के साथ चर्चा होती है न! यहाँ तो हम सत्य के अभिलाषी हैं। हम ऐसी कोई कल्पना से तुम कहो, वह बात हम नहीं मानेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;...** जीवत्वशक्ति दोनों को समान है। यह क्या कहा? भव्य या अभव्य। 'सिद्धसमान सदा पद मेरौ' दोनों सिद्धसमान हैं। अभव्य भी अन्दर सिद्धसमान है। आहाहा! वह तो पर्याय में उल्टा पुरुषार्थ है, बाकी स्वभाव तो अभव्य का भी (सिद्धसमान ही है)। एक प्रश्न बहुत चला था कि अभव्य को मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय और अवधिज्ञानावरणीय तीन प्रकृति है, पाँच प्रकृति नहीं। तो मिश्रमोहनीय का प्रश्न उठा। (संवत्) १९८५ के वर्ष की बात है। अभव्य को तीन आवरण हैं, मति आवरण, श्रुत आवरण, अवधि आवरण। मन:पर्यय और केवल (ज्ञान-आवरण) दो आवरण नहीं हैं—ऐसा उन्होंने मोहनमाला पुस्तक में लिखा। मैंने कहा, मिथ्या बात है। अभव्य को भी केवलज्ञानावरणीय है। उसे केवल (ज्ञान) प्रगट नहीं होता, इसलिए केवलज्ञानावरणीय नहीं है, (ऐसा नहीं है)। यह यहाँ कहते हैं कि अभव्य और भव्य दोनों को जीवत्वशक्ति पारिणामिकभाव से पूर्ण है। समझ में आया? उसमें तो आवरण है ही नहीं। आहाहा! और आवरण है तो पर्याय में पाँच आवरण है। अभव्य को तीन आवरण और भव्य को पाँच आवरण, (ऐसा नहीं है)। क्योंकि अभव्य

मोक्ष नहीं जाते, इसलिए तीन आवरण है; भव्य मोक्ष जाता है तो पाँच आवरण है, तो पाँच को टालकर जाता है, (ऐसा नहीं है)।

यह यहाँ कहते हैं। **जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;...** है ? भव्य और अभव्य को जीवत्वपारिणामिकस्वभावभाव है–वह समान है। भव्य को आवरण कम है और अभव्य को विशेष आवरण है, यह तो पर्याय की अपेक्षा से है; वस्तु में नहीं। भव्य और अभव्य दोनों समान हैं। आहाहा! यह अभव्य का जीव भी परमपारिणामिकभाव से पूर्ण आनन्द का कन्द है। यह जीवत्वशक्ति अर्थात् पूर्ण त्रिकाली भाव लिया। त्रिकाली भाव पूर्ण परमात्मा है। वह तो प्रगट नहीं होता। वह तो पुरुषार्थ की उल्टी दशा है। समझ में आया ? आहाहा! यह कहते हैं कि **भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;....**

**भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;...** भव्य जीव में अभव्यत्व पारिणामिक होता है और वह भव्यत्वपारिणामिक सिद्ध में नहीं है। क्या कहा ? भव्यजीव सिद्धपद को प्राप्त करता है। वह भव्य। सिद्धपद प्राप्त हुआ वहाँ भव्यपना नहीं रहा। जरा सूक्ष्म बात है। वैसे पारिणामिकभाव कहा तो कोई कहे कायम रहे, ऐसी बात नहीं। सिद्ध हुए तो भव्यत्वपारिणामिकभाव नहीं रहता। सिद्ध में भव्य-अभव्य नहीं है। आहाहा! हमारे तो लोगों के साथ बहुत चर्चा चलती थी।

यहाँ तो कहते हैं कि **भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;...** जब तक सिद्ध नहीं, तब तक (होता है)। जब वह भव्य जीव आत्मा का अनुभव करके मुक्ति को प्राप्त करता है तो सिद्ध में भव्य-अभव्य तो नहीं परन्तु भव्यपना नहीं। भव्यता का अर्थ योग्यता और लायकात है। तो लायकात पूर्ण हो गयी। आहाहा! अब ऐसी बातें। यह समझे बिना ऐसा का ऐसा क्रियाकाण्ड करे—दया पालो, व्रत करो, अपवास करो। कर्ताबुद्धि है, मिथ्यात्व है; तथापि वह द्रव्यस्वभाव में नहीं, पर्याय में है। आहाहा! **अभव्यत्व-पारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है। इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया।**

अब क्षायिकभाव जो कहा, वह आत्मा में भले है नहीं, परन्तु है किसे ? क्षायिकभाव है, परन्तु आत्मा में नहीं। परन्तु क्षायिकभाव की पर्याय किसे होती है ? **पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है।** क्या कहते हैं ? **पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है।** भगवान आत्मा त्रिकाली कारणसमयसार है। वस्तु है, वह तो

कारणसमयसार है, वह पारिणामिकभाव से है, परन्तु क्षायिकभाव का केवलज्ञान हुआ, वह पारिणामिकभाव, वह कार्यसमयसार। उसे पारिणामिक कहते हैं, परमपारिणामिक नहीं। परमपारिणामिक तो द्रव्य है। जयधवल में पर्याय को पारिणामिक कहा है।

यहाँ कहते हैं कि **कार्यसमयसारस्वरूप है। वह ( क्षायिकभाव ) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतु...** आहाहा! किसे होता है, ऐसा कहते हैं। ***खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।*** आहाहा! उसे क्षायिकभाव है, ऐसा कहते हैं। है? **प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले...** यहाँ तो तीर्थंकर लिये हैं। केवली सामान्य नहीं लिये। **तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त...** भगवान आत्मा सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त पर्याय है। जैसा सकल-विमल द्रव्यस्वभाव है, वैसा पर्याय में सकल-विमल ज्ञानस्वभाव प्रगट हो गया। आहाहा!

**सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को...** तीर्थंकरनाथ। नाम मुख्यरूप से दिये। **( तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को )...** ऐसे तो तीर्थंकर नाम दिया है। पढ़ते थे, तब विकल्प आया था कि कदाचित् ये पद्मप्रभमलधारिदेव भविष्य में तीर्थंकर होंगे या नहीं? यह लिखा है। यह तो पहले पढ़ा था, तब ख्याल आया था। यह तीर्थंकर प्रकृति अकेली क्षायिक में क्यों डाली? गौणरूप से केवलज्ञान लिया, मुख्यरूप से यह लिया। ये पद्मप्रभमलधारिदेव स्वर्ग में गये हैं। वहाँ से (निकलकर) कदाचित् तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले होंगे। आहाहा! ऐसा अन्दर से आया था। समझ में आया? परन्तु फिर हमारा भी ऐसा ही है। यहाँ भी तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले हैं। सामान्य केवली नहीं। प्रभु! बात कुछ सूक्ष्म है, प्रभु! यह तो अन्तर की बात है। समझ में आया? पद्मप्रभमलधारिदेव के लिये ऐसा आ गया। यह बात है। आहाहा!

कहते हैं कि **सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को ( तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को ) अथवा सिद्धभगवान को होता है।** केवलज्ञान तीर्थनाथ को होता है, सामान्य केवली को होता है और सिद्ध को होता है। **औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं;...** उदय, उपशम, क्षयोपशम। क्षायिक है, वह तीर्थंकर को, केवली को और सिद्ध को होता है। और यह अस्ति वापस सिद्ध करनी है। निषेध किया, परन्तु है किसे? आहाहा! यह औदयिक नाम यह भेद लिये न? उदय

के भेद लिये न ? उदयभाव के इक्कीस भेद पढ़ गये न ? और क्षयोपशम के अठारह भेद, उपशम के दो भेद। आहाहा! ये **औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं;...** आहाहा! क्षयोपशम समकित हो, उपशम समकित हो, तो भी संसार है। असिद्ध है न ? पर्याय में असिद्ध है न ? आहाहा!

अब जरा सूक्ष्म बात आती है। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! चार भाव आवरण संयुक्त। इसका अर्थ कि आवरण का निमित्त था और उसका अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा से, **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! यह क्षायिकभाव भी आवरणसंयुक्त है। आवरणसंयुक्त का अर्थ ? आवरण था, उसका अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा रही। आहाहा! आवरणसंयुक्तपना कहा। भगवान को तो चार घाति का आवरण है नहीं। आहाहा! सिद्ध को भी है नहीं।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु आवरण पहले था, उसका अभाव हुआ, यह पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य में तो कोई आवरण ही नहीं। वह तो त्रिकाली निरावरण है। इस अपेक्षा से लिया है। वस्तु त्रिकाली निरावरण है, तो क्षायिकभाव, आवरणवाले का अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा से आवरणवाला कहने में आया है। ऐसी बात है। वीतरागमार्ग बहुत गम्भीर, भाई! आहाहा!

वह **मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** आहाहा! भगवान आत्मा क्षायिकभाव से रहित त्रिकालीनिरुपाधि... आहाहा! **जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** निरंजन—मैल नहीं, आवरण नहीं। आवरण के अभाव की अपेक्षा नहीं। **निज परम पंचम भाव ( पारिणामिकभाव की ) भावना से...** इस पारिणामिकभाव की भावना से। इस भावना में क्षायिकभाव आदि आये, परन्तु क्षायिकभाव की भावना से-ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने एक समय में एक पर्याय में-ज्ञान में तीन काल-तीन लोक (ज्ञात होते हैं), भाई! यह मार्ग कोई अलौकिक है। इसे समझना और फिर द्रव्य / आत्मा का अनुभव (होना), वह अलौकिक बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि क्षायिकभाव है, वह भी है तो मुक्ति। केवली हैं तो भावमुक्ति है।

फिर चार कर्म का अभाव होगा, तो द्रव्यमुक्ति होगी, तथापि कहते हैं, यह तो पर्याय की बात है। उस पर्याय के आश्रय से मुक्ति नहीं होती, इससे मुक्ति का कारण नहीं है। **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** त्रिकाल निरुपाधि भगवान, जिसमें पर्याय का भी अभाव है। क्षायिकभाव में जो आवरण का अभाव होकर क्षायिक पर्याय हुई, इस अपेक्षा से आवरणवाला कहकर त्रिकाली वस्तु निरावरण भगवान अन्दर है, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय वहाँ है, (ऐसा कहा)। आहाहा! ऐसा मार्ग!

**त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** समझ में आया? **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** उपाधि है या नहीं है, इसकी अपेक्षा नहीं। **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** वापस शब्द क्या लिये हैं? **निरंजन निज परम पंचम भाव...** भगवान को पंचम भाव है तो भले हो। यह निज परम पंचम भाव। **निज परम पंचम भाव...** परम क्यों कहा? (इसलिए कहा) कि उदय, क्षायिक को जयधवल में पारिणामिकभाव कहा है, तो त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय है न? क्या कहा? जयधवल ग्रन्थ शास्त्र है, उसमें चार भाव को पारिणामिक कहा है और त्रिकाली को परमपारिणामिक कहा है। राग को पारिणामिक कहा, मिथ्यात्व को पारिणामिक कहा। उस त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय गिनकर पारिणामिकभाव कहा। यहाँ तो वह नहीं। यहाँ तो परमपारिणामिकभाव। है? आहाहा! उसकी भावना। भावना शब्द से उस ओर की एकाग्रता। उस भावना में तो क्षयोपशम, उपशम, क्षायिकभाव होता है। भावना, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। क्षायिकभाव की, क्षयोपशमभाव की... आहाहा! उसकी भावना में पंचमभाव की भावना है। उस क्षायिकभाव की भावना नहीं। समझ में आया? आहाहा! **भावना से पंचम गति में मुमुक्षु...** क्या कहा? **परम पंचम भाव ( पारिणामिकभाव की ) भावना से पंचम गति में मुमुक्षु ( वर्तमान काल में ) जाते हैं,...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में। **( भविष्य काल में ) जायेंगे...** किस प्रकार? परम पंचम भाव की एकाग्रतारूप भावना। क्षायिक और उपशम की भावना नहीं। (भाव) है अवश्य। पंचम भाव की भावना में क्षायिकभाव है, परन्तु उसकी भावना नहीं। भावना पंचम भाव की है। आहा..!

**मुमुक्षु :** भावना का अर्थ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** भावना अर्थात् एकाग्रता। द्रव्य के ओर की एकाग्रता। परन्तु वह

एकाग्रता पंचम भाव में है। एकाग्रता है, वह उत्कृष्ट क्षायिकभाव है। एकाग्रता क्षयोपशमभाव भी है, परन्तु वह एकाग्रता द्रव्य में है। वह पर्याय में एकाग्रता नहीं है। विशेष आयेगा....

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

---

**प्रवचन-४२, श्लोक ५८-५९, गाथा-४१-४२, रविवार, श्रावण शुक्ला ७, दिनांक १७-०८-१९८०**

---

नियमसार, अन्तिम पैराग्राफ है न ? फिर से लेते हैं। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से...** आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना में द्रव्यस्वभाव की दृष्टि की है तो दृष्टि करने को कहा है। इसके बिना सब पर्याय... यहाँ तो चार भाव आवरणसंयुक्त ( कहा है ) । आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे तो उदयभाव हैं, विकार हैं, भोगी के भोग का मूल है। यह अब आयेगा। आहाहा ! वह कोई धर्म नहीं। तथा उसके आश्रय से-कारण से शुभ करते-करते धर्म होगा, ऐसा नहीं, परन्तु तीन भाव जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक हैं, वह पर्याय है। पर्याय में निमित्त की अपेक्षा और निरपेक्षता आती है तो इतनी अपेक्षा है तो चार भाव को आवरणसंयुक्त कहा है अथवा क्षायिकभाव की पर्याय-दशा हो परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। ऐसी बात है, भाई ! आहाहा ! शरीर की क्रिया तो कहीं रह गयी। अन्दर व्रत, तप, भक्ति के परिणाम तो कहीं रह गये। सूक्ष्म बात है, भाई ! मूल बात जैनदर्शन की कोई अलौकिक है। आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि चार भाव अर्थात् उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। इस क्षायिक में तो केवलज्ञानादि नवलब्धि। नवलब्धि ( आ गयी ) । आहाहा ! वह भी पर्याय है। जिसे दृष्टि करनी है, उसे पर्याय पर लक्ष्य करना नहीं। आहाहा ! जिसे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली शुरुआत करनी हो, उसे तो चार भाव से रहित अन्दर ज्ञायकभाव पूर्णानन्द प्रभु का आश्रय करने से दृष्टि होती है। आहाहा ! कठिन बात है।

साधारण प्राणी भले छह खण्ड के राज्य में हो परन्तु वह समकिती है तो उस समकिती की दृष्टि द्रव्य पर है। वह अखण्ड को साधता है। आहाहा ! बाह्य छह खण्ड को तो साधता नहीं, परन्तु पर्याय खण्ड है और भेद है, उसे भी नहीं साधता। आहाहा ! समझ में आया ? चार भाव का लक्ष्य छोड़ना क्योंकि वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये (यह शास्त्र) बनाया है। तुम सुनो, तुम्हें योग्य लगे तो ग्रहण करो। आहाहा! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ का कहा हुआ मार्ग मुझमें है, परन्तु मेरी भावना द्रव्यस्वभाव पर है। आहाहा! दूसरी चीज़ पर्याय होती है, राग होता है, राग का निमित्त भी होता है, अन्दर में कर्म निमित्त हों, बाहर में भगवान की प्रतिमा आदि हो परन्तु वह कोई आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! है, परन्तु आश्रय करनेयोग्य तो त्रिकाली भगवान चैतन्य का विलास, सहजात्म-स्वरूप का विलास जो आत्मा, सहज चैतन्य का विलासस्वरूप प्रभु है। आहाहा!

त्रिकाली द्रव्य जो है, वह सहज चैतन्य के विलासस्वरूप, चैतन्य के आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा पूर्ण है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। चारित्र तो अभी बाद में है, बापू! सम्यग्दर्शन... आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय करके प्रथम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। पश्चात् द्रव्य का विशेष आश्रय करने से चारित्र उत्पन्न होता है। सम्यग्दर्शन की पर्याय के आश्रय से चारित्र नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? इस कारण इन चार भाव को आवरणसहित कहा है। आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं, इस कारण से (ऐसा कहा है)।

**त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** आहाहा! भगवान द्रव्यवस्तु अन्दर है। वह त्रिकालनिरुपाधि है। जिसमें उपाधि, कर्म का निमित्त और राग की उपाधि अन्दर है ही नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के परिणाम वे उपाधि हैं, वे वस्तु में नहीं हैं। आहाहा! निरुपाधि भगवान आत्मा, जिसका स्वरूप ही निरुपाधि है। **ऐसे निरंजन...** जिसमें अंजन अर्थात् मैल / रागादि का भी अभाव है। **निज परम पंचम भाव...** आहाहा! सबेरे आया था न? कि मोक्ष की पर्याय को भी द्रव्य नहीं करता। आहाहा! गजब बात। दया, दान, राग का कर्ता तो आत्मा नहीं और जो कर्ता माने, वह आत्मा नहीं; वह तो अनात्मा है। आहाहा! बात कठिन लगे, भाई!

यहाँ कहते हैं, **निरंजन निज परम पंचम भाव...** त्रिकाली निरंजन। ऐसे तो शुद्धात्मा की बात तो वेदान्त भी बहुत करता है। कबीर में भी बहुत बात आती है परन्तु यह (बात) नहीं है, ऐसी नहीं। सब एकान्त की बात है। आहाहा! यह तो परमात्मा एक समय में सेकेण्ड के असंख्य भाग में पारिणामिकस्वभावभाव वर्तमान में पूर्ण है। त्रिकाली की अपेक्षा से तो बाद में। वर्तमान में ही पूर्ण है। परमात्मा अनन्त गुण का कन्द / खान वर्तमान

में ही परमपारिणामिकभाव पूर्ण है। ऐसे परमपारिणामिकभाव की... देखो! आहा..! **भावना से...** क्षायिकभाव की भावना से और उदयभाव की भावना से नहीं। दया, दान, व्रत, की भावना से आत्मा का सम्यग्दर्शन होता है... आहाहा! या चारित्र होता है, ऐसा नहीं है। चाहे तो पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले परन्तु वह सब राग है। आहाहा! उसके आश्रय से भावना नहीं होती। आहाहा!

भावना तो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय है परन्तु उस उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय के आश्रय से वह भावना नहीं होती। ऐसी बात अब। कहाँ लोगों को... पंचम पारिणामिकस्वभाव भगवान आत्मा की भावना से। भावना शब्द से चिन्तन और कल्पना, वह नहीं। परमभाव परमात्मा द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता, उसे ध्येय बनाकर... आहाहा! वस्तु के स्वभाव को ध्येय बनाकर अन्तर में एकाग्र होना, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह द्रव्य में एकाग्र होने से होती है। आहाहा! अरे! लोगों को निवृत्ति कहाँ? अन्दर यह मूल चीज़।

वैसे तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' छहढाला में आता है। छहढाला, 'मुनिव्रत धार...' अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत। इसके लिये चौका बनाकर आहार (बनाया हो तो) तीन काल में ले नहीं। प्राण जाये तो भी एक पानी की बूँद इसके लिये तैयार की हो तो ले नहीं, ऐसी तो जिसकी क्रिया थी। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। समझ में आया? आहाहा! वहाँ पंच महाव्रत निरतिचार (पालन किये) परन्तु वह सब राग है। मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पे निज आतमज्ञान बिना लेश... आत्मज्ञान, राग से भिन्न भगवान ऐसा त्रिकाली आत्मा, आत्मज्ञान का अर्थ गुण का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान- ऐसा नहीं। निमित्त का ज्ञान, राग का ज्ञान, वह तो नहीं परन्तु पर्याय का ज्ञान और गुणभेद का ज्ञान, वह भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो, यह छहढाला में आता है न? आत्मज्ञान बिन... आत्मा जो चिदानन्द प्रभु है, उसे स्पर्श करना... आहाहा! उसका अनुभव करना। ऐसी चीज़ भावस्वरूप जो त्रिकाल है, उसमें एकाग्रतारूपी भावना करना। ऐसी बात है।

उस **भावना से पंचम गति में...** मोक्ष में उस भावना से **मुमुक्षु ( वर्तमान काल में ) जाते हैं,...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं। त्रिलोकनाथ परमात्मा (विराजते

हैं)। उनकी उपस्थिति में सन्त, आत्मध्यानी, ज्ञानी, अन्तर पंचम भाव की भावना से अभी भी मोक्ष अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त करते हैं परन्तु वह भाव यह। व्यवहार करते-करते सम्यग्दर्शन होता है और मोक्ष होता है या पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन और ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अरे! यह समझने की दरकार भी नहीं। है अन्दर?

**पंचम भाव की भावना से पंचम गति...** आहाहा! पंचम गति अर्थात् सिद्ध / मोक्ष। **मुमुक्षु ( वर्तमान काल में )...** मुमुक्षु उन्हें कहते हैं, जिन्हें परमानन्दस्वरूप भगवान आत्मा की भावना से परम आनन्दस्वभाव से प्रगट हुआ है और वह उपादेय त्रिकाल आत्मा को मानता है। पर्याय को भी उपादेय नहीं मानता, हेय मानता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले आ गया। समकिती संवर, निर्जरा और मोक्ष पर्याय को परद्रव्य मानता है। शरीर, वाणी, मन, पैसा और धूल तो कहीं परद्रव्य रह गये, उनके साथ आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है परन्तु अन्दर में राग आया, उसके साथ भी आत्मा को सम्बन्ध नहीं है परन्तु अन्दर में भावना हुई, शुद्ध परमपारिणामिकभाव की भावना हुई तो वह संवर और निर्जरा है। उस (भावना से) मुमुक्ष मोक्ष जाते हैं। है?

**मुमुक्षु ( वर्तमान काल में ) जाते हैं,...** आहाहा! परन्तु फिर भी उस पर्याय के आश्रय से नहीं, उसे (पर्याय को तो) यहाँ परद्रव्य कहा है। आहाहा! अर..र..! पैसा, शरीर, धूल तो परद्रव्य है, उसके साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय में पंचम भाव की भावना से अन्तर में संवर और निर्जरा शुद्ध आनन्द का स्वाद आया, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, उसे भी परद्रव्य कहा गया है। है? यह बात तो पहले चल गयी है। पहली ही ३८ गाथा में। सात तत्त्व परद्रव्य है। आहाहा! सबेरे भी आया था। द्रव्यस्वभाव वस्तु की द्रव्यदृष्टि कराने की बात है। लाख बार, करोड़ बार क्रियाकाण्ड करे, उसके साथ धर्म को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

यह एक ही परमात्मा पूर्ण स्वरूप से अन्दर विराजमान है, उसकी भावना अर्थात् अन्तर की एकाग्रता, उसका आश्रय करने से जो कोई सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह भी परद्रव्य है। आहाहा! उस परद्रव्य का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। परद्रव्य के आश्रय से मुक्ति नहीं होती। स्वद्रव्य पंचम भाव की भावना से मुमुक्षु को मुक्ति होती है। आहाहा! इससे चार भाव नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसे धर्मी को अपनी पर्याय में कमजोरी से राग आता

है; (नहीं आता) ऐसा नहीं है। राग होता है परन्तु वह राग बन्ध का कारण है और जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ, उस संवर, निर्जरा के आश्रय से विकल्प उत्पन्न होता है, राग उत्पन्न होता है। त्रिकाली भगवान ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप प्रभु... आहाहा! उसका आश्रय करने से निर्विकल्पता उत्पन्न होती है और उसकी भावना-एकाग्रता करने से पंचम गति में-मोक्ष में मुमुक्षु जाते हैं। यह आया न? पंचम गति अर्थात् मुक्ति। पंचम भाव की भावना से पंचम गति को (प्राप्त करते हैं)। भाषा तो सादी है, भाव तो बहुत गम्भीर, भाई! अरे रे! जिन्दगी चली जाती है, उसमें यह बात अन्तर में दृष्टि नहीं की तो चौरासी के अवतार में भटक मरेगा, नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

वर्तमान काल में पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं। भले यहाँ (से) नहीं (जाते) परन्तु महाविदेह में वर्तमान में पंचम भाव की भावना से, त्रिकाल पंचम भाव की भावना वर्तमान एकाग्रता से मुमुक्षु जीव मोक्ष में जाते हैं। आहाहा! **( भविष्य काल में ) जायेंगे...** भविष्य, जो वर्तमान से अनन्त काल है, तो उस सबमें एक ही सिद्धान्त है। पंचम भाव भगवान पूर्णानन्द को पकड़कर एकाग्रता होने से भविष्य में भी पंचम गति को प्राप्त करेंगे। आहाहा! **और ( भूतकाल में ) जाते थे।** अनन्त काल व्यतीत हुआ, उसमें भी जो मोक्ष में गये, वे अन्तर स्वभाव जो पूर्णानन्द प्रभु है, उसमें एकाग्र होकर (उसे) ध्येय बनाकर लीन होते हैं। भूतकाल में भी **पंचम भाव की भावना से पंचम गति में मुमुक्षु जाते हैं,...** आहाहा! यह कैसा मार्ग! एक ओर मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालना। कौन निकाले? सुन तो सही! यह तो सब जड़ की क्रिया होनी होती हैं, वे होती हैं। क्या आत्मा निकाल सकता है? आहाहा! क्या आत्मा मन्दिर बना सकता है? आत्मा राग बनाता (करता) है, ऐसा मानना वह भी मिथ्यादृष्टि का कर्तव्य है तो पर को मैं कर्ता हूँ, मैं मन्दिर बनाता हूँ, यह तो महामिथ्यादृष्टि है। गृहीत मिथ्यादृष्टि। पहला अगृहीत है। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा में यह लिया है। उसका अर्थ टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि करते हैं। **( भविष्य काल में ) जायेंगे और ( भूतकाल में ) जाते थे।** भूतकाल में इस पंचम भाव की भावना से मोक्ष में गये हैं। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली जो मोक्ष में गये, वे सब परमात्मस्वरूप त्रिकाल... 'घट घट अन्तर जिन बसै' वह परमात्मस्वरूप, जिन वीतरागस्वरूपी प्रभु आत्मा है। उस परमात्मा का आश्रय करने से,

एकाग्र होने से भूतकाल में भी मोक्ष गये हैं, वर्तमान में भी जाते हैं और भविष्य में भी जायेंगे। आहाहा!

एक मार्ग है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' दो नहीं। यह एक ही पन्थ है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह श्रीमद् की आत्मसिद्धि में आता है। आहाहा! अरे! सुनने को मिले नहीं और इस जगत के रस में घुस गया। आहाहा! पैसा.. पैसा.. पैसा.. नहीं कहा था। दो अरब और चालीस करोड़। मुम्बई में अभी एक सेठ आया था। चिमनभाई! वैष्णव है, पचास करोड़ रुपये। व्याख्यान में आया था। बड़ा नाम सुनकर आवे परन्तु कुछ जँचे नहीं। पचास करोड़। उसका क्या नाम? रामदास।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठ नहीं कहना महाराज के पास, ऐसा कि लोग सेठ कहते हैं। ऐसा कहे रामदास सेठ मुझे नहीं कहना। महाराज! आपके पास हम सेठ कहाँ हैं? घर की सब महिलायें श्वेताम्बर जैन। घर में सब स्त्रियाँ, लड़के की बहू, सब श्वेताम्बर जैन और लड़के तथा वे सब वैष्णव। पचास करोड़, और दो, चार, पाँच बहुत करोड़ की तो आमदनी है। एक तो अपने यहाँ भी है न जामनगर में? जामनगर में एक है न? अपने रामजीभाई का पुत्र नौकर है। यहाँ व्याख्यान में आया था। उसका क्या नाम? नाम भूल गये। साढ़े तीन करोड़ की एक वर्ष की आमदनी है। धूल। आमदनी, हों! अभी बढ़ानेवाला है। एक वर्ष की पाँच करोड़ की आमदनी का व्यापार बढ़ानेवाला है। धूल में भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं तुझे क्षयोपशम, संवर, निर्जरा हुई, उसका आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है, क्योंकि वह पर्याय है। कठिन बात, बापू! जैनधर्म में अभी तो गड़बड़.. बस! यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो.. व्रत करो, तप करो, अपवास करो.. करना.. करना.. करना.. यह करना, वह मरना है। मैं करूँ, राग का कर्ता होता है, वह तो स्वरूप की मृत्यु करता है। आहाहा! स्वरूप तो ज्ञातादृष्टा पंचम पारिणामिकस्वभाव है, उसे राग का कर्तापना सौंपना, वह पूरे चैतन्य को विकारी बनाने जैसा है। विकारी बनाना है। आहाहा! सूक्ष्म भाव है, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ की वाणी साक्षात् परमात्मा महाविदेह में करते (कहते) हैं। महाविदेह में करते हैं, वह वाणी यह आयी है। आहाहा!

## श्लोक-५८

( अब, ४१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं— )

( आर्या )

अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः ।
सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः ।।५८।।

( वीरछन्द )

किञ्चित् भी परिग्रह प्रपञ्च बिन, पञ्चाचार सहित विद्वान।
पञ्चमगति की प्राप्ति हेतु वे सुमरें पञ्चमभाव महान॥५८॥

**श्लोकार्थ :— ( ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप ) पाँच आचारों से युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित, ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए पंचम भाव का स्मरण करते हैं।॥५८॥**

### श्लोक-५८ पर प्रवचन

अब टीकाकार के दो श्लोक।

**अञ्चितपञ्चमगतये पञ्चमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः ।**
**सञ्चितपञ्चाचाराः किञ्चनभावप्रपञ्चपरिहीणाः ।।५८।।**

**श्लोकार्थः—( ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्यरूप )...** शुद्ध चैतन्य की पर्याय, निर्मल वीतरागी पर्याय। **पाँच आचारों से...** पाँच वीतरागी पर्याय के आचरण से। **युक्त और किंचित् भी परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित,...** आहाहा! विकल्प का भी परिग्रह नहीं। शरीर का तो नहीं, आहाहा! **ऐसे विद्वान...** उसे विद्वान कहेंगे, कहते हैं। आहाहा! बाकी सब पढ़े उन्हें... आहाहा! एक विद्वान (शब्द) समयसार में आता है कि विद्वान निश्चय को, भूतार्थ को छोड़कर व्यवहार का आश्रय करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि विद्वान हैं। आया है न? श्लोक है न?

**मुमुक्षु :** भूतार्थ को तजकर।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विद्वान कहा न। विद्वान होकर निश्चय के आश्रय की बात छोड़कर व्यवहार के कर्तव्य में पड़ा है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि संसार में भटकनेवाला है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** होंगे उस काल में। भगवान के समय। कुन्दकुन्दाचार्य के समय। तब तो इसमें लिखा गया है। अब ये आचार्य महाराज यह कहते हैं। ये आचार्य नहीं परन्तु मुनि हैं। टीकाकार पद्मप्रभमलधारि मुनि हैं। तो कहते हैं कि विद्वान उसे कहते हैं... आहाहा! कि **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए...** आहाहा! सिद्धगति पंचम है। ये चार गति नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव से भिन्न सिद्धगति को प्राप्त करने... आहाहा! **पंचम भाव का स्मरण करते हैं।** भगवान का स्मरण करते हैं, ऐसा नहीं लिया। भगवान का स्मरण करे तो वह विकल्प और बन्ध का राग है, संसार जहर है। आहाहा! (समयसार) मोक्ष अधिकार में लिया है, यह शुभभाव जो आता है, वह जहर का घड़ा है। गजब बात है, भाई!

**मुमुक्षु :** शास्त्र में ऐसा आता है कि शुभ से शुद्ध होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल नहीं आता। यह तो व्यवहार का कथन है। साधन से साध्य ऐसा कथन है। व्यवहारनय का कथन है। कथन जैसे घी का घड़ा कहने में कथन है। आहाहा! वैसे यह तो कथन बताने की बात है, वस्तु ऐसी नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** तो उस कथन को मानना या नहीं मानना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** समझाने में कथन भेद आये बिना नहीं रहता। चाहे जितना अधिक बुद्धिवाला हो। आठवीं गाथा में आता है न? आत्मा को समझाना है तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र जो वीतरागी पर्याय को प्राप्त, वह आत्मा है तो यह भेद हुआ, यह भी व्यवहार हुआ। समयसार की आठवीं गाथा। समझ में आया? यह भेद भी नहीं। वह तो समझाने के लिये भेद से कथन है। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन, भाई!

अरे, अनादि काल से भटक मरता है। नरक और निगोद। निगोद के दुःख का, नरक के दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। प्रभु! तेरे नरक के एक क्षण के दुःख करोड़ों भव और करोड़ों जीभों से नहीं कहे जा सकते, प्रभु! तूने ऐसे दुःख भोगे हैं। एक इस

मिथ्याश्रद्धा के कारण ( भोगे हैं ) । श्रद्धा सुधारी नहीं । बाकी वर्तन इतना किया, महाव्रत और अणुव्रत और ऐसा, वैसा । इतना दान ( दिया ), इतनी दया, व्रत ( किये ), बारह-बारह महीने के अपवास.. आहाहा ! इन सबमें धर्म माना । ( वह तो ) मिथ्यात्व का पोषण है । समझ में आया ? यह सब नरक-निगोद का कारण है । यह अभी कलश में आयेगा ।

**परिग्रह प्रपंच से सर्वथा रहित, ऐसे विद्वान पूजनीय पंचम गति...** यहाँ मुनि को लिया है । मुनि हैं, वे तो सर्वथा परिग्रह रहित हैं । अन्दर विकल्प का भी परिग्रह नहीं । राग के परिग्रह की पकड़ नहीं । पकड़ तो ज्ञायकस्वभाव की पकड़ है । आहाहा ! त्रिकाली ज्ञायकभाव के अनुभव से मोक्ष को प्राप्त होते हैं । **पूजनीय पंचम गति को प्राप्त करने के लिए पंचम भाव का स्मरण करते हैं** । विद्वान । आहाहा ! भगवान का स्मरण करना तो छोड़ दिया । वह तो राग है, परन्तु राग का स्मरण करना, वह भी राग है; इसलिए छोड़ दिया और पर्याय का स्मरण करने पर उसमें भी राग होता है, इसलिए वह भी छोड़ दे । आहाहा ! त्रिकाली द्रव्य का स्मरण करने से पंचम गति का कारण उत्पन्न होता है । आहाहा !

दर्शनशुद्धि बहुत अलौकिक बात है । इसके बिना सब बातें चाहे जितने आचरण की और क्रिया का करे, वे सब बिना एक के शून्य हैं । आहाहा ! एक रहित शून्य । लाख-करोड़ शून्य करे परन्तु वे एक के बिना संख्या में नहीं गिने जाते । इसी प्रकार पंच महाव्रत और संसार, घोर नग्नपना और वनवास में रहना । यह श्लोक आता है । यह सब संसार है । आहाहा ! अपना आत्मा अन्दर राग से रहित और पर्याय से रहित है, ऐसी चीज़ का अवलम्बन नहीं लिया और उसका आश्रय नहीं किया तो सब व्यर्थ है । आहाहा !

यह कहते हैं । **पंचम भाव का स्मरण करते हैं** । प्रभु का स्मरण नहीं करना ? प्रभु तू है । मोक्षपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं । कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा । '**परदव्वादो दुग्गई**' प्रभु ! तू हमारा स्मरण करेगा तो तुझे राग और दुर्गति होगी । तुझे चैतन्य की गति नहीं मिलेगी । आहाहा ! इन सन्तों को जगत की कहाँ पड़ी है । नागा बादशाह से आगा । समाज संगठित रहेगी या नहीं, कुछ नहीं पड़ी है । समाज निन्दा और विरोध करेगी या नहीं, इसकी कुछ नहीं पड़ी है । आहाहा ! '**परदव्वादो दुग्गई**' अष्टपाहुड़ की १६वीं गाथा है । है न ? यह कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ है । मोक्षपाहुड़,

हों! उसमें १६वीं गाथा। लो, यही आया पृष्ठ बदला वहाँ। १६ वीं गाथा '**परदव्वादो दुग्गई**' वहाँ चिह्न किया है '**परदव्वादो दुग्गई**' परद्रव्य से दुर्गति होती है। भगवान कहते हैं कि यदि तेरा लक्ष्य हमारे प्रति जायेगा तो तुझे राग होगा। वह चैतन्य की गति नहीं, वह तो दुर्गति है। गजब बात है। आहाहा!

'**सद्दवादो हु सुग्गई**' पंचम पारिणामिकभाव जो स्वद्रव्य है, उसके आश्रय से तुझे सुगति अर्थात् मुक्ति मिलेगी। है? '**इय णाऊण**' परद्रव्य से दुर्गति। पर का लक्ष्य करे, चाहे तो तीन लोक के नाथ की प्रतिमा और भगवान साक्षात् हो, परन्तु उनका लक्ष्य करेगा तो तुझे, परद्रव्य है तो राग ही होगा। इस चैतन्य ज्ञातादृष्टा की अपेक्षा से राग इसकी गति नहीं है, वह तो दुर्गति है। अर र! १६वीं गाथा है। '**इय णाऊण सदव्वे कुणह रई**' स्वद्रव्य में प्रेम कर, अन्दर आनन्द के नाथ में जा। आहाहा! '**विरइ इयरमि**' इतर अर्थात् अन्य द्रव्यों और पर्यायों से विरति कर, विराम पा। आहाहा! माल आया है, भाई! १६वीं गाथा है।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह आया न, स्मरण करना। भगवान का आश्रय, परद्रव्य का आश्रय करने से राग होता है। पण्डितजी को पढ़ने दो। यह सोलह।

**मुमुक्षु :** परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है, यह स्पष्ट (प्रगट) जानो, इसलिए हे भव्य जीवो! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य, उनसे विरति करो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** विरति करो। मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा है। यहाँ तो हजारों शास्त्र देखे हैं न, करोड़ों श्लोक देखे हैं। आहाहा! श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक देखे हैं। पहले दुकान पर भी पढ़ते थे। छोटी उम्र। १९ वर्ष की उम्र से। ७० वर्ष हुए। पालेज में पिताजी की घर की दुकान है न। भरूच और बड़ोदरा के बीच में पालेज में दुकान है। अभी भी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। पालेज में दुकान चलती है, हमारे भागीदार के पुत्र हैं। बुआ के पुत्र भागीदार हैं। उनका पुत्र है। बहुत प्रेम है। आठ दिन रहे, सुना और जब जाने का निर्णय हुआ, कल तो महाराज जानेवाले हैं.. सब रोने लगे। तीनों लड़के रोने लगे। अरे रे! हमें सुनने का कहाँ मिलेगा... कहाँ मिलेगा... बापू! इस धूल में कुछ नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वर्तमान पंचमभाव का स्मरण करना। आहाहा! वर्तमान में विराजमान भगवान अन्दर पूर्ण है। आहाहा! जिसमें मोक्ष की पर्याय का भी अभाव, जिसमें संवर-निर्जरा धर्म की पर्याय का भी अभाव, ऐसा धर्मी द्रव्य जो तत्त्व है, उसका स्मरण करना अर्थात् एकाग्रता करना, वही धर्म और मोक्ष का कारण है। आहाहा!

## श्लोक-५९

( मालिनी )

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः।
उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,
भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः।।५९।।

( वीरछन्द )

ये समस्त शुभकर्म भोगियों के भोगों के मूल सदा।
अहो मुनीश्वर! परम तत्त्व अभ्यास कुशल है चित् जिनका॥
भव से मुक्ति प्राप्ति हेतु तुम उस समस्त शुभ को छोड़ो।
इसमें क्या क्षति ? सार तत्त्वमय उभय समय का सार भजो॥५९॥

**श्लोकार्थः—समस्त सुकृत ( शुभकर्म ) भोगियों के भोग का मूल है। परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु उस समस्तशुभ कर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप[१] ऐसे उभय समयसार को भजो। इसमें क्या दोष है ?।।५९।।**

### श्लोक-५९ पर प्रवचन

५९ वाँ श्लोक। ५९ है न

सुकृत-मपि समस्तं भोगिनां भोगमूलं
त्यजतु परम-तत्त्वाभ्यास-निष्णातचित्तः।

**उभय-समय-सारं सार-तत्त्व-स्वरूपं,**
**भजतु भवविमुक्त्यै कोऽत्र दोषो मुनीशः।।५९।।**

**श्लोकार्थः—समस्त सुकृत ( शुभकर्म )...** दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा यह शुभभाव। आहाहा! वह **समस्त सुकृत ( शुभकर्म ) भोगियों के भोग का मूल है।** उसमें से तो भोग मिलेंगे। आहाहा! उस शुभभाव से तो भोग और बाहर की सामग्री मिलेगी। पैसा, लक्ष्मी, अरबोंपति, धूलपति, लक्ष्मीपति—ऐसा कहते हैं न? नरपति। पति किसका? तू पर का पति कहाँ से हुआ? आहाहा!

**मुमुक्षु :** तो करना क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह करना। अन्तर भगवान है, उस पर दृष्टि करना, यह करना है। बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! परमेश्वर जिनेश्वरदेव का यह फरमान है कि सुकृत जो शुभभाव। सुकृत लिया है न? शुभभाव। दया, दान, व्रत, तप, अपवास, पूजा, भक्ति, रथयात्रा, लाखों-करोड़ों का दान, उसमें जो राग की मन्दता हो तो शुभभाव है। वह शुभभाव भोगियों के भोग का मूल है। उसमें तो भोग मिलेंगे। भोगियों के भोग का मूल है। आहाहा! उसमें आत्मा के आनन्द का अनुभव नहीं मिलेगा।

**मुमुक्षु :** दया, दान में पैसा देना या नहीं देना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन देता है?

**मुमुक्षु :** सेठ लोग।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठ कौन दे? धूल भी नहीं देते। वह तो राग की मन्दता का भाव करे। लक्ष्मी जाती है, वह तो जाने की जड़ की क्रिया है। क्या वह पर को दे सके? अन्य द्रव्य, अन्य द्रव्य की पर्याय तीन काल में नहीं कर सकता। यह तो आ गया है। समझ में आया? आहाहा! यह हाथ ऐसे होते हैं, वह आत्मा से नहीं होते। अंगुली से नोट पकड़ना और उसे देना, वह क्रिया आत्मा की नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हमें हीरा बताया था। वजुभाई हैं न? बहिन को (बहिनश्री को) इस भाद्र कृष्ण दूज को ६६वाँ वर्ष लगता है न? वजुभाई हैं, वे दस हजार का हीरा लाये। सम्मान करेंगे, (उससे) बहिन का सम्मान करेंगे। वजुभाई हैं। ये बैठे हैं। मुझे हीरा बताया था। ६६ छोटे-छोटे हीरा हैं। उनकी दस हजार की कीमत है। बहिन का सम्मान करेंगे। जन्मदिन, भाद्र कृष्ण दूज, गुरुवार। बहिन

को तो कुछ नहीं, वह तो मुर्दे जैसी खड़ी रहेंगी। दस हजार के हीरे से सम्मान करेंगे। वह तो शुभभाव है। शुभभाव है, वह धर्म नहीं। चार व्यक्ति सम्मान करनेवाले हैं। इतनी बात कान में पड़ी है।

**मुमुक्षु :** लोभ (राग) कम करे, उतना तो धर्म होता है न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** राग कम करे, उतना पुण्य है, निश्चय से तो पाप है। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी जन पुण्य को पाप कहे।' योगीन्द्रदेव में आता है। आता है? योगीन्द्रदेव का (योगसार का ७१वाँ) श्लोक है। मुनिराज दिगम्बर सन्त। 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवी जन सम्यग्दृष्टि को पुण्य को पाप कहे।' दुनिया माने, या न माने उसके घर रही। दुनिया की कुछ पड़ी नहीं है कि दुनिया माने और दुनिया प्रसन्न हो। वह प्रसन्न कहाँ से होगी? अनादि से मूर्खाई सेवन की है। आहाहा! और वर्तमान में भी राग से लाभ होता है, ऐसा माने तो मूर्खता का सेवन करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**समस्त...** समस्त शब्द पड़ा है न? अकेले शुभभाव का एक प्रकार नहीं। शुभभाव के असंख्य प्रकार हैं। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, नामस्मरण, गुणस्मरण, प्रभु का, अपने गुण-गुणीभेद का स्मरण, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय भेद का विकल्प, वह भी शुभभाव है। आहाहा! अरे! दुनिया को कहाँ जाना? अरे! इसे चीज़ जहाँ अन्दर प्रभु विराजता है...

**'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन।**
**मत मदिरा के पान सों, मतवाला समझै न॥'**

अपने मत की मदिरा पीये हुए हैं, अपनी मान्यता की शराब पी है तो मत मदिरा के पान सों, मतवाला समझै न... अन्दर वस्तु भगवान पूर्णानन्द से भरी पड़ी है, उसका आश्रय करना, वह अज्ञानी मूर्ख नहीं समझता। आहाहा!

बनारसीदास, बनारसीदास पहले व्यभिचारी (शृंगारी कवि) आदि थे। पश्चात् सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए हैं। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं। 'घट घट अन्तर जिन बसै..' घट-घट अन्तर वीतराग आत्मा बसता है। वीतराग मूर्ति मुक्तस्वरूप ही अन्दर है। आहाहा! राग और कर्म का सम्बन्ध मानना, वह तो व्यवहार है। परमात्मा तो अन्दर राग और कर्म से रहित भिन्न, मुक्तस्वरूप विराजमान है। अबद्ध कहो, या मुक्तस्वरूप कहो। आहाहा! जो कोई अबद्धस्वरूप भगवान को जाने, अनुभव करे, उसे (समयसार की) १४-१५वीं

गाथा में कहा है कि वह जैनशासन का अनुभव है। बाकी राग का अनुभव, वह अन्यमत का अनुभव है, वह जैनशासन का अनुभव नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

**समस्त...** समस्त शब्द पड़ा है न? असंख्य प्रकार के शुभभाव। आहाहा! मैं गुणी, मुझमें गुण भरे हैं – ऐसा विकल्प उठाना, वह भी शुभभाव है। आहाहा! शुभभाव के असंख्य प्रकारों में यह भी एक शुभभाव है। गजब बात है, प्रभु! आहाहा! तेरी प्रभुता की... आहाहा! यह तो भजन आ गया। हिम्मतभाई ने याद किया था।

'प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बाते पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम....' हे प्रियनाथ! तू पर की आशा किसलिए करता है, नाथ? आहाहा! 'प्रभु मेरे सब बातें तुम पूरा, पर की आश कहाँ करे प्रीतम, किस बात से तू अधूरा।' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है कि पर की और राग की और पुण्य की आशा करता है? आहाहा! यह भजन है। समझ में आया? 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' सब बातें पूरा। आनन्द में पूर्ण, ज्ञान में पूर्ण, शान्ति में पूर्ण, वीतरागभाव से पूर्ण, स्वच्छता से पूर्ण... आहाहा! 'पर की आश कहाँ करे प्रीतम, तू किस बात अधूरा।' प्रभु! तू किस बात से अधूरा है कि पर की आशा करता है। आहाहा! कपूरचन्दजी! ऐसी बात है।

यह यहाँ कहते हैं **समस्त सुकृत ( शुभकर्म )...** णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं – ऐसा करना, वह भी शुभविकल्प राग है। आहाहा! प्रभु! वीतरागमार्ग कोई अलग चीज़ है। अरे! दुनिया को सुनने मिलता नहीं और बाहर के आचरण और यह क्रिया की, यह क्रिया की, यह क्रिया की। आहाहा!

'क्षण क्षण भावमरण' – श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं। तैंतीस वर्ष में देह छूट गयी। श्रीमद् राजचन्द्र। सोलह वर्ष में मोक्षमाला बनायी। सोलह वर्ष की देह की उम्र, हों! आत्मा की तो उम्र है नहीं, आत्मा तो अनादि-अनन्त है। सोलह वर्ष की उम्र में ऐसा कहा... आहाहा! 'तू क्यों भयंकर भाव मरण प्रवाह में चकचूर है?' प्रभु! राग और पुण्य के परिणाम मेरे और वह मेरा कर्तव्य है, इस (मान्यता में) क्षण-क्षण भयंकर भाव मरण में... प्रभु! तेरा क्षण क्षण भाव मरण होता है। ज्ञातादृष्टा का भाव छोड़कर इस राग का कर्ता होता है, नाथ! तेरे जीवन की मृत्यु होती है। डॉक्टर! ऐसी बात है। आहाहा! सोलह वर्ष में। बहु पुण्य पुंज प्रसंग से... है न? यह सोलह वर्ष की उम्र में बनाया।

**बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।**
**तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥**

प्रभु! मनुष्य भव मिला और भवरहित तेरी दृष्टि नहीं हुई। प्रभु! तूने जीवन में क्या किया? आहाहा!

**बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभदेह मानव का मिला।**
**तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥**

यह क्या कहते हैं? इसमें गम्भीरता है। सोलह वर्ष में बहुत क्षयोपशम था। हिन्दुस्तान में धर्मी के नाम से ऐसे क्षयोपशमवाला कोई नहीं था, ऐसा क्षयोपशम। 'भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' यह क्या कहते हैं? प्रभु! तूने राग की, प्रेम की, प्रीति में राग की एकाग्रता में चक्कर मारे, ऐसे.. ऐसे.. ऐसे तो उस चक्कर में खड़ा रहेगा तो गिर जायेगा। तूफान ऐसे चक्कर मारता है न? चक्रवात में ऐसे ही खड़ा रहेगा तो गिर जायेगा, परन्तु चक्कर में ऐसे एक उल्टा चक्कर मार दे, गुलाँट मार दे तो खड़ा रह जायेगा। क्या कहा, समझ में आया?

(श्रीमद्) सोलह वर्ष में कहते हैं। 'भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला॥' राग की एकाग्रता और राग से धर्म होगा और पर्याय के आश्रय से धर्म होगा, यह मिथ्यात्व है। संसार चक्र का एक फेरा तूने (नहीं) मिटाया। एक बार गुलाँट खा जा। आहाहा! यह पर्यायबुद्धि और रागबुद्धि छोड़कर त्रिकाली द्रव्यबुद्धि कर, तो एक चक्र में तेरे भव का अन्त आ जायेगा। अरे! प्रभु! क्या हो?

अभी अरबोंपति लोग बहुत हैं। अमेरिका में तो अरबोंपति के ढ़ेर हैं। सब अशान्ति। अभी कहते हैं, अरे! इसमें कहीं शान्ति नहीं। अब क्या करना? फिर मुम्बई में कितने ही बाबा होते हैं। हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. (करते हैं)। मुम्बई जाते हैं, तब बहुत बाबा हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. (करते हैं)। उनकी यह दशा है। हरे कृष्ण.. हरे कृष्ण.. करे, वह विकल्प और राग है। आहाहा!

कर्म कृशे, सो कृष्ण कहते हैं। भगवान आत्मा .... कृष्ण उसे कहते हैं कि जो अज्ञान को कृश अर्थात् छेद करके नाश कर दे। आहाहा! 'कर्म कृशे, सो कृष्ण कहिये, निजपद रमे, सो राम कहिये।' अपने निज आनन्दस्वरूप में रमे, वह राम है और राग में

रमे, वह हराम है। आनन्दघनजी में आता है। श्वेताम्बर में आनन्दघनजी हुए, उनका श्लोक है। यहाँ तो सब देखा है। हजारों श्लोक श्वेताम्बर के, दिगम्बर के देखे हैं। उसमें यह आया है, 'कर्म कृशे, सो कृष्ण कहिये।' राग का नाश करे और अपने स्वभाव की प्रतीति करके अनुभव करे और दशाशुद्धि करे वह कृष्ण है। आहाहा!

'निजपद रमे, सो राम कहिये।' रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे हैं। तो तू भी राम है, परन्तु राम कैसा? निजपद आनन्द के नाथ में अन्दर रमे। वह 'निजपद रमे, सो राम कहिये, राग में रमें, सो हराम कहिये।' ऐसी बात है, मणिभाई! सुनना कठिन पड़े, बापू! सब खबर है। दुनिया की खबर नहीं?

यहाँ तो मुनिराज कहते हैं, दिगम्बर सन्त पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं)। आहाहा! **समस्त सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** आहाहा! धर्मी के धर्म का वह मूल नहीं है। आहाहा! शुभभाव का कर्ता होना और शुभभाव आना, उसका फल तो भोगियों के भोग हैं। उसमें कोई आत्मा-वात्मा नहीं मिलता। बाहर की धूल मिलेगी। पाँच-पचास करोड़ धूल। उस भोगियों के भोग का मूल शुभभाव है। धर्मी के धर्म का मूल शुभभाव नहीं। उसमें आया न? आहाहा! दिगम्बर सन्तों को जगत की कुछ पड़ी नहीं है। समाज संगठित रहेगा या नहीं, वह मानेगा या नहीं, वह उसके घर रहा। मार्ग यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह प्रसिद्ध करते हैं। समाज मानो, न मानो। बहुत लोग हों तो सत्य है और थोड़े माने तो सत्य नहीं। ऐसा नहीं है। सत्य को माननेवालों को संख्या की आवश्यकता नहीं है। आहाहा!

**सुकृत...** आहाहा! मुनिराज को दुनिया की दरकार है? **सुकृत (शुभकर्म) भोगियों के भोग का मूल है।** उसमें तो पाप और लक्ष्मी और धूल मिलेगी। आहाहा! और उस ओर वासना में तेरा लक्ष्य जायेगा, वह अकेला पाप है। लक्ष्मी मेरी है, ऐसी मान्यता तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ की है। जीव का अजीव है? अजीव का अजीव है। वह जीव का अजीव हो गया? आहाहा! और वह अजीव मिला है, वह शुभभाव से मिला है, ऐसा कहते हैं। वह चीज़ भोगियों के भोग का मूल है। पन्नालालजी! तुम्हारे रतनचन्दजी कब आयेंगे? आनेवाले अवश्य हैं। पाँच-छह करोड़ रुपये। रतनलाल कलकत्ता। इनके भाई हैं न? काका के लड़के। काका-दादा के लड़के कहलाते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु ! यह **( शुभकर्म ) भोगियों के भोग का मूल है।** यह भोग-शुभभाव तो धर्म का नाश करनेवाला है। यह शुभभाव, परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्य समयसार में मोक्ष अधिकार में कहते हैं, यह शुभभाव जहर का घड़ा है; प्रभु (आत्मा) अमृत का समुद्र है। प्रभु आत्मा अमृत का समुद्र है। आहाहा ! अमृत से लवालब भरा हुआ है। आहाहा ! ऐसी बात कठिन पड़ती है। माने, न माने जगत स्वतन्त्र है। परमात्मा का मार्ग तो यह है। आहाहा !

**परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर,..** परमतत्त्व भगवान आत्मा परमतत्त्व। संवर, निर्जरा से भी पार तत्त्व। ऐसे **परमतत्त्व के अभ्यास में..** परमतत्त्व के अभ्यास में। आहाहा ! **निष्णात चित्तवाले...** निष्णात अर्थात् जाननेवाले – प्रवीण। **परमतत्त्व के अभ्यास में निष्णात चित्तवाले मुनीश्वर, भव से विमुक्त होने हेतु...** भव से विमुक्त होने के लिये **उस समस्त शुभकर्म को छोड़ो...** आहाहा ! पहले दृष्टि में से छोड़ो, रुचि छोड़ो। पश्चात् स्थिरता करके अस्थिरता को छोड़ो। छोड़ने के दो प्रकार हैं। दृष्टि में से शुभभाव की रुचि छोड़ो। आहाहा !

**शुभ कर्म को छोड़ो और सारतत्त्वस्वरूप ऐसे उभय समयसार को भजो।** समयसार आत्मा, वह सारभूत तत्त्व है। त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु पूर्ण, वह सारतत्त्व है। उभय समयसार। कारणपरमात्मा त्रिकाल और कार्यपरमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा – दो को भजो। आहाहा ! विशेष कहेंगे......

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

## गाथा-४२

चउगइभवसंभमणं जाइजरामरणरोगसोगा य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति ।।४२।।

चतुर्गतिभवसम्भ्रमणं जातिजरामरणरोगशोकाश्च।
कुलयोनिजीवमार्गणस्थानानि जीवस्य नो सन्ति ।।४२।।

इह हि शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवस्य समस्तसन्सारविकारसमुदयो न समस्तीत्युक्तम्।

द्रव्यभावकर्मस्वीकाराभावाच्चतुसृणां नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवत्वलक्षणानां गतीनां परिभ्रमणं न भवति। नित्यशुद्धचिदानन्दरूपस्य कारणपरमात्मस्वरूपस्य द्रव्यभावकर्म-ग्रहणयोग्यविभा-

वपरिणतेरभावान्न जातजरामरणरोगशोकाश्च। चतुर्गतिजीवानां कुलयोनिविकल्प इह नास्ति इत्युच्यते।

तद्यथा ह्न पृथ्वीकायिकजीवानां द्वाविन्शतिलक्षकोटिकुलानि, अप्कायिकजीवानां सप्तलक्षकोटिकुलानि, तेजस्कायिकजीवानां त्रिलक्षकोटिकुलानि, वायुकायिकजीवानां सप्त-लक्षकोटिकुलानि, वनस्पतिकायिकजीवानां अष्टोत्तरविशन्तिलक्षकोटिकुलानि, द्वीन्द्रियजीवानां सप्तलक्षकोटिकुलानि, त्रीन्द्रियजीवानां अष्टलक्षकोटिकुलानि, चतुरिन्द्रिय-जीवानां नवलक्षकोटिकुलानि, पञ्चेन्द्रियेषु जलचराणां सार्धद्वादशलक्षकोटिकुलानि, आकाशचरजीवानां द्वादशलक्षकोटिकुलानि, चतुष्पदजीवानां दशलक्षकोटिकुलानि, सरीसृपानां नवलक्षकोटिकुलानि, नारकाणां पञ्चविन्शतिलक्षकोटिकुलानि, मनुष्याणां द्वादशलक्षकोटिकुलानि, देवानां षड्विन्शतिलक्षकोटिकुलानि। सर्वाणि सार्धसप्तनवत्य-ग्रशतकोटिलक्षाणि १९७५०००००००००००।

पृथ्वीकायिकजीवानां सप्तलक्षयोनिमुखानि, अप्कायिकजीवानां सप्तलक्षयोनि-मुखानि, तेजस्कायिकजीवानां सप्तलक्षयोनिमुखानि, वायुकायिकजीवानां सप्तलक्षयोनि-मुखानि, नित्यनिगोदिजीवानां सप्तलक्षयोनिमुखानि, चतुर्गतिनिगोदिजीवानां सप्तलक्ष-योनिमुखानि, वनस्पति कायिकजीवानां दशलक्षयोनिमुखानि, द्वीन्द्रियजीवानां द्विलक्षयोनिमुखानि, त्रीन्द्रियजीवानां द्विलक्षयोनिमुखानि, चतुरिन्द्रियजीवानां द्विलक्ष-योनिमुखानि, देवानां चतुर्लक्षयोनिमुखानि, नारकाणां चतुर्लक्षयोनिमुखानि, तिर्यग्जीवानां

चतुर्लक्षयोनिमुखानि, मनुष्याणां चतुर्दशलक्ष-योनिमुखानि।

स्थूलसूक्ष्मैकेन्द्रियसञ्ज्ञ्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तकभेदसनाथचतुर्दशजीवस्थानानि। गतीन्द्रियकाययोगवेदकषायज्ञानसंयमदर्शनलेश्याभव्यसम्यक्त्वसञ्ज्ञ्याहारविकल्पलक्षणानि मार्गणास्थानानि। एतानि सर्वाणि च तस्य भगवतः परमात्मनः शुद्धनिश्चयनयबलेन न सन्तीति भगवतां सूत्रकृतामभिप्रायः।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

( मालिनी )

सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं,
स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।
इम-मुपरि चरन्तं चारु विश्वस्य साक्षात्,
कलयतु परमात्मात्मान-मात्मन्यनन्तम्।।

( अनुष्टुप् )

चिच्छक्ति-व्याप्त-सर्वस्व-सारो जीव इयानयम्।
अतोऽतिरिक्ताः सर्वेऽपि भावाः पौद्गलिका अमी।।

तथाहि ह्न

---

( हरिगीत )

चतु-गति भ्रमण नहिं, जन्म-मृत्यु न, रोग, शोक, जरा नहीं।
कुल योनि नहिं, नहिं जीवस्थान, रु मार्गणा के स्थान नहिं।।४२।।

अन्वयार्थ : [ जीवस्य ] जीव को [ चतुर्गतिभवसंभ्रमणं ] चार गति के भवों में परिभ्रमण, [ जातिजरामरणरोगशोकाः ] जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, [ कुलयोगिजीवमार्गणस्थानानि च ] कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान [ नो सन्ति ] नहीं है।

टीका :— शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीव को समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है — ऐसा यहाँ ( इस गाथा में ) कहा है।

द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से, जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।

नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को द्रव्यकर्म तथा भावकर्म

के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक नहीं है।

चतुर्गति ( चार गति के ) जीवों के कुल योनि के भेद, जीव में नहीं हैं — ऐसा ( अब ) कहा जाता है। वह इस प्रकार —

पृथ्वीकायिक जीवों में बाईस लाख करोड़ कुल हैं; अप्कायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; तेजकायिक जीवों के तीन लाख करोड़ कुल हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के अट्ठाईस लाख करोड़ कुल हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के सात लाख करोड़ कुल हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के आठ लाख करोड़ कुल हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; पंचेन्द्रिय जीवों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख करोड़ कुल हैं; खेचर जीवों के बारह लाख करोड़ कुल हैं; चार पैर वाले जीवों के दस लाख करोड़ कुल हैं; सर्पादिक पेट से चलनेवाले जीवों के नौ लाख करोड़ कुल हैं; नारकियों के पच्चीस लाख करोड़ कुल हैं; मनुष्यों के बारह लाख करोड़ कुल हैं और देवों के छब्बीस लाख करोड़ कुल हैं। कुल मिलाकर एक सौ साढ़े सत्तानवे लाख करोड़ ( १९७५०००,०००,०००,०० ) कुल हैं।

पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; अप्कायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; तेजकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वायुकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; नित्य निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; चतुर्गति ( चार गति में परिभ्रमण करनेवाले, अर्थात् इतर ) निगोदी जीवों के सात लाख योनि मुख हैं; वनस्पतिकायिक जीवों के दस लाख योनि मुख हैं; द्वीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; त्रीन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; चतुरिन्द्रिय जीवों के दो लाख योनि मुख हैं; देवों के चार लाख योनि मुख हैं; नारकों के चार लाख योनि मुख हैं; तिर्यंच जीवों के चार लाख योनि मुख हैं; मनुष्यों के चौदह लाख योनि मुख हैं। ( कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं। )

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त — ऐसे भेदोंवाले चौदह जीवस्थान हैं।

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व,

सम्यक्त्व, संज्ञित्व, और आहार—ऐसे भेदस्वरूप ( चौदह ) मार्गणास्थान हैं।

यह सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से ) नहीं हैं — ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का ( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का ) अभिप्राय है। इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा ) कहा है कि —

( वीरछन्द )

चित् शक्ति से रहित सकल परभावों का तुम त्याग करो।
चित् शक्तिमय निज आतम में प्रगटरूप अवगाह करो॥
हे आत्मन् ! तुम सकल विश्व के ऊपर तिरते आत्मा को।
एकरूप अविनाशी निज को निज में ही अनुभवन करो॥

*श्लोकार्थ :*— चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल ( एक ) अविनाशी आत्मा को आत्मा में साक्षात् अनुभव करो।

( वीरछन्द )

जीवमात्र इतना जिसका सर्वस्व सार चित्शक्ति स्वरूप।
चित्शक्ति से शून्य भाव जो, वे सब हैं जड़ पुद्गलरूप॥

*श्लोकार्थ :*— चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है — ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं।

---

प्रवचन-४३, गाथा-४२, सोमवार, श्रावण शुक्ला ७, दिनांक १८-०८-१९८०

---

नियमसार, गाथा ४२

**टीका:—शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीव को समस्त संसार विकारों का समुदाय नहीं है—ऐसा यहाँ ( इस गाथा में ) कहा है।** आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय, जो जीव / भगवान, उसमें किसी प्रकार का भेद, विकार या किसी प्रकार की पर्याय का भेद भी उसमें नहीं है—ऐसा शुद्ध चैतन्य अखण्ड अभेद पूर्णानन्द का

नाथ, वह दृष्टि का विषय है। दृष्टि वहाँ जमती है। दृष्टि में आश्रय, आदर द्रव्य का होता है। यह बात करते हैं।

**द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से,...** क्या कहते हैं ? जीव / प्रभु शुद्ध जीव में **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का स्वीकार न होने से, जीव को नारकत्व, तिर्यंचत्व, मनुष्यत्व और देवत्वस्वरूप चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है।** आहाहा! वस्तुस्वरूप जो अन्दर है, चैतन्यसत्तावलम्बी, उसमें इन चार गतियों का परिभ्रमण नहीं है। आहाहा! **नित्य-शुद्ध चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को...** नित्य-शुद्ध, कायम शुद्ध, त्रिकाली शुद्ध **चिदानन्दरूप कारणपरमात्मस्वरूप जीव को द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के ग्रहण के योग्य विभावपरिणति का अभाव होने से जन्म, जरा, मरण, रोग और शोक ( कुछ ) नहीं है।** आहाहा!

स्वरूप चैतन्य ज्योति अन्दर त्रिकाली निरावरण द्रव्य अन्दर विराजता है। त्रिकाली। निगोद में हो या सिद्ध में हो, द्रव्य तो त्रिकाली निरावरण ही है। उसमें अन्तर्दृष्टि करने से ये सब भेदभाव गौण हो जाते हैं। उनका यहाँ अभाव कहा जाता है। वह भाव है अवश्य, व्यवहारनय का विषय है अवश्य। है, उसका निषेध है न ? न हो, उसका निषेध कैसा ? है अवश्य, परन्तु दृष्टि में अन्तर अनुभव आनन्दकन्द प्रभु में जाने पर उनका निषेध हो जाता है। जो है, उनका निषेध हो जाता है।

**चतुर्गति ( चार गति के ) जीवों के कुल, योनि के भेद, जीव में नहीं हैं...** कुल के भेद और योनि के भेद। चौरासी लाख योनि के भेद और कुल तो बहुत हैं। वे सब जीव में नहीं हैं। द्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा में वे नहीं हैं। यह बोल है, वह पढ़ लेना। पश्चात् **पृथ्वीकायिक जीवों के सात लाख योनि मुख हैं;...** ये चौरासी लाख... ये चौरासी लाख योनि आत्मा में नहीं हैं। समुच्चय समझ लेना। अन्त में, **( कुल मिलाकर ८४,००,००० योनि मुख हैं। )** जीव को उत्पत्ति का स्थान। संसार की दशा में चौरासी लाख योनि मुख जीवद्रव्य में नहीं है। पश्चात्...

**सूक्ष्म एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त;...** सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त जीव भेद कहते हैं। जीव के चौदह भेद जीव में नहीं हैं। आहाहा! पर्याय है न ? जीव की पर्याय जीव के द्रव्य में नहीं है। द्रव्य तो त्रिकाली आनन्दनाथ चैतन्य अखण्डानन्द प्रभु,

पूर्णानन्द सदा त्रिकाल एकरूप अविनाशी विराजमान है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! बाकी सब चीज़ें हैं। एक के अतिरिक्त, पूरी दुनिया लोकालोक है अवश्य, परन्तु वह सब व्यवहार है। एक के अतिरिक्त, पर्याय आदि से लेकर पूरी दुनिया व्यवहार है। निश्चय में तो एक आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, जिसमें पर्याय का भी अभाव है, ऐसे जीवद्रव्य को समकितरूपी पर्याय का विषय कहने में आया है। आहाहा!

सबेरे भी सूक्ष्म था। सबेरे तो बहुत सरस था। ओहोहो! सबेरे मूल उत्पत्ति के स्थान की बात थी। इस जीवद्रव्य में वह नहीं है, तो वहाँ से लक्ष्य छोड़ दे और त्रिकाली ज्ञायकभाव, जिसमें ये नहीं, वहाँ लक्ष्य लगा दे। इसके लिए यह कहा कि जीव के चौदह भेद **पर्याप्त और अपर्याप्त; स्थूल एकेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; त्रीन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; चतुरिन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त; संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त और अपर्याप्त—ऐसे ( चौदह ) भेदोंवाले...** जीवस्थान, जीव में जीवस्थान नहीं है। आहाहा! जीव में जीवस्थान नहीं है। ये चौदह भेद हैं। आहाहा! जीव में चौदह भेद / स्थान जो हैं, वे अन्तर में नहीं हैं। सम्यग्दर्शन के विषय में यह चीज़ नहीं है। आहाहा! मूल चीज़ तो सम्यग्दर्शन है। वहाँ से बात शुरु होती है। उसके बिना सब बातें, जानपना और आचरण तथा क्रियाकाण्ड सब संसार है। आहाहा! भगवान आत्मा / जीव को चौदह स्थान भी नहीं हैं। पश्चात् मार्गणा। वस्तु है, मार्गणा वस्तु है, जीवद्रव्य की दृष्टि में नहीं है।

**गति,...** चार। वह जीवद्रव्य में नहीं है। पाँच **इन्द्रिय,...** जीव में नहीं है। **काय,..** मन, वचन और काया आदि काय का एक भेद है, वह भी आत्मा में नहीं है। **योग,...** पन्द्रह योग जो कहे जाते हैं। चार मन, चार वचन, चार काया, वह सब आत्मा में नहीं है। आहाहा! पर्यायदृष्टि से जानने में आनेवाली वस्तु / चीज़ है, परन्तु द्रव्यदृष्टि से देखने में आवे तो वह चीज़ लक्ष्य में नहीं आती। इस कारण वह चीज़ वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसा है, प्रभु! जीव का स्वभाव, यह जीव की बात बहुत घट गयी, प्रभु! मूल चीज़ परमात्मा स्वयं... आहाहा! इसकी मूल बात घट गयी और प्रवृत्ति की—यह क्रिया करो.. यह क्रिया करो.. यह क्रिया करो.. यह छोड़ो। यह छोड़ो और यह ग्रहण करो। अरे! भगवान! जिस चीज़ में जिसकी अवस्था भी जिसमें नहीं, जिसमें अवस्था भी नहीं, उसमें बाह्य ग्रहण-त्याग कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया क्या कहा?

**योग,..** नहीं है। **वेद,..** नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अरे! अवेद, ये चारों नहीं है। आहाहा! योग में भी योग और अयोग दोनों नहीं हैं। वेद में भी तीन वेद और वेदरहित अवेद भी उसमें (वस्तु में) नहीं है। वह तो पर्याय है। आहाहा! **कषाय,..** क्रोध, मान, माया, लोभ। भगवान अकषाय शान्तस्वरूप, शान्ति का सागर, शान्ति का समुद्र, मात्र शान्ति का गोदाम है। प्रभु आत्मा तो शान्ति का गोदाम है। उसमें से तो शान्ति ही प्रगट होती है। आहाहा! गोदाम देखे हैं न? हम तो मुम्बई माल लेने जाते थे। ये केसर के डिब्बे आते थे, तब तो कीमत बहुत कम थी। एक रुपये की रुपयाभार थी। हम सब व्यापार करते थे। केसर लेने गये तो कोठार.. कोठार देखे हो.. ओहोहो! अनेकों हजार डिब्बे केसर के। केसर के डिब्बे अनेक हजार। आहाहा! उस गोदाम की अपेक्षा इस गोदाम में अनन्त केसर-स्वभाव अन्दर भरा है। यह बड़ा गोदाम प्रभु है। आहा..! क्या कहा?

**कषाय,.. ज्ञान,...** मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल (ज्ञान)। पाँच ज्ञान भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! पाँचों ज्ञान तो पर्याय है। व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, (परन्तु) आदरणीय नहीं है। अन्तर्दृष्टि करने से ज्ञान का भेद दृष्टि के विषय में नहीं आता। आहाहा! इस कारण से ज्ञान के पाँच भेद भी वस्तु में नहीं है। पर्याय में हो, परन्तु दृष्टि जहाँ पर्याय से छूटकर, पर्याय द्रव्य प्रभु पर गयी.. आहाहा! तो वहाँ तो ज्ञान के भेद भी नहीं हैं। आहाहा! यह सब जानपना और सब बड़ी बातें चाहे जैसी करो। प्रभु! उस ज्ञानस्वरूप अन्दर चैतन्यमूर्ति में ये भेद नहीं हैं। आहाहा!

**संयम,..** संयम और असंयम तथा संयमासंयम, ऐसा लेना। एक शब्द में तीनों लेना। ये तीनों नहीं हैं। आत्मा में संयम भी है नहीं, असंयम भी है नहीं, संयमासंयम भी है नहीं। **दर्शन,..** यह दर्शन, चक्षुदर्शन है। समकित की बात बाद में। यह चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, ये चारों आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! केवलदर्शन तो पर्याय है, एक समय की दशा है। सत्ता-चैतन्य की-सत् की सत्ता, महाप्रभु की सत्ता, उसमें केवलज्ञान का भी अभाव है। आहाहा! यहाँ साधारण मतिश्रुतज्ञान (हो), अनुभव बिना उसका अभिमान हो जाए! आहाहा! अरे रे! अन्तर के आनन्द के अनुभव बिना, अन्तर के आत्मा का स्पर्श किये बिना बाहर की बात में अभिमान जाए, प्रभु! यह तो अनन्त बार किया है। आहाहा! इस आत्मा के त्रिकाली द्रव्यदृष्टि दर्शन करने में वह नहीं। पर्याय में है, जानने में है। वस्तु की दृष्टि / दर्शन के विषय में नहीं है। आहाहा!

**लेश्या,..** छह द्रव्य और अलेश्या – ये सातों आत्मा में नहीं हैं। आहाहा! छह लेश्या विकारी पर्याय है, अलेश्या निर्विकारी पर्याय है परन्तु यह पर्याय है। भगवान द्रव्य में वह नहीं है। अलेश्यापना भी भगवान में नहीं है। आहाहा! जिसका लक्ष्य छूट जाता है, वह चीज़ उसमें नहीं है। आहाहा! अन्तर अनुभव करने में चैतन्य तत्त्व की प्राप्ति सम्यक् में प्राप्त करने में सबका लक्ष्य छूट जाता है, वह चीज़ उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं है; वस्तु तो है, लोकालोक है–सब है।

एक भगवान स्वतन्त्र आत्मा के अतिरिक्त अनन्त सिद्ध भगवान भी भले हों, परन्तु वे सब पर हैं। अनन्त सिद्ध भी पर हैं। आचार्य कहते हैं कि स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य पर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग होगा। परद्रव्य का लक्ष्य होने से राग होगा, परन्तु किसे? रागी को राग होगा। रागी नहीं है, उसे लक्ष्य जाने से राग नहीं होगा। आहाहा! जिसे अभी राग पड़ा है, उसे पर की ओर लक्ष्य जाने पर राग उत्पन्न होगा। वह परलक्ष्य (राग की) उत्पत्ति का कारण नहीं, परन्तु राग है, इस कारण से राग उत्पन्न होता है। परलक्ष्य से राग उत्पन्न हो तो केवली तो तीन काल, तीन लोक देखते हैं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

**लेश्या,...** अलेश्या, वह भी आत्मा में भी नहीं है। **भव्यत्व,...** अभव्यत्व, आत्मा में नहीं है। आहाहा! यह भव्यत्व और अभव्यत्व आत्मा में नहीं है। गोपालदास क्या कहलाते हैं वे? वरैया। उन्होंने लिखा है कि भव्य, वह गुण है। गुण की व्याख्या में भव्य लिया है। यह तो लोगों को समझाने के लिए (कहा है)। गुण तो त्रिकाल रहनेवाले हैं। भव्य, अभव्य यदि गुण हो तो यहाँ तो निषेध करते हैं। भव्य तो पर्याय है। समझ में आया? इसका स्पष्टीकरण तत्त्वार्थसार में अमृतचन्द्राचार्य ने तत्त्वार्थसार में लिया है, उसका अर्थ... एक बंशीधरजी हैं न? दूसरे बंशीधरजी, खूबचन्द्रजी के भाई, सोलापुरवाले, उन्होंने अर्थ किया है। वे तो आये थे, हमारे पास आये थे।

भव्य और अभव्य पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। सिद्ध में भव्यत्व है नहीं। यदि गुण कहो तो त्रिकाल रहे। आहाहा! वह तो पर्याय है। भव्य और अभव्य की पर्याय है। दोनों की पर्याय भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु! उसमें योग्यता और अयोग्यता दो में से एक भी नहीं है। योग्यता तो सब प्रगट हो गयी है। पश्चात् योग्यता क्या? योग्यता अन्दर प्रगट है। भव्य की योग्यता उसमें नहीं। प्रगट हुई वह भले न हो पर्याय में, परन्तु द्रव्य तो योग्यता है। वह भव्यत्वपना भी उसमें नहीं है। वह प्रगट-प्रगट वस्तु पड़ी है। आहाहा!

परम सिद्धान्त, परम सत्‌सिद्धान्त, उसका जो सिद्धान्त सार, जो तत्त्व भगवान, देह में प्रत्यक्ष विराजमान है। उसमें भव्य-अभव्यपना नहीं है। बहुत से प्रश्न करते हैं कि महाराज! हम भव्य हैं या अभव्य ? प्रभु! यह प्रश्न छोड़ दो। भव्य-अभव्य आत्मा में है ही नहीं। एक आर्यिका है, ज्ञानमति। उसने और ऐसा लिखा है कि अपन भव्य हैं या अभव्य, यह अपन नहीं जान सकते, केवली जान सकते हैं। अरे रे! प्रभु! क्या है ? यहाँ तो भव्य-अभव्य आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! कठिन बातें हैं, भाई! मूल बात को पकड़ना.. आहाहा! वृक्ष के पत्ते और डालियाँ, टहनियाँ पकड़ना और वृक्ष के फल-फूल पकड़ना, इसकी अपेक्षा वृक्ष का मूल पकड़ना। इसी प्रकार भगवान अन्दर मूल है। पर्याय तो फिर डाली, टहनियाँ हैं। आहाहा! पर्याय, हों! वह फल-फूल है। भव्य-अभव्य नहीं।

**सम्यक्त्व,...** समकित भी नहीं। यहाँ अकेले समकित की बात नहीं है। सम्यक्, समकितमोहनीय, मिथ्यात्व, मिश्र, यह सब आत्मा में नहीं है। यहाँ तो समकित आत्मा में नहीं है। क्षायिक समकित आत्मा में नहीं है। आहाहा! क्षायिक समकित भी पर्याय है न, प्रभु! एक समय की पर्याय है। पलटती है। भले कायम रहनेवाली है परन्तु पलटती है। भगवान जो त्रिकाली सत्ता सत्। सच्चिदानन्द प्रभु एकरूप विराजमान है। दृष्टि का विषय वह है। आहाहा! दृष्टि का ध्येय अकेला परमात्मा, जिसमें पर्याय का भेद नहीं। दृष्टि स्वयं पर्याय है। समकित कहा न ? उसमें है नहीं, ऐसा कहा। सम्यक्त्व नहीं, वह तो पर्याय है। क्षायिक समकित भी उसमें है नहीं। उसका विषय द्रव्य है, परन्तु क्षायिक समकित उस विषय में नहीं। समकिती को क्षायिक समकित भी विषय नहीं है। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

अन्दर चैतन्य हीरा, चमत्कारिक शक्तियों का भण्डार, शक्तियों का सागर, स्वभाव का सागर, वह चीज़ क्या है ? उस चीज़ में सम्यक्, क्षायिक समकित का भी अभाव है। आहाहा! समकित नहीं, ऐसा नहीं है। पर्याय में है। है अर्थात् क्या ? भले हो। आहाहा! वह चीज़ अन्दर में नहीं है। जिसका विषय है, सम्यक् के विषय में समकित नहीं है तथा समकित का विषय समकित नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! अन्तर घर की बातें। आहाहा! सबेरे तो बहुत आया था। बहिन आये ? सबेरे तो बहुत आया था। सबेरे अन्तरचक्षु में बहुत आया था। आहाहा!

**संज्ञित्व,...** संज्ञीपना-मनपना और असंज्ञीपना, ये दोनों आत्मा में नहीं है। **और**

**आहार...** और निहार और अनाहार, ये दोनों आत्मा में नहीं है। आहार और अनाहार, दोनों पर्याय है। आत्मा में नहीं है। **ऐसे भेदस्वरूप ( चौदह ) मार्गणास्थान हैं।** है ? मार्गणास्थान है अवश्य। अन्तर में नहीं है। वेदान्त कहता है कि आत्मा सर्व व्यापक एक ही है, कोई गुणभेद नहीं, पर्यायभेद नहीं, अनन्त आत्मा नहीं, वह तो मिथ्यात्व है। ऐसी बात यहाँ नहीं है। यह तो अनन्त हैं। एक आत्मा में अनन्त गुण हैं, अनन्त पर्याय है, मार्गणास्थान भी है, परन्तु आदरणीय नहीं। वहाँ से दृष्टि हटा ले। जानकर उसमें से दृष्टि हटा ले। आहाहा!

**मार्गणास्थान.. यह सब, उन भगवान परमात्मा को...** आहाहा! भगवान परमात्मा अर्थात् कौन ? यह आत्मा, हों! आहाहा! **सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से )...** अर्थात् शुद्धनिश्चय से अन्तर में नहीं है। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है।** आहाहा! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जो तीसरे नम्बर पर आये। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मस्तु मंगलम्।' वे कुन्दकुन्दाचार्य। कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य भगवान सूत्रकर्ता। इस सूत्र के कर्ता वे हैं। मूल गाथा के।

**भगवान सूत्रकर्ता का...** आहाहा! **( श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का ) ( यह ) अभिप्राय है।** यह अभिप्राय है। मार्गणा के भेद मति, श्रुत, अवधि, मन:, केवल भी नहीं, ऐसा अभिप्राय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का है। आहाहा! यह तो दृष्टि के विषय में पूर्णता आनेवाली है। उसमें अपूर्णता ही नहीं है। पर्याय है ही नहीं। पर्याय तो उसका विषय करती है। (जिसे) विषय करती है, उसमें पर्याय नहीं है। आहाहा! और पर्यायरहित द्रव्य नहीं है। किसी समय भी पर्याय से रहित द्रव्य हो तो सामान्य अकेला रहे। द्रव्य तो सामान्य-विशेषात्मक दोनों हैं। रात्रि में कहा था, नहीं पण्डितजी ? विशेष बिना तो गधे का सींग जैसा (होगा)। द्रव्य में पर्याय विशेष न हो, प्रगट पर्याय, हों! वह तो गधे की सींग जैसा है। सामान्य-विशेषस्वरूप त्रिकाल द्रव्य है। त्रिकाली द्रव्य सामान्य और विशेष स्वरूप है।

उसमें यहाँ कहते हैं कि विशेष है, वह सामान्य में नहीं है। विशेष, विशेष नहीं है— ऐसा नहीं है। पदार्थ, सामान्य-विशेष पदार्थ है। पदार्थ, सामान्य विशेष ही है। बौद्ध अकेला विशेष मानते हैं, वेदान्त अकेला द्रव्य मानता है। एकान्त ध्रुव.. ध्रुव ही मानता है, बौद्ध अकेला विशेष मानते हैं। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा!

यहाँ तो सामान्य-विशेष में अकेली पर्याय को माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। पर्याय का विषय द्रव्य माने, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान के घर की है, प्रभु! ऐसी बात रह गयी। आहाहा! दिगम्बर सन्त केवली के पथानुगामी हैं। केवली ने कही, वह बात रह गयी है। और कुन्दकुन्दाचार्य तो साक्षात् भगवान के पास गये थे। समवसरण में साक्षात् आठ दिन सुना और कितनी ही बात श्रुतकेवली से सुनी। भगवान की दिव्यध्वनि आठ दिन सुनी और बीच में समय मिले तो जो श्रुतकेवली थे, उनके साथ चर्चा की, बहुत निर्णय किया। ओहोहो! उन भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय यह है। यहाँ किसी के अभिप्राय में किसी का नहीं चलता। आहाहा!

मार्गणास्थान है। सामान्य-विशेष है। विशेष बिना सामान्य नहीं रहता। समझ में आया? क्योंकि विशेष है, वह जाननेयोग्य तो विशेष है। ध्रुव जाननेयोग्य (जानता) नहीं है। जानने में आता है परन्तु जानने की क्रिया ध्रुव में नहीं है। (ध्रुव) जानता नहीं, जाननस्वरूप है परन्तु जानता नहीं है। जानना, वह तो क्रिया है। आहाहा! वह क्रिया विशेष में होती है। जानने की क्रिया कोई सामान्य में नहीं होती। आहाहा! प्रभु का मार्ग तीन काल में अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! लोगों को भी एकान्त लगता है। एकान्त है, एकान्त है, प्रभु! एकान्त है तो सही, परन्तु सम्यक् एकान्त है। एकान्त है, प्रभु! तुम एकान्त कहते हो, वैसा एकान्त नहीं है।

पर्याय है, ऐसा कहा न! पर्याय नहीं है? यहाँ क्या कहा? मार्गणास्थान है, सब भेद है। हो, पूरी दुनिया हो, लोकालोक हो और अपनी पर्याय भी हो परन्तु वह लोकालोक और पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! लोक में तो परमात्मा पंच परमेष्ठी अनन्त त्रिकाल आ गये। त्रिकाली परमेश्वर (आ गये)।

षट्खण्डागम में तो ऐसा लिया है, णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं—ऐसा लिया है। ऐसा पाठ है। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती.. आहाहा! त्रिकालवर्ती.. प्रभु! त्रिकालवर्ती शब्द सरल है, परन्तु त्रिकाल—जिसका अन्त नहीं, जिसकी शुरुआत नहीं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं। णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं। आहाहा! यहाँ तो दूसरा कहना है। कि ये पाँच पर्याय में णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती कहा है परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! ऐसा भगवान सूत्रकार का अभिप्राय है। आहाहा!

सूक्ष्म बात है, भाई ! ऐसी चीज़ ही है न, नाथ ! सूक्ष्म कहो या स्थूल कहो, जो कहो वह, परन्तु यह चीज़ ही ऐसी है.. आहाहा !

उस ओर की दृष्टि नहीं, उस ओर का अनुभव नहीं तथा पर्याय और राग की मन्दता में सब अनादि काल से मान लिया। अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। पर्याय और रागबुद्धि से गया। आहाहा ! अनन्त काल में एक बार भी सम्यग्दर्शनसहित... प्रवचनसार में तो कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा भी कहते हैं, कदाचित् कोई सच्चे मुनि हैं, भवनपति में जाते हैं, ऐसा पाठ है। छठी गाथा में है। भवनपति में जाते हैं, वह क्या ? ऐसा कोई मिथ्यात्व का बन्ध हो गया, परन्तु हैं सच्चे मुनि। मिथ्यात्व आ गया तो वहाँ गये। समझ में आया ? क्या कहा ? यहाँ प्रवचनसार है ? भवनपति आदि में भावलिंगी मुनि जाते हैं और वहाँ से निकलकर मुक्ति प्राप्त करते हैं, ऐसा पाठ है। प्रवचनसार। प्रवचनसार है यहाँ ? आहाहा ! मुनि आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी (ऐसा कहते हैं)

**संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**
**जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६ ॥**

छठी गाथा है। आहाहा ! असुर में भी जाते हैं। असुर की पर्याय अन्दर आ गयी। बन्ध हो गया। बाकी दशा तो अन्दर में ऐसी है कि असुर में से निकलकर '**संपज्जदि णिव्वाणं**' आहाहा ! छठी गाथा। '**संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं।**' देव और असुर और मनुष्य के राजा के वैभव में से निकलकर निर्वाण प्राप्त करेंगे। ऐसी कोई भूल सहज रह गयी होगी तो छूट जायेगी। आहाहा ! एक ओर कहे भवनपति और व्यन्तर, ज्योतिष में समकिती नहीं जाता, स्त्री में नहीं जाता। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं जाता, नारकी, तिर्यंच में नहीं जाता। आहाहा ! है या नहीं ऐसा ? यहाँ तो कहते हैं मुनि असुर में जाते हैं, पाठ है। और वह '**संपज्जदि णिव्वाणं**' वहाँ से निकलकर तो निर्वाण प्राप्त करेंगे। आहाहा ! गजब बात है। यह अन्तर की दृष्टि उघड़ गयी है और ध्यान और आनन्द बहुत है, उसमें कोई ऐसा सहज आ गया, तो असुर की आयु बँध गयी। आहाहा ! यह प्रवचनसार है। दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा ! उसमें ऐसा कहा, '**संपज्जदि णिव्वाणं**'

**सुर-असुर मनुजेन्द्रों के विभवों सहित निर्वाण की,**
**प्राप्ति करे चारित्र से जीव ज्ञानदर्शन मुख्य से ॥६ ॥**

चारित्र से (च्युत होकर) चाहे कोई कदाचित् असुर में गये हों... आहाहा! चारित्र से न जाए परन्तु कोई भूल हो गयी, सहज भूल हो गयी, अन्दर छद्मस्थ हैं। अन्दर में उग्रता बहुत है। आहाहा! यहाँ तो भगवान ने ऐसा कहा कि असुर देवलोक में से (आकर) निर्वाण प्राप्त करेंगे। जो मुनि असुर में से निकलकर मुक्ति को प्राप्त करेंगे '**संपज्जदि णिव्वाणं**' आहाहा! यह भगवान सूत्रकर्ता (कहते हैं)।

एक ओर ऐसा कहे कि समकिती भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, स्त्री, तिर्यंच, नरक में नहीं जाता। मनुष्य हो वह। आहाहा! जो नारकी समकिती हो, वह मनुष्य में जाता है, तिर्यंच में जो समकिती हो, वह मनुष्य में भी जाता है और स्वर्ग में भी जाता है। नारकी तो स्वर्ग में जाता नहीं। आहाहा! समकिती है तो मनुष्य में आता है और तिर्यंच में समकिती हो, वह कोई मनुष्य में नहीं आता, वे तो स्वर्ग में वैमानिक में जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें से कोई असुरकुमार में गये सच्चे मुनि, आत्मध्यानी, ज्ञानी अन्दर हैं, परन्तु छद्मस्थ है। सहज कोई भूल रह गयी, वह निकल जायेगी। आहाहा! और अल्पकाल में मुक्ति होगी, ऐसा पाठ है। '**संपज्जदि णिव्वाणं**' निर्वाण को प्राप्त करेंगे। आहाहा! जोर सम्यग्दर्शन और चारित्र का है।

आहाहा! किसी को विरुद्ध भी लगे। एक ओर ऐसा कहे कि समकिती भवनपति में नहीं जाता और यहाँ मुनि भवनपति में जाते हैं, ऐसा लिखा है। पाठ में लिखा है। भगवान! छद्मस्थ की बात है। अन्दर में आत्मा का भान होने पर भी, सहज कोई काल में ऐसा आ गया और असुर की गति बँध गये, वहाँ जायेंगे और वहाँ से निकलकर मोक्ष हो जायेगा। आहाहा! यह सब अन्तर में दृष्टि और चारित्र का जोर है। आहाहा! उसमें से ऐसा निकाले, किसी जगह ऐसा कहा, उसके आचार्य वे ऐसा कहें कि व्यन्तर में, भवनपति में तो मिथ्यादृष्टि जाए, समकिती जाए नहीं। यहाँ मुनि जाते हैं, ऐसा कहा है। आहाहा! भाई! उसका अभिप्राय ऐसा है कि अन्तर के दर्शन का जोर तो बहुत है,.. समझ में आया? चारित्र का भी जोर है परन्तु सहज अन्दर किसी समय, छद्मस्थ हैं, ऐसी कोई भूल मस्तिष्क में आ गयी, तो असुरकुमार का आयुष्य बँध गया, परन्तु असुरकुमार में गये और मुनि कुन्दकुन्दाचार्यादि तो वैमानिक में गये, परन्तु दोनों वहाँ से निकलकर मुक्ति में जायेंगे। आहाहा! यह अन्तर के दर्शन का जोर है। आत्मदर्शन, आत्मदर्शन। आहाहा! उसके जोर

में भवनपति में से निकलकर मोक्ष जायेंगे, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार में लिखा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **यह सब, उन भगवान परमात्मा को शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से ) नहीं हैं...** ये सब भेद नहीं हैं। आहाहा! भवनपति की पर्याय की तो बात ही कहाँ है! आहाहा! द्रव्यदृष्टि में तो यह कुछ है ही नहीं। आहाहा! परन्तु पर्याय में सहज भूल में आ जा,.. आहाहा! तो भी उसकी मुक्ति दूर नहीं होती। आहाहा! अन्तर के दर्शन और ज्ञान का जोर अन्दर है। थोड़ी भूल रह गयी। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। **ऐसा भगवान सूत्रकर्ता का अभिप्राय है।** उसमें ऐसा भी आया है। मार्गणा में यह भी आया है। कोई मुनि भवनपति में भी जाते हैं। आहाहा!

**इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में ३५-३६ वें श्लोकों द्वारा ) कहा है कि—**आहाहा!

**( मालिनी )**

**'सकलमपि विहायाह्नाय चिच्छक्तिरिक्तं**
**स्फुटतरमवगाह्य स्वं च चिच्छक्तिमात्रम्।**
**इममुपरि चरंतं चारु विश्वस्य साक्षात्**
**कलयतु परमात्मात्मानमात्मन्यनंतम्॥'**

भाई नहीं आये? हिम्मतभाई! बुखार आया है? यह सब अर्थ उन्होंने बनाये हैं। टीका में से अर्थ उन्होंने किये हैं।

***श्लोकार्थः*—चित्शक्ति से रहित...** चित्शक्ति अर्थात् सामर्थ्य। चैतन्य के सामर्थ्य के अतिरिक्त **अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा! **चित्शक्ति से रहित...** जिसमें ज्ञानसामर्थ्य भरा है, ऐसी शक्ति से रहित। **अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर...** पर्याय भी आ गयी। चित्शक्ति ली है न? गुण लिया है न? स्वभाव सामर्थ्य लिया है न? आहाहा! यह समयसार का कलश है। **चित्शक्ति से रहित अन्य सकल भावों को मूल से छोड़कर और चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का...** आहाहा! दूसरी कोई उपाधि कुछ नहीं, कहते हैं। पर्याय भी लक्ष्य में नहीं। काम / कार्य करे पर्याय। कोई भी द्रव्य निकम्मा नहीं है। निकम्मा नहीं है, इसका अर्थ, (यह कि) कार्यरहित नहीं है। कार्यरहित का अर्थ

(यह कि) पर्यायरहित नहीं है। ऐसा लिखा है? पर्याय को कार्य कहा है न? पर्याय को कार्य कहा है, द्रव्य को कारण कहा है। आहाहा! कार्य भी कारण में नहीं है। आहाहा!

**चित्शक्तिमात्र...** मात्र शब्द है न? **चित्शक्तिमात्र...** अकेला ज्ञानस्वभावमात्र। पर्याय भी जिसमें नहीं। विषय करती है पर्याय, परन्तु जिसका विषय करती है, उसमें-विषय में पर्याय नहीं है। आहाहा! **चित्शक्तिमात्र...** यह अमृतचन्द्राचार्य (कहते हैं)। **ऐसे निज आत्मा का...** आहाहा! अकेला ज्ञानस्वरूप प्रभु ध्रुव, सत्.. सत्.. सत्.. सत्व.. सत्व.. सत्व.. यह क्या कहा? सत् वस्तु का सत्व अर्थात् शक्ति-गुण एकरूप त्रिकाल जो है... आहाहा! उससे रहित **सकल भावों को मूल से छोड़कर...** आहाहा!

**चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का...** चित्शक्तिमात्र निज आत्मा। आहाहा! यह निर्णय, अनुभव पर्याय में है। यह अनुभव पर्याय में है, परन्तु चित्शक्तिमात्र में यह नहीं है। आहाहा! **चित्शक्तिमात्र ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से अवगाहन करके,...** यह पर्याय। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द ज्ञान का सागर भरा है, उसमें अवगाहन कर, प्रभु! **स्फुटरूप से अवगाहन करके,...** अतिस्फुटरूप से, ऐसी भाषा है। अति प्रगटरूप से। आहाहा! अकेला ज्ञानमात्र अकेला पिण्ड प्रभु, जिसमें लोकालोक और एक समय की पर्याय से लेकर सब छोड़ दे—दृष्टि में से उसे छोड़ दे। वस्तु है। आहाहा!

**ऐसे निज आत्मा का अति स्फुटरूप से...** ऐसे का ऐसे नहीं, अन्दर प्रगटरूप से। **अवगाहन करके,...** अनुभव करके। ज्ञानस्वभाव भगवान त्रिकाल का अनुभव, वह पर्याय है। वस्तु है, वह त्रिकाली ध्रुव है। उसका अनुभव, वह पर्याय है। वह पर्याय स्फुटरूप से, अति स्फुटरूप से अवगाहन करके। जैसे पानी में अवगाहन करते हैं, वैसे चैतन्यशक्तिमात्र भगवान आत्मा में अति स्फुटरूप से अवगाहन करके। आहाहा! **आत्मा समस्त विश्व के ऊपर...** आत्मा समस्त विश्व के ऊपर। विश्व लिया। आत्मा के अतिरिक्त विश्व लिया। आहाहा!

**आत्मा समस्त विश्व के ऊपर...** जगत के समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय, परमात्मा भी और अपनी पर्याय.. आहाहा! **विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल (एक) अविनाशी आत्मा को...** केवल एक। केवल का अर्थ एक। एकस्वरूप भगवान आत्मा, जिसमें द्वैत नहीं। यह शक्ति और शक्तिवान, ऐसा भी जिसमें भेद नहीं। आहाहा! ऐसे **अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान,...** आहाहा! दोनों सिद्ध

किये। आत्मा के अतिरिक्त विश्व भी है, यह सिद्ध किया। विश्व में आत्मा की पर्याय से लेकर लोकालोक (है, ऐसा सिद्ध किया)। समझ में आया ? भगवान आत्मा चित्शक्ति का पिण्ड प्रभु (है), उससे भिन्न अपनी पर्याय से लेकर लोकालोक। आहाहा! **अवगाहन करके, आत्मा समस्त विश्व के ऊपर प्रवर्तमान, ऐसे इस केवल ( एक ) अविनाशी आत्मा को...** मात्र त्रिकाली आत्मा को। परिणमन के ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे। परिणमन वहाँ ले जा। आहाहा! ध्रुव में परिणमन ले जा। परिणमन में परिणमन मत रख। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! एकान्त जैसा लगे, प्रभु! क्या हो ? मार्ग तो यह है। अनन्त तीर्थंकरों में यह एक ही प्रकार आता है। एक तीर्थंकर कुछ करे और दूसरे तीर्थंकर कुछ कहे, ऐसा नहीं होता। आहाहा!

**अविनाशी आत्मा को आत्मा में...** भाषा देखो! **आत्मा को आत्मा में...** समस्त विश्व पर तैरता **आत्मा को आत्मा में...** आनन्द ज्ञान में। आहाहा! आत्मा को अपने ज्ञान-आनन्द में **साक्षात् अनुभव करो**। आहाहा! साक्षात् अनुभव करो। यह मोक्ष का मार्ग है 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' आहाहा! एक श्लोक में तो कितना भरा है! ओहोहो! **आत्मा में साक्षात् अनुभव करो**। दूसरा श्लोक

***श्लोकार्थ:*** **—चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है...** आहाहा! ज्ञानशक्ति के सामर्थ्यसहित / व्याप्त **जिसका सर्वस्व-सार है..** आत्म-आनन्द ज्ञानस्वरूप पिण्ड अकेला, पर्यायरहित। **चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव...** ऐसा यह जीव। आहाहा! **इतना ही मात्र है;... चैतन्यशक्ति से व्याप्त जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है;...** आहाहा! पर्याय नहीं ली। निर्णय पर्याय में होता है, अनुभव पर्याय में होता है परन्तु पर्याय ऐसा कहती है कि इस चित्शक्ति में मेरी पर्याय का भी अभाव है। आहाहा!

**जिसका सर्वस्व-सार है—ऐसा यह जीव इतना ही मात्र है; इस चित्शक्ति से शून्य जो ये भाव हैं, वे सब पौद्गलिक हैं**। आहाहा! वाणी बहुत कठोर। ध्रुवस्वभाव के अतिरिक्त सब पुद्गल हैं। पर्याय को पुद्गल कह दिया। आहाहा! अपनी चीज़ में अन्दर नहीं है। विश्व से ऊपर रहनेवाला अर्थात् पूरी दुनिया और पर्याय से भी भिन्न रहनेवाला.. आहाहा! इसके अतिरिक्त समस्त भाव पौद्गलिक हैं। विशेष कहेंगे...

( ***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## श्लोक-६०

और ( ४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं — )

( मालिनी )

अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,
व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।
अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,
पर–परिणति–दूरं याति चिन्मात्र–मेषः ।।६०।।

( वीरछन्द )

जिसे निरन्तर ज्ञान अखण्ड भावना की धारा बहती।
उसे न किञ्चित घोर विकल्पों की धारा भी छू पाती॥
अहो ! समाधि निर्विकल्प वह भव्य पुरुष है पा लेता।
पर परिणति से दूर अनघ अनुपम चिन्मात्र प्राप्त करता॥६०॥

*श्लोकार्थ :* — सततरूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला आत्मा ( अर्थात् – 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा ) संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता, किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर; अनुपम, अनघ[१] चिन्मात्र को ( चैतन्यमात्र आत्मा को ) प्राप्त होता है।।६०॥

---

प्रवचन-४४, श्लोक-६०, ६१ गाथा-४३, मंगलवार, श्रावण शुक्ला ८, दिनांक १९-०८-१९८०

---

नियमसार। और ( ४२ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं — ) ६०वाँ श्लोक।

१. अनघ=दोषरहित; निष्पाप; मलरहित।

**अनवरतमखण्डज्ञानसद्भावनात्मा,**
**व्रजति न च विकल्पं सन्सृतेर्घोररूपम्।**
**अतुलमनघमात्मा निर्विकल्पः समाधिः,**
**पर-परिणति-दूरं याति चिन्मात्र-मेषः ।।६०।।**

आहाहा! **सततरूप से अखण्डज्ञान की सद्भावनावाला...** करनेयोग्य तो प्रभु अन्दर चैतन्य आनन्द का कन्द प्रभु है, उसका अनुभव करना, वह वस्तु है। बाकी तो सब बन्ध का कारण संसार है। आहाहा! यह सम्यक् अनुभव होने के बाद पंच महाव्रत आदि का विकल्प आता है, परन्तु है तो बन्ध का कारण। यह चीज़... आहाहा! जिसने पाताल में आत्मा भगवान, एक समय की पर्याय के पाताल में अन्दर **सततरूप से अखण्डज्ञान की सद्भावना...** आहाहा! जिसे निरन्तर अखण्ड ज्ञान की, आत्मा की, आनन्द की, शान्ति की, वीतरागस्वभाव की सद्भावनावाला आत्मा। आहाहा! ऐसी स्थितिवाला आत्मा। '**मैं अखण्डज्ञान हूँ**'... मैं तो अखण्डज्ञान, आनन्द हूँ। राग, दया, दान, क्रियाकाण्ड तो नहीं परन्तु पर्यायभेद भी मुझमें नहीं। प्रभु! सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! मूल बात बहुत सूक्ष्म है।

पद्मनन्दिपंचविंशति में पद्मनन्दि आचार्य ने ब्रह्मचर्य की एक व्याख्या की है। अधिकार तो २६ हैं परन्तु पद्मनन्दिपंचविंशति कहा जाता है, परन्तु २६वाँ ब्रह्मचर्य का अधिकार लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में रमना, वह ब्रह्मचर्य है। शरीर से ब्रह्मचर्य (पाले), बाल ब्रह्मचारी हो, वह कोई धर्म नहीं है, प्रभु! आहाहा! वह तो काय की क्रिया रुकती है। आहाहा! अपना आत्मा निर्विकल्प में नहीं आया। ऐसी बहुत बात की। पश्चात् ऐसा कहा, प्रभु! मेरी सूक्ष्म बात, सूक्ष्म बात, तुम विद्वानों, युवकों को ठीक न लगे तो प्रभु! माफ करना। दूसरा क्या कहें? हमारे पास हो, वह देते हैं। आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। पद्मनन्दि मुनि। २६वाँ अधिकार है।

ब्रह्मचर्य का अधिकार बहुत सूक्ष्म लिया। काया से, मन से, वचन से ब्रह्मचर्य नहीं। अन्दर आनन्द के नाथ को स्पर्श कर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हो, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। ऐसा कहने के बाद कहा कि हे युवकों! प्रभु! तुम्हें मेरी बात सूक्ष्म लगे, परन्तु सत्य तो प्रभु यह है। ठीक न लगे तो माफ करना। मैं मुनि हूँ, मुझसे दूसरी क्या आशा रखोगे? आहाहा! पद्मनन्दि जैसे सन्त, वे भी ऐसी सूक्ष्म बात करके माफी माँगते हैं। तो प्रभु यह

तो सूक्ष्म बात है। अभी तो क्रियाकाण्ड के समक्ष, जहाँ हो वहाँ क्रियाकाण्ड में ही चढ़ गया है। पुण्यबन्ध की क्रिया में धर्म मानकर चढ़ गया है। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ परमात्मा की सतत भावना... आहाहा! निरन्तर प्रभु, तेरी अखण्ड ज्ञान की सतत् रूप से निरन्तर और अखण्ड ज्ञान। निरन्तर, परन्तु किसकी भावना? अखण्ड ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, ध्रुवज्ञान, सामान्यज्ञान, जिसमें ज्ञान के पाँच भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसे ज्ञान को स्पर्श कर-अखण्डानन्द के नाथ को छूकर, स्पर्श कर। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, प्रभु! एकदम कहा नहीं जा सकता हो और अभ्यास भी न हो। सुनने मिलना कठिन पड़े, इससे किसी को कठिन लगे तो, प्रभु! दूसरा क्या हो? मार्ग तो यह है। अन्तर चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द के सतत् अखण्ड ज्ञान की सद्भावना के अतिरिक्त कोई चीज़ धर्म-वर्म नहीं है। आहाहा!

मुनि महाराज जगत को प्रसिद्ध करते हैं, प्रभु! **सततरूप से अखण्डज्ञान की सद्भावना...** सद्भावनावाला—सच्ची भावनावाला। त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु, शुद्ध ब्रह्म, यह शुद्ध अधिकार है न? वह शुद्ध कहो या ध्रुव कहो। यह शुद्धभाव पर्याय की बात नहीं है। अधिकार का नाम शुद्धभाव है, यह शुद्ध पर्याय का अधिकार नहीं है। शुद्धभाव ध्रुव का अधिकार है। अखण्डानन्द सत्ता, स्वसत्ता से विराजमान, अकृत, अविनाशी, पूर्णस्वभाव से भरपूर भगवान, ऐसे स्वभाव की सतत्, अखण्ड... आहाहा! **ज्ञान की सद्भावना...** स्वरूप तो चैतन्य है। उस चैतन्यस्वरूप की भावना अर्थात् अन्दर एकाग्रता। विकल्प नहीं। चिन्तवन में चिन्ता के विकल्प नहीं। आहाहा!

**सद्भावनावाला आत्मा ( अर्थात् - 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'—ऐसी सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... )** आहाहा! सूक्ष्म बात तो बहुत की। मैं अखण्ड त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप अभेद, जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, क्योंकि पर्याय उसे विषय करती है, परन्तु पर्याय उसमें नहीं है। ऐसी सद् भावनावाला जीव **( सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... )** ऐसी सच्ची भावना अर्थात् वीतरागी निर्मल पर्याय आहाहा! भगवन्त! यह तो तेरी पर्याय की बात चलती है। प्रभु! तेरा द्रव्य तो अखण्ड ज्ञान है। अखण्ड आनन्दकन्द पूर्णानन्द नाथ (है)। आहाहा! साधारण और क्रियाकाण्ड के रुचिवाले को, व्यवहार के रसवाले को ठीक न पड़े। मार्ग तो प्रभु यह है। जब करना पड़ेगा, तब यही करना पड़ेगा जगत को। आहाहा!

अखण्ड ज्ञान में तो एकरूप वस्तु, परमात्मस्वरूप ही हूँ—ऐसी निर्विकल्पदशा, वह सद्भावना, उसका नाम भावना है। वह है पर्याय, परन्तु पर्याय का ध्येय है अखण्ड ज्ञान, आनन्दकन्द के ऊपर। आहाहा! वह **( जिसे निरन्तर वर्तती है,... )** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द के नाथ पर जिसकी निरन्तर भावना (वर्त रही है)। विकल्प से रहित, क्रियाकाण्ड के विकल्प को स्पर्श किये बिना, अखण्डानन्द के नाथ को स्पर्श करके.. आहाहा! **( जिसे निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा )** वह आत्मा। अन्दर है न? आहाहा! व्यवहार है। अन्तर अनुभव होने के बाद व्यवहार राग आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है, वह कोई धर्म नहीं। अनुभव होने के बाद, आगे बढ़ने पर पंच महाव्रतादि के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण आदि के विकल्प आते हैं, परन्तु है वह बन्ध का कारण, प्रभु! परन्तु साथ में निश्चय है तो उसे (विकल्प को) व्यवहार कहने में आता है परन्तु है तो बन्ध का कारण। आहाहा!

प्रभु! तेरी महिमा की तुझे खबर नहीं है। तेरी महिमा का पार नहीं है, नाथ! यहाँ तो कहा **( 'मैं अखण्डज्ञान हूँ'... )** आहाहा! **( ऐसी सच्ची भावना... )** धारणा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पढ़कर धार लिया, ऐसा तो अनन्त बार हो गया, प्रभु! उसमें कोई जन्म-मरण की गाँठ नहीं गलती। आहाहा! **( सच्ची भावना जिसे निरन्तर वर्तती है,... )** आहाहा! इसका अर्थ (यह कि) सम्यक् अनुभव हुआ, वह तो निरन्तर वर्तता है। भेदज्ञान हुआ, विकल्प से प्रभु भिन्न पड़ा, वह तो निरन्तर वर्तता है। फिर भेदज्ञान करना नहीं पड़ता। अन्दर से सहज हो जाता है। राग से भिन्न पुरुषार्थ से पर्याय का द्रव्य पर ढलना होता है। आहाहा!

शुरुआत में ही यह गाथा कठिन आयी है। लोग कहें, तब हमें करना क्या? हम वहाँ पहुँच नहीं सकते, प्रभु! परन्तु क्यों नहीं पहुँच सकते? चीज़ है न? अनन्त जीव पहुँच गये न, प्रभु! आहाहा! नारकी में भी जहाँ सम्यग्दर्शन पाते हैं। आहाहा! जहाँ दुःख का पर्वत पड़ा है, मात्र दुःख का, जिसके दुःख सुनने पर आचार्य महाराज कहते हैं कि चोट लगती है, ऐसे दुःख हैं, प्रभु! उसमें भी सम्यग्दृष्टि जीव हैं। आहाहा! सातवें नरक में भी इस निर्विकल्प आत्मा का अनुभव करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव हैं। आहाहा!

यहाँ पहले तो यह कहा, अखण्ड ज्ञान हूँ—ऐसी सत्ता का स्वीकार किया। सत्ता कैसी है? कि अखण्ड ज्ञान, अखण्ड आनन्द, अखण्ड शान्ति, अखण्ड वीतरागता, यह उसकी सत्ता है। उसके सत् का सत्व है। प्रभु का सत्व यह है, नाथ! तेरी चीज़ तो अन्दर

यह है, प्रभु! आहाहा! सन्त, प्रभु कहकर पुकारते हैं। शिष्य को भगवानरूप से बुलाकर (पुकार करते हैं).. आहाहा! भगवान! सुन न प्रभु! आहाहा! तेरी चीज़ अन्दर में अखण्ड आनन्द और अखण्ड शान्ति से वर्तती है। ऐसी सच्ची भावना, वह पर्याय है। अखण्ड ज्ञान, वह द्रव्य है। सच्ची भावना, वह निर्विकल्प वीतरागदशा है। आहाहा! अखण्ड ज्ञान, वह वीतरागीस्वरूपी ध्रुव है और यह भावना, वह वीतरागी निर्मल-निर्विकल्प पर्याय है। चौथे गुणस्थान में पाँचवें, छठवें (गुणस्थान में) (**जिसे निरन्तर वर्तती है,...**) आहाहा! गजब किया है न!

कैसा? कि प्रभु निरन्तर अखण्ड है। आत्मा निरन्तर अखण्ड अनादि-अनन्त है। उस ओर झुकाव करके भावना उत्पन्न हुई, वह निरन्तर वर्तती है। निरन्तर रहनेवाला भगवान, उसकी भावना भी निरन्तर वर्तती है। आहाहा! (**निरन्तर वर्तती है, वह आत्मा**) **संसार के घोर विकल्प को नहीं पाता,...** आहाहा! भाषा तो देखो! यह शुभराग भी घोर संसार है। आहाहा! प्रभु इससे निराला अन्दर है। वह सतत् निरन्तर भावनावाला आत्मा घोर विकल्प.. आहाहा! चाहे तो शुभराग हो.. घोर संसार कहा है। दु:ख है, संसार है, राग है, विकल्प है, आकुलता है, अशान्ति है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी अनाकुल नहीं, आनन्द नहीं; आकुलता है, अशान्ति है, अस्वच्छता है, उदयभाव है, विकारभाव है, मलिनभाव है, दु:खरूप भाव है। प्रभु उनसे भिन्न आनन्दरूप त्रिकाल है। आहाहा! **घोर विकल्प को नहीं पाता,...** इस ओर अखण्ड आनन्द का नाथ, उसकी निरन्तर-सतत् भावना, वही कर्तव्य है। राग के विकल्प का कर्ता होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसी बात है। **घोर विकल्प को नहीं पाता,...** ओहोहो!

**किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,...** आहाहा! है तो पर्याय। त्रिकाली निरन्तर नाथ को अनुभव करने पर जो शान्ति आती है, उसे यहाँ समाधि कहा है। समाधि कोई दूसरे अन्यमति जो बाबा-बाबा करते हैं, वह नहीं। वीतरागपने का भाव, वीतरागीस्वरूप प्रभु की भावना वीतरागभाव, उसे—**निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,...** आहाहा! अन्तर में प्रभु है महाभगवान, जिसे विकल्प का स्पर्श नहीं, जिसे तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसे विकल्प का भी स्पर्श नहीं—ऐसा वह परमात्मा है, प्रभु! तू परमात्मा है, नाथ! आहाहा! उसकी निरन्तर भावना, निरन्तर द्रव्य की निरन्तर भावना। नित्य द्रव्य की निरन्तर भावना, उसे निर्विकल्प समाधि होती है, शान्ति होती है। उसे विकल्प उत्पन्न नहीं होते। आहाहा!

एक श्लोक में गजब काम है। मुनिराज दिगम्बर सन्त (तो) केवलियों के पथानुगामी हैं। आहाहा! यह तो फिर विकल्प आ गया, नहीं तो समाधि-शतक में (तो) कहते हैं, अरे रे! समझाने का विकल्प पागलपन है। समाधिशतक। आहाहा! क्योंकि वह राग है, दुःख है, आकुलता है, शान्ति के सागर से विरुद्ध भाव है। आहाहा!

ऐसा **घोर विकल्प को नहीं पाता, किन्तु निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ,...** आहाहा! ये पंचम काल के मुनि। पंचम काल के श्रोता को कहते हैं। कोई ऐसा कहता है कि यह बात तो चौथे काल के (लिये है तो) ऐसा नहीं है, प्रभु! आत्मा को काल-फाल लागू नहीं पड़ता। उसे चौथा काल, पहला काल, दूसरा काल, नारकी-फारकी ऐसा कुछ लागू नहीं पड़ता। वह तो चिदानन्द का नाथ, निर्मलानन्द के अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु अनादि-अनन्त एकरूप विराजमान है। आहाहा! उसे **निर्विकल्पसमाधि को प्राप्त करता हुआ, पर-परिणति से दूर;...** शब्द में अन्तर पड़ा। रदू वह शब्द यहाँ छपाया है। परन्तु मूल शब्द तो दूर है। इसमें अन्तर पड़ गया। **पर-परिणति से दूर; अनुपम,...** आहाहा! यह निर्विकल्प समाधिधर्म है, वह भी निरूपम है।

यह तो पहली गाथा में कहा। '**ध्रुवमचलमणोवमं**' आहाहा! समयसार की पहली गाथा में भगवान ने कहा '**ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते**' अनुपम – उपमारहित ऐसी सिद्धगति को प्राप्त, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। आहाहा! नमस्कार करता हूँ, इसका अर्थ ऐसा लिया। '**वंदित्तु**' का अर्थ ऐसा लिया कि अनन्त सिद्ध को, प्रभु! मैं यह समयसार शुरु करता हूँ तो अपनी पर्याय में स्थापना करता हूँ और श्रोता के हृदय में स्थापित करता हूँ। आहाहा! पहली गाथा। उसकी व्याख्या। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' अर्थात् क्या? सिद्ध को वन्दन करना अर्थात् क्या? आहाहा! अन्तर में.. आहाहा! अनुपम चीज़। उपमारहित निर्विकल्प समाधि, वह अनन्त सिद्ध को अपनी आत्मा में स्थापन करता है, पर्याय में अनन्त सिद्ध स्थापित करता है, वहाँ दृष्टि द्रव्य पर चली जाती है। पर्याय में अनन्त सिद्ध को स्थापित करता है। आहाहा! पहली गाथा गजब की गाथा है। कोई भी गाथा ऐसी है। आहाहा! अनन्त सिद्ध को अपनी पर्याय में स्थापित करता हूँ। इसका अर्थ कि मेरा ध्यान, ध्येय के ऊपर ही है। श्रोता की पर्याय में भी मैं अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ। आहाहा! भगवान! अनन्त भगवान को तुम्हारी पर्याय में बुलाता हूँ। तुम एक हो, प्रभु! परन्तु तुम्हारी एक पर्याय में मैं अनन्त भगवानों को पधराता हूँ। आहाहा! '**वंदित्तु**' का ऐसा अर्थ किया। ऐसा अर्थ है।

आहाहा! पश्चात् मैं यह समयसार कहूँगा। तेरा लक्ष्य आत्मा पर होगा तो यह क्या कहते हैं, वह तुझे ख्याल में आयेगा। नहीं तो तुझे ख्याल में भी नहीं आयेगा। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **पर-परिणति से दूर; अनुपम,...** आहाहा! जो वहाँ कहा यह। '**ध्रुवमचलमणोवमं**' पहली गाथा में। उस परिणति की उपमा क्या कहनी! धर्म की परिणति, परिणाम की परिणति; परिणामी भाव जो भगवान, पंचम भाव जो भगवानस्वरूप, उसके ध्यान की भावना की परिणति का क्या कहना? आहाहा! उसे किसकी उपमा देना? **पर-परिणति से दूर; अनुपम,...** आहाहा! यह धर्म। यह धर्म अनुपम है। धर्म की कोई उपमा नहीं है। आहाहा! उसमें शब्द है? उसमें थोड़ा अन्तर है। दूर है न? अन्तर है। रदू छप गया है। **पर-परिणति से रदू;** ऐसा छपने में अन्तर हुआ। दूर—**पर-परिणति से दूर; अनुपम,...** आहाहा! इसकी उपमा इसे दे। इसकी उपमा इसे दे। इसकी उपमा दूसरे को कौन दे सके?

यह सम्यग्दर्शन निर्विकल्प समाधि... आहाहा! इसकी उपमा इसे दे। किसके साथ? तुलना करना? आहाहा! ***अनघ=दोषरहित; निष्पाप।*** निर्दोष। **चिन्मात्र को...** आहाहा! ऐसा चिदानन्द प्रभु त्रिकाल, उसकी भावना करनेवाला। निरन्तर चीज़ का निरन्तर भाव करनेवाला। निर्दोष चिन्मात्र को, निर्दोष ज्ञानस्वभावमात्र, ज्ञानस्वभाव ज्ञातामात्र ही आत्मा है। उस ज्ञानस्वभावमात्र को **प्राप्त होता है**। आहाहा! अन्तर आनन्द के नाथ को प्राप्त करता है, ऐसा कहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे ज्ञान शब्द से आत्मा कहा है। उस **चिन्मात्र को ( चैतन्यमात्र आत्मा को )...** ऐसा। चैतन्यमात्र आत्मा, ज्ञानमात्र आत्मा, विकल्पमात्र से रहित। आहाहा! क्रियाकाण्ड के, राग के विकल्प से प्रभु रहित है। आहाहा! उसे **प्राप्त होता है**।

कलश बहुत ऊँचा आया। आधे घण्टे चला। ओहोहो! इसकी बात क्या करना! प्रभु! वह शब्दों से पार है। शब्दों को खबर नहीं कि वह चीज़ क्या है? और शब्द निकलते हैं। आहाहा! शब्दों को खबर नहीं कि यह चीज़ क्या है? शब्द तो जड़ अचेतन हैं और वाणी भगवान चैतन्य की बात करती है। आहाहा! चैतन्य में स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। जानने की ताकत नहीं। वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। आहाहा! वह वाणी चिद् को-आत्मा को स्पर्श नहीं करती। वह वाणी स्व-पर को प्रकाशित करे (बतलाये), ऐसी उसमें शक्ति है। आहाहा! उस वाणी से यह निकला है। ऐसा प्राप्त होता है। यह ६० वाँ श्लोक हुआ। दूसरा, ६१ वाँ श्लोक।

## श्लोक-६१

( स्रग्धरा )

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः।।६१।।

( वीरछन्द )

भक्त अमर नत मुकुट रत्न से पूज्य चरण वे वीर जिनेश।
जन्म मृत्यु अरु जरा विनाशक देते अघ नाशक उपदेश॥
महावीर तीर्थाधिनाथ वच सन्त जिसे उर में धरते।
सत्यशील नौका द्वारा वे पार भवोदधि को पाते॥६१॥

*श्लोकार्थः*—भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का ( पूर्वोक्त ) उपदेश समझकर, सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।।६१॥

### श्लोक-६१ पर प्रवचन

इत्थं बुद्ध्वोपदेशं जननमृतिहरं यं जरानाशहेतुं,
भक्तिप्रह्वामरेन्द्रप्रकटमुकुटसद्रत्नमालार्चिताङ्घ्रेः।
वीरात्तीर्थाधिनाथाद्दुरितमलकुलध्वान्तविध्वन्सदक्षं,
एते सन्तो भवाब्धेरपरतटममी यान्ति सच्छीलपोताः।।६१।।

आहाहा! दिगम्बर सन्तों का एक-एक पद तो देखो! चार लाईनें थीं, ६० वें (श्लोक

की) चार थी। आहाहा! अब यह एक, दो, तीन.. यह भी चार है।

**भक्ति से नमित...** आहाहा! **देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—** आहाहा! ऐसे भगवान **भक्ति से...** अकेले नम्रीभूत, ऐसा नहीं। अकेला नमना नहीं। आहाहा! अन्दर भक्ति से नमन। भगवान को इन्द्र भक्ति से नमन करते हैं। एकावतारी इन्द्र प्रथम देवलोक के शकेन्द्र और उनकी मुख्य रानी, दोनों एक भवतारी हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष में जानेवाले हैं, ऐसा सिद्धान्त में लेख है। आहाहा! वे देव, भगवान को वन्दन करते हैं। आहाहा!

कहते हैं, **भक्ति से नमित...** क्या नमित? **देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला...** आहाहा! भगवान को नमन करते हुए सुन्दर रत्नमाला ऐसी नम गयी है। **भक्ति से नमित देवेन्द्र, मुकुट की सुन्दर रत्नमाला द्वारा जिनके चरणों को प्रगटरूप से पूजते हैं—** आहाहा! **ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा...** ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा **ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक...** आहाहा! भगवान ने यह कहा। क्या? जन्म-जरा और मृत्यु का नाश करनेवाली बात.. जन्म करना, भव-अवतार करना, यह नहीं।

योगीन्द्रदेव तो दोहे में कहते हैं कि प्रभु! भव कलंक है। आत्मा में भव, वह कलंक है। अखण्डानन्द का नाथ, उसे यह भव क्या? यह भव क्या? यह भ्रमण क्या? यह क्या है? आहाहा! कहते हैं कलंक है। अरे! इसे इसके घर की बात की खबर नहीं। घर में क्या रत्न पड़े हैं, इसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! और बाहर की बात सब लगायी है। इसकी प्रशंसा और उसमें... आहाहा! यहाँ कहते हैं **ऐसे महावीर तीर्थाधिनाथ द्वारा ये सन्त, जन्म-जरा-मृत्यु का नाशक तथा दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर,..** आहाहा! श्लोक भी ऐसा आया है न! जगत का भाग्य है। आहाहा!

**दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश...** भगवान का था, ऐसा कहते हैं। भगवान का उपदेश, भव हो और पुण्य हो, यह नहीं था। आहाहा! जिसे इन्द्रों की रत्नमाला नमती है, ऐसा भगवान का उपदेश, आहाहा! ऐसा उपदेश कि **दुष्ट पापसमूहरूपी अंधकार का ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का (पूर्वोक्त) उपदेश...** था। भगवान का उपदेश पाप और पुण्य के नाश करने का था। पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों पाप हैं।

योगीन्द्रदेव कहते हैं कि 'पाप को पाप तो सब कहे, परन्तु पुण्य को अनुभवीजन पाप कहे' योगीन्द्रदेव के ( योगसार दोहा ७१ ) में है। 'पाप को पाप तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहे' आहाहा! क्योंकि दोनों बन्धन का कारण और आकुलता तथा दुःख है। पुण्य और पाप दोनों आकुलता और दोनों दुःख के कारण हैं। कहो, हसमुखभाई! पैसा-बैसा में, रजनीभाई! उनमें सुख नहीं है, ऐसा कहते हैं। धूल में सुख नहीं है। आहाहा! उस ओर लक्ष्य करने से सुख नहीं है। पैसे में तो सुख नहीं, परन्तु उस ओर लक्ष्य करने से सुख नहीं। परपदार्थ के प्रति लक्ष्य करने से आकुलता होगी, प्रभु! आहाहा! चाहे तो त्रिलोक के नाथ तीर्थंकर के प्रति लक्ष्य जाये तो भी राग और आकुलता उत्पन्न होगी। ऐसी चीज़ है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं **ध्वंस करने में चतुर, ऐसा इस प्रकार का ( पूर्वोक्त ) उपदेश समझकर, सत्शीलरूपी नौका द्वारा,...** धर्मात्मा, सन्त, सत्शीलरूपी। सतस्वरूप का शील आचरण। आहाहा! अन्तर भगवान आनन्दस्वरूप के सत् का आचरण, **सत्शीलरूपी नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** आहाहा! बात तो बहुत मीठी है, प्रभु! कठिन लगे कि यह ही मार्ग होगा? दूसरा कोई व्यवहारमार्ग नहीं होगा? ऐसी सामने आवाज आवे। मार्ग दूसरा नहीं है, प्रभु! मार्ग तो यह एक ही है। आहाहा! बीच में फिर आवे, पूर्ण वीतरागतान हो तो यह महाव्रत, समिति, गुप्ति, वन्दन, भक्ति आदि का राग आवे, परन्तु वह सब बन्ध का कारण है। वह कोई मुक्ति और निर्जरा का कारण नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सत्शीलरूपी नौका...** सत्शुद्ध चैतन्यमूर्ति निर्विकल्प समाधि, वह सत्शीलरूपी नौका। आहाहा! नावड़ी (नौका का गुजराती शब्द) नावड़ी कहते हैं न? उस **नौका द्वारा, भवाब्धि के...** भवनरूपी समुद्र, अब्धि अर्थात् समुद्र, भवरूपी समुद्र, उसके सामने किनारे पहुँच जाते हैं। भव का अन्त आता है। इसलिए भगवान ने उपदेश किया। यह चैतन्य की भावना जिसे हुई, अन्तर के आनन्द की, शान्ति और वीतरागता की (भावना हुई), उसे भवाब्धि का-भव के अब्धि का अन्त आ जाता है। आहाहा!

यह कहीं अभी का है? यह तो हजारों वर्ष पहले का है। भगवान की वाणी (मूलशास्त्र नियमसार) तो दो हजार वर्ष पहले की है। यह टीका नौ सौ वर्ष पहले की है। पद्मप्रभमलधारिदेव। पंचम काल के सन्त, पंचम काल के जीव को ऐसी बात करते हैं।

उसे तू नहीं पहुँच सके, इसलिए ऐसा करना.. ऐसा करना.. ऐसा करना.. ऐसा नहीं कहा। आहाहा! यह करना। प्रभु! ऐसा करके अनन्त (जीव) मोक्ष में गये हैं। आहाहा! पंचम काल में भी आत्मज्ञान पाकर बहुत से जीव एकावतारी हो गये हैं।

ऐसी **सत्‌शीलरूपी...** जो क्रिया कही। क्रिया यह—सत्‌शील। त्रिकाली आनन्द का नाथ सत्, उसके शील का स्वभाव, उस रूपी नौका, वह नाव, उस **द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** भवाब्धि के सामने किनारे अर्थात् मोक्ष। आहाहा! धन्नालालजी! यह गाथा आयी है। लोगों को ऐसा लगे, एकान्त है। व्यवहार की तो बात आती नहीं है। व्यवहार आवे, तब बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। निश्चय आवे, तब उसकी महिमा करते हैं। प्रभु! निश्चय अर्थात् सत्य; व्यवहार अर्थात् तो उपचारिक-आरोपित कथन है। आहाहा!

यहाँ अन्तर में शील, सत् का शील। सत् जो स्वरूप भगवान, उसका शील अर्थात् स्वभाव, उसके द्वारा **नौका द्वारा, भवाब्धि के सामने किनारे पहुँच जाते हैं।** मोक्ष में पहुँच गया। ये पंचम काल के सन्त, श्रोता को पंचम काल में कहते हैं कि जो मोक्ष गये हैं, वे इस अनुसार गये हैं। आहाहा! ऐसा नहीं कि यह हल्का पंचम काल है, इसलिए इसे कुछ दूसरी हल्की बात कहना या दूसरी बात कहना, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! यह बात है प्रभु! मार्ग तो यह एक है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' इस चिदानन्द का अनुभव-वेदन, शान्ति वेदन, आनन्द का स्वाद। आहाहा! यह एक ही मोक्ष का मार्ग है; दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। यह ४२ गाथा पूरी हुई। ४३ गाथा।

## गाथा-४३

णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्मओ णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।४३।।

निर्दण्डः निर्द्वन्द्वः निर्ममः निःकलः निरालम्बः।
नीरागः निर्दोषः निर्मूढः निर्भयः आत्मा।।४३।।

इह हि शुद्धात्मनः समस्तविभावाभावत्वमुक्तम्। मनोदण्डो वचनदण्डः कायदण्डश्चेत्येतेषां योग्यद्रव्यभावकर्मणामभावान्निर्दण्डः। निश्चयेन परमपदार्थव्यतिरिक्त-समस्तपदार्थसार्था-भावान्निर्द्वन्द्वः। प्रशस्ताप्रशस्तसमस्तमोहरागद्वेषाभावान्निर्ममः। निश्चयेनौदारिकवैक्रियि-काहारकतैजसकार्मणाभिधानपञ्चशरीरप्रपञ्चाभावान्निःकलः। निश्चयेन परमात्मनः परद्रव्य-निरवलम्बत्वान्निरालम्बः।

मिथ्यात्ववेदरागद्वेषहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्साक्रोधमानमायालोभाभिधानाभ्यन्तर-चतुर्दशपरिग्रहाभावान्नीरागः। निश्चयेन निखिलदुरितमलकलङ्कपङ्कनिर्निक्तसमर्थ-सहजपरमवीतरागसुखसमुद्रमध्यनिर्मग्नस्फुटितसहजावस्थात्मसहजज्ञानगात्रपवित्रत्वान्निर्दोषः।

सहजनिश्चयनयबलेन सहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजपरमवीतराग-सुखाद्यनेकपरमधर्माधारनिजपरमतत्त्वपरिच्छेदनसमर्थत्वान्निर्मूढः, अथवा साद्यनिधनामूर्ता-तीन्द्रियस्वभावशुद्धसद्भूतव्यवहारनयबलेन त्रिकालत्रिलोकवर्तिस्थावरजङ्गमात्मक-निखिलद्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानावस्थत्वान्निर्मूढश्च। निखिलदुरितवीरवैरिवाहिनीदुःप्रवेशनिजशुद्धान्तस्तत्त्वमहादुर्गनिलयत्वान्निर्भयः। अयमात्मा ह्युपादेयः इति।

तथा चोक्तममृताशीतौ ह्न

( मालिनी )

स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्,
रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसङ्ख्यम्।
अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायु-
क्षितिपवनसखाणुस्थूल दिक्चक्रवालम्।।

तथाहि ह्न

निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम निःशरीर निराग है।
निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है॥४३॥

अन्वयार्थः—[ आत्मा ] आत्मा [ निर्दण्डः ] निर्दण्ड [ निर्द्वन्द्वः ] निर्द्वन्द्व [ निर्ममः ] निर्मम, [ निःकलः ] निःशरीर, [ निरालंबः ] निरालंब, [ नीरागः ] नीराग, [ निर्दोषः ] निर्दोष, [ निर्मूढः ] निर्मूढ और [ निर्भयः ] निर्भय है।

टीकाः—यहाँ ( इस गाथा में ) वास्तव में शुद्ध आत्मा को समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।

मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है। निश्चय से परमपदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का ( आत्मा में ) अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व ( द्वैतरहित ) है। प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से आत्मा, निर्मम ( ममतारहित ) है। निश्चय से औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, और कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से आत्मा, निःशरीर है। निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है। मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, और लोभ नामक चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा, निराग है। निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ, सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न ( डूबी हुई लीन ) प्रगट सहजावस्थास्वरूप जो सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है। सहज निश्चयनय से सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहज-परमवीतराग सुख आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ ( मूढ़तारहित ) है; अथवा, सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को एक समय में जानने में समर्थ सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है। समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती—ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में ( किले में ) निवास करने से आत्मा, निर्भय है। ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है।

१. निर्दण्ड=दण्डरहित। (जिस मनवचनकायाश्रित प्रवर्तन से आत्मा दण्डित होता है, उस प्रवर्तन को दण्ड कहा जाता है।)

इसी प्रकार ( श्री योगीन्द्रदेवकृत ) अमृताशीति में ( ५७ वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—

( वीरछन्द )

स्वर समूह व्यञ्जन विसर्ग से आत्मतत्त्व है शून्य सदा।
संख्या से भी मुक्त और जो शाश्वत अहित-विहीन सदा॥
अन्धकार, रस, गंध तथा ही स्पर्श रूप से भिन्न सदा।
भू, जल, अग्नि पवन अणुओं से दिशा चक्र से भिन्न सदा॥

**श्लोकार्थ:—आत्मतत्त्व, स्वरसमूह, विसर्ग और व्यञ्जनादि अक्षरोंरहित तथा संख्यारहित है ( अर्थात्, अक्षर और अंक का आत्मतत्त्व में प्रवेश नहीं है ); अहितरहित है; शाश्वत है; अंधकार तथा स्पर्श, रस, गंध और रूपरहित है; पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है, तथा स्थूल दिक्‌चक्र ( दिशाओं के समूह ) रहित है।**

---

## गाथा-४३ पर प्रवचन

---

**णिद्दंडो णिद्दंद्दो णिम्मओ णिक्कलो णिरालंबो।**
**णीरागो णिद्दोसो णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।४३।।**

आत्मा ऐसा होता है, यह शुद्ध अधिकार है न ? शुद्ध कहो या ध्रुव कहो या आत्मा कहो। नीचे हरिगीत

**निर्दंड अरु निर्द्वंद्व निर्मम निःशरीर निराग है।**
**निर्मूढ़ निर्भय, निरवलंबन आत्मा निर्दोष है॥४३॥**

यह आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो आत्मा के गीत हैं। पुण्य के गीत यहाँ नहीं हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव तो आगे कहते हैं कि शुभभाव तो घोर संसार है। आहाहा! राग है, आकुलता है, विकार है। पूर्ण वीतराग न हो, तब शुभराग पंच महाव्रतादि (राग) आता है, परन्तु है दुःख, है आकुलता। आहाहा! ४३ (गाथा)।

**टीका:—यहाँ ( इस गाथा में ) वास्तव में शुद्ध आत्मा को समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।** आहाहा! **( इस गाथा में ) वास्तव में शुद्ध आत्मा को...** त्रिकाल

भगवान शुद्ध ध्रुवस्वरूप प्रभु को, समस्त विभाव-किसी प्रकार का विभाव, महाव्रतादि का विभाव भी जिसमें नहीं है। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भी विभाव और अधर्म है। आहाहा! धर्म से बन्ध होता ही नहीं। वह भाव भी (बन्धरूप भाव) आत्मा में नहीं है। है? **शुद्ध आत्मा को समस्त विभाव का अभाव है—ऐसा कहा है।**

अब निर्दण्ड की व्याख्या करते हैं। **मनदण्ड,...** मन का विकल्प उठे, वह मनदण्ड। आहाहा! **वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का अभाव होने से...** आहाहा! भगवान आत्मा प्रभु, जिसे नौ तत्त्व में आत्मा कहते हैं, उसमें कहते हैं कि जो **मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का...** अर्थात् विकार विकल्प। उसका **अभाव होने से आत्मा, निर्दण्ड है।** आहाहा! उसमें दण्ड है ही नहीं। त्रिकाली भगवान सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन—जिसमें भगवान की भेंट होती है, वह तो निर्दण्ड—दण्डरहित चीज़ है। आहाहा! मन का विकल्प भी दण्ड है, यह उसमें नहीं है। आहाहा! उसका कारण कहा न? कि **कायदण्ड के योग्य द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों का...** दोनों का। **अभाव होने से...** भगवान आत्मा में तो दोनों कर्म—द्रव्यकर्म और भावकर्म। द्रव्यकर्म जड़ है, भावकर्म विकल्प है। (उनका अभाव है)। आहाहा! यह तो बारहवाँ दिन है। अब आठ दिन रहे। यह बात सूक्ष्म तो पड़ती है, प्रभु! परन्तु कान में तो पड़े। अरे! कब करेगा? प्रभु! यह भव गया, फिर यह भाव किस भव में करेगा? आहाहा!

**मुमुक्षु :** शिक्षण शिविर में यह भाव चलाया, वह बड़ी कृपा की।

आहाहा! यह निर्दण्ड है। भगवान अन्दर निर्दण्ड है, मन-वचन-काया के कारणरूप द्रव्यकर्म और भावकर्म अर्थात् मन का विकल्प, वचन का विकल्प और काया का विकल्प, वह भावकर्म - ऐसे दण्ड से रहित प्रभु है। उसमें दण्ड होता है—भावकर्म का विकल्प मन से उत्पन्न होता है तो आत्मा में दण्ड होता है, नुकसान होता है। आहाहा! उस दण्ड से रहित है। आहाहा!

सामने सुनायी देता होगा? वृक्ष के नीचे बैठे हैं। सामने बैठे हैं।

दूसरा बोल। **निश्चय से...** वास्तव में। **परमपदार्थ के अतिरिक्त...** परमपदार्थ प्रभु ध्रुव और आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द के रस का सागर, उसमें **समस्त पदार्थ समूह**

**का ( आत्मा में ) अभाव होने से...** परमपदार्थ के अतिरिक्त। अपने परमपदार्थ से भिन्न, अपना परमपदार्थ प्रभु, उससे अतिरिक्त अर्थात् भिन्न। **समस्त पदार्थ समूह...** चाहे तो पंच परमेष्ठी हो। आहाहा! यह वीतराग कहते हैं। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं कि हम भी तुझसे परपदार्थ हैं। हमें याद करेगा तो प्रभु! तुझे राग होगा। मोक्ष अधिकार (पाहुड़) में लिया है। **परदव्वादो दुग्गई**—हम परद्रव्य हैं। हमारी ओर लक्ष्य जायेगा तो तुझे राग / दण्ड होगा। आहाहा! गजब बात है। सुनना ही कठिन पड़े। आहाहा! सत्य तो यह है। परमसत्य यह है, प्रभु! किसी को रुचे, रुचे वह स्वतन्त्र वस्तु है। आहाहा!

**परमपदार्थ के अतिरिक्त...** भगवान ध्रुव आत्मा से रहित **समस्त पदार्थ...** आहाहा! पर्याय से लेकर पूरे लोकालोक का अभाव होने से। पर्याय से लेकर.. क्योंकि पर्याय और द्रव्य तो द्वन्द्व है। यहाँ तो निर्द्वन्द्व / द्वैतरहित कहना है। आहाहा! प्रभु अन्दर कैसा है? परमपदार्थ ऐसा प्रभु, तुझसे भिन्न **समस्त पदार्थ समूह...** समस्त पदार्थ समूह, लोकालोक। एक समय की पर्याय से लेकर लोकालोक। आहाहा! उसका तुझमें **अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व ( द्वैतरहित ) है।** आत्मा में द्वैतपना नहीं है। आहाहा! आत्मा और पर्याय द्वैत है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

त्रिकाली आत्मा में—परमपदार्थ के अतिरिक्त, पर्याय से लेकर सब पदार्थ.. आहाहा! उससे भिन्न है, इस कारण उसे निर्द्वन्द्व अर्थात् द्वैतरहित कहते हैं। दो रहित एकरूप प्रभु है। उसमें दो नहीं। द्रव्य और पर्याय, ऐसे दो (भेद) भी नहीं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! तेरी चीज़ अन्दर आनन्द का नाथ सनातन सत्य (विद्यमान है)। अनन्त सर्वज्ञ हुए, वे अनन्त सर्वज्ञस्वभाव में से हुए, ऐसा सर्वज्ञस्वभाव द्वन्द्वरहित है। द्वन्द्व अर्थात् द्वैतरहित है। द्वैतरहित अर्थात् परपदार्थ से रहित, एक समय की पर्याय से भी रहित और सर्व लोकालोक, उसमें पंच परमेष्ठी भी आये, उससे रहित है। है या नहीं? आहाहा! ऐसा है, प्रभु!

यह तो तेरी चीज़ तुझे देते हैं। तेरी चीज़ तुझे देते हैं। यह चीज़ है न, भगवान! जिसमें द्वैतपना नहीं। आहाहा! जिसमें द्रव्य और पर्याय दो (भेद) भी नहीं। ऐसे परमपदार्थ में... है? ऐसा **परमपदार्थ...** में-ऐसा कहा। आहाहा! कठिन लगे। बहिनें, लड़कियाँ कितनी ही अनजान हों, पढ़ते न हों परन्तु अन्दर आत्मा में पठन-बठन की आवश्यकता नहीं है। अन्दर भगवान है न? शरीर स्त्री का है, वह तो जड़, मिट्टी, धूल का है। भगवान अन्दर विराजता है।

बहिन आयी हैं ? कब आयीं ? अभी आयीं ? बहिन भगवतीमूर्ति है, धर्मरत्न है। लोगों को ख्याल आना मुश्किल पड़ता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, द्वैतरहित है। भगवान अन्दर तीन लोक का नाथ, तेरा आत्मा और सबका आत्मा... आहाहा! द्वैतरहित है। अद्वैत अर्थात् वे जो वेदान्त अद्वैत कहते हैं, वह बात नहीं, हों! वे तो अद्वैत अर्थात् एक ही आत्मा सर्व व्यापक कहते हैं। आत्मा और उसका अनुभव, इस दो को भी विकल्प कहते हैं, वह नहीं। आत्मा और अनुभव! दो चीज़! दो कहाँ से आये ? ऐसा कहते हैं। वह बात यहाँ नहीं है। यहाँ तो अनन्त पदार्थ हैं। एक-एक पदार्थ में अनन्त गुण हैं। एक-एक गुण में अनन्त गुण (प्रत्येक गुण) की अनन्त पर्यायें हैं। एक-एक पर्याय में अनन्त अविभागप्रतिच्छेद हैं। वह अनादि सनातन सत् है। किसी ने कल्पित बनाया है, ऐसा नहीं है। अनादि चीज़ है। छहढाला में आता है। नहीं किया हुआ। यह ब्रह्माण्ड किसी ने बनाया नहीं।

**मुमुक्षु :** किनहू न हेरै को... करो न धरै को, षट द्रव्यमयी

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यह भाषा। सब भाषा याद रहे न! किसी ने किया नहीं, कराया नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ अन्दर में भगवान... आहाहा!

**परमपदार्थ के अतिरिक्त समस्त पदार्थ समूह का ( आत्मा में ) अभाव होने से आत्मा, निर्द्वन्द्व ( द्वैतरहित ) है।** आहाहा! **प्रशस्त-अप्रशस्त, समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से...** शुभभाव और अशुभभाव, शुभ मोह और अशुभमोह, शुभराग और अशुभराग सबका **अभाव होने से आत्मा, निर्मम है।** आहाहा! उसमें शुभभाव भी नहीं, निर्मम है। ऐसी अन्तर में दृष्टि करके अनुभव करने का नाम धर्म है।

(**श्रोता:** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## प्रवचन-४५, गाथा-४३, बुधवार, श्रावण शुक्ल ९, दिनांक २०-०८-१९८०

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार अर्थात् त्रिकाली ध्रुव को यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। यह शुद्धभाव (है)। पर्याय में जो मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, वह भी शुद्ध है, उसकी बात नहीं है। निश्चय से तो अपने त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से जो निर्विकल्प मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, उसे निश्चय से तो व्यवहार कहते हैं। परमार्थवचनिका में है। निश्चय द्रव्य है, तो मोक्षमार्ग व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग, व्यवहार है। पर्याय के भेद में व्यवहारमोक्षमार्ग की अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग है, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से लें तो निश्चयमोक्षमार्ग, पर्याय है। आहाहा! और पर्याय, वह व्यवहार है; द्रव्य, वह निश्चय है। इस कारण यहाँ कहते हैं, ममतारहित आ गया न।

**प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से...** शुभ या अशुभ सब भाव का प्रभु में **अभाव होने से आत्मा, निर्मम है**। शुभराग मेरा है, यह तो उसमें है ही नहीं परन्तु शुभराग से चैतन्य को लाभ होता है, जिसमें जो स्वभाव नहीं, उससे उसे लाभ होता है, यह है ही नहीं। वह विभाव तो अपने स्वभाव में नहीं, तो विभाव से स्वभाव में लाभ हो, यह बात सत्य नहीं। अपना त्रिकाली स्वभाव जो अपने में विद्यमान, मौजूद है, उस स्वभाव की पर्याय जो स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट होती है, वह पर्याय मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! बहुतों को ऐसा लगता है कि यह निश्चय यहाँ कहते हैं, व्यवहार तो (कहते नहीं)। प्रभु! व्यवहार कहना किसे? मोक्षमार्ग, निश्चय होता है, वह भी पर्याय है। पर्याय को व्यवहार कहा है। वह व्यवहार होता है, परन्तु वास्तव में वह आदरणीय नहीं है। आदरणीय / उपादेय तो त्रिकाली ज्ञायक प्रभु अनन्त गुण का रत्नाकर भण्डार प्रभु, वह एक ही सम्यग्दर्शन में उपादेय है। मोक्षमार्ग भी उपादेय नहीं, जाननेयोग्य है। ज्ञान का ज्ञेय बनाने में व्यवहार है, तो व्यवहारमोक्षमार्ग तो एकदम राग है, वह तो असद्भूतव्यवहार है। अभी मोक्षमार्ग, वह निश्चय है, वह सद्भूत / अनुपचारव्यवहार है। आहाहा! ऐसे सब भेद।

त्रिकाली भगवान ज्ञायक की अपेक्षा से, उसके अवलम्बन से उसमें से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए, वही पर्याय की अपेक्षा से व्यवहार कहने में आते हैं। आहाहा! वह सद्भूतव्यवहार है। व्यवहाररत्नत्रय है, वह असद्भूतव्यवहार है, परन्तु यहाँ निश्चय में तो द्रव्य, निश्चय और पर्याय, व्यवहार-ऐसा चलता है। पंचाध्यायीकार ने तो सभी पर्याय को व्यवहार ही कह दिया है। आहाहा! पर्याय तो है। पर्याय है तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार किसके आश्रय से प्रगट हुआ? वह यहाँ कहते हैं। देखो!

**निश्चय से औदारिक,...** आदि शरीर ही आत्मा को नहीं है। आहाहा! यह औदारिक -शरीर जो है, वह आत्मा को स्पर्श नहीं करता। आत्मा औदारिकशरीर को कभी स्पर्श नहीं करता, प्रभु! तो उसका अवलम्बन नहीं, वह आत्मा में नहीं। **वैक्रियक,...** शरीर। नारकी (को होता है), मनुष्य को लब्धि हो उसे उत्पन्न होता है और देव को (होता है)। वह वैक्रियकशरीर भी आत्मा नहीं है। वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! **आहारक,..** शरीर भी जड़ की पर्याय है। आहाहा! मुनि को जो होता है, प्रश्न पूछने में आहारकशरीर उत्पन्न होता है, है तो जड़। वह आत्मा में नहीं है और **तैजस, और कार्मण...** तैजस जो यह गर्मी (कान्ति) आदि दिखती है और कार्मण १४८ प्रकृति। आहाहा! वह कार्मणशरीर, उस प्रकृति का कोठा। वह पूरा १४८ प्रकृति का कोठा है।

वह **कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से...** प्रभु में उनका अभाव है, भाई! उनके अवलम्बन से और उनकी क्रिया से आत्मा को कुद लाभ हो-ऐसा कभी नहीं होता। औदारिकशरीर की क्रिया हो, वैक्रियक हो, वह सब जड़ की पर्याय है। उसके अवलम्बन से आत्मा को लाभ नहीं होता क्योंकि पाँच का अभाव है। आहा! इस कारण **नि:शरीर है**। आत्मा नि:शरीर है। त्रिकाल आत्मा नि:शरीर है। आहाहा! शरीर के अस्तित्व में शरीर है; भगवान आत्मा के अस्तित्व में शरीर की नास्ति है। आहाहा! उस आत्मा पर दृष्टि देने से, दृष्टि सम्यक् अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के साथ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, प्रभु! उसे धर्म की शुरुआत कहा जाता है। बाकी वाद-विवाद में क्या है? आहाहा! नियमसार में वाद-विवाद के लिए तो इनकार किया न? '**णाणा कम्मा णाणा जीवा णाणा लब्धि-**' प्रभु! तू किसके साथ वाद करेगा क्योंकि व्यवहार की बहुत बातें कथन में आती हैं। (समयसार की) ११वीं गाथा के अर्थ में लिखा है कि व्यवहार कथन में बहुत आता है, परन्तु उसका फल संसार है। समयसार की ११वीं गाथा में जहाँ

व्यवहार को अभूतार्थ कहा, अभूतार्थ अर्थात् नहीं है, ऐसा नहीं है। है, परन्तु अन्तर में निश्चय को मुख्य करके, मुख्य को निश्चय कहकर, व्यवहार को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। आहाहा! पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय तो व्यवहार है ही परन्तु उसका अवलम्बन / आश्रय करनेयोग्य नहीं है; इस कारण यहाँ तो पाँचों शरीर का अभाव है। तो किसी शरीर की क्रिया से कुछ लाभ हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! शरीर की क्रिया से भगवान की भक्ति, पूजा, स्वाहा आदि होते हैं, वह सब क्रिया शरीर / जड़ की है। उससे आत्मा को धर्म होता है, (ऐसा नहीं है क्योंकि) वह आत्मा में है ही नहीं न; है नहीं, उससे धर्म कहाँ से हो ? आहाहा! निश्चय से आत्मा निःशरीर है।

**निश्चय से परमात्मा को...** परमात्मा अर्थात् यह आत्मा। आहाहा! परम+आत्मा। परम-उत्कृष्ट आत्मस्वरूप। सनातन अनादि सत्य, परमसत्य परमात्मा। **निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** परद्रव्य का अवलम्बन नहीं होने से... आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी परद्रव्य है। बहुत कठिन बात है, प्रभु! एकान्त लगे। क्या करें ? मार्ग तो यह है। आहाहा! वह निरालम्बन-अवलम्बन नहीं होने से। **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** प्रभु आत्मा में... आत्मा शब्द नहीं लिया, परमात्मा (शब्द) लिया है। आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, त्रिकाली परमात्मस्वरूप, उसे परद्रव्य का किंचित् भी अवलम्बन नहीं है। भगवान की मूर्ति आदि के अवलम्बन में तो शुभभाव है, वह कहीं आत्मभाव नहीं है। होता है, व्यवहारभाव होता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

यह जो मोक्षमार्ग है, वह तो **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है।** आहाहा! किसी भी चीज़ की इसे अपेक्षा नहीं है। उसका अवलम्बन नहीं है। उसका ध्येय करके—परद्रव्य का ध्येय करने से कुछ लाभ होता है, ऐसा स्वरूप में नहीं है। स्वरूप, परद्रव्य से भिन्न अत्यन्त निरालम्बन है। आहाहा! यह तो अकेली निश्चय की बात आवे, इसलिए लोगों को जरा (कठिन लगती है)। निश्चय के साथ पर्याय को व्यवहार कहते हैं न, परन्तु वह तो जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य तो त्रिकाली आत्मा, परद्रव्य के अभावरूप निरालम्बन वस्तु, पर की कोई अपेक्षा उसे नहीं है। आहाहा! यह निश्चय हो तो फिर मोक्षमार्ग जो प्रगट होता है, उसे पर्याय से व्यवहार-सद्भूतव्यवहार कहते हैं और

उस समय जरा मन्दता है तो राग भी आता है, तो वह असद्भूतव्यवहारनय से है, ऐसा जानना कि है। आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! व्यवहारनय है, तो नय का विषय है परन्तु वह विषय आदरणीय नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो टीकाकार ने आत्मा को परमात्मा शब्द कहा। **निश्चय से परमात्मा को...** आहाहा! यह परमात्मा अर्थात् वीतराग केवली नहीं; यह परमात्मा। परम आत्मा, पूर्णानन्द का स्वरूप जो सत्व सत्, पूर्ण सत्, अनादि-अनन्त सत्, यह सत् वह परमात्मस्वरूप है। उस परमात्मस्वरूप को परद्रव्य का किंचित् भी अवलम्बन नहीं है। आहाहा! इस शरीर का जाना, आना, देव-गुरु-धर्म के पास जाना, सुनना, यह सब होता तो है। वह अवलम्बन नहीं है, प्रभु! होता है, ऐसा जाननेयोग्य है। वह ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है तो परप्रकाश में यह जाननेयोग्य है। आहाहा!

पर का कुछ बाहर का करना है, उसमें तो कर्ताबुद्धि होती है और कर्ताबुद्धि है तो वहाँ मिथ्यात्व है। आहाहा! 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा; कर्ता सो जाने नहीं कोई।' कर्ता—राग का कर्ता, विकल्प का भी कर्ता / रचनेवाला मैं हूँ, ऐसा होवे तो वह किंचित् आत्मा को जानता नहीं। 'कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई।' आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा निरालम्बन है। किसी का अवलम्बन नहीं है।

निश्चय में तो भगवान परमात्मा की वाणी और परमात्मा भी परद्रव्य है; इस कारण परद्रव्य का.. आहाहा! **अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है।** आहाहा! अरे! एक भी बोल बराबर बैठे... जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है, एक भी बोल यथार्थ बैठ जाये तो सब बोल उसमें आ जाते हैं। एक भाव भी यथार्थ बैठे... ऐसा पाठ है। जयसेनाचार्य की टीका में संस्कृत में है। एक भी भाव बराबर बैठे तो उसे समस्त भाव यथार्थ भासित होते हैं परन्तु एक भी भाव का ठिकाना नहीं, उसे एक भी बात यथार्थ नहीं बैठती। आहाहा! पश्चात्...

उसमें परिग्रह नहीं है। भगवान में मिथ्यात्व नहीं है। आहाहा! प्रभु में मिथ्यात्व नहीं है। वह तो आनन्द का सागर प्रभु! श्रद्धास्वरूप ही है। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है, परन्तु उसका कारण श्रद्धा त्रिकाली जो श्रद्धास्वरूप है, जो पारिणामिकभाव से श्रद्धास्वरूप है। आहाहा! इस कारण से उसमें मिथ्यात्व नहीं है। **वेद,...** नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहाहा! मिथ्यात्व भी अभ्यन्तर परिग्रह है। बाहर का परिग्रह छूटा,

वह तो छूटा हुआ ही है। उसे छोड़ना, ऐसा नहीं है परन्तु अन्दर का परिग्रह जो पकड़ रखा है, उसे छोड़ना क्योंकि वह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा!

**वेद,...** वेद की वासना आत्मा में नहीं है। प्रभु तो अवेदी त्रिकाली है। आहाहा! वेद की वासना तो आकुलता और दु:ख है। आनन्दसागर में उस वेद का अभाव है। **राग,...** शुभ या अशुभराग का अभाव है। जिसका जिसमें अभाव है, प्रभु! उसका उसे लाभ होता नहीं। यह अन्तर में अनुभव से बैठना, यह अलौकिक बात है, प्रभु! आहाहा! किसका मानना ? बोलना, वह तो भाषा भी जड़ की है। मैं बोलता हूँ, आहाहा! वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! बोलना जड़ की पर्याय है। भाषावर्गणा की भाषापर्यायरूप से परिणमन, भाषावर्गणा की भाषारूप से परिणमन, वह भाषा है। वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! बड़ा वक्ता होना और वक्तापने का अभिमान करना.. आहाहा! आत्मा वक्ता है नहीं। राग है नहीं। मैं कहूँ, ऐसा विकल्प भी है नहीं।

प्रभु ने समाधिशतक में तो यहाँ तक लिया है कि दूसरे को समझाने में जो विकल्प उठता है, वह पागलपन है, ऐसा समाधिशतक में लिखा है। क्योंकि उस विकल्प से अपने को लाभ नहीं, तथा उस विकल्प से पर को भी लाभ नहीं। आहाहा! अरे रे! ऐसा व्यवहार, उसका अभाव (है, वह) अन्तर में बैठना कठिन है, भाई! अन्तर आत्मा चैतन्य की ज्योत, जलहल की ज्योत, स्वयं ज्योति। ज्ञान की स्वयं ज्योति और सुख का धाम, आनन्द का धाम-क्षेत्र यह है। अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र है, उसमें राग की गन्ध नहीं। कोई भी शुभराग तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस राग का भी आत्मा में अभाव है। आहाहा! है ?

**द्वेष,...** द्वेष का अभाव। कोई चीज़ न रुचे, ठीक न लगे और द्वेष होता है, वह वस्तु में नहीं है, प्रभु में वह नहीं है। प्रभु तो ज्ञातादृष्टा ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर है। आहाहा! कोई चीज़ रुचिकर लगे, असुहावनी लगे, ऐसा वस्तु का स्वभाव नहीं है। वह तो द्वेष का अंश है। वह आत्मा में नहीं है।

**हास्य,...** आहाहा! हास्य भी आत्मा में नहीं है। निश्चय से तो प्रभु! हास्य, वह पाप है। आहाहा! जैसे यह राग और द्वेष पाप है। (वैसे हास्य) वह पाप है। प्रभु तो ज्ञातादृष्टा है, उसमें हास्य का अभाव है। आहाहा! उदास, पूरी दुनिया से उदास प्रभु है। चैतन्य सत्ता में उसका आसन है। आहाहा! उदासीनोऽहम्। आहाहा! कहा न वह तब ?

(संवत्) १९६४ के वर्ष, नाटक देखने गये तो ये सुना था। अठारह वर्ष की उम्र में, बहत्तर वर्ष पहले। अभी ९० वर्ष हुए हैं। आहाहा! उस समय ये कहते थे कि प्रभु! आहाहा! तू निरालम्बी है और शुद्ध है। आहाहा! और तुझमें कोई विकल्प नहीं है, तू तो उदासीन है, यह कहनेवाले को कुछ खबर नहीं होती। वह तो नौकरी, नाटक की नौकरी (थी)। आहाहा! परन्तु उस समय भी कहा, तुम क्या बोलते हो? मुझे ख्याल न आवे तो तुम्हारी पुस्तक हो तो लाओ। बारह आने की टिकिट थी और बारह आने की पुस्तक थी। तुम क्या बोलते हो, वह मुझे ख्याल आये बिना कैसे.. ? तो यह कहते हैं कि उदासीनोऽहम्। आहाहा! बेटा! तू उदासीनो, शुद्धोसि, बुद्धोसि, उदासीनोऽसी, निर्विकल्पोसि है। आहाहा! ऐसे भगवान! नाटक में भी ऐसा कहते थे। यह तो भगवान की वाणी है। आहाहा! सन्तों की वाणी, वह भगवान की ही वाणी है। केवलज्ञान के पथानुगामी, केवलज्ञान को जो कुछ... आहाहा!

**मुमुक्षु :** प्रथमानुयोग के कथन...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि यह है, प्रभु!

कहते हैं, **हास्य,..** नहीं है। आहाहा! यह तो पण्डित ने भी देखा है। हास्य पाप है। तुमने देखा है? पाप है। मुनि के दस धर्म की पुस्तक बनायी है न? उसमें हास्य को पाप कहा है।

**रति,...** प्रसन्न होना। किसमें प्रसन्न हो? प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ के समक्ष प्रसन्नता की चीज़ कहाँ है? आहाहा! उसमें रति नहीं। यह प्रसन्नता, हों! अन्दर आनन्द की प्रसन्नता तो भरी है। परन्तु बाहर की कोई चीज़.. ओहोहो! एक दिन में कदाचित् कोई अरब रुपये की आमदनी हुई हो तो भी रति (प्रसन्नता) आत्मा में नहीं। रति (प्रसन्नता) आत्मा में नहीं, प्रभु! आहाहा! प्रसन्न होने की चीज़ नहीं है।

इसी प्रकार **अरति,...** खेदखिन्नता। कोई प्रतिकूल चीज़ देखकर अथवा अपने को यह चीज़ प्रतिकूल है, ऐसा मानकर अरति होती है। आहाहा! वह अरति प्रभु में नहीं है। पाप है। आहाहा! **शोक,...** लड़का-लड़की गुजर जाये या लक्ष्मी का नाश हो जाये, मकान जल जाये, लाखों-करोड़ों रुपये का मकान हो और जल जाये। अन्दर से एकदम बिजली का भभकारा हो, जलकर राख हो जाये। आहाहा!

मुम्बई में ऐसा बना था। बड़ा मकान बनाया था, करोड़ों रुपये का मकान, उसमें स्तम्भ होता है न? उसे क्या कहते हैं? सीमेण्ट। सीमेण्ट कचासवाली थी। सब लोग काम करके सो रहे थे। बारह बजे तक काम किया और फिर भोजन करके सो रहे थे। ऊपर से गिरा, चार सौ लोग.. आहाहा! भुक्का उड़ गया, मर गये। आहाहा! एक अपने भी अमरेली के क्या नाम? भूल गये। अचरजभाई, वे भी मकान बनाते थे, ऊपरी कर्ताहर्ता थे, और बनानेवाले कारीगर थे, दोनों बैठे थे। उसमें ऊपर से मकान गिरा। हल्की सीमेण्ट प्रयोग की थी, दोनों मर गये। आहाहा! किसका शोक करना? जिस समय में जो चीज़ जिस प्रकार से बननी हो, उस प्रकार बनती है और बनेगी ही। परमात्मा में वह चीज़ नहीं है। किसकी अरति करना? शोक करना?

**भय,...** नहीं है। भगवान तो निर्भय है। समकित का भी निःशंक जो गुण है न, पहला? निःशंक अर्थात् निर्भयता है। निःशंक कहो या निर्भय कहो। भगवान आत्मा की जो श्रद्धा हुई, वह तो निर्भय है। आहाहा! पूरी दुनिया का भय उसे नहीं है। निःशंक। समकित के पहले बोल में। उसका मूल अर्थ तो निर्भय है। नीडर, निर्भय। आनन्द का नाथ जहाँ अनुभव में आया, तो किसी चीज़ से उसे भय नहीं लगता। सिंह आवे तो भी भय नहीं लगता। आहाहा!

श्रीमद् तो अपूर्व अवसर में कहते हैं

**एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में**
**एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में**
**अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब**

आहाहा! बाघ के, सिंह के संयोग में भी मन में क्लेश नहीं। आहाहा! वह तो मित्र है। मुझे शरीर रखना नहीं है और मेरा शरीर है नहीं, तो वह ले जाता है और खाता है, इसलिए वह मेरा मित्र है। अपूर्व अवसर में ऐसा लिखा है। 'परम मित्र का मानो पाया योग जब' आहाहा!

**एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में**
**अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब**। आहाहा!
**अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो।**

आसन अडोल, मन में क्षोभ नहीं, मन में भी कम्प नहीं। आहाहा! मानो परम मित्र का योग हुआ। प्रभु! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रदशा... आहाहा! वह परमेश्वर पद प्राप्त करना, वह पद कोई अलौकिक है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि बिल्कुल भय नहीं। **जुगुप्सा,...** नहीं। किसी चीज़ की ग्लानि नहीं। ज्ञेय है। ज्ञेय में भाग कैसा? यह ग्लानि और यह ग्लानिरहित, ऐसे ज्ञेयरूप से सर्व पूरा जगत में भाग करना, (कि) ग्लानिवाली चीज़ (है), वह मिथ्यात्व है। आहाहा! यह **जुगुप्सा...** भाव आत्मा में नहीं है। आहाहा!

**क्रोध,...** कषायभाव, क्रोधभाव, यह द्वेष का अंश है। यह नहीं। **मान...** नहीं। किसका मान? प्रभु परमात्मा जहाँ नजर में पड़ा, जहाँ अनुभव में आया, वहाँ किसका मान? आहाहा! **माया,...** माया आत्मा में है ही नहीं। कपट का अंश आत्मा में नहीं है और **लोभ,...** भी नहीं है। इच्छामात्र का लोभ... आहाहा! मोक्ष की इच्छा, उस इच्छा का भी अभाव है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर विराजता है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ (पिण्ड) है। आहाहा! वह गाँठ खोल। मिथ्यात्व छूटने पर गाँठ खुल जाती है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरता है। ऐसी चीज़ में यह लोभ नहीं है। पर सन्मुख की इच्छा मात्र का लोभ नहीं है। आहाहा!

**चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का...** चौदह कहे न? **चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा, निराग है।** चौदह प्रकार के परिग्रह का भगवान आत्मा में अभाव है। चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह और दस प्रकार का बाह्य परिग्रह, ऐसे चौबीस प्रकार के परिग्रह कहे हैं। यहाँ तो कहते हैं, दस प्रकार के परिग्रह तो बाह्य हैं। उनका तो ग्रहण-त्याग नहीं है। आहाहा! ये बाह्य जो परिग्रह हैं, उनका त्याग-ग्रहण नहीं परन्तु अनादि से उन्हें ग्रहण मानता है, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। भगवान उससे रहित निराग है। आहाहा!

**निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में...** आहाहा! मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव वीतरागी सन्त थे। वीतरागभाव का आलेख करते हैं। वीतरागभाव का आलेख करते हैं। आहाहा! **निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ,...** ऐसा प्रभु समर्थ। **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न...** आहाहा! स्वाभाविक परमवीतराग ऐसा सुख का समुद्र है। आहाहा! अंगुल के असंख्य भाग में

निगोद के अनन्त जीव (रहते हैं)। एक-एक जीव में अनन्त (गुण) समुद्र भरा है। क्षेत्र की विशालता की जरूरत नहीं है। उसकी शक्ति और सहज सामर्थ्य की जरूरत है। आहाहा! निगोद के जीव में भी यह **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न ( डूबी हुई, लीन ) प्रगट सहजावस्थास्वरूप...** आहाहा! यह तो फिर अवस्था कही। सहज अवस्था। आनन्द समुद्र भगवान आत्मा की पर्याय में झरना आना, शुद्ध चैतन्यघन जो है, उसमें एकाग्र होकर पर्याय में सहज अवस्था में आनन्द आना, उस सहज अवस्थास्वरूप, जो सहज ज्ञानशरीर... आहाहा! वह सहज ज्ञानशरीर आत्मा है। आत्मा को तो ज्ञानशरीर है। आहाहा! **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण...** सहज ज्ञानशरीर **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है।** आहाहा! प्रभु तो निर्दोष ही है। सदोषादि तो पर्याय में है। वस्तु में अंश भी दोष नहीं है। आहाहा! यहाँ दृष्टि करानी है।

नियम-नियम। वस्तु का नियम-सार। वस्तु का नियम। यह आगे गाथा में आयेगा। वस्तु का नियम है, उस वस्तु के नियम का यह सार है। आहाहा! वीतरागभाव है। रूखा राग—रागवाले को रूखा लगे, परन्तु बात तो रसकसवाली है। शान्ति और आनन्द के रसकसवाली बात है। आहाहा!

सहज अवस्था से। **पवित्र होने के कारण...** पवित्र, यह क्या कहा? **सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा...** ज्ञानरूपी शरीर। आहाहा! भगवान को तो ज्ञानशरीर है। यह औदारिकशरीर आदि नहीं। यह तो पहले आ गया। **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है।** आहाहा! यह नियमसार। वस्तु का नियम, वस्तु का कायदा-नियम, उसका यह सार है। आहाहा!

**सहज निश्चयनय से...** आहाहा! **सहज ज्ञान...** स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान, **सहजदर्शन,..** त्रिकाल, **सहजचारित्र,..** त्रिकाल। आहाहा! चारित्र, पर्याय में है, वह नहीं। पर्याय में है, वह चारित्रगुण की पर्याय है। सहज-चारित्रगुण एक त्रिकाल आत्मा में है। **सहजचारित्र, सहज-परमवीतराग सुख...** सहज परमवीतराग सुख आदि। आहाहा! **आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत...** ऐसे अनन्त गुण के आधारभूत। यह भी आधार-आधेय की व्यवहार से बात की है। गुण आधेय और द्रव्य आधार, यह व्यवहार से बात की है। आधार-आधेय वस्तु एक ही है। लोगों को समझाने के लिये (कहा है) कि अनन्त

गुण हैं, उनका भगवान आधार है। आधेय में गुण हैं। आहाहा! वह चीज़ कोई पर्याय के और राग के आधार से है, ऐसा नहीं है। गुण का आधार है। आहाहा! समझ में आया?

**अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ...** निज परमतत्त्व, **निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ है;...** आहाहा! उसमें मूढ़ता नहीं है। निर्मूढ़ के दो अर्थ करेंगे। एक त्रिकाल निर्मूढ़ है, यह पहली बात की। **अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ ( मूढ़तारहित ) है;...** यह त्रिकाल की बात की। अब वर्तमान मूढ़तारहित। वर्तमान मूढ़तारहित केवलज्ञान लेते हैं। आहाहा! **अथवा, सादि-अनन्त...** पहले मूढ़ता कही, वह अनादि-अनन्त निर्मूढ़ प्रभु है और उसके आश्रय से सादि-अनन्त निर्मूढ़ता प्रगट होती है। निर्मूढ़ जो अनादि-अनन्त प्रभु है, उसके आश्रय से सादि-अनन्त निर्मूढ़ता प्रगट होती है। **सादि-अनन्त अमूर्त...** अमूर्त—रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। **अतीन्द्रिय...** इन्द्रियरहित। **स्वभाववाले...** ऐसे स्वभावभाववाले **शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय...** यह केवलज्ञान.. आहाहा! यह व्यवहारनय है। **शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय...** है। पर्याय है न? आहाहा! त्रिकाल निर्मूढ़ है, वह निश्चय है और इसके अवलम्बन से केवलज्ञान मुक्तदशा (प्रगट होती है), वह सादि-अनन्त (व्यवहारनय है)। **व्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** आहाहा! समस्त जीव आदि पदार्थ छह द्रव्य हैं। वह द्रव्य-वस्तु। गुण का एकरूप, वह द्रव्य। गुण का रूप, वह शक्ति-गुण और वर्तमान उसकी परिणति, वह पर्याय है। तीन काल के जो द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, उन्हें **एक समय में जानने में समर्थ...** आहाहा! निर्मूढ़ता के दो अर्थ किये। त्रिकाल निर्मूढ़ता है, तो पर्याय में निर्मूढ़ता आती है। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात लगे। वस्तु यह है। अरे! देह छूट जायेगी। कोई सहायक नहीं, कोई मददगार नहीं। अकेला तत्त्व अनादि से (रहा है) गाथा है न? अकेला जन्मा, अकेला मरा, अकेला रहा, यह अकेला मुक्ति को प्राप्त हुआ। आहाहा! श्लोक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसी पर्याय जो तीन काल (जाने)। ओहोहो! जो द्रव्य की पर्याय अभी प्रगट नहीं हुई, भविष्य की अनन्त पर्याय, अनन्त द्रव्यों की... आहाहा! आकाश का भी जहाँ अन्त नहीं। क्षेत्र से आकाश का कहीं अन्त नहीं। चारों ओर चौदह ब्रह्माण्ड एक राई तुल्य है। चारों ओर आकाश अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त..

कहीं किसी दिशा में अन्त नहीं। ऐसे आकाश की पर्याय को भी जानने में समर्थ। आहाहा! पर्याय की बात है। ऐसा आकाश, जिसका अन्त नहीं। जान लिया, इसलिए अन्त हो गया, ऐसा नहीं है। अन्त नहीं है... अन्त नहीं है... ऐसा जाना। चारों ओर चौदह ब्रह्माण्ड तो एक राईतुल्य है। बाकी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. दशों दिशा चारों ओर। उसे भी एक समय में जानने में समर्थ है। आहाहा! ऐसा केवलज्ञान है। उस केवलज्ञान की बात करते हैं। पर्याय की। आहाहा!

एक समय में जानने में समर्थ। सकल-विमल। पूर्ण निर्मल। तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना, तो ऐसा कोई मेल हुआ, भेद हुआ, मेल हुआ ? नहीं। वह तो अपना निजस्वरूप ही है। पर को जानना, वह तो अपने निजस्वरूप में स्वस्वरूप है; इसलिए उसे विमल कहते हैं। सकल-विमल—जरा भी मलिनता नहीं। आहाहा! नहीं तो है तो शुद्ध सद्भूतव्यवहार। केवलज्ञान, वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार है। पर्याय है न ? शुद्ध है, सद्भूत है, भेद है। शुद्ध सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! ऐसी पर्याय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होता है। ऐसा प्रभु! उसकी पर्याय का इतना सामर्थ्य है, तो उसके द्रव्य के सामर्थ्य की निर्मूढ़ता की बात क्या करना ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

द्रव्य की निर्मूढ़ता तो अपार.. अपार.. अपार पड़ी है। जैसे आकाश का क्षेत्र से पार नहीं है, वैसे अन्दर गुण की शक्ति का भाव पार नहीं है। आकाश का क्षेत्र से पार नहीं क्षेत्र से, वैसे इस गुण के भाव के सामर्थ्य का भाव से पार नहीं है। आहाहा! यहाँ तो सहज कुछ अच्छी वस्तु मिली, शरीर ठीक मिले, या स्त्री कुछ मिले, पैसा मिले, वहाँ अन्दर अभिमान आ जाता है। आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति तो तीन काल-तीन लोक को जानने की पर्याय है न! द्रव्य की तो क्या बात करना ? आहाहा! कोई चीज़ मेरी है, ऐसा तो वस्तु के स्वरूप में नहीं है। उसे जानना, ऐसी शक्ति है—ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो वह ज्ञान अपनी पर्याय है, आहाहा! पर को भी जानने की शक्ति अपने से अपने में है। आहाहा!

**सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से...** भगवान केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से। आहाहा! आज मक्खन है, बापू! तत्त्व का मर्म-रहस्य है। पूर्णानन्द का नाथ निर्मूढ़ है परन्तु पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह निर्मूढ़ है। आहाहा! वह केवलज्ञानमय **केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है।** यह पर्याय से निर्मूढ़ कहा। कुछ जाने बिना नहीं रहता और पूर्ण जाना, इसलिए विकल्प उत्पन्न होता है,

ऐसा नहीं है। ऐसी निर्मूढ़ केवलज्ञान पर्याय है। एक समय की पर्याय तीन काल, तीन लोक को; पर को स्पर्श किये बिना, पर की ओर का उपयोग किये बिना, अपने स्वरूप में अपनी शक्ति के सामर्थ्य से केवलज्ञान में सब निर्मूढ़रूप से जानता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये नियमसार बनाया है। आहाहा! मेरी भावना, मेरी भावना के लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! यह लोग सुनें... आहाहा! निहाल करने का रास्ता है, प्रभु! निहाल तो वह निहाल है। आहाहा! निर्मूढ़ तत्त्वदृष्टि में आवे, वह निहाल और निर्मूढ़ता पर्याय में प्रगट हो, वह निहाल.. बाकी तो सब निहाल-विहाल कुछ है नहीं। आहाहा! रजनीभाई! यह सब पैसा-बैसा से निहाल नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** हमारे लिये तो पैसे कीमती हैं, आपके पास तो पैसा...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यहाँ हमें और तुम्हें है ही कहाँ? यहाँ तो आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. प्रभु ही सब हैं। आहाहा! सब भगवान आत्मा हैं। द्रव्यरूप से तो सब साधर्मी हैं। आहाहा! किसी के प्रति प्रेम या द्वेष है नहीं। आहाहा! द्रव्यरूप से साधर्मी लिया है। आहाहा! यहाँ और अन्यत्र कोई ऐसा भेद नहीं है। आहाहा! तीन काल में द्रव्य निर्मलानन्द सब द्रव्य, उन्हें एक समय में जानना, तथापि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को जाने, तथापि एक पर्याय में दो भाव हो या मूढ़ता आ जाये या विकल्प आ जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा!

**आत्मा, निर्मूढ़ है। समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती...** आहाहा! प्रभु महावज्र का किला है। ज्ञान-आनन्द आदि वज्र का किला है। उस वज्र के किले में किसी का प्रवेश नहीं होता। आहाहा! वज्र का गढ़ हो, वज्र का गढ़, उसमें कौन प्रवेश करे? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि **समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रु...** अर्थात् उग्र में उग्र जो पाप। शूरवीर, उसकी सेना, वह एक नहीं परन्तु उसकी सेना। आहाहा! **पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना...** वह पाप कौन? **समस्त पापरूपी शूरवीर...** महा वीर की जिसमें उन्धाई-उल्टापन, ऐसे शत्रुओं की सेना का समूह। **जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती...** जिसे छूता नहीं। आहाहा! **ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में ( किले में )...** आहाहा! अफ्रीका में है न? वहाँ हबसी का बहुत भय हबसी का बहुत भय। रास्ते

में ही लूट ले। हम जहाँ पन्द्रह लाख के मकान में रुके थे, वहाँ तीन पिटारा ( थे ) । पहला एक क्या कहलाता है वह ? वण्डी। पहले एक बड़ी वण्डी, पश्चात् तार की एक वण्डी, पश्चात अन्दर लोहे के तार की तीसरी वण्डी। तीन में से कोई आ नहीं सकता। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह (आत्मा) तो कुदरती किला है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो अन्दर में कोई आ नहीं सकता, बापू! आहाहा!

ऐसे **शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में ( किले में ) निवास करने से आत्मा, निर्भय है**। उसमें रहनेवाला आत्मा निर्भय है। **ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है**। ऐसा आत्मा उपादेय है। फिर मोक्षमार्ग निश्चय को उपादेय कहना, वह अपेक्षित है। वास्तव में यह आत्मा उपादेय है, इसे उपादेय में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, तो इसे जन्म-मरण का अन्त आता है। ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

---

**प्रवचन-४६, श्लोक ६२ से ६४, गुरुवार, श्रावण शुक्ल १०, दिनांक २१-०८-१९८०**

---

अमृताशीति का ५७वाँ श्लोक आया है।

**स्वरनिकरविसर्गव्यञ्जनाद्यक्षरैर्यद्,**
**रहितमहितहीनं शाश्वतं मुक्तसङ्ख्यम्।**
**अरसतिमिररूपस्पर्शगन्धाम्बुवायु-**
**क्षितिपवनसखाणुस्थूल दिक्चक्रवालम्।।**

आहाहा! भगवान आत्मा में स्वर समूह नहीं है। आहाहा! यह अक्षर का समूह, वह तो जड़ की पर्याय है। आत्मा में नहीं है। आहाहा! मानो आत्मा बोलता हो, ऐसा लगता है। ऐसा लगता है, परन्तु ऐसा नहीं है। आत्मा तो अरूपी चैतन्य आनन्दघन है और अक्षर तो परमाणु का पिण्ड है। वह स्वरसमूह... आहाहा! **विसर्ग..** नहीं। भगवान में विसर्ग.. आता है न? क, ख, ग यह विसर्ग भी आत्मा में नहीं है। **व्यञ्जनादि अक्षर...** अंक आदि के अक्षर। वे कुछ भी नहीं हैं अर्थात् १, २, ३, ४ इत्यादि यह आत्मा में नहीं हैं। क, ख, ग जैसे आत्मा में नहीं, वैसे १, २, ३, ४ संख्या आत्मा में नहीं है। आहाहा!

**अहितरहित है;...** प्रभु तो अहितरहित है। अन्दर अहित की गन्ध नहीं है। पूर्णानन्द का नाथ शिवपुरवासी। वह अन्दर रहा हुआ आसी। आसी अर्थात् है। अन्दर स्वरूप से भगवान पूर्णानन्द में अहित-रहित शाश्वत् है। आहाहा! शब्द तो सरल है। शब्द शब्दरूप से है, परन्तु अन्तरस्वरूप में नहीं है। व्यवहार, व्यवहाररूप से है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहाहा! अक्षरों का स्वर, शास्त्र का समुदाय कान में पड़े परन्तु वह कहीं तुझमें नहीं है। आहाहा! शास्त्र है। है, कान में पड़ता है परन्तु वस्तु में नहीं है। आहाहा! तेरा काम तो तुझसे करना है। वह शास्त्र शब्द से भी तेरा काम नहीं होता। आहाहा!

**शाश्वत् है...** भगवान तो शाश्वत् प्रभु अन्दर है। **अन्धकार..** से रहित है। आत्मा में अन्धकार का अंश नहीं है, वह तो प्रकाश का पुँज है। आहाहा! चैतन्य का सागर उछलता है। चैतन्य अन्दर में उछलता है। आहा! मुनि को प्रगट उछलता है। पर्याय में उछलता है। द्रव्य में उछलता दिखता है। आहाहा! वह उछलता दिखे, उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन का उछलना हुए बिना रहे नहीं। अन्धकाररहित। **तथा स्पर्श,...** रहित है। भगवान में स्पर्श नहीं है। किसे स्पर्श करे ? किसे छुए ? आहाहा! यह दूसरे की बात है, हों! यह योगीन्द्रदेव का श्लोक है।

**रस,...** नहीं है। खट्टा, मीठा रस, वह रस आत्मा में नहीं है। तथा ठण्डा, गरम, शीतल, वह कोई स्पर्श आत्मा में नहीं है। **गन्ध,...** सुगन्ध-दुर्गन्ध आत्मा में नहीं है। **रूप...** आत्मा में नहीं है। आहाहा! **पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के अणुओं रहित है,...** आहाहा! पृथ्वी के अणुओं से रहित, पानी के अणुओं से रहित, अग्नि के अणुओं से रहित, वायु के अणुओं से रहित। वायु, वायुरूप से है। इस भगवान में वह नहीं है। आहाहा! **तथा स्थूल दिक्‌चक्र ( दिशाओं के समूह )...** पूर्व, पश्चिम, यह दिशा-बिशा आत्मा में नहीं है। आहाहा! वह तो चिदानन्दस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, परमानन्द का नाथ अकेला आनन्द गंज, आनन्द का पिण्ड प्रभु है। उसमें ये अक्षर आदि या दिशाएँ (नहीं है)। पूर्व दिशा या पश्चिम दिशा, वह कोई आत्मा में नहीं है। आहाहा! **( दिशाओं के समूह ) रहित है।** यह आधार दिया है। अब टीकाकार स्वयं (श्लोक कहते हैं)।

## श्लोक-६२

और ( ४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं ) —

( मालिनी )

दुरघ–वन–कुठारः प्राप्त–दुःकर्म–पारः,
पर–परिणति–दूरः प्रास्त–रागाब्धि–पूरः।
हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,
सपदि समयसारः पातु मामस्त–मारः ।।६२।।

( वीरछन्द )

दुष्ट पाप वन को कुठार अरु दुष्कर्मों को नष्ट किया।
पर-परिणति से दूर सदा रागोदधिपूर विनष्ट किया॥
विविध विकार हनन कर्ता जो सुखसागर का नीर अहो!
काम कलंक विनाशक सार-समय मम रक्षा शीघ्र करो॥६२॥

*श्लोकार्थः*—जो ( समयसार ), दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है, जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है ( अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है ), जो परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है, जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है, जो सच्चे सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है, वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।।६२॥

### श्लोक-६२ पर प्रवचन

**और ( ४३वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज सात श्लोक कहते हैं )**—यह गाथा पूर्ण करते हुए सात श्लोक कहते हैं।

दुरघ–वन–कुठारः प्राप्त–दुःकर्म–पारः,
पर–परिणति–दूरः प्रास्त–रागाब्धि–पूरः।

**हतविविधविकारः सत्यशर्माब्धिनीरः,**

**सपदि समयसारः पातु मामस्त-मारः ।।६२।।**

भगवान आत्मा अर्थात् 'समयसार' कहा। आत्मा कहो या 'समयसार' कहो। आहाहा! भगवान आत्मा **जो ( समयसार ), दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,...** यह अपेक्षा से कहा है। उसमें है नहीं परन्तु **दुष्ट पापों के वन को छेदने का कुठार है,...** ऐसा कहा है। है नहीं। **दुष्ट पापों के वन को छेदने का...** क्योंकि पाप हो, पापरूप वन-विस्तार हो, उसे छेदे, तब कुठार कहलाता है परन्तु आत्मा में तो वे (पाप) हैं नहीं। आहाहा! **जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है...** भगवान, अन्दर दुष्ट कर्म आते हैं... आहाहा! और उनके फलरूपी भाव भी अपने में दिखते हैं, परन्तु वे वस्तु में नहीं हैं। आत्मतत्त्व में कोई कर्म का फल नहीं है। आहाहा!

**जो दुष्ट कर्मों के पार को प्राप्त हुआ है ( अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है ),...** आहाहा! 'कर्म विचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई।' वह भूल भी स्वरूप में नहीं है। आहाहा! भूल तो पर्याय में है। व्यवहाररूप से भूतार्थ है। १४वीं गाथा में कहा न, व्यवहाररूप से भूतार्थ है, निश्चयरूप से नहीं। अन्दर वास्तविक तत्त्व में वह चीज़ नहीं। आहाहा! **( अर्थात्, जिसने कर्मों का अन्त किया है ), जो परपरिणति से दूर है,...** राग की परिणति से भगवान अन्तर में दूर है। परिणति को छूता ही नहीं। ऐसा द्रव्यस्वभाव भगवान आत्मा... आहाहा! सवेरे कहा था न? चाहे तो अक्षर के अनन्तवें भाग में पर्याय में विकास हो जाये, परन्तु वस्तु तो जितनी है, उतनी ही है। चाहे तो केवलज्ञान हो जाये। जरा कठिन बात है। द्रव्य तो ऐसा का ऐसा उतना ही है। द्रव्य में कभी कुछ न्यूनाधिकता होती है, ऐसा तीन काल में नहीं होता। ऐसी कोई अलौकिक अचिन्त्य चमत्कारी वस्तु आत्मा है। आहाहा! कि अक्षर के अनन्तवें भाग में पर्याय रहे, तो दूसरी शक्ति तो विशेष इसमें रहनी चाहिए न? कि नहीं, वह तो जो है, वह है। केवलज्ञान प्रगट होता है, तब पूर्ण दशा प्रगट हुई, ऐसी दशा (प्रगट हुई), तो उतनी तो अन्दर में कमी हुई न? आहाहा! उसमें कमी-बमी है नहीं। केवलज्ञान होवे तो कमी नहीं और अक्षर के अनन्तवें भाग में निगोद में (ज्ञान) रहा तो पुष्टि नहीं। वह तो अनादि-अनन्त एकरूप सच्चिदानन्द्र प्रभु सम्यग्दर्शन का विषय पूर्णानन्द के नाथ में न्यूनाधिकता है नहीं। आहाहा!

**परपरिणति से दूर है, जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,...** नष्ट किया

है, ऐसी बात करते हैं, परन्तु उसमें है ही नहीं। किन्तु समझाना है न? **जिसने रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,...** आहाहा! ऐसे सच्चे सुखसागर का नीर है, परन्तु वस्तु तो ऐसी की ऐसी ही है। उसे कोई यहाँ राग का नाश करना, ऐसा नहीं है। वह तो राग था, वह स्वभाव के आश्रय से नाश हुआ, इसलिए ऐसा कहते हैं। बाकी स्वभाव है, वह नाश करेगा तो रहेगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द का नाथ, ज्ञान-आनन्द में जैसे शाश्वत् विराजमान है, ऐसी की ऐसी चीज़ अनादि-अनन्त है। आहाहा!

**रागरूपी समुद्र के पूर को नष्ट किया है,...** अर्थात् जिसमें रागरूपी समुद्र का पूर है ही नहीं। **जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,...** आहाहा! हनन कर डाला है। या हवन। आहाहा! **जो सच्चे सुखसागर का नीर है...** सच्चे सुखसागर के जल से भरपूर, सच्चे सुखसागर के नीर से भरा हुआ ऐसा प्रभु है। उसे कोई व्यवहार-फ्यवहार अन्दर में नहीं है। व्यवहार, व्यवहार में है; अन्तर में नहीं है। आहाहा! **जिसने विविध विकारों का हनन कर दिया है,...** आहाहा! **जो सच्चे सुखसागर का नीर है और जिसने काम को अस्त किया है,...** आहाहा! काम अर्थात् वासना। किसी भी स्वर्ग के सुख की या किसी भी बाहर के सुख की, चीज़ की विशेषता, विस्मयता, अधिकता लगे, ऐसा उसमें है ही नहीं। उससे रहित ही है। उसे यहाँ नाश किया, ऐसा कहने में आया है।

**वह समयसार...** वह समयसार, देखो। आत्मा त्रिकाली। **मेरी शीघ्र रक्षा करो।** शीघ्र रक्षण करो, यह पर्याय है। समयसार, वह द्रव्य है। आहाहा! उस समयसार द्रव्य में यह बात कही, नाश किया, यह सब बात व्यवहार है, वह बताया है। अन्दर में कुछ नहीं है, वह तो निर्मलानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, अमृत के सागर से भरपूर सुखसागर का पूर है, अतीन्द्रिय आनन्द का पूर है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय बताते हैं। आहाहा! उस चीज़ को जाने बिना, ऊपर के सब क्रियाकाण्ड संसार है।

**वह समयसार मेरी शीघ्र रक्षा करो।** आहाहा! वह समयसार मैंने जो दृष्टि में लिया है तो मेरी रक्षा होगी। मुझे सिद्धपद मिलेगा। ऐसे मेरी रक्षा करो, ऐसा कहा है। आहाहा! समयसार भगवान को मैंने पकड़ा है तो मेरी मुक्ति होगी, वह तो पर्याय में है। वह मेरी रक्षा करो। रागादि, व्यवहार की बात छोड़ो। मेरी रक्षा यह समयसार करेगा। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को व्यवहार से सत्यार्थ कहा है, परन्तु वह कोई रक्षा करनेवाली चीज़ नहीं

है। आहाहा! व्यवहार से सत्य भी कहा है परन्तु वह कोई वस्तुस्थिति नहीं है। सच्चिदानन्द प्रभु के समक्ष उस चीज़ की (व्यवहार की) कोई कीमत नहीं है। आहाहा!

**जिसने काम को अस्त किया है, वह समयसार...** पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं, जिन्हें तीन कषाय का अभाव है, जिन्हें अकषाय, तीन कषाय का अभाव (होकर) आनन्द (प्रगट हुआ) है। अभाव अर्थात् पर्याय में आनन्द और शान्ति प्रगट हुई है। सम्यग्दृष्टि को तो सम्यग्दर्शन मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी के अभाव तक की शान्ति और सुख आया है। मुनि को तो तीन कषाय के अभाव का आनन्द और सुख आया है। आहाहा! यह कहते हैं, वह समयसार मेरी रक्षा करो। प्रभु त्रिकाली द्रव्य मेरी रक्षा करो। मेरा नाथ शाश्वत् है, वह मेरी रक्षा करो। आहाहा! मेरी प्राप्त निर्मल पर्याय में उसका आलम्बन है, वह रक्षा करो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! निर्मल पर्याय प्रगट करने में कोई व्यवहार या विकल्प का सहारा है, ऐसा नहीं है। विकल्प, विकल्परूप से है परन्तु अन्दर में उसका सहारा लाभदायक है, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आहाहा!

**शीघ्र रक्षा करो।** अब यह क्रमबद्ध कहाँ गया? शीघ्र कहते हैं न? अल्प काल में होओ। इसका अर्थ यह है, प्रभु! जिसने समयसार पकड़ा, उसे केवलज्ञान प्राप्त करने में अल्प काल ही है। आहाहा! उसके क्रम में अल्प काल ही है। है तो क्रमसर, क्रमबद्ध, तीन काल-तीन लोक में सब पर्याय क्रमबद्ध है। आहाहा! जिस समय में, जिस काल में, जिस संयोग में जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है, वह होगी, होगी और होगी ही; परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि मेरी रक्षा तो समयसार करो। आहाहा! मेरा ध्यान द्रव्य पर है, मेरा ध्यान पदार्थ पर है, वही मेरी रक्षा करता है। केवलज्ञान प्राप्त करने में और मोक्षमार्ग रखने में उसकी मदद है। निश्चयमोक्षमार्ग रखने में, निश्चयमोक्षमार्ग उत्पन्न करने में और मोक्ष उत्पन्न करने में उसका आधार है। आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा क्या चीज़ है, वह लोगों ने सुनी नहीं। आत्मा तो महाप्रभु अनन्त-अनन्त प्रभु शक्ति से (भरपूर है)। एक शक्ति नहीं। अनन्त-अनन्त शक्ति से भरपूर प्रभु भगवान है, वह यहाँ आचार्य महाराज / मुनि कहते हैं, मेरी रक्षा करता है। मेरे ध्यान में यह चीज़ है। वह मेरी रक्षा करती है। मैं राग मन्द करूँ तो मुझे लाभ होता है, ऐसी कोई चीज़ मेरे पास नहीं है। आहाहा! एक समयसार मेरी रक्षा करता है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव की यह टीका है। यह ६२वाँ श्लोक हुआ।

## श्लोक-६३

( मालिनी )

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्।।६३।।

( वीरछन्द )

तत्त्व निपुण पद्मप्रभ मुनि के हृदय कमल में सुस्थित है।
निर्विकार वह परमतत्त्व जो विविध विकल्प विनाशक है॥
भव-भव के सुख-दुःख कल्पना मात्र रम्य जो लगें अहो।
उन सुख-दुःख से रहित कहें बुध परमतत्त्व जयवंत रहो॥६३॥

*श्लोकार्थः*—जो तत्त्वनिष्णात ( वस्तुस्वरूप में निपुण ) पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में सुस्थित है, जो निर्विकार है, जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से मुक्त ( रहित ) कहा है, वह परमतत्त्व जयवन्त है।।६३।।

### श्लोक-६३ पर प्रवचन

अब, ६३ वाँ श्लोक

जयति परमतत्त्वं तत्त्वनिष्णातपद्म-
प्रभमुनिहृदयाब्जे सन्स्थितं निर्विकारम्।
हतविविधविकल्पं कल्पनामात्ररम्याद्,
भव-भव-सुख-दुःखान्मुक्त-मुक्तं बुधैर्यत्।।६३।।

आहाहा! **जो तत्त्वनिष्णात ( वस्तुस्वरूप में निपुण )...** है। भगवान आत्मा जैसी अस्ति सम्यक्, सत्य जितनी है, उसमें जो निपुण है, वह **पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में**

**सुस्थित है,...** आहाहा! यह मुनिपना। ऐसा जो वस्तुस्वरूप निरूपण, वस्तुस्वरूप में महानिपुण, तत्त्व निष्णात पद्मप्रभमलधारि मुनि कहते हैं कि मेरे हृदय कमल में सुस्थित है। आहाहा! तीन कषाय का अभाव है। महामुनिपना! गजब बात है, भाई! आहाहा! मुनि तो परम इष्ट हैं। परमेष्ठी में मुनि तो मिल गये हैं। वे यहाँ कहते हैं कि हमारी रक्षा तो समयसार त्रिकाली भगवान, वह हमारे हृदय में ध्येय वर्तता है, वही हमारी रक्षा करता है।

**जो तत्त्वनिष्णात ( वस्तुस्वरूप में निपुण ) पद्मप्रभमुनि के हृदयकमल में...** यहाँ हृदय (अर्थात्) ज्ञान में। हृदय अर्थात् ज्ञान, उस कमल में सुस्थित है। मेरे हृदयकमल में भगवान पूर्णानन्द सुस्थित है। आहाहा! **जो निर्विकार है,...** भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का आश्रय, वह निर्विकार है, वह निर्विकार है। **जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है...** आहाहा! विविध विकल्प अर्थात् चाहे जिस प्रकार के विकल्प। गुण-गुणी के भेद का भी विकल्प जिसमें नहीं है। नहीं (है) तो उसने नाश किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। आत्मा को किस प्रकार रखना, उसके लिये शब्द थोड़े पड़ते हैं। आहाहा! आहाहा! क्योंकि स्वररहित है। यह तो पहले कहा। शब्दरहित है, वाणीरहित है, विकल्परहित है। अब उसे कहना है कि आत्मा ऐसा। आहाहा! वह तो मेरे हृदय में स्थित है। वह तो मैं जानता हूँ, ऐसा कहते हैं। वह परमात्मा मेरे हृदय में स्थित है। मैं जानता हूँ, अनुभव करता हूँ, वह निर्विकार है।

**जिसने विविध विकल्पों का हनन कर दिया है और जिसे बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य...** आहाहा! **ऐसे भव-भव के सुखों से...** भव वन में देव का सुख, अरबोंपति का सुख, करोड़ोंपति का सुख, यह भव भव में जो कल्पनामात्र सुख... आहाहा! रम्य। **कल्पनामात्र-रम्य...** कल्पना से मानता है। सुख है नहीं। स्वर्ग में भी सुख नहीं है। अरबोंपति भी सुखी नहीं है। वे कल्पना से मानते हैं कि हम सुखी हैं। आहाहा! मूढ़ है। पैसा आदि से सुखी, करोड़पति, अरबोंपति.. आहाहा! वहाँ नैरोबी गये थे। आहाहा! पन्द्रह तो अरबपति! साढ़े चार सौ करोड़पति, साढ़े चार सौ करोड़पति। कहा- भाई! वह तो सब धूल है। सब सुनने आये थे और तुम पैसा-बैसा लिखकर मन्दिर में खर्च करते हो, इसलिए वह क्रिया तुम कर सकते हो, आत्मा मन्दिर बना सकता है, ऐसा नहीं है। शुभभाव पुण्य है। पुण्यबन्ध होगा। उसमें आत्मा का कल्याण नहीं है। आहाहा! नहीं तो यह तो पच्चीस

लाख का (मन्दिर) बनानेवाले हैं। पच्चीस लाख का एक मन्दिर। साठ लाख रुपये एकत्रित किये हैं। आहाहा! चैतन्य के आनन्द के समक्ष किसी चीज़ की कीमत नहीं है। किसी चीज़ की कीमत ही नहीं है। आहाहा!

**ऐसे भव-भव के सुखों से...** कैसा? **बुधपुरुषों ने कल्पनामात्र-रम्य...** दुनिया के सुख कल्पनामात्र रम्य। आहाहा! स्त्री का सुख, पैसे का सुख, इज्जत का सुख, प्रशंसा... ओहोहो! बहुत प्रशंसा करे तो अन्दर प्रसन्न हो जाये... आहाहा! वह सब कल्पनामात्र रम्य है। **कल्पनामात्र-रम्य—ऐसे भव-भव के सुखों से तथा दुःखों से...** भव-भव के सुख और दुःख। यहाँ भव-भव में सुख कहा अवश्य। भव-भव में सुख कहा। देवलोक में। यह कल्पना करता है तो कहा अवश्य। भव-भव में सुख और दुःख। तो भव-भव में जो देवलोक आदि (में) सुख मानता है, यह बात कही। आहाहा! वह कल्पनामात्र सुख और कल्पनामात्र दुःख है। उन **दुःखों से मुक्त ( रहित ) कहा है,...** तीन लोक के नाथ जिनवरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा भगवान को रम्य-कल्पनामात्र भव-भव के सुख और दुःख से रहित कहा है। आत्मा में वह कुछ है ही नहीं। आहाहा! कल्पना करो कि हम पैसे से सुखी हैं; निरोग हैं, इसलिए सुखी हैं; आठ-दस लड़के अच्छे कमाऊँ हुए, इसलिए हम सुखी हैं। कल्पना करो। कल्पनामात्र रम्य है। आहाहा!

**वह परमतत्त्व जयवन्त है।** आहाहा! क्या कहते हैं? उस दुःख से रहित हुआ, **वह परमतत्त्व जयवन्त है।** आहाहा! यह अपनी स्थिति बताते हैं। परमतत्त्व जगत में जयवन्त नहीं परन्तु यहाँ जयवन्त दिखता है। हमारा प्रभु हमें दिखता है, वह जयवन्त है। आहाहा! जैसा हम कहते हैं, वैसा जयवन्त है। ऐसा हमारे अनुभव में आया है। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

**परमतत्त्व जयवन्त है।** जयवन्त है अर्थात् किसी का तत्त्व जयवन्त है, ऐसा नहीं। हमारा भगवान परमतत्त्व हृदय में ज्ञात होता है, वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यह मुनि की दशा। जिसे भगवान हृदयकमल में सदा निरन्तर जयवन्त वर्तता है। आहाहा! जिन्हें हिलने-चलने का, खाने-पीने के विकल्प में भी दुःख लगे। उस पर लक्ष्य नहीं। भगवान निर्मलानन्द अन्दर विराजमान है, उस पर दृष्टि होने से जयवन्त वर्तता है। ऐसा रागादि आया, इसलिए अड़चन हुई या विघ्न आया, ऐसा नहीं है। आत्मा अन्दर जयवन्त वर्तता है। आहाहा! हमारी पर्याय के अनुभव से हम कहते हैं कि यह आत्मा ऐसा जयवन्त वर्तता

है। आहाहा! आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर मुनियों की एक-एक भाषा बहुत गहरी, बहुत गहरी! जयवन्त वर्तता है, यह समझ में आया? भगवान जयवन्त वर्तता है।

यहाँ तो **दु:खों से मुक्त ( रहित ) कहा है, वह परमतत्त्व जयवन्त है**। आहाहा! हमारी दृष्टि में, ज्ञान में वह आया है। जो वस्तु जानने में नहीं आयी, उसे जयवन्त कैसे कहा जाये? यह चीज़ ऐसी है, यह वस्तु ऐसी है, वह वस्तु जाने बिना ऐसी है, ऐसा कैसे कहना? आहाहा! मुनिराज की मस्ती है! यह भगवान, जो हमने कहा, वह हमारे ज्ञान में, ख्यालसहित हमें जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह ६३वाँ श्लोक हुआ।

## श्लोक-६४

( मालिनी )

**अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,**
**सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम्।**
**निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,**
**भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः।।६४।।**

---

( वीरछन्द )

**अहो भव्यता द्वारा प्रेरित होने वाले आत्मन्! जो।**
**भव विमुक्त होना चाहो तो निज आतम को शीघ्र भजो॥**
**अनुपम ज्ञानाधीन सदा जो सहज शक्ति मणियों की खान।**
**सर्व तत्त्व में सारभूत जो निज परिणति सुखसागर मग्न॥६४॥**

**_श्लोकार्थः_—जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो ( आत्मा ) अनुपम ज्ञान के आधीन है, जो सहजगुणमणि की खान है, जो ( सर्व ) तत्त्वों में सार है और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है।।६४।।**

श्लोक-६४ पर प्रवचन

६४ वाँ श्लोक।

**अनिशमतुलबोधाधीनमात्मानमात्मा,**
**सहज-गुण-मणीना-माकरं तत्त्वसारम् ।**
**निजपरिणतिशर्माम्भोधिमज्जन्तमेनं,**
**भजतु भव-विमुक्त्यै भव्यताप्रेरितो यः ।।६४।।**

आहाहा! **जो आत्मा, भव्यता द्वारा प्रेरित हो,...** आहाहा! अपनी योग्यता द्वारा प्रेरित हुआ है। भव्य तो भले अनन्त हों। अभव्य तो अनन्तवें भाग हैं। एक अभव्य और अनन्त भव्य, ऐसी जीव की संख्या है। परन्तु यहाँ अनन्त भव्यों में भी जिसे भव्य प्रेरित हुई है। आहाहा! अन्तर में आत्मा की योग्यता प्रेरित हुई है। आहाहा! **भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु...** आहाहा! नहीं तो पंचम काल है न, प्रभु! पंचम काल के मुनि मोक्ष में नहीं जाते, देव में जायेंगे।

यहाँ तो कहते हैं, **भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** भव से विमुक्त होने के लिये निरन्तर आत्मा को भजो। दूसरा कोई हेतु नहीं है। आहाहा! भव का अभाव करने के लिये प्रभु! तू तेरे आत्मा को भज, तेरा भगवान तेरे पास है। पास क्या है? तू भगवान ही है। आहाहा! कैसे जँचे? जहाँ आम का रस अच्छा आया हो, थाली में पूरणपोली आयी हो, वहाँ अन्दर में गलगलिया हो जाये। अरे प्रभु! अरे प्रभु! उस चीज़ की तो आत्मा में गन्ध भी नहीं है। तू उसे देखता है, यह भी व्यवहार है। उसे देखता है, यह व्यवहार है। स्वयं को देखना, वह निश्चय है। ऐसी चीज़ में ललचाया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **भव्यता द्वारा प्रेरित हो, यह आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** भव से विमुक्त (होने के लिये) आत्मा का भजन। भगवान का भजन भी नहीं। भक्ति दो प्रकार की है : निजभक्ति और परभक्ति। जयसेनाचार्य की टीका में है। समयसार की टीका में दो प्रकार की भक्ति है। निजभक्ति और परभक्ति, ऐसा पाठ है। वह निजभक्ति स्वयं को कल्याणकारक है। परभक्ति तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समयसार जयसेनाचार्य की टीका में है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **आत्मा, भव से विमुक्त होने के हेतु...** कोई भी हेतु करके तू दया,

दान, व्रत का विकल्प कर, वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कुछ भी रागादि करूँ और उसमें से कुछ मिलेगा, यह तो मिथ्यात्व है। यहाँ तो **भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो...** आत्मा को भजो, आत्मा की भक्ति करो। यह अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, इसके सन्मुख होकर इसे भजो। पर से विमुख होकर, प्रभु के सन्मुख होकर प्रभु को भजो। आहाहा! गजब बात है। अरे! मूल बात सुनने को मिले नहीं, वह कब करे बेचारा? आहाहा!

आज लन्दन से पत्र आया है। प्रेमचन्द है न एक? एक प्रेमचन्द है, बहुत वैरागी और लन्दन में महाजन है। पत्र आया था। इतनी प्रसन्नता.. प्रसन्नता.. ऐसा कहता है, हम पढ़ते हैं, उसमें इतना आह्लाद हमें आता है कि इस अनार्यदेश में हमें क्या चीज़ मिली! स्वाध्याय करता है, पच्चीस-पचास लोग इकट्ठे होते हैं। थोड़े-थोड़े बढ़ते हैं। लन्दन में भी पढ़ते हैं और बढ़ते हैं। आहाहा! लन्दन हो या काठियावाड़ हो, आत्मा में क्या है? आत्मा में तो देश है नहीं। वह तो पहले कहा। आत्मा में दिशा नहीं, वहाँ देश कहाँ से होगा? आत्मा में दिशा नहीं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशा नहीं, वहाँ देश कहाँ से आया? आहाहा! उसका स्वदेश तो परमात्मास्वरूप, वह अपना स्वदेश है। वहाँ भगवान विराजता है। आहाहा!

**भव से विमुक्त होने के हेतु निरन्तर इस आत्मा को भजो कि जो ( आत्मा ) अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** देखो! कहते हैं भजो। उसमें भजा जा सकता है या नहीं? भजो, ऐसा कहा तो भजा जा सकता है या नहीं? तो कहते हैं **अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** आहाहा! परन्तु अनुपम ज्ञान के आधीन, हों! शास्त्रज्ञान के आधीन नहीं। अनुपम। अन्तर में जिस ज्ञान को उपमा नहीं, ऐसे अनुपम ज्ञान के आधीन आत्मा है। आहाहा! किसी शास्त्र के ज्ञान से मिल जाये, वह ऐसी चीज़ नहीं है। यह तो पहले कहा न? स्वर, व्यंजन, अक्षर, विसर्ग कुछ भी आत्मा में नहीं है। जो नहीं है, उससे आत्मा किस प्रकार प्राप्त हो? आहाहा!

**जो ( आत्मा ) अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** ओहोहो! शब्द तो बहुत थोड़े हैं। अनुपम ज्ञान-जिसको उपमा न दी जा सके, ऐसा अन्तर में ज्ञान उत्पन्न हुआ। अन्तर ज्ञान में ज्ञान उत्पन्न हुआ, उस अनुपम ज्ञान के आधीन भगवान है। उस अनुपम ज्ञान के आधीन भगवान प्राप्त होता है। किसी बाह्य ज्ञान से आत्मा प्राप्त नहीं होता। आहाहा! गजब बात है।

व्यवहार है। व्यवहार को भी व्यवहाररूप से भूतार्थ कहा है। हेयरूप से है; आदरणीय नहीं, अनुसरण करने योग्य नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि अनुपम ज्ञान के आधीन। शास्त्रज्ञान के आधीन भी वह नहीं है। वह तो अन्तर उपमारहित भगवान विराजता है, उसके सन्मुख का ज्ञान, उस ज्ञान के आधीन है। उस ज्ञान के आधीन भगवान ज्ञात होता है। आहाहा! एक-एक बोल कठिन पड़े। आहाहा! **सहजगुणमणि की खान है,...** प्रभु कैसा है? स्वाभाविक गुण-मणि, गुणरत्न। गुणरत्न की खान है। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुणमणि की खान है। आहाहा! जिस खान में से निकलते-निकलते पार न आवे। अनन्त गुण केवलज्ञान प्रगट हो जाये तो भी पार न आवे, ऐसा वह खजाना है। आहाहा! ऐसा वह आत्मा निज खजाना है। **सहजगुणमणि...** स्वाभाविक गुणरूपी रत्न की खान। आहाहा! दुनिया के रत्न-फत्न... रजनीभाई! तुम्हारे रत्न की कीमत यहाँ कुछ नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ करोड़ों रुपये हो, वह मानो (कि) हम कैसे सुखी! दुःखी है। परद्रव्य के ओर के लक्ष्य में आपदा और विपदा है।

वह यहाँ कहते हैं, **अनुपम ज्ञान के आधीन है,...** आहाहा! और **सहजगुणमणि की खान है,...** वह अनुपम ज्ञान प्रगट करने के लिये किसी बाहर के आधार की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! प्रभु! तू पूर्णानन्द की खान है न, नाथ! आहाहा! अनन्त गुणरूपी मणिरत्न। अनन्त गुणरूपी रत्न-मणि की खान। आहाहा! उसमें से संसार उत्पन्न हो, ऐसी तेरी चीज़ नहीं है। आहाहा! राग उत्पन्न हो, ऐसी कोई चीज़ ही नहीं है। **सहजगुणमणि की खान है,...** वह तो स्वाभाविक गुणमणि की खान है। निर्मल गुण की परिणति प्रगट हो, ऐसी खान है। आहाहा! निर्मल गुण की अवस्था, परिणति प्रगटे, उसकी वह खान है, किसी राग से निर्मल परिणति प्रगट होती है, व्यवहार करते-करते होगी, (ऐसा नहीं है)। व्यवहार है परन्तु उससे होता नहीं। आहाहा!

**सहजगुणमणि की खान है, जो ( सर्व ) तत्त्वों में सार...** आहाहा! नवतत्त्व भले कहो, मोक्षतत्त्व कहो, संवर-निर्जरातत्त्व, धर्म तत्त्व, परन्तु सर्व तत्त्व में सार आत्मा है। वह तो सब पर्याय है। आहाहा! एक-एक शब्द यह है। धन्नालालजी! धन्य करे, वह धन्नालाल है यहाँ तो। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत अन्तर हो गया।

सबका कल्याण होओ। सब भगवान हैं। अरे! दुःखी कोई न रहो। परिभ्रमण किसी

को न रहो। आहाहा! जैसे दु:ख अपने को नहीं रुचता, वैसे सर्व जीवों को नहीं रुचता। प्रभु! तुम सुख की खान, मणिरत्न की खान हो न! उसमें से सुख निकालो न, प्रभु! आहाहा! जानबूझकर दु:खी (होवे, यह न हो)। अस्तितत्त्व, मणिरत्न से भरपूर तत्त्व के सन्मुख न देखकर बाह्य सन्मुख देखकर दु:खी होता है, प्रभु! यह तुझे न हो। आहाहा! आचार्यों की पुकार है। सर्व जीवों... आहाहा! आत्मानन्द को प्राप्त करो। आहाहा! तेरी चीज़ तुझे प्राप्त हो, उसमें क्या है? तेरी चीज़ ही ऐसी है। क्या कहा? देखो!

**तत्त्वों में सार है...** सब तत्त्व संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि चाहे जो तत्त्व हो, उसमें सार तो प्रभु है। आहाहा! **और जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है**। वर्तमान वापस एक ली है। क्या कहा? कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा कहते हैं, परन्तु ऐसा हमारी परिणति में भास हुआ है, इसलिए ऐसा कहते हैं। क्या कहा? **जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है**। आहाहा! वर्तमान सुख और अतीन्द्रिय आनन्द की निज परिणति, ऐसे सुखसागर में, **सुखसागर में मग्न होता है**। यह पर्याय ली है। इस परिणति द्वारा जीव जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहा जाता है। जो चीज़ दृष्टि में आयी नहीं, ज्ञान में ज्ञेय हुई नहीं, उस चीज़ में स्थिर होना, यह तो कहाँ से बने? प्रभु! ज्ञान में ज्ञेय आता है, ज्ञेय का ज्ञान होता है, तब उसमें लीन होने की बात है। चारित्र तो तब होता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **जो निजपरिणति के...** निजपरिणति अर्थात् वीतरागपरिणति। आहाहा! रागरहित निज, निर्विकल्प परिणति / दशा, निर्विकल्प दशा द्वारा। **सुखसागर में मग्न होता है**। ऐसी चीज़ है, उस चीज़ की जहाँ दृष्टि हुई, तो निजपरिणति के सुखसागर में आत्मा मग्न होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा आत्मा है.. (है.. ऐसा नहीं)। है, परन्तु है—ऐसा ज्ञान में आया, तब वह है। तो है वैसी परिणति भी हुई। निज आत्मा की सुखसागर की परिणति में 'है' ऐसा भासित हुआ है। आहाहा!

एक बार कहा था न? वीरजीभाई के लड़के ने पूछा था। त्रिभुवनभाई, राजकोट रहता है न? कहता कि कारणपरमात्मा... कारणपरमात्मा आप कहते हो, तो कारणपरमात्मा हो तो कार्य तो आना चाहिए? (हमने कहा) किसने इनकार किया? कहा, परन्तु कारणपरमात्मा अन्दर अनुभव में है, ऐसा आवे उसे कारणपरमात्मा है या कारणपरमात्मा लक्ष्य में धार लिया और वस्तु तो ख्याल में (भास में) आयी नहीं, तो कारणपरमात्मा का

कार्य किस प्रकार हो? आहाहा! कारणपरमात्मा है... आहाहा! परन्तु वह है, उसका पर्याय में ख्याल आये बिना उसका अस्तित्व / मौजूदगी, हयाति का अनुभव और पर्याय में आनन्द आये बिना, उसकी अस्ति किस प्रकार स्वीकार की? इसलिए कारणपरमात्मा का स्वीकार करनेवाले को कार्य में आनन्द आये बिना रहता ही नहीं। आहाहा! यह प्रश्न किया था।

वीरजीभाई, काठियावाड़ में दिगम्बर के शास्त्र का प्रथम अभ्यास वीरजीभाई को था। वीरजी वकील, ९१-९२ वर्ष में गुजर गये। जामनगर के थे। बहुत वर्ष का अभ्यास। दिगम्बर शास्त्रों का काठियावाड़ में पहला-पहला अभ्यास उन्हें था। मरते तक उस अभ्यास में ही देह उसी-उसी में छूट गया। उनके लड़के को यह जरा प्रश्न हुआ कि तुम कारणपरमात्मा कहते हो कि सभी कारणप्रभु भगवान है तो कारण है तो कार्य आना चाहिए। प्रभु! कार्य तो आता है परन्तु कब? वह कारणप्रभु भगवान सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसा ज्ञान अनुभव में आये बिना 'है' ऐसा कहाँ से आया? वह है, यह तुझे कहाँ से आया? उसके ज्ञान में ज्ञान हुए बिना, प्रतीति आये बिना, वेदन हुए बिना वह 'है' ऐसा किस प्रकार तूने माना? उसकी अस्ति का स्वीकार किसने किया? आहाहा! और अस्ति का स्वीकार करे और कार्य न हो, (ऐसा होता ही नहीं)। वरना तो है तो कारणपरमात्मा सबके पास है। अभव्य के पास भी कारणपरमात्मा है। समझ में आया?

भगवान कारणपरमात्मा है, परन्तु तुम कारण को स्वीकार करो, पर्याय में वीतरागी पर्याय बनाकर वीतरागी कारणपरमात्मा को स्वीकार करो, तब तुम्हें कारणपरमात्मा है। आहाहा! नहीं तो कारणपरमात्मा तो सबको, अभव्य को भी है। कभी लक्ष्य नहीं देता, कभी उसके भव नहीं घटते। अभव्य भी, सर्व जीव सिद्धसम हैं। श्रीमद् कहते हैं 'सर्व जीव है सिद्धसम।' कोई जीव (बाकी नहीं रखे)। वह तो पर्याय में अन्तर है। अन्दर में वस्तु परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण का समुद्र है। परन्तु 'है' उसका स्वीकार करे, उसे है। वीतरागी पर्याय से स्वीकार करे, तब है। राग से स्वीकार करे तो उसमें राग नहीं तो स्वीकार कहाँ से होगा? समझ में आया? पुण्य का विकल्प है राग, व्यवहार भी आयेगा, परन्तु उससे स्वीकार नहीं होगा। उससे रहित होता है, तब स्वीकार होता है। स्वीकार होता है, उसे कारणपरमात्मा का फल आया। उस फल

द्वारा उसकी अस्ति की स्वीकृति की, उसे कारणपरमात्मा है। दूसरे को कारणपरमात्मा है, वह कान से सुन लिया। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **जो निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है**। आहाहा! तीन लोक के नाथ परमात्मा की दृष्टि करने से... आहाहा! **निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है**। यह पर्याय की बात है। उसके सन्मुख हो और निजपरिणति सुखसागर उत्पन्न न हो, ऐसा कभी नहीं होता और उसके सन्मुख न हो और सुख की परिणति उत्पन्न हो, ऐसा भी कभी उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! ऐसी कठिन बात।

बाल बच्चे भी प्रभु हैं। सब प्रभु ही हैं। अरे! निगोद का जीव भी प्रभु है। आहाहा! एक अंगुल के असंख्य भाग में एक लहसुन, एक प्याज, एक इतने टुकड़े में... आहाहा! असंख्यात शरीर। एक शरीर में सिद्ध से अनन्तगुने जीव, उनके अस्तित्व की स्वीकृति, अपने अस्तित्व की स्वीकृति बिना पर के अस्तित्व की व्यवहार से स्वीकृति नहीं होती। समझ में आया?

अपना अस्तित्व यहाँ निज सागर से भरा है, ऐसे **निजपरिणति के सुखसागर में मग्न होता है**। तब आत्मा है, कारणपरमात्मा है, प्रभु है, उसमें राग नहीं है, वह परमात्मा ध्रुव है, तब पर्याय में परिणति सन्मुख होकर हुई, तब प्रतीति में आता है, इसके बिना प्रतीति नहीं होती। आहाहा! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## श्लोक-६५

( द्रुतविलंबित )

**भवजभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम् ।**
**भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ।।६५।।**

( वीरछन्द )

**भव भोगों से विमुख यति हे लीन बुद्धि निज आतम में।**
**भवक्षयकारकपद भज! अध्रुव चिन्ता से क्या लाभ तुम्हें ॥६५ ॥**

***श्लोकार्थः*** **—निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले तथा भव से और भोग से पराङ्गमुख हुए हे यति! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस ( ध्रुव ) पद को भज; अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ?।।६५।।**

**प्रवचन-४७, श्लोक ६५ से ६८, गाथा-४४ , शुक्रवार, श्रावण शुक्ल ११, दिनांक २२-०८-१९८०**

नियमसार, ६५वाँ श्लोक है। ६५ वाँ श्लोक।

**भवजभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम् ।**
**भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ।।६५।।**

आहाहा ! यति की अपेक्षा से ( बात की है ) । स्वयं मुनि है न ? मुनि की अपेक्षा से बात करते हैं। **निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले...** प्रभु ! तू तो निज आत्मा में लीन बुद्धिवाला है न ! आहाहा ! तेरा वैभव और तेरी सम्पत्ति तो तुझमें पड़ी है न, प्रभु ! **निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले तथा भव से और भोग से...** भव से और भोग से... आहाहा ! चार गति और भोग, दोनों से जो विरक्त है। **पराङ्गमुख हुए...** हैं। भव ही नहीं। आत्मा में भव नहीं, आत्मा में पर का भोग नहीं।

**हे मुनि!** यह स्वयं को कहते हैं। **हे यति! तू भव...** और भोग के दुःख से तो पराङ्गमुख हुए यति। उनसे तो तो पराङ्गमुख है। आहाहा ! **तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,...**

चौरासी के अवतार के भव का विनाश करनेवाले **ऐसे इस ( ध्रुव ) पद को भज;...** आहाहा! चार गति और चौरासी लाख अवतार का नाश करनेवाला ध्रुव भगवान... आहाहा! ध्रुव को भज! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल से ध्रुव पर लक्ष्य गया ही नहीं। सब कल्पनाएँ पर्याय पर रही और यह त्याग किया, यह छोड़ा, यह रखा और यह लिया, यह दिया। यह सब अपनी पर्याय में मनोमन्थन / कोलाहल कर चुका है। प्रभु! परन्तु तू अन्दर अनादि-अनन्त ध्रुव चीज़ है न! चँवरेजी आये नहीं? आहाहा!

**तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,...** चार गति का नाश करनेवाले, **ऐसे इस ( ध्रुव )...** आहाहा! **( ध्रुव ) पद को भज;...** आहाहा! भज, यह साधन है। भजन की साध्यवस्तु है, वह ध्रुव है। समयसार की १६वीं गाथा में कहा है कि '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि**' यह सेवना और यह साधन। यह साधन और साध्य आत्मा का भेद है। आहाहा! क्या कहा? आत्मा, वह साध्य है और साधन भी उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही भाव है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधन। '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं। ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव**' परन्तु वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सेवन कर, किन्तु वस्तु तो एक है। वह साधनरूप से दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय कहा। निश्चय, हों! निश्चय साधन। आहाहा! व्यवहार के विकल्प की बात है ही नहीं। वहाँ तो '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं। ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव**' एक है। आहाहा! दर्शन, ज्ञान और चारित्र का सेवन, वह भी साधक को व्यवहार हुआ। आहाहा!

अन्दर भगवान ध्रुव, वही निश्चय है। उसमें तीन की एकता करके उसकी सेवा कर। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। उसे भज-ध्रुव को भज। भज, यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है। निश्चय, हों! व्यवहार नहीं। आहाहा! निश्चय सम्यक् निर्विकल्प अपने आत्मा की प्रतीति और वेदन, ज्ञान और चारित्र, ये निश्चय तीनों साधक हैं। एक ही चीज़ में साधक-साध्य दो है। चीज़ एक ही है। राग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहा है। द्रव्य में साधन कहना वह तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधन। साध्य ध्रुव... आहाहा! मार्ग ऐसा है। इन तीन की सेवना में एकरूप की सेवना कर। आहाहा! तीन के भेद के लक्ष्य को भी छोड़ दे। आहाहा!

निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान को भी '**सेविदव्वाणि साहुणा**' कहा है। यह व्यवहारी

लोग पर्याय से समझते हैं, इस कारण ऐसी भाषा ली है। ऐसा लिखा है अन्दर पर्यायवाले इस पर्याय से समझते हैं। पर्यायदृष्टिवाले इस प्रकार से समझते हैं, इसलिए तीन से हमने बात की है, प्रभु! बाकी सेवन तो एक आत्मा का ही करना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

यहाँ कहते हैं कि **हे यति!...** स्वयं, स्वयं को कहते हैं। भगवान आत्मा भगवान को कहता है। **हे यति!..** भव और भव से पराङ्गमुख। प्रभु! तू भव और भोग से तो पराङ्गमुख है न, नाथ! **तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,...** भव के हेतु का विनाश करनेवाले **ऐसे इस ( ध्रुव ) पद को भज;...** आहाहा! भज, यह पर्याय है और भजन के ध्येय में ध्रुव है। यह समयसार की १६वीं गाथा में कहा है। '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**' हे मुनि! अन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-जिसके ध्येय का ध्रुव, अनन्त आनन्द का भण्डार ऐसा सम्यग्दर्शन, ऐसा उसका ध्येय ध्रुव; ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसका ध्येय ध्रुव; ऐसा सम्यक्चारित्र, उसका भी ध्येय ध्रुव। '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**' १६वीं गाथा हैं। सन्तों को तो नित्य यह सेवना करना। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह साधन है। निश्चयकरण अर्थात् साधन गुण तो आत्मा में है। त्रिकाली भगवान में प्रभु, करण नाम का गुण तो अन्दर है। कर्ता, कर्म, करण, यह त्रिकाल गुण है। परन्तु इनका बाह्य जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह साधन बाह्य साधन है। रागादि नहीं। आहाहा!

मुनि स्वयं अपने को कहते हैं, हे प्रभु! भव और भोग का नाश करनेवाले... आहाहा! और **भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस ( ध्रुव ) पद को भज;...** आहाहा! पर्याय को भज, भगवान को भज - ऐसा नहीं कहा। पर्याय को भज, ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! पर्याय पर लक्ष्य जायेगा तो, नाथ! प्रभु! तुझे विकल्प होगा। अन्तर चीज़ जो ध्रुव है, जो अनन्त अक्षय आनन्दादि गुणों के भण्डार की खान है। आहाहा! ऐसा भव के नाश हेतु, प्रभु! तू ध्रुव को भज। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! ऐसी कठिन बात लगे। दूसरा क्या हो? प्रभु! मार्ग तो यह है। आहाहा!

वे स्वयं अपने लिये कहते हैं। पोते अर्थात् अपने। पोते, यह हमारी गुजराती भाषा है। स्वयं अपने को कहते हैं। आहाहा! भगवन्त! भव के और भोग के भाव से, प्रभु! तू विरक्त हो। अत: भव के हेतु का नाश करने के लिये, प्रभु! ध्रुव को भज। आहाहा!

चिदानन्द ध्रुव अनन्त-अनन्त रत्न का चैतन्य रत्नाकर का भण्डार, उस पर दृष्टि दे, वहाँ भजन कर। आहाहा! कठिन लगे परन्तु मार्ग तो यह है, प्रभु! अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार (किये), एक-एक अवतार में अनन्त अवतार किये, वे सब मिथ्यात्वभाव (के कारण से किये हैं)। उस मिथ्यात्व के असंख्य प्रकार, सूक्ष्म अनन्त प्रकार हैं। उनमें से कुछ भी अन्दर शल्य रह गयी.. आहाहा! चैतन्य ध्रुव को पकड़ने का भाव नहीं किया और दूसरे भाव में रुक गया। भव का नाश हुआ नहीं, प्रभु! आहाहा! भाषा तो कितनी मीठी है। आहाहा!

**हे यति!..** हे यत्ना करनेवाले, स्वरूप का यत्न करनेवाले! स्वरूप की यत्ना करनेवाले। राग की नहीं, शरीर परवस्तु तो उसके कारण से (होती है)। शरीर की पर्याय तो उसके काल में, उसके कारण से क्रमबद्ध होनेवाली होगी, वह होगी। राग भी क्रमबद्ध काल में आनेवाला होगा, वह आयेगा। परन्तु तेरा लक्ष्य उस पर से छोड़ दे। आहाहा! अरागी और अशरीरी। राग और शरीर के ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे और अरागी और अशरीरी भगवान... आहाहा! उसका भजन कर। आहाहा!

**अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ?** आहाहा! इस विकल्प से, दया, दान और व्रत के विकल्प से (क्या प्रयोजन है) ? आहाहा! वह तो अध्रुव है, प्रभु! अध्रुव वस्तु की चिन्ता, उसके विकल्प में रुकना, प्रभु! उसमें क्या है ?

**मुमुक्षु :** पैसा ध्रुव है या अध्रुव है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसे की तो बात ही कहाँ है, प्रभु! यहाँ तो पैसे की बात ही नहीं। बहुत कड़क भाषा से कहें तो पण्डितजी ने लिखा है कि पैसा तो पुण्य से मिलता है, परन्तु पैसेवाले पापी हैं। आहाहा! क्यों ? कि त्रिलोकनाथ भगवान ने चौबीस प्रकार के परिग्रह कहे हैं। चौदह प्रकार के परिग्रह तो अपने यहाँ आ गये और दस प्रकार के परिग्रह यहाँ कहते हैं। क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन-धान्य, दासी-दास, वस्त्र, बर्तन—ऐसे दस प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय, ऐसे चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह हैं। आहाहा! ये चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह, दस प्रकार के बाह्य परिग्रह, परिग्रह है, परचीज़ है। तेरा लक्ष्य उन पर जायेगा तो तुझे पाप लगेगा। अध्रुव की तुझे क्या चिन्ता है ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह तो पैसा जरा पाँच-पचास लाख मिले, मानो अन्दर घुस गया। मानो कैसा मकान बनाया! ऐसा बनाया... ऐसा बनाया... मकान के वास्तु में कार्यकरों (अतिथियों को) बुलावे, कार्यकरों बड़े अधिकारियों को बुलावे। वे आवे तो अपने मकान की वास्तु की शोभा बढ़े। आहाहा! प्रभु! तेरा घर तो यह है न, नाथ! तेरी पर्याय को वहाँ अन्दर में बुला न! वह कार्यकर्ता तो पर्याय है। ये दुनिया के कार्यकर्ता हैं, वे तो सब पाप के करनेवाले हैं। रजनीभाई! इसने बहुत तूफान किया है। बहुत पैसा इकट्ठा (किया)। कितने लाखों खर्च करके यात्रा निकाली थी। यह और वह दूसरा कौन तुम्हारे ? कान्तिभाई। कान्तिभाई और ये दोनों ने शत्रुंजय की बड़ी यात्रा निकाली थी। उसमें मानो धर्म हो गया। रजनीभाई! ऐसा हुआ था न ? कुछ धर्म नहीं, हों! प्रभु! उसमें कर्ताबुद्धि है तो मिथ्यात्व है, महापाप है। कर्ताबुद्धि से मैंने किया, मैंने पैसे खर्च किये और हलन-चलन मैंने किया और वाणी का मैं कर्ता हुआ तो स्तुति हुई, प्रभु! आहाहा! वहाँ तो एकान्त मिथ्यात्व का पाप है।

भगवान! मिथ्यात्व किसे कहते हैं ? यह समझने की सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! बाह्य में परिग्रह आये न ? इस ओर। धन और वह आया। धन, धान्य। नीचे इस ओर परिग्रह (की बात) है न ? दूसरी ओर। वह परिग्रह है। परिग्रह तो पाप है। वास्तव में तो बाह्य परिग्रह पाप का निमित्त है। पाप तो अन्तर में मिथ्यात्व (अर्थात्) ये पैसे मेरे हैं, लक्ष्मी मेरी है और मैं सदाचार में प्रयोग करता हूँ, ऐसी कर्तापने की बुद्धि और ये पैसे मेरे हैं, ऐसी बुद्धि, प्रभु! क्या कहें ? परमात्मा का पुकार है। हे प्रभु! तू कर्ताबुद्धि में जाता है, हों! वह तुझे नुकसान करती है और तू मान बैठा है कि उसमें मुझे लाभ होगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं **( ध्रुव ) पद को भज;...** नाथ! **अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ?** ६५वाँ श्लोक। आहाहा! अध्रुव जो चिन्ता, विकल्प, राग, पैसा-लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, भव-भोग सब अध्रुव है। उस अध्रुव की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है ? अध्रुव की चिन्ता से तो, प्रभु! तुझे भटकना पड़ेगा। किस गति में और कहाँ जायेगा ? नाथ! आहाहा! और वहाँ से फिर मनुष्यपना कैसे मिलेगा ? अनन्त काल में मिला है, उसमें ध्रुव का ध्यान करके ध्रुव को जगाया नहीं। आहाहा! और क्रिया में रुक गया। बहिन आयीं। समझ में आया ? आहाहा!

मुनिराज कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं) तुझे अध्रुव की क्या चिन्ता है ? प्रभु! अध्रुव से तुझे क्या है ? अध्रुव में राग, पुण्य, दया, दान भी अध्रुव में आ गये।

आहाहा! बात कठिन पड़े, प्रभु! परन्तु यह करने से ही छुटकारा है, ऐसा निर्णय करना, हों! ऐसा निर्णय तो पहले करना। पहले निर्णय तो यह करना कि यही करने योग्य है, बाकी दूसरी कोई चीज़ करने योग्य नहीं है। आहाहा! एक शुभराग का विकल्प, उसका कर्ता होगा, चैतन्यनाथ को कर्तापना सौंपना... आहाहा! चक्रवर्ती ने पाँच-दस करोड़ का मकान लिया, उसमें धूल जमी हुई थी। दो-चार महीने से किसी ने निकाली नहीं। चक्रवर्ती को सौंपे कि तुम धूल निकालो (साफ करो), आहाहा! तुम यह साफ करो। इसी प्रकार भगवान तीन लोक के नाथ के समक्ष राग का कर्तापना सौंपना, वैसा है। आहाहा! कठिन पड़े, प्रभु!

यह सूझ पड़ती नहीं, उसका करनापना और जो सूझ-बूझ में आवे, उसका कर्तापना तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वह चीज़ सूझ-बूझ में आती नहीं, उसे अकर्तापने का लाभ और उससे विरुद्ध जो अध्रुव चिन्ता, उसके कर्तापने का लाभ मिथ्यात्व। और ध्रुव चीज़ के कर्तापने का लाभ सम्यक्त्व (है)। तो हे प्रभु! भव, भोग के नाश के लिये एक बार अध्रुव की चिन्ता तो छोड़ और ध्रुव का तो भजन कर, प्रभु! आहा! यह ६५ में आया।

## श्लोक-६६

(द्रुतविलंबित)

**समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम्।**
**सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं समरसेन सदा परिपूजये।।६६।।**

(वीरछन्द)

**अच्युत और अनाकुल जन्म मृत्यु रोगादिक रहित सदा।**
**निर्मल सहज सुखामृत सार समय समरस से भजूँ सदा॥६६॥**

***श्लोकार्थः*—जो अनाकुल है, अच्युत* है, जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ॥६६॥**

* अच्युत=अस्खलित; निजस्वरूप से न हटा हुआ।

## श्लोक-६६ पर प्रवचन

अब ६६ वाँ श्लोक।

**समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम् ।**
**सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं समरसेन सदा परिपूजये ।।६६।।**

***श्लोकार्थः*—जो अनाकुल है,...** भगवान आत्मा में आकुलता की गन्ध नहीं है। आहाहा! जो अनाकुल का सागर भरा है। अनाकुल अर्थात् सुख, अनाकुल अर्थात् सुख; आकुलता अर्थात् दु:ख। आहाहा! तू तो अनाकुल है न नाथ! आहाहा! तू बाहर के सुख के लिये झपट्टे मारता है। यहाँ से सुख मिलेगा, यहाँ से आकुलता होगी, यहाँ से सुविधाएँ मिलेंगी, प्रभु! बाहर में कहीं सुविधा नहीं है। आहाहा! सुविधा अर्थात् कि शुद्ध ध्रुव का ज्ञान, वह सुविधा है कि जिस सुविधा से ध्रुव में से आनन्द का अनुभव आता है। आहाहा! बाकी पैसा, करोड़ों के मकान...

हम एक बार गये थे न, मैसूर गये थे। साढ़े तीन करोड़ का दरबार का मकान था। उस मैसूर का जो दरबार था, उसका रहने का साढ़े तीन करोड़ का एक। किन्तु बाद में तो सरकार ने ले लिया। वह बँगला भी ले लिया। अब सरकार ने बँगला भी ले लिया। अब साढ़े तीन करोड़ के खाली मकान में आवे कौन? खाली पड़ा है। लोग देखने आते हैं। साढ़े तीन करोड़ का एक मकान। धूल में भी है नहीं। आहाहा! चिन्ता का पार नहीं होता। उसे सम्हालने के लिये... आहाहा!

वहाँ गये थे न? अफ्रीका। बड़े गृहस्थ थे। जिस मकान में उतरे थे, वह मकान पन्द्रह लाख का। जिस मकान में उतरे थे वह। उसके अतिरिक्त दूसरे पैसे, परन्तु अन्दर में हबसी का डर। हबसी लोगों का इतना डर कि बाहर निकलने में बहुत विचार करे और रहने के स्थल में त्रिपट्टी आड़ डाले। बण्डी, त्रिपटी बण्डी। आहाहा! अब यह सुख! अध्रुव की चिन्ता से, प्रभु! तुझे क्या लाभ है? आहाहा! वह व्यक्ति बेचारा नरम था। पन्द्रह लाख का मकान। करोड़पति होगा परन्तु बहुत नरम। ऐसे लौकिक दिखाव कुछ नहीं होता। गाँव का व्यक्ति हो, वैसा साधारण। ऐसी चमड़ी, ऐसी बोली और ऐसा परिवेश, परन्तु पुण्य के कारण वहाँ... वह तो कहता था कि कुछ पचास या बावन वर्ष से हम यहाँ

है। देश में आये ही नहीं। वहीं के वहीं पड़े होंगे। वहीं के वहीं पैसे हो गये। उसमें क्या हुआ?

यहाँ कहते हैं, तू अनाकुल है न, नाथ! **अच्युत है,...** ***अस्खलित; निजस्वरूप से न हटा हुआ।*** प्रभु! तेरे ऊपर अनन्त-अनन्त काल बीता, पर कभी स्खलित नहीं हुआ। ध्रुव में से स्खलित नहीं हुआ। आहाहा! वहाँ से जरा पलटा खाकर पर्याय में नहीं आया। ध्रुव तो ध्रुवरूप ही रहता है। उसे अच्युत कहते हैं। प्रभु! तू **अच्युत है, है न? जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है,...** ओहोहो! प्रभु! तू अन्दर में आनन्दकन्द है। **जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है,...** आत्मा में कोई जन्म-मृत्यु-रोग ही नहीं है।

**सहज निर्मल सुखामृतमय है,...** स्वाभाविक निर्मल सुखामृत। सुखरूपी अमृत का खजाना है। अरे! प्रभु! तुझे उसकी महिमा न आवे और बाह्य की किसी चीज़ में महिमा रह जाये, भवभ्रमण नहीं टलेगा, प्रभु! भवभ्रमण नहीं टलेगा। भवभ्रमण मिटाने का उपाय तो ध्रुव का आश्रय लेना, वह एक ही है, उसके भजन में एकाग्र होना और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प, उनकी सेवना करना, यह एक ही भव का अभाव करने का कारण है। आहाहा! व्यवहार चाहे जो आवे। व्यवहार है, व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है परन्तु वह कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं है। आहाहा!

१६वीं गाथा में तो ऐसा कहा, अन्दर दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो निर्मल निश्चय प्रगटे, उसे भी साधक कहते हैं। रागादि, निमित्तादि तो साधन नहीं, त्रिकाली भगवान ध्रुव में '**दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।**' साधु को तो नित्य अन्तर्मुख, सन्मुख, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ध्रुव की सन्मुखता की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र से उसकी सेवना करना। यह तीनों एक ही आत्मा है। दृष्टि तो द्रव्य पर रखना। सेवना करना, वह पर्यायबुद्धि से तुझे समझाते हैं। दर्शन-ज्ञान और चारित्र ये तीन बोल निश्चय हैं। आहाहा! वह भी तू व्यवहार में (खड़ा) है, तो पर्यायबुद्धि से तुझे समझाते हैं परन्तु वह पर्याय भी तेरे लक्ष्य में रखनेयोग्य नहीं है। आहाहा! पर्याय की स्थिति तो प्रभु! एक समय की है न! अन्दर भगवान पूरा ध्रुव अनादि-अनन्त, एकरूप पूर्णानन्द का नाथ.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण का भण्डार.. बाहर में बहुत धीरज की, परन्तु जहाँ जीव में धीरज करनी थी, वहाँ तूने धीरज नहीं की। आहाहा!

वैसे तो चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध नहीं किया, परन्तु वह सब

परलक्ष्यी। अन्दर चैतन्य भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उस ओर का झुकाव, ढलाव, सन्मुखता कभी नहीं की। आहाहा! और इसके अतिरिक्त बाहर की चीज़ में सन्तुष्ट हो गया। हम कुछ करते हैं.. कुछ करते हैं.. बाहर में सन्तुष्ट हो जाये, उसे अन्दर जाने की दरकार नहीं रहती। आहाहा! ऐसी बात है। रजनीभाई! बड़ी यात्रा-वात्रा निकाली थी, उसमें कुछ धर्म नहीं था। कितने पैसे खर्च किये थे इसने। वह कान्तिभाई साथ में।

**मुमुक्षु :** उस समय ख्याल नहीं था, खबर नहीं थी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बात सच्ची है। यह मानो कि उसमें से (लाभ होगा)। बड़ी यात्रा निकाले, लाख-दो लाख लोगों का बड़ा संघ निकाले, प्रभु! वह सब अध्रुव चीज़ है, नाथ! एक भगवान आत्मा ध्रुव को भूलकर सब चिन्ता निरर्थक है। आहाहा! सार्थक! निरर्थक के सामने सार्थक एक ध्रुव प्रभु वही सार्थक है। उस ओर का ढलान, झुकाव, वही धर्म है। ऐसा प्रभु! निर्णय तो कर। इस निर्णय में ऐसा निर्णय कर कि निर्णय कभी बदले नहीं। आहाहा! वह निर्णय पूर्ण फल लाकर ही रहे। आहाहा! उस ध्रुव में से केवलज्ञान आयेगा। इसे निर्णय हो गया है कि इस ध्रुव को मैंने पकड़ा है, इसमें से केवलज्ञान आये। मुझे अवश्य केवलज्ञान होगा। उस केवलज्ञान के लिये राह देखनी पड़े या सन्देह होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा!

**उस समयसार को...** क्या कहा? आत्मा **अनाकुल है, अच्युत है, ( स्खलित नहीं )। जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को...** वह आत्मा। समयसार कहो या आत्मा कहो। आहाहा! **उस समयसार को...** है न? **मैं समरस ( समताभाव ) द्वारा सदा पूजता हूँ।** वीतरागभाव द्वारा सदा ध्रुव का पूजन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

आहार के समय वहाँ लोग बहुत आते हैं न, भाई? आहार लेते समय। उन्हें बाहर निकालना। डॉक्टर की मनाही है कि अधिक लोगों का श्वास नहीं लेना। अन्दर शरीर में रोग है। शरीर बाहर से सुन्दर दिखता है परन्तु अन्दर खून में कैंसर है। आहाहा! इस कारण से डॉक्टर ने कहा है कि अधिक लोगों के बीच रहना नहीं, उनका श्वास अन्दर जायेगा तो चेप लगता है। यह तो एक बनने की चीज़ होगी तो बनेगी। लोगों को बाहर निकाले तो किसी को दु:ख लगे। अन्दर आवे और कहे कि बाहर निकलो। (आहार) देकर निकल जाओ.. निकल जाओ, ऐसा कहे तो किसी को दु:ख लगे। उसका कारण तो प्रभु! यह है। क्या करें? आहाहा! शरीर सुन्दर दिखता है, खून में कैंसर है। पाँच-छह वर्ष से है

परन्तु बाहर में दिखता नहीं। कुछ दिखता नहीं। उसका कोई बाह्य चिह्न नहीं है। वह डॉक्टर को ख्याल आया कि अन्दर है। है, उसकी बाहर में खबर नहीं पड़ती, परन्तु अधिक लोगों के बीच नहीं बैठना, इसलिए दूर रहे। समूह के साथ चलना नहीं और समूह के साथ खड़े नहीं रहना, ऐसा डॉक्टर चन्दुभाई ने कहा है। इस कारण से चन्दुभाई लोगों को कहते हैं आहार देकर निकाल जाओ.. निकल जाओ.. दु:ख लगे। यह तो बनने के काल में बने। आहाहा!

यह शरीर तो धूल का बना हुआ है। आहाहा! अन्दर भगवान अमृत का सागर के समक्ष शरीर की कोई कीमत नहीं है। आहाहा! शरीर में रोग हो या निरोग हो, दोनों समान चीज़ है। आत्मा के लिये कुछ भी लाभ-अलाभ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बहुत लोग वहाँ द्रव्यदृष्टि प्रकाश लेने आते हैं। परन्तु भाई! समाप्त हो गये हैं, थोड़े हैं, अब किसी को देना नहीं है। इसलिए किसी को आना नहीं। द्रव्यदृष्टि प्रकाश लेने कोई अन्दर आ जाते हैं। साधारण व्यक्ति तो अन्दर आ जाते हैं, द्रव्यदृष्टि प्रकाश दो। भाई का है न? सोगानी का है न? अब रहे भी नहीं है। अब तो पैंतीस रहे हैं। थोड़े रहे हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! **उस समयसार को मैं समरस ( समताभाव ) द्वारा सदा पूजता हूँ।** आहाहा! ऐसा समयसार यहाँ कहा न? **अनाकुल है, अच्युत है, जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को मैं समरस ( समताभाव )...** आहाहा! उसे विकल्प भी नहीं। शुभराग विकल्प भी असमता है, वह विसमभाव है। समभाव तो रागरहित प्रभु स्वयं वीतरागस्वरूप है, तो उसके श्रद्धा-ज्ञान भी वीतरागस्वरूप से प्रगट होते हैं। आहाहा! वह वीतरागस्वरूप से प्रगटें, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! कठिन पड़े, भाई! क्या करे? भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है। आहाहा!

**( समताभाव ) द्वारा सदा पूजता हूँ।** ओहोहो! पंच महाव्रतधारी सन्त ऐसा कहते हैं, मैं कोई पंच महाव्रत पालता हूँ या समिति पालता हूँ, निर्दोष आहार लेता हूँ, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो सदा समतारस द्वारा समयसार को-भगवान को पूजता हूँ, वह मैं हूँ, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो कहे यह वेष, यह वस्त्र, यह कपड़े छोड़ना, ऐसी क्रिया करना, ऐसा यह करना। वह होता है परन्तु उसके कारण से होता है। उस स्वभाव के लाभ के लिये और स्वभाव के लिये आता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं। **मैं समरस ( समताभाव ) द्वारा सदा पूजता हूँ।** यह ६६ वाँ (श्लोक हुआ)।

## श्लोक-६७

( इन्द्रवज्रा )

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम् ।।६७।।

( वीरछन्द )

**आत्मज्ञानयुत सूत्रकार ने जिस निजात्म का किया कथन।**
**जिसे जान भवि मुक्ति लहें उत्तम सुख पाने करूँ भजन॥६७॥**

***श्लोकार्थः*** **—इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने ( आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने ) जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया और जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं, उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।।६७॥**

### श्लोक-६७ पर प्रवचन

६७वाँ श्लोक।

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम्।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम् ।।६७।।

***श्लोकार्थः*** **—इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने ( आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने )...** आहाहा! एक मुनि ने दूसरे मुनि को जान लिया। कोई कहे कि छद्मस्थ नहीं जान सकता। (तो) ऐसा नहीं है। आत्मज्ञानी थे, ऐसा जान लिया। आहाहा! आत्मा में ताकत है। मध्यस्थ होकर देखे तो सामनेवाले की दृष्टि और सामनेवाले का हृदय बराबर जान सकते हैं। यहाँ पंचम काल के मुनि छद्मस्थ हैं। वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव (टीकाकार ने) ११०० वर्ष पहले हुए, ये टीकाकार ९०० वर्ष पहले। वे (इनसे) ११०० वर्ष पहले हुए। ये कहते हैं कि आहाहा!

**निजज्ञ सूत्रकार ने...** जो आत्मज्ञानी हैं, ऐसे सूत्रकार। महाव्रतधारी कुन्दकुन्दाचार्य की बात करते हैं। आहाहा! पंचम काल के मुनि कुन्दकुन्दाचार्य (टीकाकार से) ११०० वर्ष पहले हो गये हैं। उनका हृदय जान लिया। उनके शब्द सुनकर और शास्त्र जानकर (कहते हैं)। उनको 'निजज्ञ' ऐसा कहा। वे कौन हैं? कि निजज्ञ हैं। वे तो निज को जाननेवाले हैं। आहाहा! निजज्ञ हैं। भगवान ऐसा कहते हैं कि मुझे जाननेवाले हैं ऐसा भी नहीं। वे तो निजज्ञ हैं। अपने निजस्वरूप को जाननेवाले हैं। ऐसे **सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया..** आहाहा!

जिस प्रकार से **निजात्मतत्त्व...** निज आत्मभगवान तत्त्व, उसे सूत्रकार ने जो **वर्णन किया और जिसे जानकर...** आहाहा! **भव्य जीव,...** उसे जिस प्रकार से कहा है, उस प्रकार से जानकर.. **जिसे जानकर...** ऐसा आया न? **जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया और जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं,...** आहाहा! पंचम काल के मुनि ऐसा कहते हैं। नग्न-दिगम्बर मुनि, केवलज्ञानी के पथानुगामी हैं। आहाहा! बीच में एक वैमानिक आदि का भव मिले, वह धर्मशाला है। देश में जाना हो तो एक दिन में अधिक तो पन्द्रह कोस कटें, वहाँ धर्मशाला होवे तो रुकना पड़े परन्तु सबेरे कोई पाँच कोस चले। ऐसे यहाँ पंचम काल में अवतार हो गया है। यहाँ सर्वज्ञपना है नहीं तो हमारे देव में धर्मशालारूप से थोड़ा रहने का है। आहाहा! और वहाँ से निकलकर हमारा पन्थ पूरा होगा। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

**मुक्ति को प्राप्त करते हैं,...** वे तो मुक्ति प्राप्त करते ही हैं, परन्तु उसने जो 'आत्म समयसार' कहा, उस आत्मा को जाननेवाले भी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। भले वर्तमान में मुक्ति है नहीं, एकाध भव वैमानिक में जाना पड़े। (तो भी मुक्ति को पाते ही हैं)। आहाहा! **उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु...** उस निजात्मतत्त्व को उत्तम सुख की प्राप्ति के लिये **मैं भाता हूँ।** मैं उसकी भक्ति करता हूँ। आहाहा! माला में एक के बाद एक गिने, वैसे मैं तो आत्मा की माला गिनता हूँ। मैं ध्रुव चिदानन्द आत्मा... आहाहा! उसकी माला मैं गिनता हूँ। आहाहा! दुनिया से सब अलग लगे। दुनिया बाहर के व्यवहार में इतनी अधिक पड़ी है कि मूल चीज़ पूरी रह गयी। आहाहा! जिसकी पहिचान करके वेदन होना चाहिए, वह रह गयी और ऊपर की सब बातें... आहाहा! इसलिए यह कहते हैं, **उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ।** यह ६७ वाँ श्लोक हुआ।

## श्लोक-६८

( वसन्ततिलका )

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम् ।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोक:,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदु:खदूराम् ।।६८।।

( वीरछन्द )

आदि-अन्त से रहित अनघ निर्द्वन्द्व महा अक्षय बुधरूप।
जो भवि उसकी करें भावना, सिद्धि लहें भव दु:ख से दूर ॥६८॥

*श्लोकार्थ:*—परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है, दोषरहित है, निर्द्वन्द्व है और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है। जगत में जो भव्यजन उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं, वे भवजनित दु:खों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।।६८।।

### श्लोक-६८ पर प्रवचन

६८ वाँ श्लोक -

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम् ।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोक:,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदु:खदूराम् ।।६८।।

***श्लोकार्थ :* — परमात्मतत्त्व...** भगवान आत्मा **परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है,...** जिसकी शुरुआत है नहीं, जिसका अन्त है नहीं, ऐसा अनादि-अनन्त आत्मा आदि-अन्तरहित है। आहाहा! आदि नहीं, अन्त नहीं। **दोषरहित है,...** प्रभु में किसी प्रकार का दोष नहीं है। आहाहा! यह 'गीता' में आता है कि भक्तों को कष्ट पड़े और ऐसे राक्षस बहुत

जन्में तो मुक्ति में से भी ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है। यहाँ कहते हैं ऐसा नहीं है। हम मुक्ति को पाकर वहाँ रहनेवाले हैं। आहाहा!

**दोषरहित है,...** यहाँ से निकलकर संसार में आना, भव धारण करना, दुनिया के परोपकार के लिये भव धारण करना, यह भी नहीं है। आहाहा! भव की भावना, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दुनिया के परोपकार के लिये मेरा एकाध अवतार होगा तो ठीक है, ऐसा भी यहाँ नहीं है। आहाहा!

**निर्द्वन्द्व है...** निर्द्वन्द्व। जिसमें द्वैतपना नहीं। निर्द्वन्द्व ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. परमपारिणामिकस्वभावभाव निर्द्वन्द्व / द्वैतपने के द्वन्द्वरहित है। आहाहा! ऐसा भगवान। **और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** भगवान कैसा है? अक्षय, जिसका ज्ञान क्षय न हो; और विशाल है। तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला है और **उत्तम ज्ञानस्वरूप...** ऐसे उत्तम ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! **जगत में जो भव्यजन...** जो योग्य प्राणी। **उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं,...** आहाहा! ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा की भावना। पहले आ गया था कि आत्मा चार आवरणवाला है, तथापि पंचमभाव की भावनावाला है। यह आ गया। पहले आ गया है। आवरणसहित का अर्थ, आवरण तो निमित्त की अपेक्षा से। परन्तु उसकी भावना वह क्षायिक, क्षयोपशम, उपशमभाव है, वे अन्दर में नहीं परन्तु उन क्षायिक, क्षयोपशमभाव से मुक्ति होती है। आहाहा! उनकी भावनारूप परिणमित। वह भावना अर्थात् यह। शुद्ध ध्रुव चैतन्य का दर्शन, उसका ज्ञान, उसमें रमणता—ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना में परिणमता है। जो कोई **उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं, वे भवजनित दुःखों से दूर...** ओहोहो! **भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।** वह प्राणी सिद्धि को प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसी बात है। ६८वाँ श्लोक हुआ न?

## गाथा-४४

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।।४४।।

निर्ग्रन्थो नीरागो निःशल्यः सकलदोषनिर्मुक्तः।
निःकामो निःक्रोधो निर्मानो निर्मदः आत्मा।।४४।।

अत्रापि शुद्धजीवस्वरूपमुक्तम्। बाह्याभ्यन्तरचतुर्विन्शतिपरिग्रहपरित्यागलक्षणत्वान्निर्ग्रन्थः। सकलमोहरागद्वेषात्मकचेतनकर्माभावान्नीरागः। निदानमायामिथ्याशल्यत्रयाभावान्निःशल्यः। शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवास्तिकायस्य द्रव्यभावनोकर्माभावात् सकलदोष-निर्मुक्तः। शुद्धनिश्चयनयेन निजपरमतत्त्वेऽपि वाञ्छाभावान्निःकामः। निश्चयनयेन प्रशस्ताप्रशस्तसमस्त-द्रव्यपरिणतेरभावान्निःक्रोधः। निश्चयनयेन सदा परमसमरसीभावात्मकत्वान्निर्मानः। निश्चयनयेन निःशेषतोऽन्तर्मुखत्वान्निर्मदः। उक्तप्रकारविशुद्धसहजसिद्धनित्यनिरावरणनिजकारणसमयसार-स्वरूपमुपादेयमिति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिःह्न

( मंदाक्रान्ता )

इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-
भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,
स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव।।

तथाहि ह्न

---

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है।
सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है।।४४।।

अन्वयार्थः—[ आत्मा ] आत्मा [ निर्ग्रन्थः ] निर्ग्रन्थ [ नीरागः ] निराग, [ निःशल्यः ] निःशल्य, [ सकलदोषनिर्मुक्त ] सर्वदोषविमुक्त, [ निःकामः ] निष्काम, [ निःक्रोधः ] निःक्रोध, [ निर्मानः ] निर्मान और [ निर्मदः ] निर्मद है।

टीका:—यहाँ ( इस गाथा में ) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।

शुद्ध जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस[१] परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ है; सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है; निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण नि:शल्य है; शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है; शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है; निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण नि:क्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण निर्मान है; निश्चयनय से नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है। उक्तप्रकार का ( ऊपर कहे हुए प्रकार का ), विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।

इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—

( वीरछन्द )

इसप्रकार जिस भव्यजीव ने पर-परिणति का नाश किया।
कर्त्ता कर्म आदि भेदों की भ्रमणा का भी नाश किया॥
शुद्ध आत्मा को पाकर चिन्मात्र तेज में लीन रहें।
स्वाभाविक माहात्म्य प्रकाशस्वरूप सर्वदा मुक्त रहे॥

*श्लोकार्थ:*—इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा ( अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा ) तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद ( निर्मल ) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज ( स्वाभाविक ) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।

---

१. क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन — ऐसा दसप्रकार का बाह्यपरिग्रह है; एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय — ऐसा चौदहप्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।

## गाथा - ४४ पर प्रवचन

**णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।**
**णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ।।४४।।**

भगवान अन्दर आत्मा कैसा है ? निर्ग्रन्थ है, निराग है, नि:शल्य है। जीव... आहाहा! अमान है – जिसे मान नहीं। सब दोषरहित अक्रोध, निर्मल। आहाहा! पहले अमान आया, तथापि मदरहित है। सब चीज़ के मदरहित है। यह जीव निष्काम है, यह त्रिकाली भगवान आत्मा अन्दर निष्काम है। इसे भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने जगत के समक्ष खुल्ला करके रखा है। आहाहा! कि यह आत्मा है, प्रभु! तुझे रुचे तो ठीक आहाहा! यह कहीं मेरे हाथ में भी नहीं है। तेरी चीज़ तुझमें है और अन्तर्मुख होना, बहिर्मुख से हटना... आहाहा! वह तो तेरा कार्य तुझमें है। हम तो मात्र कहते हैं। आहाहा!

**टीका:—यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।**

**शुद्ध जीवास्तिकाय...** जीवास्तिकाय क्यों कहा ? अकेला जीव क्यों नहीं कहा ? कि जैन परमेश्वर के अतिरिक्त जीव को असंख्य प्रदेशी किसी ने कहा नहीं। किसी ने देखा नहीं, किसी ने जाना नहीं। सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त आत्मा असंख्य प्रदेशी है, ऐसा किसी ने पूरी दुनिया में तीन काल में भगवान के अतिरिक्त किसी ने कहा नहीं। आहाहा! इस कारण कहते हैं कि **शुद्ध जीवास्तिकाय...** अकेला शुद्ध जीव नहीं लिया। अस्तिकाय। असंख्य प्रदेश साथ में हैं। आहाहा! वस्तु असंख्य प्रदेशी है। उसे अस्तिकाय (कहते हैं)। **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रह के...** बाह्य दस प्रकार के परिग्रह, नीचे लिखा है न ? और चौदह अभ्यन्तर, वे नीचे (फुटनोट में) लिखे हैं। **परित्यागस्वरूप होने से...** बाह्य और अन्तर परिग्रह से रहित होने से भगवान **निर्ग्रन्थ है;...** निर्ग्रन्थदशा प्राप्त हो, वह दूसरी (बात) है। वस्तु ही निर्ग्रन्थ है। वस्तु निर्ग्रन्थ है तो उसमें से निर्ग्रन्थदशा प्राप्त होती है। आहाहा! वस्त्र बिना, नग्नपने की जो नग्नदशा और अभ्यन्तर में विकल्परहित की नग्नदशा; वह निर्ग्रन्थरूप आत्मा है, उसमें से निर्ग्रन्थदशा होती है। यदि आत्मा निर्ग्रन्थ न हो तो निर्ग्रन्थदशा कहा से आवे। इसलिए **निर्ग्रन्थ...** अर्थ में पहले कहा। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-४८, गाथा-४४, शनिवार, श्रावण शुक्ल, १२ दिनांक २३-०८-१९८०

४४वीं (गाथा) चलती है न? पहले से फिर से।

**शुद्ध जीवास्तिकाय...** यह शब्द क्यों लिया? कि असंख्यप्रदेशी अस्तिकाय काय है। आत्मा असंख्यप्रदेशी ज्ञानकाय है। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने जानी नहीं और किसी ने कही नहीं। इसके लिये जीव को-ऐसा न कहकर 'जीवास्तिकाय' ऐसा शब्द लिया है। आहाहा! शुद्ध जीव राग और विकल्प से रहित प्रभु शुद्ध—जीव-अस्ति-काय—अन्दर असंख्य प्रदेशी समूह असंख्य प्रदेश में गड़बड़ है न? विद्यानन्दजी कहते हैं, वह असंख्यप्रदेशी नहीं, अखण्ड प्रदेशी है। वेदान्त की शैली में ले जाते हैं। असंख्य प्रदेश हैं।

सैंतालीस शक्ति में भी ऐसी शक्ति की नित्य क्रिया, जो नित्य प्रदेशी असंख्य प्रदेशी नित्य है। सैंतालीस शक्ति में ऐसा लिया है। नित्य प्रदेश असंख्य हैं, यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त, वीतराग के अतिरिक्त किसी ने देखा नहीं। उन असंख्य प्रदेशों में अनन्त आनन्द आदि गुण का क्षेत्र है। एक प्रदेशी क्षेत्र नहीं है, तथापि उन असंख्य प्रदेश को भी एक न्याय से पंचास्तिकाय में एक प्रदेशी कहा है क्योंकि खण्ड नहीं है, अखण्ड असंख्य प्रदेश है। आहाहा! प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। इससे शुद्ध-जीव-अस्ति-काय—शुद्ध जीव अस्ति समूह है। असंख्य प्रदेशी समूह प्रभु भगवान आत्मा, निर्मलानन्द प्रभु अनादि-अनन्त विराजता है। आहाहा!

**चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से...** उसमें—अभ्यन्तर में मिथ्यात्व नीचे आया था। ***एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय—ऐसा चौदह प्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।*** यह नहीं और ***क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन—ऐसा दसप्रकार का बाह्यपरिग्रह है;...*** (ऐसे) चौबीस प्रकार के परिग्रह भगवान आत्मा में नहीं हैं। वह तो अमृत का सागर भगवान, अतीन्द्रिय अमृत और

अतीन्द्रिय वीतराग की मूर्ति प्रभु है। उसमें परिग्रह का अभाव **होने से निर्ग्रन्थ है;...** निर्ग्रन्थदशा प्राप्त करना, वह दूसरी चीज़ है। यह तो आत्मा ही निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ है तो निर्ग्रन्थदशा प्रगट होती है। आहाहा! मुक्त है तो मुक्तदशा प्रगट होती है। इसी प्रकार यहाँ आचार्य प्रभु कहते हैं कि आत्मा वस्तु ही निर्ग्रन्थ है। उस वस्तु में किसी विकल्प का अवकाश नहीं है। राग के, दया के, महाव्रत के किसी विकल्प का अवकाश नहीं, ऐसा यह आत्मा निर्ग्रन्थ है। चौबीस परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ है। आहाहा! धन, धान्य, क्षेत्र आदि और मिथ्यात्व या चौदह परिग्रह उसमें नहीं है। पर्याय में अज्ञानी ने अनादि से मान रखा है। अन्तर में देखो तो, प्रभु! **शुद्ध जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से...** परित्याग। अकेला त्याग नहीं कहा। परि, उपसर्ग लिया है। सर्वथा प्रकार से त्याग। उसमें किसी परिग्रह की गन्ध नहीं है। राग या द्वेष का अंश नहीं है। उसके परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ कहा गया है। आहाहा!

**सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के...** देखो! भाषा चेतनकर्म ली है। राग और द्वेष, दया और दान, काम और क्रोध, यह चेतन का कार्य है। विकारी, परन्तु चेतन की पर्याय है। उस चेतनकर्म के अभाव के कारण, भगवान आत्मा में चेतन के विकारी कार्य का अभाव होने से **निराग है;...** आहाहा! एक-एक शब्द में पूरे आत्मा की स्थिति पूर्ण क्या है, यह बताते हैं और पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अनुभूति और अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है। वहाँ से तो धर्म का पहला प्रारम्भ होता है। इस कारण यहाँ कहा कि वह तो निर्ग्रन्थ है। उसमें कोई ग्रन्थ नहीं है और वह वैरागी है। निराग है। निराग कहो या वैराग्य कहो, उसमें चैतन्य का विकारी परिणाम, प्रभु चैतन्य के द्रव्य में नहीं है। आहाहा! यह अनुभूति करना। सम्पूर्ण बारह अंग का सार तो यह है। बारह अंग में यह भी कहा है। बारह अंग विकल्प है। कलश-टीका में लिया है। परन्तु उसमें अनुभूति कही है। प्रभु! तेरी चीज़ है, वह निराग है और निर्ग्रन्थ है। उसका अनुभव करना, वही धर्म की पहली सीढ़ी और शुरुआत कही जाती है।

**मुमुक्षु :** मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह।

**निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शल्यों के अभाव के कारण...** प्रभु में मिथ्यात्व शल्य नहीं, माया शल्य नहीं। आहाहा! और **निदान, माया और मिथ्यात्व—इन**

**तीन शल्यों...** रहित प्रभु अन्दर है। जिसमें शल्य का स्पर्श नहीं, ऐसा भगवान परमात्मा अन्दर विराजता है, उसकी अनुभवदृष्टि करो। आहाहा! व्यवहार होता है परन्तु व्यवहार से अनुभूति नहीं होती। आहाहा! व्यवहार तो वाणी आदि सब व्यवहार है। अरे! गुणभेद से समझाना, वह भी व्यवहार है, परन्तु व्यवहार होने पर भी उससे यह चीज़ अनुभव में नहीं आती। वह चीज़ तो महाप्रभु, चैतन्य महाप्रभु, **चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है; ( निदान, माया और मिथ्यात्व— ) इन तीन शल्यों के अभाव के कारण निःशल्य है;...** मुनि को निःशल्य व्रती कहा है। तत्त्वार्थसूत्र में व्रति-मुनि उसे कहते हैं, 'निःशल्योव्रती' तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा सूत्र है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वस्तु में शल्य ही है नहीं। आहाहा! वस्तु में शल्य है नहीं तो वस्तु का अनुभव और सन्मुख हुआ, तो पर्याय में भी शल्य नहीं है। आहाहा! उसे निःशल्य व्रती सन्त कहते हैं। जैनदर्शन के सन्त (कहते हैं)। जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है, कोई पक्ष-वाड़ा नहीं है। वह अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु आदि जो छह द्रव्य हैं, ऐसा भगवान ने देखा है और कहा है और ऐसा सार बताया है। आहाहा! तो वस्तु की स्थिति बताते हैं। प्रभु! तेरा आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। देखो... आहाहा!

**शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीवास्तिकाय को...** देखो! लिया। शुद्ध निश्चय अभेद दृष्टि करने से भेदपने का लक्ष्य छोड़ना, अभेददृष्टि करना, वह शुद्धनय है। आहाहा! उस **शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म,...** नहीं है। आहाहा! आठ कर्म नहीं है। वैसे बोलने में तो ऐसा आवे न, प्रभु! ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी। ज्ञान को ज्ञानावरणी ने आवरण किया, दर्शन को दर्शनावरणी ने आवरण किया। ये सब निमित्त के कथन हैं। वस्तु के स्वरूप में ये नहीं हैं। आहाहा! भगवान अन्दर आठ कर्म से रहित है और भावकर्म से रहित है। पुण्य और पाप के शुभ-अशुभभाव, जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे - ऐसे भाव से भी प्रभु तो रहित है। वह मलिन अंश निर्मलानन्द नाथ में नहीं है। प्रभु! तू निर्मल नाथ है। आहाहा!

आचार्यों ने जगत को भगवानरूप से बुलाया है। आहाहा! भगवान! आहाहा! ७२ गाथा में अमृतचन्द्राचार्य ने तीन बार भगवान कहा है। भगवान! तुझमें पुण्य-पाप नहीं न, प्रभु! तू तो भगवान है न! आहाहा! रहित है तो रहित हो जा। आहाहा! द्रव्य, शुभाशुभभाव से भगवान तू रहित है तो रहित हो जा। तेरी मान्यता ने शल्य डाला है, मान्यता ने घर डाला है। मैं राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, मैं पुण्य की क्रिया का कर्ता हूँ, वह सब मिथ्यात्वभाव का शल्य है। पर्याय में अनादि का अभ्यास होने से, भगवान भावकर्म से रहित दिखता नहीं। अन्दर

में भावकर्म से रहित और नोकर्म—शरीर, वाणी, मन का **अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है;...** सर्वदोषविमुक्त प्रभु अन्दर है। आहाहा!

**शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** आहाहा! भगवान प्रभु आत्मा ऐसा है कि निज तत्त्व मुझे मिले, ऐसी वांछा से रहित वह चीज़ है। आहाहा! है? **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** निज परमतत्त्व की वांछा का प्रभु में अभाव है। आहाहा! गजब काम है न! ऐसा प्रभु एक पैसे में, एक इज्जत में या भोग में, भव के कारण के सेवन में रुक जाता है। आहाहा! भव और भोग से रहित, भव और भोग से रहित प्रभु भव के कारण में रुक जाता है। प्रभु! तेरा परिभ्रमण मिटता नहीं। तुझमें परिभ्रमण का कारण नहीं है न, नाथ! आहाहा! कहा न?

**परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** तुझमें.. आहाहा! इच्छा का तो अभाव है। मोक्ष की इच्छा तो नहीं, मोक्ष तो पर्याय है। यहाँ तो परमतत्त्व कहा है। निज परमतत्त्व, अपना जो निज परमस्वरूप भगवान, उसे निज तत्त्व की वांछा भी नहीं है। वांछा तो राग है। आहाहा! एकान्त लगे, प्रभु! निश्चय.. निश्चय.. निश्चय लगे। एकान्त लगे। व्यवहार होता है परन्तु वह कोई लाभदायक नहीं है। व्यवहार सब हेय है। ५०वीं गाथा में कहेंगे। ५० में। अपने अतिरिक्त सब परद्रव्य हैं, परभाव है, हेय है। समझ में आया? ५० वीं गाथा देखो! आहाहा!

'**पूर्वोक्तसकलभावा:**' ५० वीं गाथा। '**पूर्वोक्तसकलभावा**' पूर्व में कहे वे उदयादि सकल भाव परद्रव्य हैं। आहाहा! वे परस्वभाव हैं। '**परसहावमिदि हेयं**' आहाहा! अपने आत्मा के अतिरिक्त कोई भी पर्याय.. यहाँ तो उसे परद्रव्य कहा है। और '**परस्वभावा:**' कहकर हेय कहा। '**सगदव्वमुवादेयं**' एक स्वद्रव्य ही उपादेय है। आहाहा! संवर, निर्जरा और मोक्ष वह पर्याय है, परन्तु उसकी बात नहीं की। '**सगदव्वमुवादेयं**' स्वद्रव्य ही आदरणीय है। त्रिकाली चैतन्य रस का कन्द प्रभु, '**सगदव्वमुवादेयं अन्तरतच्चं हवे अप्पा**॥' वह अन्तरतत्त्व जो शुद्ध अखण्डानन्द, पूर्ण तत्त्व की ही जिसमें वांछा नहीं, ऐसा पूर्ण तत्त्व जो अन्तरतत्त्व है, वही आत्मा और वही उपादेय है। आहाहा! व्यवहार के रसिकों को कठिन लगे परन्तु वहाँ तो व्यवहार की गन्ध भी नहीं है, क्योंकि उसमें से छूट जाता है। उसकी चीज़ हो तो छूटे कहाँ से? उसका जो ज्ञान-दर्शन आनन्दस्वभाव है, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. गुण की संख्या अनन्त और एक-एक गुण का सामर्थ्य अनन्त, एक-

एक गुण में अनन्त प्रभुता। उसमें प्रभुत्व नाम का एक गुण है और उस गुण का सर्व गुण में उसका रूप है, तो अनन्त गुणरूप प्रभु है, ऐसा भगवान, आत्मा वही एक उपादेय है। बाकी सब परद्रव्य, विकल्प से लेकर सब परद्रव्य। '**परदव्वं परसहावं...**' वे परस्वभाव हैं और '**इदि हेयं**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने अपनी भावना के लिये बनाया, उसमें ऐसी बात आ गयी। दुनिया का भाग्य है कि ऐसी पुस्तक (ग्रन्थ) रह गयी। आहाहा!

यहाँ तो रागादि विकल्प तो ठीक, परन्तु पर्याय को परद्रव्य कहा, प्रभु! इस ५०वीं गाथा में तो '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**' पर्याय भी '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं सगदव्वमुवादेयं**' आहाहा! अन्दर है? अर्थ में है। **पूर्वोक्त सर्व भाव परस्वभाव, परद्रव्य हैं, इसलिए हेय हैं; अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य आत्मा उपादेय है।** आहाहा! ५०वीं गाथा में सार में सार ले लिया है। ४९ और ५० गाथा बहुत चली थी। ४९वीं गाथा में व्यवहार लिया, ५०वीं गाथा में कहा कि वह सब व्यवहार परद्रव्य है। दया, दान का एक विकल्प उठता है, वह परद्रव्य है। वह तो (परद्रव्य) है, परन्तु पर्याय परद्रव्य है। त्रिकाली भगवान स्वद्रव्य के आश्रय से (उत्पन्न हुई) पर्याय को भी यहाँ परद्रव्य कहकर, परस्वभाव कहकर हेय कहा है। तीन बोल लिये हैं। है? आहाहा! ऐसी बात है। परन्तु साधारण लोगों को साधारण में से लेना है, वह कहाँ से मिले? आहाहा!

यहाँ हुकमीचन्दजी सेठ आये थे। उनके गले में एक नीलमणि का हार था। पूछा था कि कितने लाख का है? मिले तो तीन, चार, पाँच लाख मिले। तब तो राजकोटवाले नानालालभाई जवेरी थे। उनसे पूछा, कहा यह गले में हार है, उसकी वर्तमान कीमत कितनी? कि इसकी कीमत का पार नहीं होता। दस लाख कहे तो भी इसकी कीमत का पार नहीं होता। यहाँ तो दूसरा कहना है, वह हार हरा दिखायी दे, ऐसी हरी निंबोली दिखायी दे। आहाहा! छोटी-छोटी हरी निंबोली, वह नीलमणि जैसी दिखायी दे। आहाहा! परन्तु वह चीज़ और यह चीज़ दूसरी है। इसी प्रकार विकल्प और पर्याय तथा भगवान आत्मा भिन्न अलौकिक है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो यह कहा, **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है;...** आहाहा! गजब बात है! **निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से...** क्योंकि वांछा तो इच्छा है, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! मोक्ष की इच्छा तो नहीं, संवर, निर्जरा, पर्याय की तो इच्छा नहीं। निज परमतत्त्व भगवान आत्मा की वांछा का उसमें अभाव है, नाथ! तुझमें वह वांछा नहीं, प्रभु! आहाहा!

तू तो नाथ है न! नाथ का अर्थ – जो चीज़ है, उसका रक्षण करे और न हो – तेरी पर्याय में तो नयी-नयी पर्याय प्राप्त कर दे। यदि उसकी दृष्टि करे तो। आहाहा! नयी-नयी आनन्द की पर्याय। नाथ किसे कहते हैं? योगक्षेम को नाथ कहते हैं। योगक्षेम का अर्थ— प्राप्त चीज़ की रक्षा करे और अप्राप्त को प्राप्त करा दे, उसे नाथ कहा जाता है। यह नाथ की व्याख्या है। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है। अनन्त काल में नहीं प्राप्त (पर्याय) प्राप्त करा दे। उसकी दृष्टि करने से वह वस्तु मिल जाती है। आहाहा! तेरी पर्याय में वह वस्तु मिल जाती है। वांछा नहीं करनी पड़ती। आहाहा! ऐसी वह वस्तु है। उस मूल वस्तु की भावना बिना.. भावना तो आ गयी न? उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव, उसके (स्वभाव के) सन्मुख उस भावना बिना वह मिलती नहीं। वह चीज़ भावना में नहीं आयी। भावना में वह चीज़ आयी नहीं। भावना उस चीज़ में जाती नहीं, परन्तु भावना से दृष्टि में आता है। आहाहा! ऐसी बात, प्रभु! यहाँ तो बहुत बार कहा। यहाँ तो साढ़े पैंतालीस वर्ष जंगल में हुए। साढ़े पैंतालीस वर्ष। *चैत्र कृष्ण* तृतीय को आये हैं। यह चैत्र कृष्ण तीज, छियालीस वर्ष जंगल में होंगे।* आहाहा! पैंतालीस वर्ष की उम्र में आये थे। ९१ (वाँ) वर्ष चलता है, इस देह को, जड़ को। प्रभु को? अनादि-अनन्त है। आहाहा!

जो वास्तविक चीज़ है, उसकी तो वांछा भी नहीं। आहाहा! **परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है;...** आहाहा! गजब काम है। प्रभु! तेरी महिमा का पार नहीं। प्रभु! तेरी महिमा, तेरा माहात्म्य, तेरी महिमा का पार नहीं है, माहात्म्य का पार नहीं है। उसे शब्दों में कैसे कहें? शब्द जड़ हैं, भगवान चेतन है। दोनों की जाति भिन्न है। दो की जाति में जड़ से आत्मा को कहना है। आहाहा! यह भाषा, जिसे खबर नहीं कि यह चेतन है, तथापि भाषा में स्व-पर कहने की इतनी ताकत है। प्रभु में स्व-पर प्रकाश की ताकत है, वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। अब उसे (वाणी को) खबर नहीं कि यह आत्मा है या नहीं। परन्तु उस वाणी में स्व-पर कहने की ताकत है। यह क्या कहा?

भगवान आत्मा स्व-पर प्रकाशक की जहाँ वांछा नहीं। आहाहा! जहाँ वाणी में स्व-पर कहने की शक्ति है। स्व को और पर को—आत्मा यह है, ऐसा कहने की शक्ति

---

* प्रवचन में पूज्य गुरुदेवश्री ने गुजराती तिथि के अनुसार फाल्गुन कृष्ण बोला है, जिसे हिन्दी तिथि में परिवर्तित करके चैत्र कृष्ण लिखा गया है। सम्पादक / अनुवादक

स्वतन्त्र जड़ में है। आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! तथापि उस चीज़ से तो प्रभु भिन्न है। वांछा से भिन्न है तो फिर (दूसरे की बात क्या करना)। आहाहा!

**निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त...** शुभ और अशुभराग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम, क्रोध, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, क्रोध, मान (माया), लोभ-ऐसे जो **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** ये तो परद्रव्य के परिणाम हैं। आहाहा! स्वद्रव्य के परिणाम नहीं। स्वद्रव्य के परिणाम तो वीतरागी आनन्द। वीतरागी आनन्द, वह स्वद्रव्य का परिणाम है। आहाहा!

स्वद्रव्य को ध्यान में लेकर एकाकार होने पर पर्याय में वीतरागी आनन्द की पर्याय आती है। आहा! उसमें यह शुभ-अशुभराग नहीं है और शुभराग से यह प्राप्त नहीं होता। लोगों को यह बहुत कठिन पड़ता है। शुभराग के अतिरिक्त दूसरा क्या करे? शुभ करे... बापू! शुभ भी... आहाहा! योगीन्द्रदेव उनके श्लोक में ऐसा कहते हैं कि 'पाप पाप को तो सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव तो पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त। उनका श्लोक है न? अपने आ गया है। पुस्तक आ गयी है। 'पाप पाप को तो सब कहे।' यह तो पूरी दुनिया कहती है। 'परन्तु अनुभवी जीव...' आत्मा के अनुभवी जीव 'पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! गजब लगे। प्रभु! वह तुझमें नहीं न? तुझमें नहीं, इसलिए पाप है।

यहाँ प्रशस्त-अप्रशस्तराग / शुभ-अशुभराग। असंख्य प्रकार का शुभराग, असंख्य प्रकार का अशुभराग। सुनने का, कहने का, पढ़ने का, प्रभु.. प्रभु.. प्रभु..! आहाहा! वे सब विकल्प तुझमें नहीं हैं, नाथ! उस **परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है;...** आहाहा! निःक्रोध, अरुचिकर कुछ है नहीं। आहाहा! इस चीज़ के दूसरे विभाव परिणाम, असंख्य प्रकार के विभाव हैं। अरे! विभाव नाम की शक्ति आत्मा में है। तो विभावशक्ति के कारण विभावरूप से परिणमना, ऐसा नहीं है। विभावशक्ति तो सिद्ध में भी है। विभावशक्ति का हेतु दूसरे चार द्रव्य में वह शक्ति नहीं है, इस कारण से आत्मा में वह शक्ति है, उसे विभाव कहा, परन्तु है तो शुद्धस्वभाव। आहाहा! और उस शक्ति का स्वभाव निर्मल परिणमन होना, वह स्वभाव है। निमित्ताधीन हो जाये तो विकार होता है। निमित्ताधीन न हो और अपने स्वभाव के आधीन हो जाये तो निर्मल धारा बहती है। आहाहा! इस कारण से उस आत्मा में शुभ और अशुभभाव **परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण...** वह तो परद्रव्य परिणाम का अभाव है। परद्रव्य परिणाम। आहाहा! (इस) कारण से **निःक्रोध है;...**

**निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण...** निश्चय से तो, यथार्थ से तो वस्तुस्थिति से, निश्चयनय अर्थात् वस्तुस्थिति से, वस्तु की मर्यादा से देखो तो प्रभु को **सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण...** त्रिकाल परम वीतराग स्वभाव -स्वरूप होने के कारण **निर्मान है;...** आहाहा! यहाँ तो साधारण कुछ समझाने का, क्षयोपशम का मान मिले वहाँ (अभिमान हो जाता है)। अरे प्रभु! वह तो पर है न, नाथ! समझाने का विकल्प भी दु:खरूप है।

समाधिशतक में तो ऐसा कहा, समझाने का विकल्प पागलपन है। आहाहा! समाधिशतक में ऐसा पाठ है। प्रभु अन्दर महा भगवान विराजता है। उसमें से निकलना, विकल्प में आना, उसे पागल कहा है। समाधिशतक में (कहा है)। आहाहा! पूज्यपादस्वामी ने पागल (कहा है)। आहाहा! मैं यह कहता हूँ, मैं यह समझाता हूँ, ऐसा अभिमान, प्रभु! छोड़ दे। ऐसा आत्मा में नहीं है। आहाहा!

**परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण नि:क्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप...** वापस। **सदा परमसमरसी...** त्रिकाल वीतरागभावरूप होने से। भगवान आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप, समरसीभाव त्रिकाल है, उसमें खण्ड या अल्पज्ञता या विपरीतता या अशुद्धता कभी नहीं होती। आहाहा! ऐसा परमतत्त्व वह **परमसमरसीभाव -स्वरूप होने के कारण निर्मान है;...** ऐसा होने से निर्मान है। आहाहा! गजब काम किया है न?

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। उसमें फिर टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मिल गये। आहाहा! वे तो ऐसा कहते हैं कि यह विकल्प उठे, वह परद्रव्य परिणाम है। अरे! पर्याय परद्रव्य! जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी शुद्ध निर्मल पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय में से निर्मल शुद्धपर्याय नयी नहीं आती; इसलिए उस पर्याय को हम परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! जैसे भगवान को छोड़कर दूसरे द्रव्य में से आत्मा की, शान्ति की, समकित की, ज्ञान की, चारित्र की पर्याय नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? जैसे परद्रव्य में से नहीं होती, वैसे अपनी पर्याय निर्मल है, निर्मल; उस पर्याय में से पर्याय नहीं होती, प्रभु! आहाहा! इस कारण से पर्याय को भी परद्रव्य कह दिया है। ५०वीं गाथा। आहाहा! बात सुनना कठिन पड़े। बाहर में क्रियाकाण्ड में फँस गया। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं, वह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वह **निर्मान है;...**

आहाहा! **निश्चयनय से नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** समस्त प्रकार से प्रभु तो अन्तर्मुख है। पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! **नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** वह तो अन्तर्मुख चीज़ है, द्रव्य है, ध्रुव है। आहाहा! बात सूक्ष्म पड़े, प्रभु! परन्तु यह मनुष्यपना मिला, वह चला जायेगा, नाश हो जायेगा। आहाहा! राजकुमार के पास बीस करोड़ रुपये। इन्दौर, और बेचारे गिर गये थे। आज समाचार मिले। अब अभी कुछ ठीक है परन्तु बीस करोड़ क्या करे? शरीर की पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उस समय में होगी, होगी और होगी ही। तेरा (तू) ध्यान रखे और ख्याल रखे तो पर्याय बदलेगी, ऐसा है नहीं। क्रमबद्ध (है)। छह द्रव्यों में क्रमबद्धपर्याय उस समय में होनेवाली है, वह होती है। परन्तु ऐसी दृष्टि जिसकी है, उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। जिसमें-ज्ञायकतत्त्व में परमतत्त्व की वांछा भी नहीं, ऐसे तत्त्व पर दृष्टि है। आहाहा!

इस कारण से कहते हैं, **नि:शेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण...** बहिर्मुख की पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! वह तो अन्तर्मुख तत्त्व है। **उक्तप्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का), विशुद्ध...** वि-शुद्ध। विशुद्ध शब्द दो प्रकार से प्रयुक्त होता है। शुभभाव में भी विशुद्ध प्रयोग होता है और शुद्ध में भी विशुद्ध (शब्द) प्रयोग होता है। यहाँ तो शुद्ध में विशुद्ध कहना है। विशुद्धभाव शास्त्र में आता है। शुभभाव को भी विशुद्ध कहते हैं। वह तो नहीं। वह तो आत्मा में है ही नहीं। यह तो **विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण...** आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा नित्य निरावरण, त्रिकाल निरावरण... आहाहा! है?

**विशुद्ध सहजसिद्ध...** स्वाभाविक सिद्धवस्तु। उत्पत्ति है नहीं, नाश है नहीं। किसी आधार से उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। स्वत:सिद्ध। ऐसी स्वत:सिद्ध। वह सहजसिद्ध, स्वत:सिद्ध, वह स्वाभाविक सिद्ध। ऐसा **विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण...** नित्य-निरावरण है। आहाहा! गोम्मटसार में करणानुयोग में ऐसा आता है कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्म के उदय में ऐसा होता है, उदय में ऐसा होता है। वह सब व्यवहार / निमित्त से कथन है, प्रभु! वस्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, तो दूसरे द्रव्य से दूसरे द्रव्य में कुछ हो, ऐसा है नहीं।

यहाँ कहते हैं, प्रभु तो **नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।** देखो! आहाहा! बहुत ही शब्द लिये हैं। **विशुद्ध...** विशेष शुद्ध। **सहजसिद्ध...** विशेष शुद्ध, स्वयंसिद्ध, स्वभाव से सिद्ध, स्वभाव से ही है। **नित्य-निरावरण...** है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य / त्रिकाल निरावरण है। आहाहा! **निज कारणसमयसार...** ऐसा जो

नित्य निरावरण, स्वाभाविक सिद्ध वस्तु निज कारणसमयसार। पर्याय तो उत्पन्न होती है, वह कहीं नित्य निरावरण नहीं है। नित्य निरावरण तो भगवान आत्मा ध्रुव है, वही उपादेय है। वह निज कारणसमयसार, अपना निज कारणसमयसार, उसका **स्वरूप उपादेय है।** वह आदरणीय है, वह स्वीकार करनेयोग्य है, वह सत्कार करनेयोग्य है, उसके सन्मुख होने योग्य है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म पड़े। ऐ.. ताराचन्दजी! ताराचन्दजी आये हैं न! आहाहा!

**निज कारणसमयसार....** कैसा ? कि ऐसा। जिसका **स्वरूप उपादेय है।** दृष्टि में आदरणीय वह एक ही चीज़ है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, वह पर्याय उसमें नहीं, तथापि उस पर्याय में आदरणीय वह (कारणसमयसार) है, तथापि वह पर्याय और वह चीज़ दोनों एक नहीं होती। पर्याय, पर्यायरूप रहती है; ध्रुव, ध्रुवरूप रहता है। ध्रुव में से पलटता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! केवलज्ञान ध्रुव में से होवे तो पलटे नहीं - ध्रुव पलटे नहीं, कहते हैं। आहाहा! ध्रुव नहीं पलटता। पलटने की पर्याय स्वतन्त्र प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा आत्मद्रव्य, अरे! भाग्यवान को कान में पड़े, ऐसी बात है। आहाहा! दूसरों को एकान्त लगता है। यह तो हमें खबर है, प्रभु! यह सम्यक् एकान्त है और वह निश्चयनय में.. समयक् एकान्त है, वह निश्चयनय है। सम्यक् एकान्त, वह निश्चयनय है; प्रमाण नहीं। सम्यक् एकान्त शुद्ध त्रिकाली भगवान विशुद्ध सहजस्वरूप, वही उपादेय है, यह एकान्त सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! ऐसा ज्ञान होने के बाद पर्याय का ज्ञान होता है, तब प्रमाण कहने में आता है। तब प्रमाण कहते हैं। आहाहा!

प्रमाण के दो विषय हैं—त्रिकाली द्रव्य और एक समय की पर्याय। शुद्धनय का विषय एक है त्रिकाली द्रव्य। पर्यायनय का विषय एक है वर्तमान पर्याय। समझ में आया ? निश्चयनय का विषय सम्यक्त्व का (विषय) ध्रुव एकरूप है। प्रमाण नहीं आया। एक समय की पर्याय का विषय व्यवहारनय का-पर्यायार्थिक का है। दोनों मिलकर प्रमाणनय का (प्रमाणज्ञान का) विषय है परन्तु प्रमाण का विषय आदरणीय नहीं है। आहाहा!

नयचक्र में लिया है कि प्रमाण पूज्य क्यों नहीं है ? क्योंकि उसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए पूज्य नहीं है। आहाहा! नयचक्र में है। आहाहा! भगवान! यह बात तो अन्तर की है, प्रभु! आहाहा! उसे निश्चयाभास कहकर निकाल डालना... वह तो निश्चयाभास है, अमुक है। प्रभु! ऐसा नहीं करना। व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है। व्यवहारनय नहीं है, ऐसा नहीं है। परन्तु व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं है। निश्चय और व्यवहार दो नय हैं। भगवान के उपदेश में दो नय आये

हैं। पहले भी नियमसार में, पंचास्तिकाय में कहा था। दो नय हैं, परन्तु एक नय का विषय आदरणीय है और एक नय का विषय जाननेयोग्य है। आहाहा! पर्याय का विषय पर्यायनय व्यवहारनय का विषय है। ध्रुव का विषय निश्चय का विषय है। दो में दो अंश आये। दो में एक-एक अंश आये। भले ध्रुव है परन्तु पर्यायरहित है, इसलिए अंश कहा और प्रमाण के विषय में ध्रुव और पर्याय दोनों आये, तथापि प्रमाण में पर्याय का निषेध न होने से (प्रमाण) पूज्य नहीं है। आहाहा! त्रिकाली चीज़ भगवान उपादेय है, वह पूज्य है। आहाहा! ओहोहो!

**इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—** ऊपर है।

**इत्युच्छेदात्पर-परिणते: कर्तृ-कर्मादि-भेद-**
**भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्व:।**
**सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,**
**स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव।।**

आहाहा!

**मुमुक्षु : 'मुक्त एव'**

**पूज्य गुरुदेवश्री : 'मुक्त एव'**

आहाहा! यहाँ तो प्रभु! जन्म-मरणरहित होने की बात है। अरे रे! भले दुनिया न गिने, न माने, परन्तु जिसमें जन्म-मरण है, उस चीज़ में तो नरक और निगोद भी आयेगा। आहाहा! जैसे तिर्यंच में माता-पिता में जन्म-मरण होता है, वैसे एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय में नहीं होता। उत्पत्ति हो वह जन्म और देह छूट जाये, वह मरण। आहाहा! जैसे कि तिर्यंच, मनुष्य में माता-पिता हैं। उनके गर्भ में जाता है और सवा नौ महीने रहता है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर जैसे भी, राजा श्रेणिक निकलेंगे, वे माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहेंगे। तीर्थंकरगोत्र बाँधा है परन्तु एक भव रहा... आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय को तो माता-पिता हैं नहीं परन्तु जन्म-मरण नहीं है, ऐसा नहीं है। वे जहाँ उत्पन्न होते हैं, वह जन्म और देह छूटती है, वह मरण। आहाहा! भगवान आत्मा जन्म-मरण में बाहर में दिखता है। माता के गर्भ में आता है, वह जन्मता है, यह दिखता है परन्तु वह चीज़ आत्मा की नहीं है। आहाहा! यह आ गया। जन्म, मृत्यु, जरा आत्मा में नहीं है। आहाहा! ऐसी दृष्टि

हुए बिना चैतन्य का स्वीकार और सत्कार नहीं होता। उसका स्वीकार हुए बिना दूसरी किसी भी चीज़ की महिमा आती है तो वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

अमृतचन्द्राचार्य ने यह कहा, **इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा...** परपरिणति अर्थात् शुभ-अशुभराग। उसका उच्छेद किया। ओहोहो! **परपरिणति के उच्छेद द्वारा ( अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा ) तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा...** आहाहा! मैं पर्याय का कर्ता हूँ और पर्याय मेरा कार्य है, पर्याय मैंने रखी है और पर्याय का साधन पर्याय है; पर्याय पर्याय में से उत्पन्न हुई और पर्याय का आधार पर्याय है, ऐसा है। पर्याय में ऐसे षट्कारक हैं, परन्तु मुझमें नहीं। आहाहा! यह **कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति...** आहाहा! **उसके भी नाश द्वारा...** आहाहा! पर्याय में षट्कारक परिणमन अनन्त द्रव्य में, प्रत्येक द्रव्य में, एक समय में होता है। प्रत्येक समय षट्कारक से परिणमन होता है। अनन्त द्रव्य में, प्रत्येक द्रव्य में, किसी काल बिना, प्रत्येक द्रव्य में एक समय में षट्कारक का परिणमन होता है परन्तु वह द्रव्य में नहीं है। आहाहा!

**कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति...** आहाहा! भगवान आत्मा राग का कर्ता, राग का भोक्ता और राग का नाश कर्ता - यह भ्रान्ति है, प्रभु! आहाहा! **भ्रान्ति, उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है...** आहाहा! सब वांचन किया, सब किया, श्रद्धा की परन्तु अन्तर में-अन्तरतत्त्व में दृष्टि की, तब उपलब्ध हुआ। इसके बिना आत्मा उपलब्ध नहीं होता। आहाहा! कहा न? **जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद ( निर्मल ) तेज में लीन रहता हुआ,...** आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि में आत्मा प्राप्त हुआ, उसका अर्थ कि आत्मा में अपने ज्ञान के तेज में लीन होता हुआ। आहाहा! राग का भी कर्ता नहीं। छद्मस्थ है, राग आता है... आहाहा! परन्तु कर्ता-कर्म की भ्रान्ति से रहित... आहाहा! **आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद ( निर्मल )...** चैतन्य ज्ञायक प्रकाश। चैतन्य का पूर। पानी का पूर जैसे तिरछा चलता है, वैसे यह चैतन्य पूर ध्रुव है, वह ऐसे चलता है। है.. है.. है.. आहाहा! **विशद ( निर्मल ) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज ( स्वाभाविक ) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा।** आहाहा! ऐसी उसकी ताकत है कि उसका जिसने स्वीकार किया, वह सदा उस दशा में रहेगा। उसे कभी भवादि नहीं होंगे। ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## श्लोक-६९

और ( ४४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं )—

( मंदाक्रांता )

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः ।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम् ।।६९।।

---

( वीरछन्द )

जिसने ज्ञान ज्योति द्वारा अघ अंधकार का नाश किया।
आनन्दादि अतुल महिमाधारी, जो रहे अमूर्त सदा॥
जो अपने में अविचलपन से रहे शील का मूल सदा।
भवभयहारी मुनिश्रीपति ईश्वर को वन्दन करता॥६९॥

*श्लोकार्थः*—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का नाश किया है, जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है, जो सर्वदा अमूर्त है, जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है, उस भव-भय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ॥६९॥

---

प्रवचन-४९, श्लोक-६९, गाथा-४५-४६, रविवार, श्रावण शुक्ल १३, दिनांक २४-०८-१९८०

---

नियमसार, ४४ गाथा का ६९ वाँ कलश है।

ज्ञानज्योतिः प्रहतदुरितध्वान्तसङ्घातकात्मा,
नित्यानन्दाद्यतुलमहिमा सर्वदा मूर्तिमुक्तः ।
स्वस्मिन्नुच्चैरविचलतया जातशीलस्य मूलं,
यस्तं वन्दे भवभयहरं मोक्षलक्ष्मीशमीशम् ।।६९।।

***श्लोकार्थः*** **—जिसने ज्ञानज्योति द्वारा...** यहाँ तो बात तो ऐसी कहते हैं कि नाश करता है, परन्तु अन्दर में है ही नहीं। **जिसने ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकारसमूह का नाश किया है,...** अर्थात् अन्तर में पापरूपी अन्धकार है ही नहीं। सिद्धपद की पर्याय हुई तो अन्धकार का नाश किया, ऐसा कहा जाता है परन्तु आत्मा सर्वदा त्रिकाली, वह तो **ज्ञानज्योति द्वारा पापरूपी अन्धकार...** समूह, उसमें है ही नहीं। जो नहीं है, उसका नाश किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

**जो नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** है ? आहाहा! भगवान आत्मा नित्य आनन्द, ध्रुव आनन्द, अविचल आनन्द आदि ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता आदि इत्यादि **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** जिसकी कोई तुलना नहीं, जिसे कोई उपमा नहीं, ऐसा भगवान आत्मा **अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** आहाहा! अनन्त-अनन्त काल गया, कभी स्व चीज की महिमा आयी ही नहीं। बाहर की महिमा (की)। क्रियाकाण्ड में राग मन्द करके कुछ महाव्रत या व्रत या आचरण कुछ करे, रस त्याग करे, आहार त्याग करे, वस्त्र त्याग करे, उसमें कुछ नहीं है। जो चीज़ है, उस चीज़ पर दृष्टि, उस चीज़ का उपादेयपना दृष्टि में आये बिना जन्म का अन्त नहीं आता। आहाहा!

यह कहते हैं, **नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा का धारण करनेवाला है,...** नित्य आनन्द। आनन्द प्रगट होगा, वह तो पर्याय है; यह तो द्रव्य है। **नित्य आनन्द आदि...** ज्ञान, शान्ति, स्वच्छता अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण नित्य आनन्द आदि अनन्त गुण। जो त्रिकाल समय तीन काल के, एक सेकेण्ड में असंख्य समय होते हैं। एक सेकेण्ड में असंख्य समय, ऐसा त्रिकाल। त्रिकाल समय से जिसमें अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! **आनन्द आदि...** आदि अर्थात् अनन्त-अनन्त। जिसके गुण की संख्या की मर्यादा नहीं। अनन्त-अनन्त (गुण हैं) और एक-एक गुण की शक्ति की मर्यादा नहीं, ऐसे अनन्त आनन्द आदि गुण की महिमा को धारण करनेवाला है। आहाहा! इस महिमा के समक्ष दुनिया की किसी चीज़ पर महिमा नहीं आती। इन्द्र के इन्द्रासन हों, चक्रवर्ती का राज हो, वे कचरे के ढेर हैं। यह (स्वभाव) आनन्द का ढेर (पिण्ड) है।

अनन्त-अनन्त गुण की महिमा को धारण करनेवाला, ऐसी चीज़ आत्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है। ऐसे **नित्य आनन्द आदि अतुल महिमा...** जिसकी तुलना नहीं। आहाहा! जिसकी उपमा नहीं, जिसके गुण के साथ दूसरे गुण की उपमा दी जाये,

ऐसी कोई तुलना नहीं। उसके गुण उसके गुणरूप अथवा सिद्धस्वरूप। सिद्ध तो पर्याय है परन्तु ऐसा त्रिकाली गुणस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा **जो सर्वदा अमूर्त है,...** सर्वदा अमूर्त है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श त्रिकाल में उसे स्पर्श ही नहीं हुए हैं। ऐसी अमूर्त चीज़ भगवान आत्मा है। आहाहा!

**जो अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा...** जो भगवान आत्मा अपने से अपने में अत्यन्त अविचलपने द्वारा। आहाहा! कहीं चलना नहीं, हिलना नहीं.. आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का ढेर, अनन्त गुण का गोदाम, आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा **अत्यन्त अविचलपने द्वारा उत्तमशील का मूल है,...** उत्तमशीलस्वरूप ही है। उत्तम स्वभाव, उसका स्वभाव अत्यन्त उत्तम, त्रिकाल स्वभाव उत्तम है। आहाहा! **उत्तमशील का मूल है,...** आहाहा! **उस भव-भय को हरनेवाले...** वह वस्तु ऐसी है कि भव-भय का नाश करनेवाली अर्थात् जिसमें भव है नहीं। आहाहा! उसे यहाँ भव-भय का नाश करनेवाली वस्तु कहा गया है। भव-भय का नाश करनेवाली तो पर्याय है परन्तु यह तो त्रिकाली भव के अभावस्वभावस्वरूप है, तो भव-भय का नाश करनेवाली चीज़ ही है। वस्तु ही ऐसी त्रिकाल है। आहाहा! **भव-भय को हरनेवाले मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान स्वामी को...** मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान। आहाहा! ऐसे जो भगवान आत्मा, उसे **मैं वन्दन करता हूँ।** आहाहा! मुनि इतने शब्द कहकर (कहते हैं), वह भगवान वन्दन करनेयोग्य है, उसे मैं वन्दन करता हूँ। उस वन्दन के योग्य यही चीज़ है। आहाहा! दूसरे व्यवहार से वन्दन करनेयोग्य हैं, तीर्थंकर आदि। वे सब विकल्प उठता है। आहाहा! यह तो निर्विकल्प वन्दन करनेयोग्य निर्विकल्प। आहाहा! अभी इसमें भजन गाया नहीं?

प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा, प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा
पर की आस कहाँ करे प्रीतम, पर की आस कहाँ करे प्रीतम
कंई बातें प्रभु तुम अधूरा? कंई बातें तुम अधूरा?
प्रभु मेरे सब बातें तुम पूरा।

आहाहा! यह भजन गाया न! एक बार पण्डित हिम्मतभाई ने गाया था। उसमें है। आहाहा! 'प्रभु मेरे तुम सब बातें पूरा।' आहाहा! 'पर की आस कहाँ करे प्रीतम' हे प्रिय प्रभु! आहाहा! तेरी प्रियता के समक्ष किसकी आशा करना? आहाहा! सब परिपूर्ण सर्व

शक्ति से भरपूर है। परिपूर्ण स्वभाववान है। किसकी आशा करना, प्रभु!? आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ की भी जिसमें आशा नहीं।

यहाँ तो अपने वहाँ तक आया, **जिसमें परमतत्त्व की वांछा नहीं है**। आहाहा! भगवान परमतत्त्व प्रभु की भी वांछा उसमें नहीं है। वांछा तो इच्छा है। ऐसे भगवान आत्मा को मैं जानकर, ज्ञान करके, ज्ञान में उसे लिया है तो उसका मैं आदर करके उस ओर झुकता हूँ। आहाहा! ज्ञान में वह चीज़ जानने में आयी है। समयसार १७ गाथा में ऐसा कहा, कोई बात कही नहीं परन्तु ऐसा कहा, प्रभु! प्रथम आत्मा को जान। बस, एक ही बात की है। १७ गाथा। उसकी टीका। तुम्हारे में सत्रह कहते हैं। टीका में कहते हैं कि तुम अपने को जानो। आहाहा! पहले तू स्व को जान। दूसरे नौ तत्त्व और छह द्रव्य और भगवान, यह बात छोड़ दी। आहाहा! प्रथम अपने को, प्रथम स्वयं को जान, उसमें सब है, प्रभु! उसमें कुछ कमी नहीं है, न्यूनता नहीं है कि दूसरे की आशा करनी पड़े.. आहा! परन्तु उसका माहात्म्य आता नहीं है। आहाहा!

अरूपी चीज़, अन-अभ्यास, शुभ-अशुभ का अनन्त अभ्यास, शुभ-अशुभ का अनन्त अभ्यास, उसके समक्ष शुद्ध का अभ्यास एक क्षण भी नहीं; इसलिए उसकी महिमा नहीं आती। वह महिमा आये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन हुए बिना धर्म की पहली शुरुआत नहीं होती। आहाहा!

यह कहते हैं। ऐसे **मोक्षलक्ष्मी के ऐश्वर्यवान...** आहाहा! मोक्षलक्ष्मी का तो ऐश्वर्यवान प्रभु आत्मा है। ऐसे **स्वामी को मैं वन्दन करता हूँ**। मुनिराज कहते हैं। पद्मप्रभमलधारि मुनि। जिन्हें तीन कषाय के अभावस्वरूप आनन्द तो वर्तता है। आहाहा! एक संज्वलन कषाय रह गयी है। संज्वलन-रह गयी है। संज्वलन वे थोड़े जलते हैं। पंच महाव्रतादि दु:ख हैं। जलते हैं, आत्मा को दु:ख होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, उन सबको छोड़कर मैं तो भगवान पूर्णानन्द के नाथ को वन्दन करता हूँ। आहाहा! एकान्त लगे। आहाहा! वह चीज़ ही ऐसी है। जिसकी अन्तर्दृष्टि हुई और जिसे ज्ञान में ज्ञेय हुई, ज्ञान में ज्ञेयरूप से भास हुआ, वहाँ दूसरे सबकी कीमत उड़ गयी। अपनी कीमत के समक्ष सब कीमत ( महिमा ) उड़ गयी। आहाहा! अपने ज्ञान में ज्ञेय हुए बिना उसे यह चीज़ है – ऐसा ख्याल आये बिना, उसका वेदन हुए बिना उस चीज़ का माहात्म्य नहीं आता। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

## गाथा-४५-४६

वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति।।४५।।
अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं।।४६।।

वर्णरसगन्धस्पर्शाः स्त्रीपुन्नपुन्सकादिपर्यायाः।
सन्स्थानानि संहननानि सर्वे जीवस्य नो सन्ति।।४५।।
अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीव-मनिर्दिष्ट-सन्स्थानम्।।४६।।

इह हि परमस्वभावस्य कारणपरमात्मस्वरूपस्य समस्तपौद्गलिकविकारजातं न समस्ती-त्युक्तम्। निश्चयेन वर्णपञ्चकं, रसपञ्चकं, गन्धद्वितयं, स्पर्शाष्टकं, स्त्रीपुन्नपुन्सकादिविजातीय-विभावव्यञ्जनपर्यायाः, कुब्जादिसन्स्थानानि, वज्रर्षभनाराचादिसंहननानि विद्यन्ते पुद्गलानामेव, न जीवानाम्। सन्सारावस्थायां सन्सारिणो जीवस्य स्थावरनामकर्मसंयुक्तस्य कर्मफलचेतना भवति, त्रसनामकर्मसनाथस्य कार्ययुतकर्मफलचेतना भवति। कार्यपरमात्मनः कारणपरमात्मनश्च शुद्धज्ञानचेतना भवति। अत एव कार्यसमयसारस्य वा शुद्धज्ञानचेतना सहजफलरूपा भवति। अतः सहजशुद्धज्ञानचेतनात्मानं निजकारणपरमात्मानं सन्सारावस्थायां मुक्तावस्थायां वा सर्वदैकरूपत्वादुपादेयमिति हे शिष्य त्वं जानीहि इति।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह्न

(मंदाक्रांता)

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,
प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।

काल–क्षेत्र–प्रमुख–मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,
भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत् ।।

( हरिगीत )

नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।
संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं ॥४५ ॥
रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।
निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं ॥४६ ॥

अन्वयार्थ:—[ वर्णरसगंधस्पर्शाः ] वर्ण-रस-गंध-स्पर्श, [ स्त्रीपुंनपुंसकादि-पर्यायाः ] स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि पर्यायें, [ संस्थानानि ] संस्थान और [ संहननानि ] संहनन - [ सर्वे ] यह सब [ जीवस्य ] जीव को [ नो सन्ति ] नहीं हैं।

[ जीवम् ] जीव को [ अरसम् ] अरस, [ अरूपम् ] अरूप, [ अंगधम् ] अगन्ध, [ अव्यक्तम् ] अव्यक्त, [ चेतनागुणम् ] चेतनागुणवाला, [ अशब्दम् ] अशब्द, [ अलिंगग्रहणम् ] अलिंगग्रहण ( लिंग से अग्राह्य ) और [ अनिर्दिष्टसंस्थानम् ] जिसे कोई संस्थान नहीं कहा है ऐसा [ जानीहि ] जान।

टीका:—यहाँ ( इन दो गाथाओं में ) परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है—ऐसा कहा है।

निश्चय से पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें, कुब्जादि संस्थान, वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं। संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है, त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्य सहित कर्मफलचेतना होती है। कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है। इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है ऐसा, हे शिष्य! तू जान।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में ( श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ७९वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि—

(वीरछन्द)

मेरा यह मत, जीव पृथक् अरु तत् अनुगामी कर्म पृथक्।
जीव कर्म की अति समीपता से जो हुआ, विकार पृथक्॥
काल क्षेत्र आदिक जो भी हैं इस चेतन से भिन्न रहें।
अपने-अपने गुण-पर्यायों से शोभित सब पृथक् रहें॥

**श्लोकार्थ:—मेरा ऐसा मन्तव्य है कि आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है; आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है; और काल-क्षेत्रादि जो हैं वे भी (आत्मा से) पृथक् हैं। निज-निज गुणकला से अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं (अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं)।''**

---

गाथा-४५-४६ पर प्रवचन

---

गाथा ४५-४६

**वण्णरसगंधफासा थीपुंसणउंसयादिपज्जाया।**
**संठाणा संहणणा सव्वे जीवस्स णो संति।।४५।।**
**अरस-मरूव-मगंधं अव्वत्तं चेदणा-गुण-मसद्दं।**
**जाण अलिंगग्गहणं जीव-मणिद्दिट्ठ-संठाणं।।४६।।**

देखो, यह गाथा आयी। यह गाथा तो सब जगह है। यह ४६ गाथा है न? यह समयसार में है, प्रवचनसार में है, नियमसार में है, पंचास्तिकाय में है, अष्टपाहुड़ में है और षट्खण्डागम में है। बहुत पुरानी गाथा है। यह ४६वीं गाथा प्रत्येक ग्रन्थ में है। सब देखा है न, प्रत्येक ग्रन्थ में यह गाथा आयी है। आहाहा! समयसार की ४९वीं गाथा है। इसमें ४६वीं गाथा आयी है।

नीचे हरिगीत

**नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।**
**संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥**

क्लीव (शब्द) आया। नपुंसक। क्लीव शब्द संस्कृत में आता है। उसे नपुंसक कहते हैं। यहाँ तो स्पष्ट आया है। क्लीव / नपुंसक है। पण्डित विवाद करते हैं कि नपुंसक अर्थ कैसे किया? क्लीव का अर्थ नपुंसक कैसे किया?

**मुमुक्षु :** अर्थ ऐसा होता था, इसलिए किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा ही है।

मूल समयसार के जो टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य हैं, उन्होंने यह अर्थ किया है और श्रीमद् की ओर से पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसमें भी है। आहाहा! शुभभाव और अशुभभाव नपुंसक करता है। आहाहा! अपनी चीज़ को छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, सहजानन्द प्रभु का आश्रय, अवलम्बन, सन्मुखता छोड़कर शुभरागादि में सन्मुखता, विस्मयता, कर्ताबुद्धि होती है, वह मिथ्यात्व है। वह नपुंसकता है। आहाहा! अभी सागर में चर्चा हुई थी। तीन पण्डितों की चर्चा हुई थी। जगन्मोहनलालजी, फूलचन्दजी और कैलाशचन्दजी।

**मुमुक्षु :** पाँच नाम।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पाँच होंगे। दो महीने चली न, षट्खण्डागम की (वांचना) विद्यासागर के पास। वहाँ चर्चा चली थी। यह नपुंसक अर्थ कैसे किया। आहाहा! फिर फूलचन्दजी ने मूल पुस्तक बतायी कि मूल पुस्तक देखो! क्लीव का नपुंसक अर्थ किया है। यहाँ क्या है, देखो! क्लीव का अर्थ क्या है? नर-नारी तो बाद में आते हैं, तो क्लीव, यह नपुंसक आता है। आहाहा! लोगों को अपनी श्रद्धा में जरा आँच आये, इसलिए पूरे शास्त्र की दृष्टि भी बदल डालते हैं। आहाहा! कितनी जोखिम है, भाई! प्रभु! यहाँ तो अब थोड़े वर्ष रहना है। भविष्य में अनन्त काल रहना है। यहाँ जितना काल गया, उतना अब जायेगा नहीं। जिसे पचास-साठ वर्ष हुए, उसे अब पचास-साठ वर्ष रहना नहीं है। यहाँ तो ९१ वर्ष हुए। आहाहा!

भविष्य में, प्रभु! अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त काल रहना है। आहाहा! तो निजस्वरूप का अनुभव और निजस्वरूप की प्रतीति ज्ञान में आये बिना, ज्ञान में चीज़ आये बिना प्रतीति गधे के सींग जैसी है। यह १७-१८ गाथा में आया है। पाठ है। गधे के सींग -ऐसा पाठ है। समयसार की १७-१८ गाथा है न? ठेठ से चलता है न यहाँ तो। (संवत्) १९६४ वें वर्ष से वांचन चलता है। १९६४-६४। दुकान पर। यह सब थे हमारे मनसुख

और इसके पिता और उनके बड़े भाई। ये सब हमारे भागीदार थे। इनके पिता से बड़े भाई! और इनके पिता के भागीदार मेरे बड़े भाई के साथ, दो दुकानें थीं, परन्तु इस बात की गन्ध नहीं थी। आहाहा! भगत.. भगत.. करके निकाल डाले। मैं पढ़ता हूँ, मार्ग तो यह है। ये तो भगत है.. भगत है, ऐसा करके निकाल डाले। आहाहा! अरे! प्रभु! परन्तु यह तेरी चीज़ तेरे पास है न! तेरे पास क्या? तू ही ऐसा है। पास तो और दूसरी चीज़ पास में होगी, ऐसा हो। प्रभु! तूने तेरी महिमा कभी नहीं की है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। यहाँ तो वह क्लीव आया न? क्लीव का अर्थ नपुंसक है। क्योंकि बाद में नर-नारी तो आया है...

**नहिं स्पर्श-रस-अरु-गंध-वर्ण न, क्लीव, नर-नारी नहीं।**
**संस्थान संहनन सर्व ही ये भाव सब जीव को नहीं॥४५॥**
**रस, रूप, गंध न, व्यक्त नहिं, नहिं शब्द, चेतनगुणमयी।**
**निर्दिष्ट नहिं संस्थान, होता जीवलिंग-ग्रहण नहीं॥४६॥**

आहाहा! **टीका: —यहाँ (इन दो गाथाओं में) परमस्वभावभूत...** परमस्वभावभूत ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! अनादि-अनन्त एकरूप प्रभु, जिसमें पर्याय का भी स्पर्श नहीं। आहाहा! पर्याय भी जिसके ऊपर तैरती है, ऐसा कारणपरमात्मा। आहाहा! **परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकार -समूह नहीं है—ऐसा कहा है।** इस गाथा में ऐसा कहा है।

**निश्चय से पाँच वर्ण,...** नहीं है प्रभु में। आहाहा! **पाँच रस,...** नहीं। **दो गंध,..** नहीं। **आठ स्पर्श,...** नहीं। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि...** देखो! यह क्लीव का अर्थ किया। आहाहा! अपनी दृष्टि के साथ मेल न खाये तो लोग एकदम तिरस्कार कर दे, कि नहीं.. नहीं.. नही.. प्रभु! शान्ति रख। मार्ग बहुत महिमावन्त है। नाथ आत्मा को पकड़ना कोई साधारण बात नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन कोई साधारण बात नहीं है, भाई! यह परमात्मा का साक्षात्कार है.. आहाहा! जिसमें परमात्मा का मिलाप होता है, ऐसी सम्यग्दर्शन की पर्याय जिसमें नहीं, उसका मिलाप होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवन्त! आहाहा!

**स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि...** यह क्लीव का अर्थ किया न? मूल क्लीव है न? यहाँ पाठ में तो नपुंसक स्पष्ट शब्द है। **स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि...** पाठ की संस्कृत टीका है, उसमें तो नपुंसक स्पष्ट शब्द पड़ा है। संस्कृत टीका। आहाहा! **यहाँ (इन दो गाथाओं में)**

**परमस्वभावभूत...** परमस्वभाव, जहाँ क्षायिकभाव की कोई तुलना नहीं। जहाँ क्षायिकभाव, केवलज्ञान की तुलना नहीं। आहाहा! जहाँ केवलज्ञान भी द्रव्य के अनन्तवें.. अनन्तवें.. अनन्तवें.. भाग है। अनन्तवें.. अनन्तवें.. अनन्तवें.. भाग केवलज्ञान है। आहाहा! ऐसा गुण का सागर, प्रभु! **परमस्वभावभूत ऐसा जो कारणपरमात्मा का स्वरूप, उसे समस्त पौद्गलिक विकारसमूह नहीं है—ऐसा कहा है।** आहाहा! यहाँ आया। विजाति।

**स्त्री-पुरुष-नपुंसकादि विजातीय विभावव्यंजनपर्यायें,...** आत्मा में नहीं हैं। **कुब्जादि संस्थान,...** संस्थान के छह प्रकार हैं, वे आत्मा में नहीं हैं, वे तो जड़ में हैं। **वज्रर्षभनाराचादि संहनन...** वे आत्मा में नहीं हैं, जड़ में हैं। भगवान में तो उनका अभाव है। आहाहा! **पुद्गलों को ही हैं,...** वे **वज्रर्षभनाराचादि संहनन पुद्गलों को ही हैं, जीवों को नहीं हैं।** वे जीव में है ही नहीं। वज्रवृषभनाराचादि संहनन होवे तो केवलज्ञान होता है, ऐसा पाठ आता है परन्तु वह जीव में है ही नहीं। अपने से ही केवलज्ञान होता है। जहाँ अन्तर्मुख एकाग्र हुआ, परमस्वभावभूत में जहाँ लीन हुआ, वहाँ केवलज्ञान एक क्षण में प्रगट होता है, ऐसा स्वभावभूत परमात्मा है। आहाहा! यहाँ तो एक बीड़ी पीवे, उसकी कीमत के समक्ष भगवान की कीमत एक ओर। पीते हैं न? पीते समय ऐसे (करे)। क्या है? प्रभु! और ठीक से दो बीड़ी पीवे तब पाखाने में दस्त उतरे, ऐसे तो जिसके लक्षण, अब उसे कहना कि परमस्वभावभूत भगवान में कोई पुद्गल है ही नहीं। आहाहा! उसमें पुरुषवेद है नहीं। आहाहा! उसमें नपुंसकवेद है नहीं। प्रभु! तुझमें स्त्रीवेद है नहीं। आहाहा! और... आहाहा!

**संसारदशा में स्थावरनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कर्मफलचेतना...** संसारी अवस्था में स्थावर नामकर्म एकेन्द्रिय। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति.. आहाहा! जंगल में पृथ्वी जो अन्दर है न, पृथ्वी, उस पृथ्वी के एक कण में पृथ्वी के असंख्य जीव हैं। खान में से पत्थर निकालते हैं न? टाईल्स। रावण को तो स्फटिक रत्न का मकान था। रावण को स्फटिक रत्न का मकान था। स्फटिक रत्न का... क्या कहलाता है? सीढ़ियाँ। स्फटिक रत्न की सीढ़ियाँ, स्फटिक रत्न के महल। ऊपर चढ़ते हों और नीचे देखे कि मैं चढ़ता हूँ या नहीं, ऐसा हो जाये। आहा..हा..! वह मरकर नरक में गया। स्फटिक रत्न का बँगला! आहाहा! एक स्फटिक रत्न के टुकड़े की करोड़ों की कीमत। ऐसा पूरा स्फटिक रत्न का बँगला। क्या किया? मरकर तीसरे नरक में गया। आहाहा!

कहते हैं, सब पौद्गलिक (हैं); आत्मा में नहीं। जीव को स्थावरनामकर्मयुक्त आदि एकेन्द्रिय जीव है। उसको कर्मफलचेतना है। क्या कहते हैं? यह पृथ्वी, पानी जो गोले में है न? या कुएँ में, उस गोले के पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं, एक जीव में अनन्त गुण हैं। आहाहा! पृथ्वी, पानी, अग्नि। बीड़ी सुलगाते हैं, उस अग्नि में असंख्य जीव हैं। वे सब पृथ्वी, अग्नि, पानी, वायु और वनस्पति। एक नीम की पत्ता लो। नीम का एक पत्ता, हों! उस पत्ते के असंख्यवें भाग का टुकड़ा लो, तो भी उसमें एक-एक शरीर में एक जीव, ऐसे असंख्य हैं। आहाहा! इनके कर्म कैसे हैं?

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति को कर्मफल है। उन्हें तो कर्मफलचेतना होती है। आहाहा! कर्मफल का अर्थ, अकेली राग और द्वेष की चेतना है। आहाहा! वे सब वृक्ष और अभी देखो न ऐसी पृथ्वी हरियाली से खिल गयी है। एक-एक कण में, एक-एक टुकड़े में असंख्य जीव हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। इतनी वनस्पति। आहाहा! यह नीम का पत्ता, पीपल का पत्ता। पीपल के पत्ते का एक टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य शरीर हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। आहाहा! कहते हैं कि उसे क्या है? उसे कर्मफलचेतना है। वह क्या भोगता है? क्या अनुभव करता है? कर्मफलचेतना। आया?

उस **संसारी जीव को कर्मफलचेतना होती है,...** एकेन्द्रिय को। आहाहा! कर्म अर्थात् जड़ नहीं, हों! कर्म अर्थात् रागरूपी कार्य, मिथ्यात्वरूपी कार्य। एकेन्द्रिय जीव को तो मिथ्यात्व ही है। वह मिथ्यात्वरूपी जो कर्म अर्थात् कार्य, उस कर्म के फल का उसे वेदन है। आहाहा! और प्रत्येक प्राणी ने पहले निगोद में अनन्त काल बिताया है। जैसे लड़की पहले पीहर में रहती है, वैसे इस जीव का पीहर निगोद है। आहाहा! सिद्धान्त में लेख है कि पहले अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भव निगोद में रहा। पश्चात् अनन्त काल में कोई त्रस हुआ और पश्चात् मनुष्य हुआ। वह भी अनन्त बार हुआ। उन सब एकेन्द्रिय जीवों को कर्मफलचेतना होती है। राग-द्वेष की चेतना अर्थात् वेदन, दुःख का वेदन एकेन्द्रिय को है। आहाहा! ऐसे हरे-पीले फूल दिखते हैं। वर्षा में फूल... एक बार पीछे देखने गये थे। दो इतने बड़े सफेद फूल थे। कोई तोड़ गया, परन्तु देखने में ऐसे मानो... आहाहा! अनन्त कर्मफलचेतना को वेदते हैं। राग और द्वेष और कषाय, वह कर्म। कर्म अर्थात् कार्य। कर्म अर्थात् कार्य। विकारी कार्य के फल का उसे वेदन है। आहाहा! प्रभु! वहाँ तू अनन्त बार रहा है।

**त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को...** दोइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जो त्रसजीव हैं, नारकी, मनुष्य, देव आदि सब, उन्हें **कार्य सहित कर्मफलचेतना होती है**। आहाहा! अर्थ क्या किया? कि उन्हें कर्मचेतनासहित **कर्मफलचेतना होती है**। एकेन्द्रिय को अकेली कर्मफलचेतना, कर्मचेतना नहीं। है तो सही परन्तु उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। शास्त्र उसे गिनते नहीं हैं। एकेन्द्रिय में कर्मचेतना अर्थात् राग की चेतना और उसके फल का भोक्ता वहाँ है। और त्रस में.. आहाहा! है? **कार्य सहित...** कार्य अर्थात् कर्म; कर्म अर्थात् रागादि कार्य। आहाहा! राग, दया, दान, पुण्य, पाप इन सबको कार्य कहते हैं। उस **त्रसनामकर्मयुक्त संसारी जीव को कार्य सहित...** कार्य सहित अर्थात् कर्मचेतनासहित... आहाहा! शुभ-अशुभभाव की कर्मचेतनासहित। **कर्मफलचेतना होती है**। समझ में आया? एकेन्द्रिय को अकेली कर्मफलचेतना होती है। त्रस जीव दोइन्द्रिय से (लेकर) देव मनुष्य आदि को कर्मचेतना **सहित कर्मफलचेतना होती है**। आहाहा! पंचास्तिकाय में पाठ है। आहाहा!

**कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को...** आहाहा! एकेन्द्रिय लिये, पश्चात् त्रस दोइन्द्रिय से (लेकर) मनुष्य, देव लिये। देव भी कार्यसहित कर्मफलचेतना भोगते हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव भी कर्म अर्थात् राग के कार्यसहित, राग का दु:ख फल / कर्मफलचेतना भोगते हैं। आहाहा! बड़े चक्रवर्ती, मिथ्यादृष्टि इन्द्र भी कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना वेदते हैं। आहाहा! एकेन्द्रिय में अकेली कर्मफलचेतना है और दो इन्द्रिय से (लेकर) देव स्वर्ग, नरकादि, मनुष्यादि कर्मचेतना अर्थात् विकार के कार्यसहित विकार का फल। कार्यसहित फल भोगते हैं। कर्मसहित भोगते हैं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** एक कार्य... और एक कर्मफलचेतना।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कार्य कर्मचेतना है परन्तु इसका फल भोगना, वह कर्मफलचेतना है। इसलिए तो यहाँ कहा, कार्यसहित-ऐसा लिया। अकेला कार्य नहीं। भाषा देखो न? **कार्य सहित कर्मफलचेतना...** अर्थात् अकेली कर्मचेतना नहीं, इसी प्रकार अकेली कर्मफलचेतना नहीं परन्तु कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। ओहोहो! उसकी थाह लेना, उसका तल लेना, तल खोजना, मूल खोजना, वह कोई अलौकिक पुरुषार्थ है। दुनिया में तो वह पुरुषार्थ है ही नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहा कि जो संसारी प्राणी हैं। एकेन्द्रिय के अतिरिक्त ईयल से लेकर सर्वार्थसिद्धि के देव। ईयल, ईयल। कीड़ा, कीड़े से लेकर स्वर्ग के पंचेन्द्रिय देव को कार्यसहित कर्मफलचेतना होती है। आहाहा! दुनिया ऐसा कहती है कि वह सुखी है। यहाँ कहते हैं कि उसे कार्यसहित कर्मफलचेतना है। आहाहा! अरबोंपति (होवे), नैरोबी में पन्द्रह तो अरबोंपति और साढ़े चार सौ करोड़पति हैं। लोग ऐसा मानो कि ओहोहो! क्या धूल है, कहा। करोड़ हो या तेरे अरब हों। उस पैसे का भोगना आत्मा को नहीं है। यह आया? पंचेन्द्रिय को या त्रस को, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, नारकी, देव, तिर्यंच-ढोर विकार के कार्यसहित विकार के फल को भोगनेवाले हैं। आहाहा! आया है या नहीं?

**जीव को कार्य सहित...** उस विकार के कार्यसहित... आहाहा! **कर्मफलचेतना होती है।** उसके पास लक्ष्मी होती है, स्त्री-पुत्र होते हैं - ऐसा नहीं कहा। आहाहा! वह करोड़ रुपये का मकान भोगता है, वह लड्डू खाता है, रसगुल्ला... रसगुल्ला (खाता है)। प्रभु! तुझे कर्मचेतनासहित कर्मफलचेतना है। सेठाई नहीं, ऐसा कहते हैं। धन्नालालजी सेठ हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहा..! बात बहुत थोड़ी परन्तु, प्रभु! बात बहुत बड़ी है। आहाहा! दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय यह सर्व मनुष्य, जब तक आत्मा का भान-अनुभव नहीं, तब तक सबको कार्यसहित कर्मफलचेतना का अनुभव है। शरीर का नहीं, सब्जी का नहीं, स्त्री का नहीं, मकान का नहीं। आहाहा! मकान का अनुभव नहीं। आहाहा! परचीज़ को तो स्पर्श नहीं करता तो उसका अनुभव कहाँ से हुआ?

भगवान आत्मा परद्रव्य को तो स्पर्श भी नहीं करता। यह अन्दर आत्मा है, वह शरीर को स्पर्श नहीं करता, तो शरीर में कुछ भी होता है तो आत्मा शरीर को भोगता है, ऐसा नहीं है। अन्दर में स्वयं राग करता है, वह कर्मचेतना है। उसे भोगता है, वह कर्मफलचेतना दुःख है। राग कर्मचेतना, उसका फल दुःख कर्मफलचेतना। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा के अतिरिक्त यह बात सुनने को नहीं मिलती, प्रभु! यह तो तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहाहा! सीमन्धर भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वहाँ से आकर उन्होंने यह शास्त्र बनाया है। आहाहा!

कहते हैं, यह पंचेन्द्रिय मनुष्य हैं कैसे? यह राजा, सेठ, अमलदार, अधिकारी, कार्यवाहक कौन हैं? कि कार्यवाहक कर्म का कार्य करके—रागरूपी, द्वेषरूपी कर्म का

कार्य करके—उसका फल कर्मफलचेतना—दु:ख भोगते हैं, उन्हें कार्यवाहक कहते हैं। आहाहा! गजब बात है, प्रभु!

**मुमुक्षु :** बाकी कोई नहीं रहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बाकी रहे भगवान। आहाहा! यह तो नियमसार में बात आयी है। चारों ओर से लेकर बहुत संक्षिप्त में लिया है। आहाहा!

पृथ्वी, जल, वनस्पति, पीपल के जीव कर्मफलचेतना भोगते हैं। कर्मचेतना है तो सही परन्तु उसकी मुख्यता गिनने में नहीं आयी क्योंकि एकेन्द्रिय भी राग करता है, उतना कर्म है। परन्तु उसके अतिरिक्त कर्मफल के दु:ख का भोगना बहुत है; इसलिए उसे कर्मफलचेतना एक ही गिनने में आयी है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य के पंचास्तिकाय में पाठ है। एकेन्द्रिय को तो कर्मफलचेतना है और त्रस को कर्मसहित कर्मफलचेतना है। और वहाँ तो ऐसा लिया है, ज्ञानचेतना तो केवली को ही होती है, ऐसा वहाँ लिया है परन्तु ज्ञानचेतना चौथे गुणस्थान से शुरु होती है, किन्तु पंचास्तिकाय में पूर्ण ज्ञान की बात की है। वरना तो ज्ञानचेतना का अंश, आनन्द का वेदन, शान्ति के, ज्ञान के वेदन की शुरुआत ज्ञानचेतना की शुरुआत चौथे गुणस्थान से होती है। तेरहवें गुणस्थान में ज्ञानचेतना पूर्ण हो जाती है। इस अपेक्षा से पंचास्तिकाय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ज्ञानचेतना केवली को कही है।

यहाँ देखो **कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना...** यहाँ भी ऐसा लिया है। आहाहा! कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी; कारणपरमात्मा अर्थात् द्रव्यस्वभाव। कार्यपरमात्मा अर्थात् सिद्ध भगवान; कारणपरमात्मा अर्थात् समस्त आत्माएँ अन्दर सत्तारूप से कारणपरमात्मा ही विराजमान है। दु:ख और विकार तो पर्याय में अध्धर में... अध्धर में रहता है। आहाहा! वह कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा... यह तो प्रगट की बात है, हों! कारणपरमात्मा है, परन्तु जब तक मिथ्यात्व है तो उसका चेतना-ज्ञान नहीं है। वह तो सम्यग्दर्शन होता है, तब से ज्ञानचेतना होती है। द्रव्यस्वभाव में ज्ञानचेतना है, परन्तु वह शक्ति तो ध्रुवरूप से है, वेदनरूप से नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** चीज़ है, वेदन में नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ध्रुव में वेदन नहीं है। यहाँ तो वेदनरूप गिनने में आया है। कार्यपरमात्मा अर्थात् केवलज्ञानी; कारणपरमात्मा अर्थात् त्रिकाली सत्ता चैतन्यसत्।

**शुद्धज्ञानचेतना होती है।** आहाहा! अथवा कार्यचेतना अर्थात् भगवान सर्वज्ञपरमात्मा

और कारणचेतना तो त्रिकाली ध्रुव में तो है परन्तु वेदन में नहीं है। जो मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ, वह कारणचेतना है। आहाहा! वह कारणपरमात्मा की शुद्धज्ञानचेतना होती है। आहाहा!

समयसार तीन प्रकार के हैं। एक ध्रुवसमयसार; एक पूर्ण पर्यायवन्तसिद्ध समयसार; एक मोक्ष के मार्ग का साधकपना स्वभाव के अवलम्बन से आनन्द उत्पन्न हुआ, वह समयसार। आहाहा! वेदन में तो जो प्रगट हुआ, कारणपरमात्मा में से जो प्रगट हुआ; कारणपरमात्मा, (मोक्ष का मार्ग) उसका वेदन है। त्रिकाली कारणपरमात्मा का वेदन नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

**कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है।** उनमें तो शुद्धज्ञान का ही वेदन है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला, बाढ़ उछाला मारती है। ओहोहो! जैसे नदी में बहुत पानी हो और उछाला मारे; वैसे ज्ञानी को-समकिती को.. आहाहा! ज्ञानचेतना उछाला मारती है। ध्रुव में से प्रगट पर्याय में आती है परन्तु वहाँ अंश है। इन पूर्ण कार्यपरमात्मा में पूर्ण है। समझ में आया? वरना उसमें कोई कहे कि कारणपरमात्मा और कार्यपरमात्मा को शुद्धचेतना कही तो समकिती को शुद्धज्ञानचेतना नहीं न? ऐसा नहीं है। यह बात यहाँ गौण रखकर बात की है। यहाँ तो उत्कृष्ट बात कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा की ली है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव को भी अन्तर आत्मा के आनन्द के वेदन में ज्ञानचेतना ही है और जितना राग है, उतनी अभी कर्मचेतना है। जितना वेदन है, उतनी कर्मफलचेतना है। साधक जीव को तीन प्रकार की चेतना है। आहाहा! परमात्मा को एक शुद्धज्ञानचेतना ही है। अनादि मिथ्यादृष्टि को स्थावर में अकेली कर्मफलचेतना है और अनादि मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय को कार्यसहित कर्मफलचेतना है। कर्म—कार्य करते-करते... राग करे, पुण्य किया, विकल्प किये, यह किया, और वह किया और वह किया, यह कार्यसहित कर्मफलचेतना है। आहाहा!

**कार्यपरमात्मा और कारणपरमात्मा को शुद्धज्ञानचेतना होती है।** उत्कृष्ट बात ली है। आहाहा! **इसी से कार्यसमयसार अथवा कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञान-चेतना होती है।** देखो! यहाँ कारणसमयसार त्रिकाल नहीं लिया। कार्यसमयसार पूर्ण परमात्मा और कारणसमयसार मोक्ष का मार्ग, यह **सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है।** यहाँ लिया। आहाहा! समझ में आया? कार्यसमयसार जो पूर्ण और कारणसमयसार जो साधन, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो साधन अन्दर, वह सहज फलरूप, स्वाभाविक

फलरूप.. आहाहा! वह जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द बाहर आया, अंकुर फूटा,.. जैसे पहली बरसात में अच्छी जमीन में अंकुर फूटते हैं, वैसे ही पहले सम्यग्दर्शन में अनन्त गुण के अंकुर फूटते हैं। आहाहा! उसे ज्ञानचेतना कहते हैं परन्तु साथ में कर्मचेतना और कर्मफलचेतना है। पूर्ण वीतराग हुआ नहीं। राग है, उसे कर्मचेतना कहते हैं और राग का वेदन है, उसे कर्मफलचेतना कहते हैं। ज्ञान का वेदन है, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! मार्ग अलग, नाथ! प्रभु! तू कौन है? आहाहा! यह वाणी द्वारा आता नहीं, नाथ! ऐसी तेरी चीज़ है। तेरी चीज़ कोई ऐसी है कि वचन द्वारा आवे नहीं, लेखन द्वारा लिखने में आवे नहीं। आहाहा! वह तो जानने में और वेदन में आवे, ऐसी चीज़ है। आहाहा!

यहाँ यह कहा, कार्यसमयसार भगवान पूर्ण **कारणसमयसार को सहजफलरूप शुद्धज्ञानचेतना होती है**। आहाहा! मोक्षमार्ग को भी कारणसमयसार कहते हैं। समझ में आया? कारणसमयसार त्रिकाल को भी कहते हैं। समयसार में जयसेनाचार्य की टीका में है। यह सब बात टीका में है। सब बात देखी है, कि ज्ञानचेतना ज्ञानी को सहज फलरूप होती है। केवली को तो पूर्ण होती है।

**इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप...** आहाहा! अब तो कहते हैं, स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना त्रिकालीस्वरूप **निज कारणपरमात्मा...** आहाहा! देखो! **इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना...** त्रिकाली, उसका वेदन नहीं। आहाहा! **इसलिए सहजशुद्ध-ज्ञानचेतनास्वरूप निज कारणपरमात्मा संसारावस्था में या मुक्तावस्था में सर्वदा एकरूप होने से उपादेय है...** कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के काल में भी और ज्ञानचेतना में उपादेय तो अकेला आत्मा ही है। आहाहा! त्रिकाली भगवान, वही अन्दर में आदरणीय है। दूसरी पर्याय भी उसमें आदरणीय नहीं है। यह कहा न? **सर्वदा एकरूप होने से...** भगवान तो त्रिकाली एकरूप होने से **उपादेय है ऐसा, हे शिष्य! तू जान**। आहाहा! यह गाथा आयी न? अव्यक्त भी अन्दर आ गया है। वाणी द्वारा न कह सके, ऐसा अव्यक्त आत्मा, उसकी जो पर्याय होती है, उसके वेदन में आनन्द है। त्रिकाली में चेतना है परन्तु वह ध्रुव है। उस ओर सन्मुख होकर वेदन करना, उसे ज्ञानचेतना कहते हैं और भगवान पूर्ण परमात्मा तो, कार्यपरमात्मा तो ज्ञानचेतना है ही। ऐसी यहाँ बात कही है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५०, श्लोक-७०, गाथा-४७, सोमवार, श्रावण शुक्ल १४, दिनांक २५-०८-१९८०

नियमसार, ४५-४६ गाथा का अन्तिम कलश है।

**आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्नं तयोर्या,**
**प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः साऽपि भिन्ना तथैव।**
**काल-क्षेत्र-प्रमुख-मपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे,**
**भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्।।**

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ऐसा कहते हैं कि **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मेरा ऐसा विचार है, मन्तव्य है-श्रद्धा है, प्रतीति ऐसी है कि आत्मा पृथक् है। एक बोल से नहीं लिया। **आत्मा पृथक् है और उसके पीछे-पीछे चलनेवाला कर्म पृथक् है;...** आत्मा के कारण कर्म चलता नहीं। कर्म अपने-अपने कारण से आत्मा के पीछे-पीछे चलता है। आहाहा! आत्मा के कारण से नहीं, क्योंकि भिन्न द्रव्य है। आहाहा! आत्मा अन्दर भिन्न चलता है और कर्म भिन्न चलता है। भिन्न कर्म के कारण से आत्मा नहीं चलता और आत्मा के कारण से कर्म साथ में आते नहीं। आहाहा! वस्तु—वस्तु अत्यन्त भिन्न है। आहाहा!

**आत्मा और कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है,...** विकार... आहाहा! **वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;...** आहाहा! आत्मा पृथक् है, वैसे कर्म पृथक् चलते हैं, ऐसे विकृतभाव भी साथ में चलता है। कर्म तो निमित्त हैं। आत्मा की अपनी पर्याय में जो विकार होता है, वह स्वयं के कारण चलता है। आहाहा! आत्मा स्वतन्त्र चलता है, कर्म स्वतन्त्र चलता है। कर्म निमित्त से उत्पन्न हुआ विकार भी स्वतन्त्र चलता है, क्योंकि वह पर्याय भी स्वतन्त्र है। जैसे द्रव्य आत्मा स्वतन्त्र है, कर्म भी स्वतन्त्र द्रव्य है, वैसे विकारी पर्याय भी स्वतन्त्र है। आहाहा!

**कर्म की अति निकटता से जो विकृति होती है, वह भी उसी प्रकार (आत्मा से) पृथक् है;...** आहाहा! एक भव में से दूसरे भव में जाता है या भव में रहता है तो तीनों

प्रकार भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा भिन्न, कर्म भिन्न, विकार भिन्न। आहाहा! तीनों सत् हैं। सत् स्वयं से है। सत् को पर की अपेक्षा नहीं। भले विकार है, वह भी उत्पाद-व्ययरूप सत् है न? उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। तीनों सत् है, तो विकार भी स्वयं से सत् है। कर्म से नहीं, आत्मा से नहीं, द्रव्य (से नहीं), पर्याय में होता है, वह स्वतन्त्र है। आहाहा! ऐसे आत्मा की बात कभी सुनी अन्दर? आहा!

भगवान आत्मा पृथक्-पृथक् काम करता है। कर्म पृथक् काम करता है। विकृत अवस्था पृथक् रहती है। आहाहा! ऐसा जिसे भेदज्ञान हुआ, मुनि तो कहते हैं कि **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मुनि ऐसा कहते हैं कि मेरा ऐसा मन्तव्य है। आहाहा! किसी के साथ या किसी के कारण से कोई चलता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! मेरे कारण से घर में स्त्री आती है, यह झूठ बात है। मेरे कारण से लड़का आता है, यह भी झूठ बात है। सब अपने-अपने स्वतन्त्र उस समय के काल में आते हैं। आहाहा! वस्त्र आते हैं, गहने आते हैं, पैसे आते हैं, उस समय स्वतन्त्र द्रव्य अपने-अपने कारण से पृथक्-पृथक्, आत्मा और कर्म की अपेक्षा बिना (आते हैं)। यह कर्म-वर्म भी स्वतन्त्र चीज़ है। आहाहा!

**मेरा ऐसा मंतव्य है...** मुनि ऐसा कहते हैं। मेरा विचार ऐसा है। आहाहा! **निज-निज गुणकला से...** आहाहा! अथवा **काल-क्षेत्रादि जो हैं, वे भी ( आत्मा से ) पृथक् हैं।** पंचम काल, चौथा काल, पहला काल, वह आत्मा से काल पृथक् है। आहाहा! क्षेत्रादि काल आदि और क्षेत्र आदि; और क्षेत्र, पर का क्षेत्र... आहाहा! यह क्या कहते हैं? कि आत्मा जहाँ है, वहाँ कर्म है, उस कर्म का क्षेत्र भी भिन्न है। आहाहा! अरे! विकार का क्षेत्र भी भिन्न है, ऐसा गाथा में कहते हैं। आहाहा! भगवान निर्मलानन्द अन्दर भिन्न है, उसमें जो मिथ्यात्व विकार, भ्रान्ति और रागादि, द्वेषादि होते हैं, वे भी स्वतन्त्र अपने काल और अपने क्षेत्र में रहते हैं। वे आत्मा के क्षेत्र में नहीं आते। आहाहा! गजब बात! वीतरागमार्ग का मूलरूप यह है।

आचार्य महाराज, मुनिराज तो कहते हैं कि मेरा मन्तव्य तो यह है। **मेरा ऐसा मंतव्य है...** मैं तो पंच महाव्रतधारी मुनि हूँ। मैं ऐसा मन्तव्य धारण करता हूँ कि कर्म भिन्न, आत्मा भिन्न, विकार भिन्न है। अरे! विकार और कर्म का क्षेत्र भिन्न है और विकार-कर्म का काल

भिन्न है। आहाहा! काल और क्षेत्र भी सब भिन्न है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसी बात है। ओहोहो!

अरे! प्रभु का मार्ग उजला (उज्ज्वल), स्वतन्त्र मार्ग। पर्याय-पर्याय स्वतन्त्र है। क्रमबद्ध में प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय, द्रव्य-गुण की अपेक्षा रखे बिना पर्याय स्वतन्त्र है। राग विकार होता है, वह भी कर्म से बिल्कुल नहीं होता। आहाहा! यह चर्चा (संवत्) २०१३ के वर्ष में बहुत चली थी। ईसरी में (चर्चा हुई थी)। विकार अपने से होता है। अपने षट्कारक से होता है। विकार पर्याय में कर्ता; विकार कार्य; विकार साधन; विकार करके रखा, वह सम्प्रदान; विकार से विकार हुआ, वह अपादान; विकार के आधार से विकार हुआ (वह अधिकरण)। आहाहा! जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं और जिसे कर्म की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यहाँ ऐसा कहते हैं, प्रत्येक गुण और प्रत्येक की पर्याय और उसका क्षेत्र और काल तथा द्रव्य भिन्न-भिन्न हैं। किसी के साथ किसी को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह तो जहाँ-तहाँ अहंकार (करे)। मैंने किया.. मैंने किया.. मैंने किया। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव चारों ही अपने-अपने कारण से भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! द्रव्य भी भिन्न है, विकार का क्षेत्र और काल भी भिन्न है और विकार से भिन्न कर्म, उसका क्षेत्र और काल भी भिन्न है। आहाहा! अपने से भिन्न स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, पैसा, लक्ष्मी, धूल.. धूल अर्थात् यह लक्ष्मी, वस्त्र, उन-उन के काल में, उन-उन के क्षेत्र में, उन-उन के भाव से वे स्वतन्त्र आते हैं। दूसरे से वे आते हैं और जाते हैं, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

ऐसी स्वतन्त्रता प्रभु के बिना कौन कहे? सर्वज्ञ परमात्मा-जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखा और वाणी निकली। आहाहा! उन्होंने कहा नहीं है; वाणी के कारण वाणी निकली है। यह आया न? वाणी का क्षेत्र भिन्न है, वाणी का द्रव्य भिन्न है, वाणी उत्पन्न होने का काल भिन्न है, आहाहा! और भाव भिन्न है। आहाहा! 'भगवान परमात्मा की वाणी' ऐसा कहना, वह भी व्यवहार से निमित्त से (कहा जाता है)। कठिन बात है। यह डाला है। सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का... पर्याय का भी क्षेत्र, काल भिन्न-भिन्न है। आहाहा!

**निज-निज गुणकला से...** प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण की कला-पर्याय,

उससे **अलंकृत यह सब पृथक्-पृथक् हैं...** आहाहा! निज-निज गुण और पर्याययुक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न है। आहाहा! एक परमाणु दूसरे परमाणु का कुछ भी नहीं करता। आत्मा दूसरे परमाणु का कुछ भी नहीं करता। आहाहा! बोलना, चलना, खाना, पीना, हिलना, यह सब स्वतन्त्र जड़ की क्रिया जड़ से होती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! कैसे गले उतरे? पूरे दिन 'मैं करूँ... मैं करूँ.. यही अज्ञान है, गाड़ी का भार ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ी हो और नीचे कुत्ते की गर्दन छू गयी हो, गाड़ी चलती हो तो वह गाड़ी मुझसे चलती है, ऐसा (वह मानता है); इसी प्रकार पैढ़ी में बैठा हो, घर में महिलाएँ बैठी हों, सब काम मुझसे होता है, सब व्यवस्था करनेवाला मैं हूँ, मैंने व्यवस्थित काम किये हैं; नहीं तो सब अव्यवस्थित हो जायेगा। अर..र..! प्रभु! प्रभु तो कहते हैं कि प्रत्येक पदार्थ व्यवस्थित ही है। व्यवस्थित है, उसकी दूसरा व्यवस्था करे, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

यहाँ यह कहा **निज-निज गुणकला से...** प्रत्येक द्रव्य निज-निज गुण की कला अर्थात् पर्याय से **अलंकृत...** उससे सहित **यह सब पृथक्-पृथक् हैं...** आहाहा! यदि एक बोल भी यथार्थ समझ में आये तो विवाद मिट जाये। कर्म से विकार होता है... कर्म से विकार होता है। ऐसा कहा कि कर्म से विकार नहीं होता, वहाँ तो बड़ी खलबलाहट हो गयी। अहो! यह तो भूले, मूल में भूले। मूल में भूल, ऐसा बोले। आहाहा! कर्म से विकार नहीं? आहाहा! नहीं, तो विकार स्वभाव हो जायेगा। आहाहा!

प्रभु! वह पर्याय का उस समय का स्वभाव ही है। आहाहा! कर्म से नहीं, आत्मा के गुण से नहीं। आहाहा! ऐसे अन्दर बैठ जाये तो ज्ञातादृष्टा हो जाये। किसी भी क्रिया का कर्ता मैं हूँ, मैं बोलता हूँ, या मैं समझाता हूँ, मैं पुस्तक बनाता हूँ। आहाहा! यह बात रहती नहीं परन्तु यह बात सुनने को मिलना कठिन पड़ती है। आहाहा! स्थानकवासी और श्वेताम्बर में तो यह बात ही नहीं है। आहाहा! उसमें तो यह सत्य बात है ही नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो स्पष्ट कर दिया है कि स्थानकवासी और श्वेताम्बर अन्यमती हैं, जैनमती नहीं। आहाहा! क्योंकि उन्होंने बहुत घोटाला किया है। भगवान को रोग, भगवान को दवा, भगवान के माता-पिता दो और... आहाहा! बहुत घोटाला है। उनकी सेवा करनेवाला, उनकी मदद करनेवाला मिथ्यादृष्टि है, निगोद में जायेगा। बहुत सूक्ष्म बात है।

ऐसा जब भगवान ने सूत्रपाहुड़ में कहा कि वस्त्र का टुकड़ा रखकर साधु माने,

मनावे, माननेवाले को भला जाने, वह निगोद में जायेगा। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य भगवान का वचन है। तो उस वस्त्र के टुकड़े के बदले यहाँ तो वस्त्र के ढेर के ढेर रखते हैं। आहाहा! विपरीत मान्यता का ठिकाना नहीं है। भगवान बालब्रह्मचारी हैं, उन्हें भी विवाह कर दिया (विवाहित बतला दिया)। कन्या हुई, दामाद हुए, ऐसा श्वेताम्बर में है। दामाद-जमाई। अरे भगवान! सब बात मिथ्या है। आहाहा! भगवान तो बालब्रह्मचारी थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। क्यों? (इसलिए) कि अन्तिम काल बहुत अल्प था, अन्तर में काम बहुत था तो उस विवाह में... पण्डितजी कहते हैं न दुर्घटना। स्त्री से विवाह अर्थात् दुर्घटना खड़ी हुई। है? आहाहा! उसके लिये रुकना, उसके लिये विषय, उसके लिये प्रसन्नता, उसके लिये वस्त्र, खाना-पीना और उसके सब साधन (बसाना)। आहाहा! दुर्घटना है। यहाँ तो कहते हैं कि दूसरे की दुर्घटना भी आत्मा नहीं कर सकता। आहाहा! ऐसी बात है।

**निज-निज गुणकला से...** आचार्य पुकार करते हैं। प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने गुण की पर्यायसहित (परिणमता है)। आहाहा! **सब पृथक्-पृथक् हैं ( अर्थात् अपने-अपने गुणों तथा पर्यायों से युक्त सर्व द्रव्य अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं )**। है? आहाहा! अत्यन्त भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! मुझे यह करना है और मुझे यह कराना है; उसने किया, वह ठीक किया, यह कोई बात रहती नहीं, प्रभु! मार्ग बहुत कठिन है, भाई!

अरे! सिर पर चौरासी के अवतार (नगाड़ा बजाते हैं)। आत्मा अनादि-अनन्त, जिसकी सत्ता अनादि-अनन्त, वह देह छूटे परन्तु सत्ता का कुछ अभाव नहीं होता। आहाहा! प्रभु! तेरी सत्ता कहाँ जायेगी? उस सत्ता का विचार भी किया है? कि अरे रे! मैं यह देह छोड़कर (कहाँ जाऊँगा)? देह में पाँच-पन्द्रह दिन, महीना, दो महीना, पाँच महीना, दस महीना, पाँच-दस वर्ष रहेगा। फिर छूट जायेगा, प्रभु! क्योंकि भिन्न चीज़ है। कहाँ जाना है? किस स्थान में? किस क्षेत्र में? किस काल में? कैसे भाव से जायेगा? आहाहा! सब पृथक्-पृथक् हैं। किसी के कारण से कोई नहीं है। आहाहा! एकत्व ससति में दृष्टान्त दिया है।

## श्लोक-७०

और ( इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं )—

( मालिनी )

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम् ।
इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,
भुवनविदितमेतद्भव्य जानीहि नित्यम् ।।७०।।

( वीरछन्द )

बन्धन हो या मुक्त अवस्था विविध मूर्त द्रव्यों का जाल।
शुद्ध जीव के निज स्वरूप से भिन्न सर्वदा मूर्तिक-माल॥
शुद्ध वचन यह श्रीजिनपति का बुधपुरुषों को कहूँ सदा।
अहो भव्य ! त्रिभुवन प्रसिद्ध इस परम सत्य को जान सदा॥७०॥

श्लोकार्थः—''बन्ध हो न हो ( अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में ), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल ( अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह ) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है'' ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को ( इस जगतप्रसिद्ध सत्य को ), हे भव्य! तू सदा जान॥७०॥

### श्लोक-७० पर प्रवचन

और ( इन दो गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं )—

असति च सति बन्धे शुद्धजीवस्य रूपाद्,
रहित-मखिलमूर्त-द्रव्यजालं विचित्रम् ।

**इति जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां,**
**भुवनविदितमेतद्द्रव्य जानीहि नित्यम् ।।७०।।**

आहाहा! यह **जिनपतिवाक्यं** आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनपति का वाक्य यह है। '**शुद्धं बुधानां**' '**जिनपतिवाक्यं वक्ति शुद्धं बुधानां**', '**भुवनविदितमेतद्द्रव्य जानीहि नित्यम्।**'

**श्लोकार्थ:—बन्ध हो न हो ( अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में ), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल...** आहाहा! **( अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह ) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** शुद्ध जीव भगवान अन्दर चैतन्य के प्रकाश का पूर, ध्रुव एकरूप अनादि-अनन्त रहनेवाली चीज़, वह सर्व चीज़ से निराली भिन्न है। आहा! वह **बन्ध हो न हो ( अर्थात् बन्धावस्था में या मोक्षावस्था में ), समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल ( अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह )...** आहाहा! क्या कहा? मुझसे भिन्न कर्म, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार। यह सब **( अनेकविध मूर्त द्रव्यों का समूह ) शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** शुद्ध जीव के स्वरूप से अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! यह तो व्यापार मैंने किया, मुझे व्यापार में पैसे मिले... आहाहा! सब मिथ्यात्व है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

कोई द्रव्य किसी द्रव्य की पर्याय कर सकता तो नहीं परन्तु वह द्रव्य की पर्याय भी आगे-पीछे-आगे-पीछे होती है, (ऐसा नहीं है)। वह द्रव्य की पर्याय भी आगे-पीछे नहीं होती। आहाहा! जिस समय में जो पर्याय होनी होती है, वह होती है। पर्याय अर्थात् हालत-अवस्था। इस शरीर की अवस्था अभी ऐसे चलती है, वह अवस्था उसके कारण से होती है। आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जीव निकल जाने के बाद शरीर की क्रिया क्यों नहीं होती?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निकल जाने के बाद उसकी अवस्था ऐसी नहीं है। उसकी अवस्था ऐसी ही होनी चाहिए, ऐसा कुछ है? उसकी अवस्था - पर्याय उसके स्वकाल में होती है। आहाहा! बोलना, चलना, यह सब जड़ की क्रिया है। आहाहा! उसका अभिमान छोड़ना और अपने ज्ञानस्वभाव में दृढ़ता लगाना कि मैं तो ज्ञायक हूँ। मुझमें जो वस्तु ज्ञात होती है, वह मुझसे भिन्न है और उस चीज़ से मैं भिन्न हूँ। आहाहा! यह कहा?

**शुद्ध जीव के रूप से व्यतिरिक्त है...** व्यतिरिक्त / पृथक् सर्व चीज़ें भिन्न हैं। आहाहा! अन्दर कर्म भिन्न, विकार भिन्न, तैजस-कार्मणशरीर भिन्न, औदारिकशरीर भिन्न। आहाहा! विकार की पर्याय स्वकाल से भिन्न। द्रव्य भगवान, चैतन्य भगवान उस विकार से और कर्म से भिन्न वस्तु है। तीनों काल में ऐसी बात है। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन...** यह है। मुनिराज स्वयं कहते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। पहले कहा कि **मेरा ऐसा मन्तव्य है...** अब कहते हैं कि यह तो जिनपति का, **जिनदेव का शुद्ध वचन...** है। यह शुद्धवचन है। आहाहा! पर का कर नहीं सकता, पर को अपना मान नहीं सकता। अपने कारण से पर में कुछ फेरफार नहीं होता – ऐसा जिनपति का शुद्ध वचन। आहाहा! भगवान का वचन तो होता नहीं, परन्तु यहाँ निमित्त से कथन किया है कि दिव्यध्वनि में ऐसा आया है।

भगवान की दिव्यध्वनि, त्रिलोकनाथ अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सर्वज्ञ, लाखों केवली सीमन्धर भगवान के पास विराजते हैं। तीर्थंकररूप से बीस विराजते हैं। सीमन्धर भगवान तो एक ही तीर्थंकर हैं परन्तु दूसरे क्षेत्र में दूसरे ऐसे बीस तीर्थंकर विराजते हैं और लाखों केवली विराजते हैं। उनमें जिनपति का वचन, शुद्ध वचन (यह है)। बाकी अशुद्ध वचन गड़बड़। आहाहा! **शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** आहाहा! क्या जवाबदारी कही? कि यह तीन लोक के नाथ की यह वाणी, बुधपुरुष जो चतुर पुरुष हैं, उनके लिये है। आहाहा! इतना जवाब आया कि बुधपुरुषों के लिये है। जो बात समझे और समझ में ले, उसके लिये यह वाणी है। आहाहा! **जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** आहाहा! और क्या कहते हैं?

**इस भुवनविदित को ( इस जगतप्रसिद्ध सत्य को ),...** यह जगतप्रसिद्ध सत्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, कुछ नहीं कर सकता, आत्मा बोल नहीं सकता, स्पर्श नहीं कर सकता, पर का कुछ काम नहीं कर सकता – यह जिनवचन, बुधपुरुषों ने कहा है। आहाहा! **इस भुवनविदित...** यह तो जगत में प्रसिद्ध है। आहाहा! यहाँ तो नया सुने या नहीं? आत्मा बिना वाणी निकलती है? आत्मा के बिना यह सब बनाते हैं? वस्त्र बनाते हैं? कुम्हार घड़ा बनाता है – तो आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने (समयसार) ३७२ गाथा में कहा है कि, हमें दिखायी नहीं देता कि घड़ा कुम्हार बनाता है। समयसार की ३७२ गाथा

में ऐसा लिखा है। घड़ा, घड़े से बनता है। कुम्हार उसे नहीं बनाता। आहाहा! रोटी, रोटी से बनती है, स्त्री से या तवे से नहीं बनती। आहाहा!

यह **जिनदेव का शुद्ध वचन...** है। है? **जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं।** जिसे यह बात रुचे, उसे कहते हैं। न रुचे, वह तो मूढ़ जीव अनादि काल से (भटक ही रहा है)। आहाहा! और **इस भुवनविदित...** आहाहा! यह तो जगत में प्रसिद्ध सत्य है। आहाहा! तुझे खबर नहीं। वीतराग की वाणी में तो जगत प्रसिद्ध है। उसके द्वारा यह कहा गया है, ऐसा जगत में प्रसिद्ध है। **हे भव्य!** इस भुवनविदित को, इस जगतप्रसिद्ध सत्य को, **हे भव्य! तू सदा जान।** दो बोल लिये। एक तो बुधपुरुषों के लिये लिया और फिर हे भव्यजीव! चाहे जो भव्य हो, तू भगवान है न, प्रभु! किस काल में तुझमें अपूर्णता और विकार है? किसी काल में तेरे आत्मा में विकार और कर्म नहीं है। चिदानन्द भगवान भिन्न विराजता है। प्रभु! यह जगत प्रसिद्ध, जिनवाणी में शुद्ध वचन प्रसिद्ध है। शुद्ध वचन कहा है। आहाहा!

**शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को (इस जगतप्रसिद्ध सत्य को), हे भव्य! तू सदा जान।** आहाहा! **हे भव्य! तू सदा जान।** अमुक समय जान और अमुक समय फिर कर्ता हो और कर्म मेरा है तथा विकार मेरा है, ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत गम्भीर भाषा! शब्द थोड़े परन्तु अन्दर गम्भीरता (बहुत है)। किसी समय में एक समय की पर्याय विकृत हो या अविकृत; उसका द्रव्य-गुण कर्ता नहीं है। आहाहा! क्योंकि प्रत्येक गुण की पर्याय षट्कारक से, स्वयं से स्वतन्त्ररूप से पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उस समय में स्वयं से होती है। आहाहा! गजब बात है! यह वस्तु ऊँचा होता है तो उसके कारण से ऊँचा होता है। अंगुली ने इसे स्पर्श नहीं किया, अंगुली ने इसे स्पर्श नहीं किया। यह बात (कैसे जँचे)? जिनदेव का सत्यवचन बुधपुरुषों के लिये जगत विदित-जगत प्रसिद्ध है। आहाहा! यह जगत प्रसिद्ध बात है।

इसलिए **हे भव्य! तू सदा जान।** अमुक समय हाँ कर और फिर बदलाव हो, ऐसा नहीं। आहाहा! **सदा जान।** सदा ज्ञातादृष्टा रह जा। तेरी वस्तु ही ज्ञातादृष्टा है। उसमें किसी पर का स्पर्श नहीं है। उसे स्पर्शता नहीं तो कोई कर सके, ऐसा कैसे बने? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी चूमता नहीं। समयसार की तीसरी गाथा। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को

कभी स्पर्श नहीं करता, तो करे क्या ? ऐसी जिनदेव की जगतप्रसिद्ध सत्य बात बुधपुरुषों को कहते हैं। चतुर पुरुषों के लिये यह बात कहते हैं। आहाहा! बाकी पागल तो... आहाहा!

एक बार (संवत्) १९९७ में बात चलती थी। बात चलती थी, उसमें एक वकील बैठे थे। वे कहें – तुम इन्कार करते हो परन्तु लो, यह मैंने किया। यह हाथ मैंने हिलाया, ऐसा व्याख्यान में बोले। आहाहा! प्रभु! तुझे क्या कहें ? हाथ क्यों हिला है ? हाथ में कैसी पर्याय हुई है ? अन्दर आत्मा भिन्न क्या करता है ? इस भान बिना तू ऐसा कहता है कि हाथ ऐसा किया। आत्मा से हाथ ऐसा हुआ, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। बड़ा वकील था। उसे यह बात रुचि नहीं। क्योंकि दुनिया के माहात्म्य में कुछ करते हैं, कुछ दूसरे की सेवा करते हैं और जिस सम्प्रदाय में हैं, उसकी हम सेवा करते हैं, ऐसा अधिकपना मानना, वह महामिथ्यादृष्टि का अज्ञान है। आहाहा! जिस सम्प्रदाय में हैं, उसकी हम सेवा करते हैं। उसके गरीब लोग या धनवान या दूसरे लोग आवे तो उनकी हम मदद करते हैं। अरे! प्रभु! किस समय में कौन सी पर्याय किसी से होती है ? ऐसा तीन काल में भी नहीं है। कितने शब्द लिये हैं ?

**ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन...** शुद्ध वचन। आहाहा! पवित्र वचन **बुधपुरुषों को...** जो कोई जाननेवाले हैं, उन्हें कहते हैं। आहाहा! जिसे सत्यार्थ जानना है, उसके लिये वीतराग की सत्यवाणी है और जो जगतप्रसिद्ध है। आया ? **भुवनविदित**। आहाहा! वह जगतप्रसिद्ध है। इसलिए **हे भव्य! तू सदा जान**। आहाहा!

## गाथा-४७

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण।।४७।।

यादृशाः सिद्धात्मानो भवमालीना जीवास्तादृश भवन्ति।
जरा-मरण-जन्म-मुक्ता अष्ट-गुणालङ्कृता येन।।४७।।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण सन्सारिजीवानां मुक्तजीवानां विशेषाभावोपन्यासोऽयम्।

ये केचिद् अत्यासन्नभव्यजीवाः ते पूर्वं सन्सारावस्थायां सन्सारक्लेशायासचित्ताः सन्तः सहजवैराग्यपरायणाः द्रव्यभावलिङ्गधराः परमगुरुप्रसादासादितपरमागमाभ्यासेन सिद्धक्षेत्रं परिप्राप्य निर्व्याबाधसकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शनकेवलसुखकेवल-शक्तियुक्ताः सिद्धात्मानः कार्यसमयसाररूपाः कार्यशुद्धाः। ते यादृशास्तादृशा एव भविनः शुद्धनिश्चयनयेन। येन कारणेन तादृशास्तेन जरामरणजन्ममुक्ताः सम्यक्त्वाद्यष्टगुण-पुष्टितुष्टाश्चेति।

---

है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।
गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं॥४७॥

अन्वयार्थः—[ यादृशाः ] जैसे [ सिद्धात्मानः ] सिद्ध आत्मा हैं [ तादृशाः ] वैसे [ भवम् आलीनाः जीवाः ] भवलीन ( संसारी ) जीव [ भवन्ति ] हैं, [ येन ] जिससे ( वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति ) [ जरामरणजन्ममुक्ताः ] जन्म-जरा-मरण से रहित और [ अष्टगुणालंकृताः ] आठ गुणों से अलंकृत हैं।

टीकाः—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।

जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए परमागम के अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध ( बाधारहित ) सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान-

**केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं, कार्यशुद्ध[*] हैं। जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से भववाले ( संसारी ) जीव हैं। जिसकारण वे संसारी जीव सिद्धात्मा समान हैं, उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं ( सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है )।**

## गाथा-४७ पर प्रवचन

गाथा-४७

**जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।**
**जर-मरण-जम्म-मुक्का अट्ठ-गुणालंकिया जेण ।।४७।।**

**है सिद्ध जैसे जीव, त्यों भवलीन संसारी वही।**
**गुण आठ से जो है अलंकृत जन्म-मरण-जरा नहीं ।।४७।।**

**जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे भवलीन ( संसारी ) जीव हैं,...** आहाहा! भव में लीन हैं तो भी संसारी शुद्ध हैं। आहाहा! वह द्रव्य कभी मलिन नहीं हुआ। आहाहा! **जिससे ( वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति ) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत हैं।**

**टीका:—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के...** शुद्ध द्रव्य की प्रयोजन की दृष्टि से, त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि के प्रयोजन से शुद्ध-द्रव्य-अर्थिक=शुद्ध द्रव्य की प्रयोजन की दृष्टि से, अभिप्राय से, उस **नय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।** आहाहा! संसारी जीव और मुक्त जीव; द्रव्यदृष्टि से द्रव्य तो है, वह है। पर्याय में अन्तर हो, चाहे तो निगोद की हो, चाहे तो सिद्ध की हो; द्रव्य तो जो है, वह है। द्रव्य में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! कैसे जँचे? कसाईखाने लगावे, गायों को काटने के

१. कार्यशुद्ध=कार्य-अपेक्षा से शुद्ध।

यन्त्र (डाले)। तो कहते हैं, वह जीव सिद्धसमान है। वह मलिनता उसकी चीज़ नहीं है, वह क्रिया उसमें नहीं है। आहाहा! उसकी शाश्वत् वस्तु में तो ज्ञान भरा है।

**शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अभिप्राय से संसारी जीवों में और मुक्त जीवों में अन्तर न होने का कथन है।** आहाहा! सिद्ध और संसारी दोनों में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर है वह तो पर्यायदृष्टि से-व्यवहारनय से देखने में आता है। वस्तुदृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! संसार में लीन हुआ है - ऐसा पाठ है, तथापि वह जीव सिद्धसमान है। लीन हुआ, वह उसकी चीज़ नहीं। आहाहा! अब ऐसी बात। पूरे दिन करना.. करना.. करना। ऐसा करना.. ऐसा करना.. धर्म के नाम पर भी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गयी.. आहाहा! पूरे दिन यह पूजा, भक्ति, व्रत, तप, यात्रा। आहाहा! आना-जाना और लोगों को इकट्ठा करके हम कुछ करते हैं। गिरनार जा आये। आहाहा! अमुक (जगह) जा आये, यह यात्रा की। कहाँ प्रभु! तू तेरे क्षेत्र में से कभी दूसरे क्षेत्र में गया नहीं न! दूसरी पर्याय है, उसमें भी तू नहीं गया न! दूसरे क्षेत्र में गया नहीं, दूसरी पर्याय में गया नहीं तो दूसरे के भाव में तू कहाँ से गया? आहाहा! ऐसी बात कठिन पड़े। वस्तुस्थिति यह है। इसलिए कहा न, 'जिनवचन का सत्यवचन...' जिनवचन का सत्यवचन। दूसरे व्यवहार के वचन बहुत होते हैं। परन्तु जिनवचन का सत्यवचन। आहाहा! व्यवहार वचन बहुत होते हैं, जिनवचन में भी होते हैं, आहाहा! परन्तु जिनवचन का सत्यवचन, शुद्ध जीव का वचन, जगत विदित-जगत प्रसिद्ध वचन। आहाहा! एक दूसरे का दूसरा कुछ कर सकता, ऐसा नहीं है। आहाहा! ओहोहो! पूरी दुनिया की कर्ताबुद्धि उड़ गयी। एक द्रव्य का भी कर्ता हो जाए एक द्रव्य की पर्याय का कर्ता हो जाए (तो) उसे तीन लोक के पर्याय की कर्ताबुद्धि हो गयी। तीन लोक की कर्ताबुद्धि की मान्यता हो गयी। आहाहा! बहुत कठिन बात है, भाई! मार्ग...

**मुमुक्षु :** कठिन नहीं, अपूर्व है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वस्तु तो अपूर्व है। अपूर्व बात यही है। आहाहा! सुनने को मिलती नहीं और सुनने को मिले तो एकान्त है। कोई किसी का कर नहीं सकता तो पूरी दुनिया कैसे चलती है? किस प्रकार यह चलती है? नरक में कैसे जाता है? देव में कैसे जाता है? आहाहा! सुन न, प्रभु! यह गति, गति की पर्याय; क्षेत्र, क्षेत्र की पर्याय; जीव-जीव का द्रव्य भिन्न है। आहाहा!

**जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,...** जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव। आहाहा! जिन्हें मोक्ष नजदीक है। संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! नौका में से उतरकर पैर रखे इतनी देर है। आहाहा! जो जीव अति आसन्न भव्य जीव है। अकेला आसन्न जीव नहीं लिया। अति-आसन्न भव्यजीव है। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** आहाहा! संसार की क्रिया के क्लेश से थके हुए चित्तवाला होते हुए। पहले तो यह होता है। आहाहा! संसार की कोई भी क्रिया क्लेशदायक है। उस किसी क्रिया का कर्ता माने तो क्लेश होता है। आहाहा! पुस्तक बनाने में वह भी अनन्त परमाणु की पर्याय है, वह भी उसके समय में होती है। आचार्य महाराज कहते हैं कि मेरा नाम न लेना। मोह से मत नाचना, मैंने टीका बनायी है, ऐसे मिथ्यात्व से मत नाचना। आहाहा!

**मुमुक्षु :** यह तो सब पुस्तक में कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत जगह कहा है। आहाहा! प्रत्येक ग्रन्थ के पीछे यह श्लोक रखा है। मैंने यह टीका की नहीं। मैंने बनायी नहीं। पुस्तक (टीका / ग्रन्थ) मुझसे बनी नहीं। अरे! मेरा सुनकर तुझे ज्ञान होता है, ऐसा प्रभु! तुम मोह न नाचो। आहाहा! क्योंकि तुझे जो परलक्ष्यी ज्ञान होता है, वह भी तुझसे होता है। सुनते समय ज्ञान होता है, वह सुनने से नहीं होता; अपनी पर्याय की योग्यता से ज्ञान होता है। वह सम्यग्ज्ञान नहीं है, वह सम्यग्ज्ञान नहीं, वह ज्ञान भी स्वयं से उत्पन्न होता है; सुनने से नहीं। आहाहा!

अपने ज्ञान में परलक्ष्यी ज्ञान तो जरा भी काम नहीं करता। सुना, बहुत वांचन किया परन्तु अन्दर जाने में परलक्ष्यी ज्ञान काम नहीं करता, प्रभु! आहाहा! बहुत कठिन बात! वह लक्ष्य छूटे, परलक्ष्य से (पर के) आलम्बन से उत्पन्न हुआ, उस ज्ञान का भी लक्ष्य छूटे और अन्तर्दृष्टि में जाये, तब सम्यग्ज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

**आसन्न-भव्यजीव हुए, वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए सहजवैराग्यपरायण होने से...** वे जीव सहजवैराग्यपरायण होने से। संसार के क्लेश से थक गया। अरे! यह क्या? मैं कौन और यह क्या? और वैराग्यववाला हुआ। वैराग्य का अर्थ (यह है कि) शुभ-अशुभभाव से भी विरक्त हुआ। शुभ और अशुभभाव से विरक्त होना, उसे वैराग्य कहते हैं। आहाहा! यहाँ (अभी अज्ञानी) कहते हैं कि शुभभाव

करते-करते कल्याण होगा। क्या करें? प्रभु! उसे (ऐसा कहनेवाले को सत्य) मिला नहीं। वह भगवान है। उसे भी सुख की तो अभिलाषा है। सुख की अभिलाषा होने पर भी विपरीत दृष्टि है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले...** थके हुए चित्तवाले। आहाहा! सब बात से थक गया, अब तो मुझे आत्मा का कार्य करना है; दूसरा कुछ नहीं करना। ऐसा जिसका चित्त हुआ, वह **सहजवैराग्यपरायण होने से...** स्वाभाविक वैराग्य, ज्ञान और वैराग्य दोनों साथ में रहते हैं। जब सम्यग्ज्ञान हुआ तो वह पुण्य-पाप से तो विरक्त ही होता है। वैराग्य साथ में ही है। अस्तिरूप से जहाँ भान हुआ, वहाँ विरक्त अर्थात् नास्तिपने का ज्ञान भी साथ में होता है। मैं पुण्य-परिणाम से विरक्त हूँ। आहाहा! शुभभाव से मुझे लाभ होगा या शुभभाव करने से क्रम-क्रम से आगे बढ़ा जायेगा। पहले अशुभ घटता है, फिर शुभ में आना, अशुभ घटाकर फिर शुद्ध में आना - ऐसा क्रम जगत मानता है, ऐसी बात नहीं है। आहाहा!

यह कहते हैं **सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके...** आहाहा! द्रव्यलिंग तो नग्नदशा। भावलिंग अन्दर निर्विकल्पदशा। आहाहा! द्रव्यलिंग दशा उसकी अवस्था के कारण होती है, आत्मा से नहीं होती। आत्मा वस्त्र उतारकर नग्न हो, यह क्रिया उसकी नहीं है। आहाहा! कौन माने? वस्त्र उतारने की क्रिया आत्मा की नहीं है, उस समय में उसकी उतरने की क्रिया, उसके स्वकाल में आती है तो वे वस्त्र छूट जाते हैं। आहाहा! क्योंकि पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं।

आत्मा भगवान पर के ग्रहण-त्याग से शून्य है। शक्ति में लिया है। त्यागोपादान-शून्यत्वशक्ति। पर का त्याग और पर के ग्रहण से शून्य है। आहाहा! एक भी रजकण का ग्रहण, एक रजकण को छोड़ना, इससे तो रहित प्रभु है। अनादि-अनन्त रहता है। आहाहा! उसे बाहर के त्याग जहाँ करे तो वहाँ हो जाता है कि मैंने त्याग किया। अन्तर में राग की एकता का त्याग (होना), वह भी व्यवहार है। अन्दर भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति तो विराजमान है ही; उसमें जहाँ दृष्टि लगी, वहाँ एकता टूट गयी। एकता तोड़नी पड़ती नहीं है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! मूल बात कठिन है। वीतराग की मूल बात सूक्ष्म है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **सहजवैराग्यपरायण होने से द्रव्य-भावलिंग को धारण करके परमगुरु के प्रसाद से...** उसका निमित्त परमगुरु होना चाहिए – (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! कुगुरु से यह निमित्त नहीं मिलता। आहा..हा..! तथापि गुरु से नहीं होता परन्तु परमगुरु के प्रसाद से (अर्थात्) उनका उपदेश सुना, उसे 'प्रसाद से' – ऐसा कहने में आता है। आहाहा! बहुत बात...!

**मुमुक्षु :** स्पष्ट निमित्त लिखा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्पष्ट निमित्त है, ऐसा बताया है। उससे होता है, ऐसा नहीं। पाठ तो ऐसा है। **परमगुरु के प्रसाद से...** देखो!

**मुमुक्षु :** उनके प्रसाद से तो हुआ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो निमित्त से कथन है। पहले आ गया न? जगतविदित-जगत प्रसिद्ध। शुद्धनय से आत्मा में कोई विकार-फिकार नहीं है और कुछ छोड़ना है नहीं। यह तो जगत प्रसिद्ध भगवान आत्मा विराजमान है। अनादि से जगत प्रसिद्ध आत्मा है, तो आत्मा अपना कल्याण करके सिद्ध में चला जाता है। आहाहा! निमित्त तो अनन्त हैं। हैं तो क्या हुआ? उससे कुछ होता है? ऐसा नहीं है। निमित्त को स्पर्श भी नहीं करता। निमित्त को स्पर्श नहीं करता और निमित्त अपने को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! ऐसे स्थान में डाले, **परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** इसका अर्थ इतना कि इसे सुनने में परमसत्य कहनेवाले मिले। बस! परमसत्य कहनेवाले मिले, इतनी बात कहने में आती है। आहाहा!

**परमागम के अभ्यास द्वारा...** अर्थात्... परन्तु **परमागम के अभ्यास द्वारा...** वापस परमागम का अभ्यास। एक ओर ऐसा कहना कि परमागम का अभ्यास, बुद्धि पर में जाती है तो व्यभिचारिणी है। पद्मनन्दीपंचविंशति (में) ऐसा आया है। जो बुद्धि शास्त्र में जाती है, वह व्यभिचारिणी बुद्धि है क्योंकि पर की ओर जाती है। यहाँ तो उसकी अस्ति बताते हैं। जब समझनेवाला सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब सत्श्रुत निमित्त होता है और सद्गुरु ज्ञानी निमित्त होते हैं। बस इतना। उससे अन्तर में होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बात है। नहीं तो विरुद्ध हो जाये।

एक ओर जगतप्रसिद्ध शुद्धवचन जिनवचन का ऐसा आया कि कोई किसी का

कर्ता नहीं है। आया न? पहले आ गया न? ऐसा बुधपुरुष को कहते हैं। **ऐसा जिनदेव का शुद्ध वचन बुधपुरुषों को कहते हैं। इस भुवनविदित को ( इस जगतप्रसिद्ध सत्य को ), हे भव्य! तू सदा जान।** यह जान। आहाहा! जान, उसे कहा। जान अर्थात् उसे जानना है। जानना है तो यह सुना, उसके ज्ञान से ज्ञान नहीं होता। यह अन्तर में दृष्टि करता है, तब ज्ञान होता है। आहाहा! हमारा उपकार मानना, यह सब बात निमित्त की है। आहाहा! 'परस्परोग्रहो जीवानाम' – आता है न? जीव का परस्पर उपग्रह / निमित्त है। उसका अर्थ ऐसा है किया है, सर्वार्थसिद्धि (टीका) से निकाला है (कि) उपकार का अर्थ निमित्त है। उपकार (अर्थात्) उससे कुछ होता है, ऐसा नहीं है। परन्तु उस समय सत्पुरुष का निमित्त है और सत्पुरुष की वाणी का निमित्त है परन्तु उससे इसमें होता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसे **अभ्यास द्वारा सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध ( बाधारहित ) सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये..** आहाहा! **कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं,..** इसकी व्याख्या आगे करेंगे..

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

**प्रवचन-५१, श्लोक-७१, गाथा-४७-४८, मंगलवार, श्रावण शुक्ल १५, दिनांक २६-०८-१९८०**

नियमसार, गाथा ४७ थोड़ा चला है, फिर से थोड़ा लेते हैं। **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,...** मोक्ष पाने के योग्य अति भव्यजीव हुए। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** संसार के किसी भी विकल्प से थकान लगी हो, दुःख लगा हो, उससे थके हुए, **परमागम के अभ्यास द्वारा...** आहाहा! गुरु के प्रसाद से **परमगुरु के प्रसाद से...** इतना, यह तो निमित्त है। कथनशैली तो दूसरी कैसी आवे? बाकी किसी निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। क्रमबद्ध होता है, वह तीन काल में बदलता नहीं। क्रमबद्ध रखकर सब बात है।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर-क्रमबद्ध जिस समय में जो होती है, उस समय में होनेवाली होती है। उसमें यह कहते हैं कि गुरु के **प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** अपनी पर्याय उस समय में प्राप्त होने की थी, उसमें गुरु निमित्त हुए, परमागम का अभ्यास उसमें निमित्त हुआ। **सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध ( बाधारहित ) सकल-विमल ( सर्वथा निर्मल ) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं,...** आहाहा! कार्य प्रगट हुआ। सिद्ध की पर्याय पूर्ण प्रगट होने के योग्य थी, वह प्रगट हुई।

सबेरे आया था कि आत्मा महा समुद्र, गुण का समुद्र है, गुण का भण्डार है। अनादि-अनन्त सत्ता का धारक है परन्तु सिद्ध की पर्याय से अधिक पर्याय अब करने की रही नहीं। अन्तिम में अन्तिम सिद्ध पर्याय हो गयी। आत्मा में अन्दर चाहे जितना सामर्थ्य हो... आहाहा! उसमें अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है, तथापि उसकी पर्याय में सिद्ध पर्याय जितनी मर्यादा रहती है। सिद्ध पर्याय से आगे नहीं जाती। आहाहा! ऐसी मर्यादा है। द्रव्य की मर्यादा ही इतनी है। उसमें जितने गुण हैं, उतने गुण, पर्याय में पूर्ण सिद्धस्वभाव में (प्रगट) हो जाते हैं। उसमें फिर पर्याय में वृद्धि हो (या) सिद्धभगवान बहुत काल रहे,

करोड़ वर्ष-अरब वर्ष रहे, इसलिए पर्याय में गुण बढ़ते हैं-ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव ऐसा ही है।

वे **कार्यशुद्ध हैं**। भगवान कार्यशुद्ध हैं। कायम अपेक्षा से शुद्ध हैं। **जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से...** भगवान **भववाले ( संसारी ) जीव हैं**। आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। पूर्णानन्द का नाथ आनन्दकन्द की दृष्टि से संसारी जीव भी सिद्ध समान हैं। आहाहा! सिद्ध में और संसारी प्राणी में निश्चयनय की शक्ति के सामर्थ्य के कारण अन्तर नहीं है। आहाहा! ऐसी प्रतीति हो जाये, तब तो स्वसन्मुख हो जाये। आहाहा! सिद्ध की पर्याय जैसी संसारी पर्याय है, वैसी ही है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' आहाहा! भाषा काम करे नहीं। चाहे जितनी विद्वत्ता हो, वह इसमें काम नहीं करती। अन्तर में पर्याय में द्रव्यस्वभाव सन्मुख झुकना (हो) तो वह संसारी पर्याय भी सिद्ध समान ही है। आहाहा! पर्याय, पर्याय, ! हों! आहा! ऐसे तो शक्तिरूप से लेना है। प्रगट कहाँ है ?

**उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की...** गुण शब्द से पर्याय (लेना)। समकित आदि पर्याय, वह पर्याय है। उसकी **पुष्टि से तुष्ट हैं...** आहाहा! संसारी जीव भी, सिद्ध के आठ गुण हैं—ऐसे गुण से पुष्ट हैं, पुष्ट हैं। आहाहा! उनका स्वभाव ऐसा ही है। भले प्रगट में दिखाई न दे परन्तु वस्तुरूप से तो सिद्धसमान शक्ति और पूरा स्वभाव है। जैसे सिद्ध के आठ गुण व्यवहार से हैं, निश्चय से अनन्त गुण हैं; वैसे आत्मा में अनन्त गुण शक्तिरूप से हैं, उन्हें व्यक्तिरूप से करने की सामर्थ्य है; इस कारण से सिद्धसमान वह संसारी है। आहाहा!

हम क्या करें ? हम पंचम काल में जन्में हैं, गरीब घर में आये हैं, आजीविका और रोटियाँ नहीं कि हम धर्म करें, इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है। इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है, प्रभु! चाहे जिस समय में, जहाँ देखे उस क्षेत्र में और काल में तू सिद्ध समान प्रभु ही है। आहाहा! यह बात कैसे बैठे ? जिसे अनन्त पर्याय प्रगट हुई है—ऐसा ही तू है। अभी संसार में ऐसा ही है। आहाहा! विश्वास, प्रतीति, भरोसा (ला)। ओहो! यह जो काम करते हैं, वह पहला अपूर्व काम है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ सिद्धसमान अभी ही है। आहाहा!

कहा न ? वे **आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं...** तुष्ट हैं **( सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान,**

**अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध, इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है )**। ऐसा जीव आनन्दमय है। आहाहा! कहाँ संसारी, कहाँ सिद्ध! वह तो पर्याय-अवस्था में पर्याय तो एक समय की है। एक समय की पर्याय में क्या है! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु के स्वाद के समक्ष दुनिया की किसी चीज़ का स्वाद-महिमा ले जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसके स्वाद के समक्ष दुनिया की कोई भी चीज़ विस्मयरूप से, अधिकरूप से, महिमारूप से हो जाये, ऐसी बात है नहीं। आहाहा!

मुनि को पता नहीं होगा-यह सब काम करते हैं और ये सब जीव तो संसारी हैं? बापू! ये संसारी और सिद्ध तो पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य अपेक्षा से तो अन्दर शुद्ध चिदानन्द है। आगे कलश में कहेंगे। आहाहा!

## श्लोक-७१

**( अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं )—**

( अनुष्टुप् )

**प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।**
**नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्।।७१।।**

---

( वीरछन्द )

**जो सुबुद्धि या दुर्बुद्धि हों पहले से ही शुद्ध अहो!**
**किस नय से फिर भेद करूँ मैं, उन दोनों में तुम्ही कहो।।७१।।**

***श्लोकार्थः*—जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ ? ( वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है। ) ।।७१।।**

## श्लोक-७१ पर प्रवचन

**(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—**

**प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।**
**नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम् ।।७१।।**

अरे रे! **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! कुबुद्धि को-मिथ्यादृष्टि को और सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! प्रथम ही भगवान शुद्ध पड़ा ही है। मिथ्यादृष्टि तो... एक समय की पर्याय (वस्तु में नहीं, वस्तु के) ऊपर है, वस्तु तो सिद्धसमान पूरी परमात्मदशा है। यह बात बैठना... आहाहा!

**जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही...** जिन कुबुद्धियों को प्रथम से ही, मिथ्यादृष्टि को पहले से ही! आहाहा! संसार का अभाव करे, फिर सिद्ध होगा, यह बात यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो कुबुद्धियों को प्रथम से ही (लेते हैं)। आहाहा! भगवानस्वरूप सिद्धसमान अन्दर प्रथम से ही है। **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहा! ऐसा करके जरा व्यवहारनय की तुच्छता बतायी है। व्यवहारनय की कुछ गिनती ही नहीं। मैं किस नय से कहूँ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू (तुझमें) और सिद्ध में किस नय से मैं अन्तर करूँ? अरे! किस नय से? तो व्यवहारनय से तो कहो। व्यवहारनय कुछ गिनती में नहीं। आहाहा! आहाहा!

(अज्ञानी) व्यवहार-व्यवहार करते हैं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** उसमें किस नय से भेद जानूँ कि यह संसारी और यह सिद्ध? आहाहा! गजब बात है। मुनियों की वाणी, सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी के पास सारा जगत पानी भरे! ऐसी वाणी की गम्भीरता है। कितनी गम्भीर बात की है! मैं किस नय से भेद करूँ? व्यवहारनय की तो मानो गिनती ही नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा है। आहाहा!

प्रभु! तू परमात्मा है न! सिद्ध और परमात्मा दोनों में मैं किस नय से भेद कहूँ? आहाहा! व्यवहारनय से कहना, उसे तो उड़ा दिया, मस्करी की है। आहाहा! यह अन्दर

आता है कि व्यवहारनय की मसकरी की है। नियमसार में पहली बारह गाथा के पीछे आता है। हास्य किया है, हास्य। अरे! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न! तेरी सत्ता पूर्ण अनादि से है। उसमें कुछ फेरफार हुआ ही नहीं। तेरी नजर नहीं जाती है। नजर जाने से तू और सिद्ध दोनों एक ही है। आहाहा! नजर के पुरुषार्थ में पूरा भगवान दिखता है।

यहाँ तो मुनिराज (कहते हैं कि) किस नय से (अन्तर) जानूँ? **( उनमें कुछ भी भेद... )** आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा भले थोड़ी है।

**श्रोता :** कर्म सापेक्ष नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्म सापेक्ष यहाँ नहीं। सेठाई के समक्ष रंकाई नहीं। आहाहा! सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। आहाहा! एक नय से च्युत है-ऐसा आया है। वह नय शुद्धनय को ही गिनने में आया है। व्यवहारनय को तो मसकरी करके उड़ा दिया है। जिसे व्यवहार गले पड़ा है, उसे यह सिद्धसमान चैतन्य की बात बैठना कठिन है, प्रभु! यहाँ तो इतने शब्दों में तो बहुत भरा है। आहाहा! क्या कहा?

**जिन सुबुद्धिओं को...** सम्यग्दृष्टि को, **कुबुद्धिओं को...** मिथ्यादृष्टि को। **पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! यह तो ठीक परन्तु **उनमें...** दोनों में। **उनमें कुछ भी भेद... कुछ भी भेद, मैं किस नय से जानूँ?** किस नय से जानूँ - ऐसा कहते हैं। कथन तो ठीक, कथन कौन करे? आहाहा! गम्भीर है, भगवान! इतने शब्दों में गम्भीरता है। आहाहा! कहाँ प्रभु सिद्ध और कहाँ प्रभु तू आत्मा! जो आत्मा में चीज़ नहीं, उसकी यहाँ गिनती गिनी नहीं और किस नय से मैं दोनों को अलग मानूँ? आहाहा! व्यवहार से अलग मानना, उसे ही उड़ा दिया। आहाहा! उसे भी गिनती में नहीं लिया। नहीं तो ऐसा क्यों कहा? एक नय से ऐसा है, दूसरे नय से अन्तर है (-ऐसा कहते)।

यहाँ तो कहते हैं **उनमें...** (अर्थात्) सम्यग्दृष्टि में और मिथ्यादृष्टि में प्रथम से ही सिद्धसमान भगवान अन्दर है। **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा! गजब बात है। अन्दर कितना भरा है! गम्भीरता (बहुत)। कहते हैं, चाहे तो संसारी निगोद के जीव हों, आहा! चाहे तो सिद्ध हों, दोनों में कुछ भी भेद किस नय से जानूँ? व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं-ऐसा कहते हैं। व्यवहार तो कुछ है ही नहीं, गिनती नहीं। व्यवहार अभूतार्थ कहकर, गौण करके उड़ा दिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में आया, अब कहते हैं कि मैं मुझमें और दूसरे आत्मा में (किस नय से भेद जानूँ) ? ख्याल में आने के बाद की बात है, हों! मिथ्यात्व के काल में मैं किस नय से कहूँ, यह नहीं। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) दया, पालो, व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, ऐसी प्ररूपणा (करता है) और बनियों को धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। पूरे दिन पाप। सुनने (जाये), घण्टे भर सुने, सिर पर जो कहे जय नारायण! हो गया। क्या कहते हैं? उसमें क्या अन्तर है? (यह कुछ समझते नहीं)। आहाहा! इतने शब्द में... लालचन्दभाई! गजब बात है। क्या कहें? जैसा अन्तर में भासित होता है, उतनी भाषा नहीं आती। आहाहा! आहाहा!

कुबुद्धि और सुबुद्धि में प्रथम से ही भगवान शुद्ध विराजता है, उन्हें कुछ भी, आहाहा! **उनमें कुछ भी...** कुछ भी... आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा! गजब किया है! अपने आनन्द के विकास के समक्ष सभी जीव आनन्दमय है – ऐसा देखते हैं। अपने आनन्द और ज्ञानमय प्रभु के समक्ष सभी आत्मा भगवान तुल्य भासित होते हैं। मैं किस नय से भेद मानूँ? कहते हैं। आहाहा! ताराचन्दजी! कहाँ गये हमारे दूसरे ताराचन्दजी? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान की गम्भीरता बहुत है। आहा!

**श्रोता :** आपमें ही ऐसे भाव खोलने की सामर्थ्य है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सबमें सामर्थ्य है न, नाथ! प्रभु! तू भगवान है न, नाथ! तुझे अल्प कहकर बुलाना कलंक है। आहाहा! यहाँ तो यह कहा न? मैं किस नय से अल्प मानूँ? आहाहा! प्रभु! यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ एक समय में जैसी सत्ता है, जैसी सत्ता सिद्ध की है, वैसी सत्ता तेरी है, ऐसा जहाँ भान हुआ (तो) मैं किस नय से भेद जानूँ? किस नय से जानूँ? आहाहा! प्रभु! व्यवहारनय से जानूँ, ऐसा इतना तो थोड़ा रखो! पण्डितजी! सब नय उड़ा दिये। व्यवहारनय तो रखो। यह व्यवहारनय तो आ गया क्योंकि कुबुद्धि और सुबुद्धि इतना भेद तो कर दिया। आहाहा!

अब दोनों का जो आत्मा है, दोनों भगवान आत्मा हैं। मैं किस नय से (भेद जानूँ)। आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर सन्तों के शब्द कोई गजब करते हैं। आहाहा! ये दो-चार शब्द हों परन्तु अन्दर ठेठ उतार देते हैं। प्रभु! तुझे कहीं रुचता नहीं। यहाँ अन्दर रुचे— ऐसी चीज़ तो तेरे पास पड़ी है न, प्रभु! और जिसे रुचता नहीं तो भी मैं अन्तर की शुद्धता में किस नय से भेद जानूँ। आहाहा! गजब है न? आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़ता

है। व्यवहार है, व्यवहार है ( -ऐसा पुकारे।) आस्रव अधिकार में आता है, नय से च्युत। ऐसा नहीं कहा कि निश्चयनय से च्युत, क्योंकि उसे ही नय गिनने में आया है। मूल गाथा में टीका में है। नय से च्युत होता है तो वहाँ ऐसा नहीं कहा कि व्यवहारनय से च्युत होता है। आहाहा! च्युत होता है, यह बात ही नहीं, कहते हैं। आहाहा!

अन्तर का नाथ अप्रतिहत भाव से पड़ा है। अनादि सत्ता के सामर्थ्य से बिराजमान अपने चैतन्यधाम में भगवान बिराजता है। कुबुद्धि और सुबुद्धि में मैं किस नय से भेद कहूँ? कहूँ, ऐसा भी नहीं कहा। कहूँ भी कहा नहीं? किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अन्तर चैतन्यभगवान पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति ( स्वरूप है )। आहा! उसे त्रिकाल कोई दखल नहीं होती। सातवें नरक में अनन्त बार रहा, निगोद में अनन्त बार गया। परन्तु उस चीज़ में कोई फेरफार नहीं होता। मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा!

निगोद के जीव और सिद्ध जीव... आहाहा! मैं कुछ भी भेद, दोनों में कुछ भी भेद... आहाहा! गजब बात है। उड़ गयी... बात ही उड़ा दी। मोक्ष आत्मा ही है, बस! आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... भगवान सब आत्मा। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! इसकी गम्भीरता अन्दर कही नहीं जा सकती है। क्या कहना चाहते हैं – वह भाव ख्याल में आता है। आहाहा! व्यवहारनय को तो उड़ा दिया, मानो कि है ही नहीं। आहाहा! और ( अज्ञानी ) पूरे दिन व्यवहारनय... व्यवहारनय ( करता है )। ऐसा करो और वैसा करो, ऐसा करो... प्रभु! परन्तु ज्ञानस्वरूपी भगवान जानने का काम करे या करने का काम करे? आहाहा! भगवान को कर्ता( पना ) सौंपना, वह चक्रवर्ती से कचरा निकालने का बतलाने जैसा है। वासिन्दु को क्या कहते हैं? कचरा। आहाहा!

प्रभु तेरी महिमा का पार नहीं। इस शब्द में तो तुझे प्रभु साक्षात् खड़ा रखा है। आहाहा! किस नय से मैं तुझे हीन कहूँ? आहाहा! प्रभु! किस नय से मैं **कुछ भी...** भाषा पढ़ी। **उनमें कुछ भी...** आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ?** प्रभु! व्यवहारनय कहाँ गया? नाथ! आहाहा! व्यवहार से इतना अन्तर है, वह कहाँ गया? गया उसके घर में। अन्तर घर में कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! कितने ही श्लोक तो इतने गम्भीर हैं कि गम्भीरता भासित होती है, उतनी भाषा नहीं आती, भाषा नहीं हो सकती। आहाहा!

इस शब्द में इतनी गम्भीरता भरी है। अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध.. पूरी

दुनिया, निगोद में से कभी नहीं निकले ऐसे जीव को भी मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! अन्तर की महिमा की बात है, प्रभु! आहाहा! यह शक्तिवान है परन्तु मानो प्रगट ही है – ऐसा कहते हैं। शक्तिवान है। आहाहा! जिसे प्रगट दृष्टि में आया, उसे शक्तिवान प्रगट है; वैसे ही सब भगवान कुबुद्धि को भी प्रगट हैं। मैं किस नय से उसे हीन, न्यून शक्तिवाला और सिद्ध में किस नय से अन्तर जानूँ? गजब बात है! ताराचन्दजी! गजब बात है! आहाहा! साधारण बात नहीं, प्रभु! यह कोई कथा नहीं है। आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ वीतरागदेव के पेट में से (अन्तर अभिप्राय में से) निकली हुई वाणी है। आहाहा! दिव्यध्वनि, दिव्यध्वनि ऐसा कहती है। आहाहा! प्रभु! तुझमें अशुद्धता कुबुद्धि में किस नय से अन्तर जानूँ। आहाहा! मुनिराज कहते हैं, वह भगवान कहते हैं। भगवान से बिलकुल हीन-अधिक नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? मुनिराज कहते हैं, इसलिए फेरफार (है ऐसा नहीं है)। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में ऐसा आया था कि शुद्ध और अशुद्ध जो पर्याय है, ऐसा जो जीव है, उन दोनों में कुछ भी भेद किस प्रकार से, किस प्रकार से बचाव करूँ? किस प्रकार से बचाव करके (अन्तर) जानूँ। आहाहा! गजब है।

**( उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है। )** अन्दर में कोई भेद नहीं है। आहाहा! यह दृष्टि जिसे बैठ गयी, उसे अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा होने की तैयारी हो गयी। परमात्मा (अर्थात्) भव का अन्त। भव का अनादि-सान्त अन्त और मोक्ष सादि-अनन्त। वह भी ऐसा कहा... सन्तों ने गजब बात (की है कि) पूर्ण पर्याय सिद्ध हुई, द्रव्य तो अलौकिक अन्तर महा चमत्कारिक अनन्त गुण से भरा है न! तो सिद्ध की पर्याय से विशेष शुद्धता निकलेगी या नहीं? वहाँ बस कर, पर्याय के लिये वहाँ बस कर। आहाहा! द्रव्य के लिये कुछ कहना नहीं है, आहाहा! पर्याय के लिये वहाँ बस कर, प्रभु! पूर्ण सिद्ध होने के पश्चात् भी निर्मलता की थोड़ी वृद्धि होगी, यह बात रहने दे, प्रभु! पर्याय में यह बात बस हो गयी। आहाहा! परन्तु द्रव्य की जो बात हम करते हैं, प्रभु! आहाहा! इतना सामर्थ्य और इतनी शक्ति है, तो सिद्ध पद (प्रगट होने के पश्चात्) भी शुद्धि बढ़ जाये – ऐसा है या नहीं? प्रभु! ऐसा नहीं है। वह पर्याय है। पर्याय पूर्ण हो गयी, पश्चात् बात पूरी हो गयी।

यहाँ तो वस्तु में कुछ भी अन्तर नहीं गिनते तो पर्याय में भी अन्तर नहीं गिनते। आहाहा! व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं। कथनमात्र है। यह तो भाई! कलश-टीका

में आता है न ? कथनमात्र, व्यवहारनय कथनमात्र -ऐसा आता है। कलश-टीका में है। आहाहा! अब, यह व्यवहारनय सामने हो गया है। यहाँ कहते हैं कि वह व्यवहारनय है या नहीं - हम नहीं जानते। प्रभु! तू आनन्द है न! तुझमें अनन्त भगवत्स्वरूप है न! तू साक्षात् भगवान है! साक्षात् सिद्ध हुए और तू साक्षात्, उनमें किस प्रकार भेद करूँ ? किस नय से मैं कुछ भी भेद कहूँ ? आहाहा! गजब बात है।

साक्षात् परमात्मा सिद्ध हुए और तेरा आत्मा, (इन दो में) मैं किस नय से कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, (जानूँ) ? गजब बात! आहाहा! दिगम्बर सन्त, केवली के पथानुगामी हैं। वे अल्प काल में केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। एकाधभव (बाकी है), यह पंचम काल है, इसलिए केवलज्ञान नहीं हुआ, बाकी तो स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। आहाहा! इतनी गम्भीरता अन्दर भासती है। वह गम्भीरता शब्दों में नहीं कह सकते। प्रभु! तू इतना बड़ा है, तेरी महिमा में हीनपन की भाषा तो नहीं होती परन्तु हीनता किस प्रकार जानूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सभी भगवान हैं। तुझमें और सिद्ध में, प्रभु! कुछ भेद, कुछ भी भेद (किस प्रकार जानूँ) ? गजब शब्द हैं। आहाहा! उन दोनों में कुछ भी भेद, कुछ भी जुदाई, कुछ भी भिन्नता किस नय से जानूँ? मैं किस नय से जानूँ? आहाहा! गजब किया है! व्यवहार पक्षवालों को कठिन लगता है। आहाहा! ऐसी बात! इतने शब्द में बहुत भरा है, पण्डितजी! बहुत भरा है। आहाहा! अकेला परमात्मा तैरता है। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... दृष्टि में ध्रुव तैरता है। तो यह कहते हैं कि जगत के प्राणी को मैं किस नय से हीन कहूँ ? किस नय से संसारी कहूँ ? आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा थोड़ी, भाव का पार नहीं होता। आहाहा! इस भाषा की गम्भीरता...! आहाहा! इतने में २२ मिनिट हो गये। आहाहा! अरे! एक सैकेण्ड के अन्दर, एक सैकेण्ड भी नहीं, एक समय में अन्तर पड़ता है तो यह अन्तर पड़ता है, वह मैं किस प्रकार अन्तर मानूँ? आहाहा! एक समय में समयान्तर हो जाता है। आहाहा!

श्रीमद् ने लिखा है कि समकित समयान्तर में हो जाता है। एक समय के अन्तर में (हो जाता है)। पहले समय में मिथ्यात्व, दूसरे समय में समकित। आहाहा! अरे! अनन्त काल से मिथ्यात्व का सेवन (चलता है और तुम कहो) एक समय में (बदल जाये) ? परन्तु प्रभु! उसमें कहाँ मिथ्यात्व था? अन्दर में मिथ्यात्व था ही कहाँ? आहाहा! जो

अन्दर में है, वह अन्दर से निकला। अन्दर जो माल भरा था, वह निकला। इसी प्रकार सब भगवान माल से भरपूर हैं। आहाहा! गजब बात है। डालचन्दजी! इन सब सेठियाओं को यह सब बात समझने की है। आहाहा! गजब बात है। फिर ऐसा करके कितने ही सोनगढ़ का उड़ा दें, लो! यह सब है, भाई! है अवश्य, भाई! बापू! व्यवहारनय का विषय है, व्यवहारनय है, (उसका) विषय है परन्तु उसकी कोई गिनती नहीं। अन्तर निश्चय के समक्ष उसकी गिनती क्या? आहाहा! कलश टीकाकार ने तो ऐसा कह दिया है कि व्यवहारनय तो कथनमात्र है। ऐसा पाठ है। यहाँ है या नहीं? कलश-टीका पाँचवें कलश में है। **जितना कथन**। व्यवहारनय का अर्थ किया, जितना कथन। वह तो कथन है। वस्तु में कुछ अन्तर नहीं, प्रभु! तू बाहर के इस शरीर, इसकी चेष्टायें, इसकी उम्र, इसके रंग-रूप को न देख... आहाहा! और तुझमें हीनता है, वह न देख। हम कहते हैं कि किस नय से तुझमें हीनता कहें? आहाहा! गजब बात है। किस नय से मैं तुझमें हीनता कहूँ? शरीरवाला तो है ही नहीं, रंग वाला तो है ही नहीं, परद्रव्य को तो कभी छूता नहीं परन्तु किस नय से तेरी हीन दशा कहूँ। सिद्ध-अपेक्षा अल्पदशा किस नय से कहूँ? आहाहा! गजब है। **जितना कथन**। व्यवहारनय का अर्थ किया है। व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। आहा! वह तो कथनमात्र है। आहाहा! कठिन लगे ऐसा है परन्तु प्रभु! तेरे घर की बात है न! आहा!

**श्रोता :** जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रीतिभोज करा रहे हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो मुनिराज बात करते हैं। प्रीतिभोज! सवेरे तो जीमन हुआ। आहाहा! अपना कुछ भी आग्रह यदि रहे तो अपनी चीज़ जानने में नहीं आती तो पर की चीज़ भी मेरे जैसी है, ऐसा जानने में नहीं आता, प्रभु! ऐसा कहते हैं।

यह तो कहते हैं, मैं... ऐसा कहा न? आहाहा! कुछ भी भेद-सिद्ध और संसारी में कुछ भी भेद... आहाहा! **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** कहूँ-ऐसा नहीं आया। मैं किस नय से जानूँ (-ऐसा आया है)। आहा! एकान्त लगे ऐसा है, प्रभु! अकेला माहात्म्य ही वर्णन किया है। अकेली चीज़ का (माहात्म्य)। ४८ गाथा; ४७ हुई न?

## गाथा-४८

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।

अशरीरा अविनाशा अतीन्द्रिया निर्मला विशुद्धात्मानः।
यथा लोकाग्रे सिद्धास्तथा जीवाः सन्सृतौ ज्ञेयाः।।४८।।

अयं च कार्यकारणसमयसारयोर्विशेषाभावोपन्यासः। निश्चयेन पञ्चशरीर-प्रपञ्चाभावादशरीराः, निश्चयेन नरनारकादिपर्यायपरित्यागस्वीकाराभावादविनाशाः, युगपत्परमतत्त्व-स्थितसहजदर्शनादिकारणशुद्धस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थसहजज्ञानज्योतिरप-हस्तितसमस्त-सन्शयस्वरूपत्वादतीन्द्रियाः, मलजनकक्षायोपशमिकादिविभावस्वभावा-नामभावान्निर्मलाः, द्रव्यभावकर्माभावात् विशुद्धात्मानः यथैव लोकाग्रे भगवन्तः सिद्धपरमेष्ठिनस्तिष्ठन्ति, तथैव सन्सृतावपि अमी केनचिन्निश्चयबलेन सन्सारिजीवाः शुद्धा इति।

---

( हरिगीत )

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

अन्वयार्थ :— [ यथा ] जिस प्रकार [ लोकाग्रे ] लोकाग्र में [ सिद्धाः ] सिद्धभगवन्त [ अशरीराः ] अशरीरी, [ अविनाशाः ] अविनाशी, [ अतीन्द्रियाः ] अतीन्द्रिय, [ निर्मलाः ] निर्मल और [ विशुद्धात्मानः ] विशुद्धात्मा ( विशुद्धस्वरूपी ) हैं, [ तथा ] उसी प्रकार [ संसृतौ ] संसार में [ जीवाः ] ( सर्व ) जीव [ ज्ञेयाः ] जानना।

टीका :— और यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथनहै।

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं, परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप

**कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं, मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं; उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है।**

## गाथा-४८ पर प्रवचन

**असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।**
**जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।**
**विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।**
**लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों।।४८।।**

भव में लीन हैं, वे भी ऐसे हैं - ऐसा कहते हैं। भाषा ली है 'भवलीन' (ऐसी भाषा ली है)। उसमें (कलश में) कुबुद्धि लिये थे। आहाहा! इस प्रकार से बात की। कुबुद्धिरूप से जरा सा ख्याल किया। यहाँ संसारी कहा, परन्तु कहते हैं कि भवलीन (और सिद्ध में) किस प्रकार से अन्तर कहूँ? अन्तर तो चैतन्य भगवान, अन्तर (में) तो पूर्ण सम्पदा का धनी बिराजमान है। ऐसा वैभव तो बाहर दुनिया में कहीं है ही नहीं। ऐसा वैभव तुझमें है। आहाहा!

**यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है।** आहाहा! कार्यसमयसार (अर्थात्) सिद्ध। कारणसमयसार (अर्थात्) आत्मद्रव्य। आहाहा! एक शब्द ऐसा आता है, बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) आता है कि अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग पारायण कर ले, ऐसी आत्मा की ताकत है। बारह अंग का पर्यटन अन्तर्मुहूर्त में कर दे! गजब बात है! एक समय में जाने, वह भिन्न वस्तु, परन्तु वह असंख्य समय में बारह अंग की बात पर्यटन कर ले। बहिन में है। गोम्मटसार शास्त्र में भी है। यह बात जानने में आयी, उसके अनन्तवें भाग कथन में आयी। आहाहा! उसके अनन्तवें भाग तो सुनने में आयी। आहाहा! उससे अनन्तवें भाग रचना हुई। पंचाध्यायी में तो ऐसा कहते हैं कि

बारह अंग में तो स्थूल बात है। पंचाध्यायी में ऐसा पाठ है। बारह अंग, बारह अंग से विशेष श्रुतज्ञान क्या होगा ? आहाहा ! बारह अंग में स्थूल बात आयी है। आहाहा ! तीन लोक के नाथ की सूक्ष्म बातें उसमें रह गयी है। आहाहा ! वह तो अनुभवगम्य है। चैतन्य की चमत्कारिक चीज़ चमत्कार देखे उसे पता पड़े। बाकी वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। आहाहा !

वह कहते हैं। **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** आहाहा ! शरीर को प्रपंच कहा। शरीर के प्रपंच। शरीर की अनेक पर्याय होती है, वह आत्मा के आधीन नहीं है। आहाहा ! उस **शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं।**

**निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा ! गति का त्याग और सिद्धस्वरूप का ग्रहण भी जिसमें नहीं... आहाहा ! पर के त्याग-ग्रहण तो उसमें है ही नहीं। पैसा, परमाणु, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, मकान, पैसे का तो आत्मा को ग्रहण भी नहीं और आत्मा को त्याग भी नहीं। त्याग-ग्रहण रहित आत्मा भगवान है। आहाहा ! यह सैंतालीस शक्ति में आता है। ओहोहो ! समयसार, गजब बात है ! एक-एक श्लोक और एक-एक कलश (गजब है) !

**श्रोता :** नियमसार स्वयं के लिये बनाया, इसलिए सूक्ष्म में सूक्ष्म बात आयी।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वयं के लिये बनाया है। आहाहा !

**निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण...** मनुष्य का शरीर ग्रहण और त्याग आत्मा में है ही नहीं। आहाहा ! मनुष्य का शरीर, नारकी का शरीर, देव का शरीर, तिर्यंच का शरीर ग्रहण करना और छोड़ना, यह आत्मा में तीन काल में है ही नहीं। आहाहा ! परद्रव्य का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में ऐसा गुण है कि पर के ग्रहण-त्यागरहित ही वह स्वभाव त्रिकाल बिराजता है। आहाहा !

**जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण**

**के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा! नारकी आदि गति की पर्याय जो उदयभाव। यह मनुष्य (शरीर), वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य, वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य तो जड़ है। यह तो पारिणामिकभाव से है और मनुष्यगति उदयभाव से है। आहाहा! यह उदयभाव तो आत्मा की पर्याय में है। शरीर तो पारिणामिक भाव से त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय (स्वरूप है)। द्रव्य-गुण और पर्याय त्रिकाल पारिणामिकभाव से है। आहाहा!

भगवान आत्मा... आहाहा! कहते हैं **नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** आहाहा! मनुष्यभव ग्रहण किया और मनुष्यभव छोड़ा, प्रभु! (यह) आत्मा में नहीं। आहाहा! व्यवहारनय की तो मसकरी की है। पहली बारह गाथा में मसकरी की है। पहले आया न? भाई! बारह गाथा में। आहाहा! इसमें है। बारह गाथा है न?

**परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** आहाहा! इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं, जड़ इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं। भावेन्द्रिय पर्याय में है, उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। (समयसार) ३१ गाथा में कहा। **जो इंदिये जिणित्ता** भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भगवान—सब इन्द्रिय में जाते हैं। भगवान की वाणी और भगवान, पूरा लोक इन्द्रिय में जाता है। इस लोक की ओर का लक्ष्य छोड़कर अपने अतीन्द्रिय (स्वरूप में) जहाँ आता है, **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** अपने ज्ञानस्वभाव से जो अधिक है — ऐसा जो **मुणदि** अर्थात् जानता है। **तं जिदिंदियं साहू** उसे सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय कहते हैं। आहाहा! इस इन्द्रिय को जीता और बाहर का भोग नहीं लिया, ऐसा नहीं। आहाहा! द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय - तीन से भिन्न ज्ञानस्वभाव का जिसने अनुभव किया, वह इन्द्रिय से पार है। आहाहा! यहाँ भी यह कहा। **सहज ज्ञानज्योति द्वारा समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं।**

विशेष कहेंगे.. (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५२, श्लोक-७२, गाथा-४८, बुधवार, श्रावण शुक्ला २, दिनांक २७-०८-१९८०

नियमसार, गाथा ४८। थोड़ा चला है।

मूल में सार तो पहली ही कलश-टीका है न? नमः समयसाराय: पहला ही कलश। **स्वानुभूत्या चकासते** उस अनुभूति से प्रकाशमान हो, ऐसा है। मांगलिक का पहला ही कलश। '**नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते। चित्स्वभावाय भावाय**' आत्मा अन्तर के अनुभव से प्रकाशमान होता है। दूसरा कोई इसका उपाय नहीं है। भले दूसरी लाख बात करे, 'लाख बात की बात..' आता है न ढाल में? 'निश्चय उर लाओ, छोड़ी जगत द्वन्द फन्द...' द्वैतपना भी छोड़ो। 'निज आतम उर ध्याओ।' अन्दर निज आत्मा परमात्मस्वरूप से विराजमान है, उसे ध्याओ, उसका ध्यान करो। उसका लक्ष्य करके उसमें रमो। यह पूरे बारह अंग का कहने का सार यह है।

वह यहाँ कहते हैं कि **जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** सिद्ध में पाँच शरीर के प्रपंच नहीं हैं। आहाहा! शरीर को प्रपंच कहा है। **निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** नारकी और नारकी की गति तथा मनुष्यगति, उसका त्याग और उसका ग्रहण, वह स्वरूप में नहीं है। आहाहा! परवस्तु का त्याग-ग्रहण तो इसके स्वरूप में है ही नहीं। रजकण से लेकर वैमानिकदेव की ऋद्धि या दुनिया की कोई भी सम्पत्ति नहीं। अपने अतिरिक्त किसी परचीज़ के ग्रहण और त्याग रहित इसका स्वभाव है। आहाहा! कठिन बात! अनन्त में रहना और अनन्त के ग्रहण-त्यागरहित है। अनन्त पदार्थ में रहता है, क्षेत्र एक। (वास्तव में तो) एक क्षेत्र भी नहीं, क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न है। आकाश की अपेक्षा से एक क्षेत्र कहा जाता है। आहाहा! भिन्न-भिन्न चीज़। अपने में पर का कुछ नहीं है।

यह यहाँ कहते हैं। **त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा!

राग का त्याग और **स्वरूप का ग्रहण, इसका भी उसमें अभाव है।** आहाहा! गजब बात है। यह वस्तु ली और मैंने छोड़ी, यह तो इसकी वस्तु में (आत्मा में) ही नहीं। आत्मा के अतिरिक्त अनन्त चीज़ें, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता और ग्रहण-त्याग करे, ऐसा तो उसमें है ही नहीं। आहाहा! गजब बात! अनन्त पदार्थों के मध्य में रहा होने पर भी परचीज़ को स्पर्श नहीं करता और पर के ग्रहण-त्याग तो इसमें है ही नहीं। ऐसी त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति है। तदुपरान्त **राग का त्याग और स्वरूप का ग्रहण वह भी यथार्थ में नहीं है।** आहाहा! गजब बात! चीज़ कहाँ पड़ी है और परिभ्रमण कहाँ कर रहा है!

यहाँ यह कहते हैं। **नर-नारकादि पर्यायों के...** देव आदि पर्यायों के **त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,...** आहाहा! गतिमात्र का ग्रहण और त्याग। जो गति है, वह पर्याय में, हों! गति अर्थात् यह (शरीर) नहीं। यह मनुष्यगति नहीं; यह कहीं मनुष्यगति नहीं। यह तो मनुष्य शरीर है। यह तो पारिणामिकभाव से जड़ चीज़ स्वयंसिद्ध स्वतन्त्र है। इसकी तो यहाँ बात भी नहीं है। इसके ग्रहण-त्याग की बात भी नहीं है। **अन्तर में राग और द्वेष का त्याग और स्वरूप का ग्रहण, इससे भी प्रभु शून्य है।** आहाहा! जैसे सिद्ध में त्याग-ग्रहण का अभाव है, ऐसा ही भगवान आत्मा... आहाहा! विकार का त्याग और निर्विकारी चीज़ का ग्रहण, (ऐसा भी वास्तव में नहीं है)। **वह चीज़ सदा ग्रहण हुई ही है। सदा ग्रहण ही है।** ग्रहण और त्याग उसमें नहीं है। ग्रहण-त्याग उसमें नहीं है। आहाहा! गजब बात!

जैनदर्शन के दो सिद्धान्त सूक्ष्म हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! एक पदार्थ किसी भी दूसरे पदार्थ को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! इस शरीर को आत्मा स्पर्श नहीं करता। आत्मा, शरीर को स्पर्श नहीं करता और क्रमबद्ध। द्रव्य में क्रमसर, क्रमसर, क्रमवर्ती, क्रमबद्ध, क्रमनियमित सब एकार्थ है। एक के बाद एक क्रमबद्धपर्याय है परन्तु उसकी दृष्टि—क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाले की दृष्टि ज्ञायकभाव पर दृष्टि है। इस कारण ज्ञायकभाव पर के ग्रहण-त्याग से शून्य है। आहाहा! ऐसी बात।

यहाँ तो कन्दमूल नहीं खाना, हरितकाय नहीं खाना, व्रत पालना, छह परवी ब्रह्मचर्य पालना, अमुक नहीं खाना... यह सब पर की बातें हैं, बापू! खाये कौन? पीये कौन? स्पर्श नहीं करता, उसे खाये-पीये कौन? आहाहा! परन्तु यह बात अन्तर में वास्तविक रीति से,

राग से पृथक् हुए बिना यथार्थरूप से अन्दर में नहीं बैठती। आहाहा! भले चाहे जितना राग हो, प्रशस्तराग हो, परन्तु उस राग से पृथक् हुए बिना चैतन्यस्वरूप भगवान, राग के ग्रहण-त्यागरहित, ऐसी चीज़ है, उसका भान हुए बिना, उसका अनुभव हुए बिना सब शून्य है। आहाहा! यह यहाँ कहा है। ग्रहण-त्याग से शून्य।

**परमतत्त्व में स्थित...** परमतत्त्व भगवान में स्थित **सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्ध -स्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ...** है। आहाहा! वह तो कारणपरमात्मा को जानने में समर्थ है और प्रगट पर्याय को जानने में एकसाथ समर्थ है। जानने का स्वभाव है, वह किसे नहीं जाने? और उसे अवधि क्या? कि भाई! दो समय या तीन समय लगे, ऐसी अवधि नहीं है। एक ही समय में स्व और पर को जाने। अपने में रहकर, पर को स्पर्श किये बिना, अपने क्षेत्र में रहकर... अपने क्षेत्र में जो शरीर है, वहाँ आत्मा है, परन्तु वह क्षेत्र भिन्न है। शरीर का क्षेत्र भिन्न है, आत्मा का क्षेत्र भिन्न है। आहाहा! ऐसी बात है।

**ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं—ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप है क्योंकि पर को कभी स्पर्शित ही नहीं हुआ है। **समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं...** यह कैसे होगा? कैसे होगा? ऐसे संशय की गन्ध नहीं है। ऐसा प्रभु चैतन्य नि:सन्देह, निष्कारण, पर के कारण बिना अपने निज कारणपरमात्मा से साबित-सिद्ध है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना, उसमें लीनता करना, यह पूरे बारह अंग का सार है, बाकी सब बाहर की बातें, धमाल.. धमाल..। आहाहा! बाहर में ऐसा लगे, पाँच-दस लाख रुपये खर्च करे, बड़ी धमाल शोभायात्रा निकाले और मानो लोगों को ऐसा... नारियल न, चाँदी के नारियल सिर पर चढ़ाकर सैकड़ों महिलाएँ (निकले)।... ओहोहो! क्या है? प्रभु! राग का त्याग-ग्रहण स्वरूप में नहीं तो इस बाहर की चीज़ का ग्रहण-त्याग... आहाहा! नीचे बर्तन पड़ा है, उसे उठाना या रखना, वह तो आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त कोई चीज़ अपने से दूर हो या नजदीक हो, परन्तु उसने कभी भी ग्रहण-त्याग किया ही नहीं। आहाहा! पूरे दिन प्रवृत्ति (करे), उसमें कहे यह अधिकार नहीं। चन्दुभाई! पूरे दिन प्रवृत्ति में तुम्हारा अधिकार नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं—ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,...** आहाहा! यह राग था और राग मैंने छोड़ा, यह संशय भी दूर हो गया।

आहाहा! मुझमें राग है और मैंने राग छोड़ा, ऐसा संशय है नहीं। वस्तु में ऐसा संशय नहीं है। आहाहा!

**मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के...** आहाहा! मलजनित। इन क्षयोपशम और उपशम को सबको मलजनक कहते हैं क्योंकि जिसमें कर्म की अपेक्षा लागू पड़ती है, उसे यहाँ कर्मजनित कहने में आया है। आहाहा! भगवान! अपने स्वरूप में पर की कोई अपेक्षा नहीं कि कर्म का क्षय हुआ, इसलिए आत्मा को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! यहाँ तो पूरे दिन कहे, चार घातिकर्म का नाश होवे तो केवलज्ञान होता है। घातिकर्म ने रोका है। आत्मा का ज्ञान घातिकर्म ने घात किया है। आहाहा! घात भी किया नहीं और छोड़ा भी नहीं। आहाहा! ये चार घातिकर्म आत्मा ने किये नहीं और उनका नाश भी किया नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान भिन्न, निर्लेप, अन्दर भिन्नस्वरूप पड़ा है। आहाहा!

**मलजनक क्षायोपशमिकादि...** जो परभाव पर्याय में है, उनके आश्रय से तो मल उत्पन्न होगा। आहाहा! पर का आश्रय तो एक ओर रहा। शरीर-वाणी-मन, देव-गुरु-शास्त्र तो पर रहे, परन्तु अपनी पर्याय में विभावभाव है, वह भी मलजनित है। आहाहा! कर्म की अपेक्षा लागू पड़ती है। भले उदय में विद्यमान निमित्त है, उपशम आदि में निमित्त का अभाव, इतनी अपेक्षा से वे मलजनक हैं। आहाहा! भगवान में इतनी अपेक्षा लगाना, वह भी एक दोष है, कहते हैं। आहाहा! अब ऐसा मार्ग! यहाँ कहे एकेन्द्रिय की दया पालो और हरितकाय का घात मत करो, हरितकाय को खाओ नहीं, उसमें धर्म हो गया। आहाहा! मिथ्यात्व का पोषण है। परवस्तु का क्षण में और पल में त्याग-ग्रहण किया, ऐसी बुद्धि में मिथ्यात्व (अर्थात्) सत्स्वरूप भगवान से विरुद्ध असत्य मिथ्या अभिप्राय का पोषण होता है। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त किसी परचीज़ का मैं कर्ता हूँ और मुझमें है, इसलिए छोड़ता हूँ। है नहीं, उसमें छोड़ूँ कहाँ से आया? आहाहा! तेरी चीज़ में वह है ही नहीं न! कर्म को छोड़ूँ, यह भी तुझमें नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो **क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण...** यहाँ तो चारों भावों को मलिनभाव कहा। चाहे—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। चारों को आवरण संयुक्त कहा, चार से आत्मा को अगोचर कहा। पहले (३८ गाथा में) आ गया है। चार भाव से आत्मा अगम्य है। उसका अर्थ कि चार भाव के आश्रय से वह जानने में नहीं

आता। चार भाव आवरण संयुक्त हैं क्योंकि एक में—उदय में निमित्त है, तीन में निमित्त (के अभाव) की अपेक्षा है। वह वस्तु नहीं, वस्तु निरपेक्ष है। निरपेक्ष को किसी की अपेक्षा लागू नहीं पड़ती। ऐसा भगवान अन्दर विराजता है। आहाहा! उस भगवान का पता लेकर.. आहाहा! उसमें स्थान जमाकर, उसमें धाम जमाकर लीन होना, वह वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! बाकी सब बातें हैं।

यहाँ तो कहा, **क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं...** चार विभाव-स्वभाव उसमें है ही नहीं। क्षायिक और क्षयोपशमभाव भी नहीं। पर्याय है न? पर्याय, द्रव्य में कहाँ है? पर्याय जो है... शरीर, कर्म, मन और वाणी तो दूर क्षेत्र, दूर द्रव्य, दूर काल, दूर भाव-ऐसे वर्तते हैं। आत्मा के अतिरिक्त मन, वाणी, देह / शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, स्वयं के कारण से वर्तते हैं। **स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा, मकान, वह संसार नहीं है। संसार आत्मा की पर्याय में 'परवस्तु मेरी, मैं ग्रहण कर सकता हूँ'— यह मिथ्यात्वभाव संसार है।** पर्याय को छोड़कर कहीं मिथ्यात्व रहता नहीं है। आहाहा! **आत्मा का संसार, आत्मा की पर्याय से एक समय भी दूर नहीं रहता।** आहाहा!

**'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के...** आहाहा! जड़कर्म और रागादिभाव के **अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं;...** आहाहा! विशुद्ध तो शुभभाव को भी कहते हैं। यहाँ वि-शुद्ध। शुद्ध में विशुद्ध। इस प्रकार से आत्मा शुद्ध है। आहाहा! उसे सबेरे अधसेर चाय की उकाली मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! उसमें भुजिया और चाय सबेरे खाने को मिले... आहाहा!

**मुमुक्षु :** वे इसे स्पर्श ही कहाँ करते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मानता है न? मानता है। स्पर्श कहाँ करते है? आहाहा!

पर को स्पर्श नहीं करता, यह तीर्थंकर की बात, इसके घर की है। दुनिया में केवलज्ञानी के अतिरिक्त परमात्मा वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव के अतिरिक्त ऐसा किसी ने कहीं कहा नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, ऐसी बात भगवान के अतिरिक्त दूसरे किसी ने कही नहीं है। वाड़ा में भी यह बात नहीं चलती। आहाहा! वाड़ा में भी यह करो.. यह करो.. यह करो.. यह करो.. आहाहा! एक यह और एक क्रमबद्ध। आहाहा! समय-समय में पर्याय क्रमसर, क्रमबद्ध, क्रमनियमित, जिस नियम

से आनेवाली है, वैसी पर्याय आती है। उसकी दृष्टि द्रव्य पर होनी चाहिए। आहाहा! यह शब्द ही सुनने में आया नहीं। सम्प्रदाय में तो यह भी नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं '**विशुद्धात्मा**' उसे किसी की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! दया-दान का राग करना, वह तो आत्मा में नहीं परन्तु दया-दान का त्याग करना, वह भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! गजब है। प्रभु तो चैतन्यबिम्ब है। किसका त्याग करे? किसे ग्रहण करे? कभी किसी को स्पर्श भी नहीं किया, चुम्बन भी नहीं किया.. आहाहा! तो किसका त्याग-ग्रहण करे? ऐसी चीज़ पर दृष्टि गये बिना मिथ्यात्व का, मल का नाश नहीं होता। आहाहा! बाहर से भले कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को छोड़े, सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र को माने, वह तो नौवें ग्रैवेयक गये हुए अभव्य भी मानते हैं। नौवें ग्रैवेयक में गया, तब अभव्य भी देव-गुरु-शास्त्र को मानता था। स्व-पर (भेदज्ञान) नहीं। आहाहा! वह श्रद्धा भी कोई आत्मज्ञान नहीं है। पर की श्रद्धा और पर का ज्ञान कहीं आत्मज्ञान नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से**... आहाहा! स्पष्ट नहीं किया। क्यों नहीं किया? **किसी नय के...** आहाहा! **किसी नय के बल से ( किसी नय से ) शुद्ध है**। आहाहा! **किसी नय से शुद्ध है। वह नय ही नय है - शुद्धनय, वही नय है**। आहाहा! अपने को परमात्मस्वरूप से पकड़ना, वही नय, नय है। व्यवहारनय तुच्छ है। वह व्यवहारनय, उसका विषय है परन्तु बिल्कुल आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! भाषा कैसी है सब? कि **किसी नय के बल से...** किसी नय के बल से। वास्तविक जिसे नय कहते हैं, उस शुद्धनय को नय कहते हैं। इसीलिए किसी नय से (ऐसा) कहा है। अशुद्ध और व्यवहारनय, वह नय ही नहीं है; कथनमात्र बात है। आहाहा!

**किसी नय के बल से ( किसी नय से ) शुद्ध है**। किसी नय से अर्थात् **अपने स्वरूप की दृष्टि से शुद्ध ही है। उसे और नय लागू करना या यह करना, वह तो किसी नय ( अर्थात् ) वह नय**। त्रिकाल आनन्दकन्द प्रभु का सम्यग्दर्शन प्रगट करो, जिससे जन्म-मरण का अन्त आता है। इसके बिना लाख क्रियाकाण्ड करे, रात्रिभोजन त्याग करे, आहार त्याग करे, महीने-महीने के अपवास करे, उसमें कुछ धर्म नहीं है। आहाहा! करोड़ों रुपये खर्च करके लाख मन्दिर बनावे। बाहर में धमाल करे। ओहोहो! अमुक व्यक्ति ने पाँच लाख लिखाये, अमुक ने दस लाख लिखाये। वहाँ लोगों को रोमांच हो जाता है। आहाहा! परन्तु क्या है प्रभु! पाँच लाख, दस लाख और करोड़ तथा दो करोड़, वह तो

धूल है। उसे तो कभी आत्मा ने स्पर्श भी नहीं किया है। आत्मा तो उस चीज़ को छूता भी नहीं है न, तो उसने छोड़ा कहाँ से? तो उसने दिया, ऐसा कैसे आया? उस चीज़ को स्पर्श नहीं करता तो उस चीज़ को दे, (यह कहाँ रहा)? आहाहा! वह उसके कारण से जाती है, आती है। ऐसी कठोर चीज़ है, प्रभु! वीतराग का मार्ग बहुत... कोई कहे कि परन्तु व्यवहारनय है नहीं? है न, सब कथनमात्र है। आहाहा! कहनेमात्र है, जाननेमात्र है। कहनेमात्र का अर्थ जाननेमात्र है। आदरनेमात्र नहीं। आदरने (योग्य) त्रिकाली ज्ञायकभाव अत्यन्त शुद्ध... आहाहा!

## श्लोक-७२

**( अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं- )**

( शार्दूलविक्रीडित )

शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,
शुद्धं कारण–कार्य–तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।
इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,
सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्।।७२।।

---

( वीरछन्द )

**मिथ्यादृष्टि को सदैव ये शुद्ध-अशुद्ध विकल्प रहें।**
**ज्ञानी को तो सदा कार्य अरु कारणत्व भी शुद्ध रहें॥**
**परमागम का अतुल अर्थ जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जाने।**
**सारासार विचारक धी से, उनको हम वन्दन करते॥७२॥**

**श्लोकार्थः—शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना* वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को तो सदा ( ऐसी मान्यता होती है कि ) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं॥७२॥**

* विकल्पना=विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।

## श्लोक-७२ पर प्रवचन

**अब ४८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं-**

**शुद्धाशुद्धविकल्पना भवति सा मिथ्यादृशि प्रत्यहं,**
**शुद्धं कारण-कार्य-तत्त्वयुगलं सम्यग्दृशि प्रत्यहम्।**
**इत्थं यः परमागमार्थमतुलं जानाति सद्दृक् स्वयं,**
**सारासारविचारचारुधिषणा वन्दामहे तं वयम्।।७२।।**

आहाहा! यह मुनि की भाषा। **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! एकरूप भगवान त्रिकाली, उसमें शुद्ध और अशुद्ध, ऐसे भेद पर्यायदृष्टि जिसे रहती है... आहाहा! वह मूढ़ जीव है। आहाहा! क्योंकि शुद्ध, अशुद्ध की अपेक्षा रखता है। यह शुद्ध था, शुद्ध हुआ, तो अशुद्ध की अपेक्षा रह गयी। अशुद्ध का त्याग किया तो अशुद्ध का त्याग और शुद्ध का ग्रहण (हुआ) आहाहा! वह **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** *विकल्पना=विपरीत कल्पना; मिथ्यामान्यता; अनिश्चय, शंका; भेद करना।* आहाहा! बहुत कठोर बात, बापू! ऐसी मान्यता **मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! एक समय भी पर की कर्ताबुद्धि और राग की त्यागबुद्धि बिना इसकी दृष्टि एक समय भी रही नहीं। आहाहा! पर की कर्ताबुद्धि, और रागादि का ग्रहण-त्याग, ऐसी बुद्धि मिथ्याबुद्धि है। आहाहा! कहा? कि **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** शुद्ध-अशुद्ध जो पर्याय के भेद.. आहाहा! **वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! प्रत्येक समय ज्ञायकभाव का (दृष्टि में) अभाव होने से परसन्मुख की चीज़ में ग्रहण-त्याग की बुद्धि, **राग मेरा तो है नहीं ऐसा त्याग, ऐसी बुद्धि पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि को होती है।** आहाहा! कठोर काम।

**मुमुक्षु :** अधिक भाग ऐसा ही है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुनिया में यही है। दुनिया किसे कहे? आहाहा!

**शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** विपरीत कल्पना। अरे! शुद्ध, यह विपरीत कल्पना! आहाहा! यह शुद्ध पर्याय की अपेक्षा से। यह अधिकार शुद्धभाव अधिकार है।

यह शुद्धभाव, पर्याय की बात नहीं है। यह शुद्धभाव ध्रुव का अधिकार है। यह शुद्धभाव जो है, वह ध्रुव का अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् यह पर्याय का अधिकार नहीं है। आहाहा! **शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना...** ऐसी पर्यायबुद्धि हुई। आहाहा! कठिन काम है, प्रभु! बात कान में पड़ना मुश्किल पड़े। आहाहा! उसमें अन्दर चले जाना, चैतन्य में अन्दर चले जाना। आहाहा! जहाँ कोई नहीं, जिसमें पर्याय नहीं, भेद नहीं। शुद्ध-अशुद्ध का भेद जिसमें है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ में न रहना, वह मिथ्यादृष्टि है। **सम्यग्दृष्टि को तो...** आहाहा! इसमें भी सदा ही प्रयोग किया है। उसमें भी 'सदा' ही प्रयोग किया है।

**शुद्ध-अशुद्ध की जो विकल्पना, वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है;...** आहाहा! क्षण में और पल में पर का त्याग-ग्रहण, यह बुद्धि अज्ञानी को सदा-निरन्तर रहती है। जो आत्मा, पर के त्याग-ग्रहण रहित है, परन्तु यह त्याग-ग्रहण की बुद्धि अज्ञानी को सदा ही रहती है। आहाहा! कहो, राजपाट छोड़े, कुटुम्ब-कबीला छोड़े तो संसार छोड़ा? प्रभु! उसे संसार नहीं कहते। संसार तो एक मलिन अवस्था है। मलिन अवस्था द्रव्य के अतिरिक्त कहीं नहीं रहती। आहाहा! स्त्री, पुत्र, परिवार, व्यापार-धन्धा, वह संसार नहीं है; वह तो परचीज़ है। आहाहा! पर को और आत्मा को स्पर्श नहीं है। आहाहा! कठिन काम है। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता और ये सब पिण्ड पड़े हैं, परमाणु के पिण्ड / जत्था पड़े हैं, उनमें एक-एक परमाणु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से भिन्न काम करता है। दूसरे परमाणु के साथ मिलान नहीं है। उसका क्षेत्र भिन्न, द्रव्य भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न। आहाहा!

प्रत्येक परमाणु के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न हैं, तो तू तो आत्मा है न, प्रभु! वह तो जड़ है। जड़ के भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न। स्कन्धरूप से देखने में आते हैं, तथापि अन्दर के परमाणु... ८७ गाथा में कहा है कि स्कन्ध पिण्ड में रहने पर भी परमाणु अपनी पर्याय को करते हैं, पर को स्पर्श नहीं करते। आहाहा! स्कन्ध में रहे हुए परमाणु अपना काम करते हैं। अपनी पर्याय परिणमित करते हैं। पर-परमाणु के कारण से अपने में कुछ हुआ, दो गुण स्निग्धता से चार गुण स्निग्धता हुई, वह चार गुण स्निग्धता हुई। वह चार गुण स्निग्धता परमाणु के स्कन्ध में हुई, यह बात अत्यन्त झूठ है। आहाहा! ऐसी बात कान में पड़ना मुश्किल है। अन्दर जँचना (तो महामुश्किल है)। आहाहा!

**जो विकल्पना वह मिथ्यादृष्टि को सदैव होती है; सम्यग्दृष्टि को...** आहाहा! है ? **तो सदा ( ऐसी मान्यता होती है कि ) कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** आहाहा! कारणतत्त्व त्रिकाली शुद्ध है, कार्यतत्त्व वर्तमान शुद्ध। केवलज्ञान, वह शुद्ध है और उसका कारणतत्त्व मोक्ष का मार्ग, वह भी शुद्ध ही है। आहाहा! परन्तु फिर भी वह व्यवहारनय का विषय है। मोक्ष का मार्ग और मोक्ष, वह पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! यहाँ तक ले जाना! भटकने के काम के कारण निवृत्ति नहीं मिलती। भटकने के काम के कारण... आहाहा! यह वाजिंत्र बजता है, उस वाजिंत्र में हाथ छूता है; इसलिए बजता है, ऐसा नहीं है। उसे हाथ छूता ही नहीं। कौन माने ? पागल जैसा लगे। आहाहा!

**सम्यग्दृष्टि को तो...** सत्यदृष्टिवन्त को **सदा कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** आहाहा! त्रिकाली शुद्ध है और पर्याय भी शुद्ध ही है। पूर्ण पर्याय सिद्ध, वह भी शुद्ध ही है। आहाहा! अशुद्ध था और अशुद्ध टला, ऐसा भी नहीं है। इतनी अपेक्षा भी नहीं है। वह तो त्रिकाल... ऐसा कहा न ? **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों सदा शुद्ध हैं।** ऐसा आया न ? सदा शुद्ध है। आहाहा! पहले अशुद्ध था और अशुद्धता टाली, 'ऐसा नहीं' है या नहीं अन्दर ? **सदा...** दोनों में। मिथ्यादृष्टि में भी 'सदा' (शब्द) है, सम्यग्दृष्टि में 'सदा' है। ओहोहो!

**कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं।** प्रभु! त्रिकाल भी शुद्ध है और उसकी पर्याय भी शुद्ध ही है। आहाहा! अशुद्ध को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। पर्याय में है परन्तु द्रव्य स्पर्श नहीं करता। द्रव्य तो शुद्धाशुद्धपर्याय से रहित है। आहाहा! **इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को...** आहाहा! ऐसा कौन माने ? ऐसा कौन माने ? **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिनेश्वरदेव अरिहन्त परमात्मा वर्तमान में मौजूद हैं। महाविदेह में वर्तमान मौजूद हैं और महाविदेह में भी यह आत्मा अनन्त बार गया। भगवान के समवसरण में अनन्त बार गया परन्तु स्वयं स्वसन्मुख दृष्टि नहीं की। आहाहा! पर की दृष्टि रही कि भगवान ऐसे हैं... भगवान ऐसे हैं.. भगवान ऐसे हैं और उनकी दृष्टि करने से लाभ होगा। यह मिथ्यादृष्टि है। अर..र..! यह गजब बात! कठिन लगे। सम्प्रदाय में तो यह चलता नहीं कि भगवान पंच परमेष्ठी का स्मरण, वह अशुद्ध, मलिन और बन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली...** यह क्या कहा ? भगवान की वाणी जो परमागम है, 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे', 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे...' आहाहा ! 'रचि आगम भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा ! वह यहाँ कहे, इस परमागम का सार। यह परमागम का सार है। जो आगम का ज्ञान करके अशुद्धता से लाभ होता है और अशुद्धता मुझमें है, यह पर्यायबुद्धि रहे, उसने परमागम का सार देखा नहीं है। आहाहा !

वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में एक भवतारी इन्द्र जिनकी सभा में जाते हैं। एक भवतारी इन्द्र सभा में जाता है। इन्द्र किसे कहते हैं ? बापू ! बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव, ऐसे बत्तीस लाख विमान का स्वामी। बिल्कुल माने नहीं (कि) यह मेरी चीज़ है और मैं स्वामी हूँ, ऐसा बिल्कुल माने नहीं। आहाहा ! वह भगवान के समवसरण में सुनने जाता है।

तब कोई ऐसा कहे, पर से कुछ होता नहीं तो सुनने किसलिए जाना ? आहाहा ! समझ में आया ? वे वढ़वाणवाले केशूभाई हैं न ? उन्हें किसी ने प्रश्न किया। केशूभाई बुद्धिवाला व्यक्ति है, उनसे दूसरे ने प्रश्न किया कि तुम निमित्त को मानते नहीं और निमित्त के पास बारम्बार जाते हो, यह तो विरुद्ध हो गया। निमित्त से होता नहीं, ऐसा मानो और बारम्बार सोनगढ़ जाते हो। तब निमित्त से लाभ हुए बिना किस प्रकार जाते हो ? (केशूभाई ने) कहा कि प्रभु ! हम निमित्त से नहीं होता, यह दृढ़ करने के लिये जाते हैं। आहाहा ! वढ़वाणवाले केशूभाई है न ?

**मुमुक्षु :** यह दृढ़ता तो निमित्त कराता है न ? कि निमित्त से कुछ नहीं होता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बिल्कुल नहीं.. बिल्कुल नहीं। निमित्त छूता नहीं, निमित्त की वाणी छूती नहीं। निमित्त की वाणी अन्दर पड़े तो सम्यग्ज्ञान हो, ऐसा नहीं है। आहाहा ! गजब बात है, बापू ! वीतराग जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ की वाणी कहीं नहीं है। आहाहा ! विपरीत वाणी में जगत को चढ़ा दिया है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि वह **कारणतत्त्व और कार्यतत्त्व दोनों शुद्ध हैं। इस प्रकार परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के...** भाषा क्या कहते हैं ? परमागम में से... आहाहा !

**अतुल अर्थ को सारासार के...** आहाहा! चतुर पुरुष, ज्ञानी (पुरुष) इन परमागम में से **अतुल अर्थ को सारासार के...** निकालकर। आहाहा! परमागम में से ऐसा निकाला। परमागम ने ऐसा कहा, आहाहा! परमागम ने ऐसा कहा तो... ऐसा लिया न? आहाहा! **परमागम के अतुल अर्थ को सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! जो आगम सुनकर अन्तर के निज अवलम्बन में लाभ माने, वह आगम का सार है। बारह अंग का सार अनुभूति करना, वह है। कोई बारह अंग पढ़ा, इसलिए विशेष है, ऐसा नहीं है। यह लिखा है। बारह अंग पढ़ा है, वह कोई विशेष है, ऐसा नहीं है। वह तो विकल्प है।

अन्दर में भगवान पूर्णानन्द की सत्ता, अनादि एकरूप सत्ता रखनेवाला प्रभु! उसे जिसने पकड़ लिया है, वह आगम के सम्पूर्ण सार में से यह सार निकाल लिया है। आगम में यह सार कहना था। आहाहा! शास्त्र में यह कहना था। कोई कहे, भगवान की वाणी ऐसी है, वैसी है... सब है, प्रभु! वीतराग की वाणी में सार-असार के विचारवाले कि यह असार है और (यह) सार है, उसके विचारवाली... आहाहा! **सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! सुन्दर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान द्वारा। ओहोहो! बारह अंग में लाखों-करोड़ों बात आवे। कथानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग की अनेक बातें आवे, परन्तु **सारासार के विचारवाली...** सुधर्मी उसमें से सार निकालता है कि परमागम ऐसा कहता है... आहाहा! कि स्वयं आत्मा शुद्ध है, त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा कहता है। सुनकर चाहे जितना सुने, परन्तु भगवान अशुद्धता से टलकर शुद्धता (प्रगटे), इतनी अपेक्षा भी उसे नहीं है। आहाहा! वह तो एक भगवान पूर्णानन्द का नाथ एकरूप शुद्ध त्रिकाल है। गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व का सेवन करता है, तो भी द्रव्य में कुछ नहीं है। द्रव्य तो शुद्ध भगवान परमेश्वर है। आहाहा! आगम में से यह निकाला। परमागम में से यह निकाला। इसका अर्थ कि परमागम ने यह कहा है। आहाहा!

परमागम। अकेला आगम शब्द प्रयोग नहीं किया। परमागम—ऐसा कहा न? दिगम्बर शास्त्र, वे परमागम हैं। प्रभु (अन्य जीवों) को दुःख लगे, क्या करें? वीतराग के परमागम तो दिगम्बर शास्त्र, वे परमागम हैं। बाकी दूसरे कहें, वे परमागम नहीं हैं। आहाहा! बहुत दुःख लगे, प्रभु! तू कौन है? **तुझे अशुद्धता कहना, अशुद्धता टली—ऐसा कहना, वह तुझे शोभता नहीं। आहाहा! प्रभु! तुझे अशुद्धता थी और टली, ऐसा**

**कहना शोभता नहीं, नाथ!** आहाहा! उससे दूसरी विरुद्ध बातें करनेवाले सम्प्रदाय के नाम से चलावें, इतने व्रत करे तो ऐसा हो, अट्ठम करे तो ऐसा हो, उसमें अट्ठम पर एक पोसरी चढ़ावे तो पच्चीस उपवास का लाभ हो। आहाहा! ऐसा जो चला दिया, उसने आगम का सार जाना नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा ने कहे हुए आगम, त्रिलोकनाथ ने कहे हुए दिव्यध्वनि आगम, वहाँ सारासार के विचार करनेवाली **सुन्दर बुद्धि द्वारा जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है,...** स्वयं जानता है। मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ, ऐसा स्वयं जानता है। मुझमें अशुद्धता थी और अशुद्धता मिटी, ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात! आहाहा! कितनी बात ली?

देव ने ऐसा कहा;

वाणी में भी यह कहा;

वाणी में से सारासार का विचार निकालकर यह निकाला।

ये तीन बातें हुई न? देव-सर्वज्ञ की वाणी में भी यह सार कहा—शुद्ध चैतन्यमूर्ति। और शुद्ध-अशुद्ध की बात छोड़ दे। आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा, वाणी में ऐसा आया और सम्यग्दृष्टि में ऐसा निकाला। आहाहा! आगम में से यह बात निकाली, वह आगम को जानता है। दूसरे प्रकार से निकाले तो वह आगम को नहीं जानता, भगवान को नहीं जानता। (जो) आगम को जानता है, वह भगवान को जानता है और आत्मा को जानता है। पर का घात नहीं करना, यह ज्ञानी का ज्ञानसार है। '**एवं तु नाणीनो सारं जं न हिंसा परं**' '**अहिंसा स्वयं चेव**' पर को नहीं मारना, यह सिद्धान्त का सार '**एता वतं विआणीआ**' इतना जाने उसने सब जाना। आहाहा!

सम्प्रदाय में २१-२१ वर्ष रहे। यह शब्द कान में पड़ा नहीं था। हमारे, सम्प्रदाय के गुरु बहुत शान्त थे। कषाय मन्द थी 'हीरा अेटला हीर, बाकी सूतरना फालका' ऐसी उनकी उपमा थी। परन्तु यह बात कान में नहीं पड़ी थी। आहाहा! उनकी अपेक्षा तो इन भाग्यशाली जीवों को कान में पड़ी है। आहाहा! यह बात कान में नहीं पड़ी। देखो तो शान्त-शान्त। ४६ वर्ष की दीक्षा, बारह वर्ष की उम्र में ली हुई। ५८ वर्ष में जंगल में देह छूट गयी। श्वास चढ़ा। आहाहा! परन्तु वे जब व्याख्यान में ऐसा कहे कि '**एवं तु नाणीना**

**सारं जं न हिणइ परं'** पर को नहीं मारना, यह ज्ञानी के ज्ञान का सार है, ऐसा कहते थे। **'एवं तु नाणीना सारं जं न हिणइ परं'** आहाहा! अहिंसा, संयम है। वह पर को नहीं मारना, यह अहिंसा सिद्धान्त का सार है। **'एता वतं विआणीआ'** आहाहा! इतना जाने, उसने सब जाना – ऐसा कहते थे। बहुत नरम थे, नरम थे। उद्धत नहीं, घमण्ड नहीं। सभा में दो-दो, तीन-तीन हजार लोग आते थे। राजकोट में तो बहुत नाम था। शान्त.. शान्त..। अरे रे! भगवान! यह वाणी कान में नहीं पड़ी। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू शुद्ध-अशुद्ध के भेद को छोड़ दे। तू त्रिकाली शुद्ध-स्वरूप ही है। आगम में ऐसा कहा है, मैंने ऐसा कहा और तू भी ऐसा निकाल। आहाहा! **सारासार के विचारवाली सुन्दर बुद्धि द्वारा...** आहाहा! अपनी कल्पना द्वारा नहीं परन्तु आगम में, भगवान की वाणी में जो कहा है, उसकी **सुन्दर बुद्धि द्वारा...** सार निकालकर **सम्यग्दृष्टि स्वयं जानता है, उसे हम वन्दन करते हैं।** स्वयं जानता है कि हम तो अनादि-अनन्त चैतन्यमूर्ति में से हटे नहीं, हटे नहीं। मेरे द्रव्य में कभी अशुद्धता आयी नहीं। अशुद्धता द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। अरे! शुद्धता द्रव्य को स्पर्श नहीं करती, प्रभु! आहाहा! भगवान ने ऐसा कहा, वाणी में ऐसा आया। आहाहा! सुन्दर बुद्धिवाले ने उसमें से यह निकाला। सुन्दर बुद्धिवाले ने ऐसा निकाला। आहाहा! बहुत सरस बात आयी। आहाहा!

**स्वयं जानता है,...** वह सम्यग्दृष्टि किसी पर की अपेक्षा बिना स्वयं जानता है। आहाहा! गुरु और शास्त्र की अपेक्षा (बिना) उसमें से निकाला, परन्तु वह स्वयं निकाला है। आहाहा! **उसे हम वन्दन करते हैं।** लो, बात पूरी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## गाथा-४९

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।
सव्वे सिद्ध-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा।।४९।।

एते सर्वे भावा व्यवहार-नयं प्रतीत्य भणिताः खलु।
सर्वे सिद्ध-स्वभावाः शुद्ध-नयात् सन्सृतौ जीवाः।।४९।।

निश्चयव्यवहारनययोरुपादेयत्वप्रद्योतनमेतत्। ये पूर्वं न विद्यन्ते इति प्रतिपादितास्ते सर्वे विभावपर्यायाः खलु व्यवहारनयादेशेन विद्यन्ते। सन्सृतावपि ये विभावभावैश्चतुर्भिः परिणताः सन्तस्तिष्ठन्ति अपि च ते सर्वे भगवतां सिद्धानां शुद्धगुणपर्यायैः सदृशाः शुद्धनयादेशादिति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

( मालिनी )

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्।।

---

व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।
है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से॥४९॥

**गाथार्थः**—[ एते ] यह ( पूर्वोक्त ) [ सर्वे भावाः ] सब भाव [ खलु ] वास्तव में [ व्यवहारनयं प्रतीत्य ] व्यवहारनय का आश्रय करके [ भणिताः ] ( संसारी जीवों में विद्यमान ) कहे गये हैं; [ शुद्धनयात् ] शुद्धनय से [ संसृतौ ] संसार में रहनेवाले [ सर्वे जीवाः ] सर्व जीव, [ सिद्धस्वभावाः ] सिद्धस्वभावी हैं।

**टीकाः**—यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता* का प्रकाशन ( कथन ) है।

* प्रमाणभूत ज्ञान में शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का — दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए। ''स्वयं को

पहले जो विभावपर्यायें ''विद्यमान नहीं हैं'' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं। और जो ( व्यवहारनय के कथन से ) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। ( अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं )।

इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा ) कहा है कि —

( वीरछन्द )

प्रथम भूमिका में ही जिनने अपना कदम बढ़ाया है।
अरे अरे रे ! उन जीवों को यह व्यवहार सहारा है॥
मात्र एक चित् चमत्कारमय पर से भिन्न परमपद को।
निज अन्तर में लखें जीव जो उन्हें न किञ्चित् यह नय हो॥

श्लोकार्थः—यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है— ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो, तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं, उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।

---

प्रवचन-५३, गाथा-४९, रविवार, श्रावण कृष्ण ६ दिनांक ३१-०८-१९८०

---

नियमसार गाथा ४९।

**एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु।**
**सव्वे सिद्ध-सहावा सुद्ध-णया संसिदी जीवा।।४९।।**

---

कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं'' ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में न हो उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है, ''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं। व्यवहारनय के विषयों का आश्रय (आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना) तो छोड़नेयोग्य है ही ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।
जिस जीव के अभिप्राय में शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो, उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है ऐसा समझना, अन्य को नहीं।

**व्यवहारनय से हैं कहे सब जीव के ही भाव ये।**
**है शुद्धनय से जीव सब भवलीन सिद्ध स्वभाव से।।४९।।**

**टीका: —यह, निश्चयनय और व्यवहारनय की उपादेयता का प्रकाशन ( कथन ) है।** दोनों नय का कथन। उपादेय अर्थात् एक है, इतना कहने के लिए उपादेय कहा। नीचे अर्थ है। नीचे अर्थ किया है। ***प्रमाणभूत ज्ञान में...*** किसी भी द्रव्य का प्रमाण (ज्ञान अर्थात्) द्रव्य और पर्याय दो का इकट्ठा ज्ञान जब हो, तब ***शुद्धात्मद्रव्य का तथा उसकी पर्यायों का—दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।*** प्रमाणज्ञान में द्रव्य और पर्याय दोनों साथ होते हैं। निश्चयनय में सामान्य होता है, व्यवहारनय में पर्याय होती है। प्रमाणज्ञान में सामान्य और विशेष दोनों इकट्ठे होते हैं। यह कहते हैं। ***उसकी पर्यायों का—दोनों का सम्यग्ज्ञान होना चाहिए।***

***''स्वयं को कथंचित् विभावपर्यायें विद्यमान हैं''...*** आत्मा में विकारी पर्याय है, विद्यमान है, ***ऐसा स्वीकार ही जिसके ज्ञान में नहीं है।*** विकारीपर्याय है, व्यवहारनय है तो नय का विषय भी है। ऐसा है, उसका ज्ञान न हो, ***उसे शुद्धात्मद्रव्य का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता।*** पर्याय में विकारी भाव न हो, ऐसा माननेवाले को द्रव्य का-वस्तु का भी सच्चा ज्ञान नहीं होता। समझ में आया? पर्याय में विकारी भाव है। ऐसा जो न माने, उसे द्रव्य का सच्चा ज्ञान नहीं होता। क्योंकि द्रव्य और पर्याय मिलकर प्रमाण है। प्रमाणज्ञान के विषय में दोनों नय का विषय आ जाता है।

***इसलिए ''व्यवहारनय के विषयों का भी ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है''...*** ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है। जानना, वह ग्रहण करनेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय है, ऐसा जानना। जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह (समयसार की) बारहवीं गाथा में आया है, वह यहाँ कहा। ***ज्ञान तो ग्रहण करनेयोग्य है...*** उसका आश्रय... ***ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...*** ज्ञान करने को कहा। ***उसका आश्रय 'ग्रहण करनेयोग्य है' ऐसी विवक्षा से नहीं।*** क्या कहा? इस व्यवहारनय (का) पर्याय में आदर करने का, उपादेय करने का कहा नहीं। पर्याय में विकार है, उसके ज्ञान के स्वीकार करने के कारण उपादेय कहा है परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

***ऐसी विवक्षा से ही यहाँ व्यवहारनय को उपादेय कहा है,...*** उसे जाननेयोग्य है।

संसार है, विकार है, समकिती को भी पर्याय में राग है, ऐसे व्यवहारनय को जानने में ग्रहण करनेयोग्य है। ***''उनका आश्रय ग्रहण करनेयोग्य है'' ऐसी विवक्षा से नहीं।*** ऐसे कथन से यह नहीं कहा। ***व्यवहारनय के विषयों का आश्रय ( आलम्बन, झुकाव, सन्मुखता, भावना ) तो छोड़नेयोग्य है ही...*** वह तो छोड़नेयोग्य ही है, छोड़नेयोग्य है ही। ***ऐसा समझने के लिए ५०वीं गाथा में...*** आगे कहेंगे। ***५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा।*** प्रगटरूप से व्यवहारनय हेय है। जाननेयोग्य है। है, ऐसा जाननेयोग्य है, परन्तु है हेय। आहाहा! अभी बहुत गड़बड़ चली है।

***५०वीं गाथा में व्यवहारनय को स्पष्टरूप से हेय कहा जायेगा। जिस जीव के अभिप्राय में...*** श्रद्धा में ***शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय का ग्रहण और पर्यायों के आश्रय का त्याग हो,...*** त्याग हो, ***उसी जीव को द्रव्य तथा पर्यायों का ज्ञान सम्यक् है, ऐसा समझना, अन्य को नहीं।*** पाठ में उपादेय आया न? इसीलिए स्पष्टीकरण किया है। व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों को उपादेय कहा, तो उसका अर्थ क्या? कि पर्याय में व्यवहार विकार है, पर्याय है, ऐसे जानने को कहा। परन्तु उसका आश्रय करनेयोग्य है, पर्याय के सन्मुख होकर उसका आदर करनेयोग्य है, इसके लिये उपादेय नहीं कहा है। आहाहा! अब इसमें बड़ा विवाद है। निश्चय का कारण है, इसलिए व्यवहारनय भी आदरणीय है, ऐसा कहते हैं। ऐसा यहाँ नहीं है। यहाँ तो व्यवहारनय का विषय है, जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य है, ऐसा नहीं और व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा !क्या कहा?

**पहले जो विभावपर्यायें...** मूल टीका **'विद्यमान नहीं हैं' ऐसी प्रतिपादित की गई हैं, वे सब विभावपर्यायें वास्तव में...** आहाहा! विभावपर्याय क्या, क्षायिकभाव को भी हेय कहा। चार भाव की पर्याय को हेय कहा। आहाहा! वे **विभावपर्यायें वास्तव में व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं।** व्यवहारनय से वर्तमान है, ऐसा ज्ञान कराने को कहा है।

**और जो ( व्यवहारनय के कथन से ) चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** यह व्यवहारनय से तो चार विभावभावरूप से परिणत। आहाहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक-चारों को यहाँ विभावभाव कहा है। आहाहा! त्रिकाली स्वभाव पारिणामिकस्वभाव, वह एक त्रिकाली सनातन द्रव्य है और ये

चार पर्यायें हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, चारों पर्यायें हेय हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं कि यह आत्मा का द्रव्य है, वह त्रिकाली द्रव्य है और उसकी वर्तमान पर्याय है, वह वर्तमान अवस्था है, तो अवस्था को जानना, ऐसा कहने में आया है परन्तु अवस्था का आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं कहा है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! चार विभावस्वभाव कहे। उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार पर्याय है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं, जाननेयोग्य है। है-ऐसा जाननेयोग्य है। आदरणीय तो त्रिकाली परम-स्वभावभाव, पंचम ज्ञायकभाव, वह समकित का विषय आदरणीय है। वह एक ही समकित का विषय है। चार पर्याय, वह समकित का विषय नहीं। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें।

बाहर का क्रियाकाण्ड तो कहीं रह गया। देह की क्रिया, वाणी की क्रिया, वह तो जड़ है। जड़ को तो आत्मा स्पर्श भी नहीं करता। जड़ को तो आत्मा कभी स्पर्श नहीं करता। चैतन्यतत्त्व जड़ को कभी स्पर्श नहीं करता। अरे! जड़ का एक परमाणु दूसरे परमाणु को कभी स्पर्श नहीं करता। आहाहा! अब ऐसी बात! यह करो.. यह करो.. क्या करे ? प्रभु! तू कौन है ? क्या है ? तेरी चीज़ ज्ञायकभाव है। ज्ञायक, जाननस्वभाव का पिण्ड है। वह तो जाननस्वभाव का पिण्ड है, वही आदरणीय है, वही ग्रहण करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त जो पर्याय होती है, वह जाननेयोग्य है, माननेयोग्य है। है-ऐसे माननेयोग्य है। आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात अब कठिन पड़े। क्या हो ?

**चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** आहाहा! क्या कहते हैं ? संसारी प्राणी में राग-द्वेष, दया, दान का उदयभाव भी है। चारित्र का, समकित का, उपशमभाव है; क्षयोपशम ज्ञान का भाव है और क्षायिक ज्ञान का, समकित का है। वह जाननेयोग्य है। आहाहा! उसे आदरनेयोग्य नहीं। यह कहा न ? **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** आहाहा! जब तक चार विभावभाव... विभाव का अर्थ यहाँ विकार नहीं, विशेष भाव। सामान्य जो त्रिकाली आत्मा, त्रिकाली स्वरूप भगवान आत्मा, वह सामान्य और उसकी पर्याय / अवस्था / हालत, वह विशेष। वह विशेष भाव संसार अवस्था में है। है-ऐसा माननेयोग्य है। वह भी... आहाहा!

वे चार पर्यायें होने पर भी, संसारदशा में वे होने पर भी **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** चार पर्यायें भले हो, परन्तु शुद्धनय के कथन से तो आत्मा सिद्धसमान ही है। आहाहा! इस आत्मा में जो चार पर्याय है, वह तो जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि भाव आते हैं परन्तु आश्रय करनेयोग्य नहीं और उनसे लाभ होता है, ऐसा माननेयोग्य नहीं परन्तु वे हैं-ऐसा जाननेयोग्य है। आहाहा! लोगों को कहाँ जाना? कठिन पड़े।

यहाँ कहा न यह, कि **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** जीव है, ऐसा नहीं। चार पर्यायवाला संसारी है परन्तु वे सब शुद्धनय के कथन से-अन्तर निश्चयदृष्टि के कथन से। त्रिकाली स्वभाव का ज्ञान कराने को वही एक आदरणीय है। त्रिकाल ज्ञायकभाव एक ही आदरणीय है, ऐसा कहना। **शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं।** चार भाववाले संसारी जीव भी निश्चयनय से सिद्धसमान ही हैं। आहाहा! भारी कठिन बात।

यहाँ तो सब चार भाववालों को संसारी कहा है। चार भाववालों को संसारी कहा है। वह है, परन्तु शुद्धनय से, निश्चयनय से, परमसत्य दृष्टि से, परम त्रिकाली पारिणामिक स्वभाव का स्वीकार करनेवाली दृष्टि से देखें तो सर्व सिद्धसमान हैं। वे चार पर्याय-फर्याय वस्तु में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात जगत को कठिन पड़े। क्या हो? मिली नहीं। आहाहा! चौरासी के अवतार कर-करके अनन्त काल हुआ। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। अनन्त-अनन्त भव, जिसके भव की गिनती नहीं। ऐसे एक-एक योनि में अनन्त-अनन्त बार चौरासी लाख योनि में अवतार धारण किये। एक आत्मज्ञान बिना (धारण किये)। बाकी क्रियाकाण्ड तो बहुत किया। वह तो अनन्त बार किया, परन्तु वह तो राग की क्रिया है। आहाहा! राग से पुण्यबन्ध और पुण्यबन्ध से संसार मिलेगा। उससे जन्म-मरण का अन्त नहीं होता। आहाहा!

यहाँ कहा न, चार विभावस्वभाववाले संसारी हैं। नहीं, ऐसा नहीं। पर्यायदृष्टिवाले संसारी जीव चार भाववाले हैं। उदय, उपशम, क्षयोपशम क्षायिकभाववाले (हैं अवश्य)। परन्तु शुद्धनय की दृष्टि से देखें तो ये चार भाव नहीं हैं, अकेला शुद्धभाव है। आहाहा! जगत को कठिन पड़े। क्या हो? निवृत्ति नहीं मिलती। धन्धे के कारण, पाप के कारण पूरे दिन

(निवृत्ति नहीं मिलती)। उसमें धर्म के नाम से बाहर के क्रियाकाण्ड में मान लिया। जिन्दगी चली जाती है। अवसर मृत्यु के समीप आता है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, प्रभु! परमात्मा ऐसा कहते हैं, त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, एक समय में संसारी प्राणी को पर्याय में भले चार भाव हो परन्तु शुद्धनय से देखे तो इन चार भाव की गिनती नहीं आती। वह तो सिद्धसमान त्रिकाली सनातन चैतन्यस्वरूप है। पंचम भावस्वरूप त्रिकाली है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पर्याय-फर्याय नहीं। पर्याय नहीं।

**शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा...** पर्याय अर्थात् सिद्ध की पर्याय। वह पर्याय नहीं। सिद्ध की पर्याय और गुण जैसे सब जीव हैं। वह पर्याय क्षायिकभाव को तो पहले निकाल दिया परन्तु सिद्ध की पर्याय जो है, वह भी है तो क्षायिकभाव। वह नहीं। परन्तु यहाँ तो चार भाववाले संसारी जीव हैं, ऐसा पहले लिया। संसारी प्राणी उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक चार पर्यायवाले संसारी प्राणी हैं। उन्हें शुद्धनय से देखें तो सिद्धसमान हैं। सिद्ध के गुण और पर्याय समान सिद्ध ही हैं। आहाहा! क्षायिकभाव की पर्याय को भी निकाल दिया। यहाँ सिद्धसमान में क्षायिकभाव वापस आ जाता है।

'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो...' प्रभु अन्दर निर्मलानन्द विराजमान है, भगवान! उसकी पर्याय / अवस्था न देखो तो अन्दर भगवान परिपूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से सर्वांग भरपूर है। आहाहा! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतराग शान्ति से अन्दर पूर्ण भरपूर है। आहाहा! उस नय से देखें तो संसारी के जो चार भाव हैं, वे उसमें नहीं हैं। सिद्ध समान है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा!

सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा! वर्तमान क्षायिक पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! वर्तमान क्षायिक समकित हो, क्षायिक यथाख्यातचारित्र हो, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है, सम्यग्दर्शन का ध्येय नहीं है। सम्यग्दर्शन— चौथे गुणस्थानवाले धर्म की पहली शुरुआतवाले, धर्म का पहला सोपान और पहली सीढ़ी.. आहाहा! वह सिद्ध समान आत्मा है, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानता है। सम्यक् अर्थात् सत्यदृष्टि। त्रिकाल परमसत्य स्वभाव भगवान आत्मा। पंचम स्वभावभाव त्रिकाल ज्ञायकभाव

का स्वीकार दृष्टि में करे, वह सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन का विषय, ध्येय, लक्ष्य, त्रिकाली वस्तु आत्मा ज्ञायकभाव है। चार प्रकार की पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा! इसमें कहीं फुरसत कहाँ है ? फुरसत कहाँ है ? बाहर के क्रियाकाण्ड की प्रवृत्ति में पड़कर जिन्दगी चली जाती है। आहा..! अन्तर वस्तु महाप्रभु पड़ी है।

परमात्मा का पुकार है। अरिहन्तदेव सर्वज्ञदेव परमात्मा की यह वाणी है। प्रभु! तेरी पर्याय में संसारदशा में जो चार भाव दिखते हैं, वह बात हेय है। तेरी चीज़ सिद्ध समान त्रिकाल है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन, कर्म, पैसा, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, वह तो कहीं पर रह गये, कहीं पर.. उनके कारण आते हैं और उनके कारण जाते हैं। आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। तीन लोक के नाथ केवलज्ञानी की यह पुकार है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

**मुमुक्षु :** कब ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अभी। तीनों काल। समयसार की तीसरी गाथा में है। सर्व द्रव्य, अनन्त पदार्थ जितने हैं, वे अपने गुण-पर्यायरूप धर्म को-स्वभाव को स्पर्श करते हैं, परन्तु परद्रव्य को स्पर्श भी नहीं करते। यह आत्मा अन्दर है, वह शरीर को स्पर्श भी नहीं करता। कौन माने ? पागल ही कहे, ऐसा है न ? आहाहा! लोग पागल, लोग पागल। वे पागल सत्य को पागल कहे, ऐसा है। भगवान अरिहन्तदेव का पुकार है कि तीन काल में यह आत्मा शरीर को स्पर्श नहीं करता, छूता नहीं। ऐसा आत्मा चैतन्यस्वरूप में अन्दर आठ कर्म, वे अन्दर स्पर्श नहीं हुए हैं। दोनों चीज़ें अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा!

**'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।' 'एकत्वनिश्चयगतः'** एक आत्मा पर्याय के आश्रय से नहीं। त्रिकाली द्रव्य वस्तु जो सत् सनातन, सर्वज्ञ जिनेश्वर ने जो द्रव्यस्वभाव वस्तुस्वभाव देखा, वह द्रव्य जो है **'एकत्वनिश्चयगतः'** वह एकपने को निश्चय को प्राप्त वह सुन्दर है। आहाहा! वह दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। तीन काल में कभी एक द्रव्य ने दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं किया, स्पर्श नहीं करता। आहाहा!

**मुमुक्षु :** स्पर्श करे तो स्पर्श हो जाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्पर्श कर ही नहीं सकता। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है। एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अत्यन्त अभाव है, तो अत्यन्त अभाव है; इसलिए एक चीज़ दूसरी

चीज़ को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! समयसार, तीसरी गाथा। '**एकत्वनिश्चयगतः**' टीका में लिखा है कि एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी चुम्बन नहीं करता। आहाहा! एक आत्मा दूसरे आत्मा को, शरीर को, वाणी को, कर्म को कभी स्पर्शा ही नहीं है। अब यह बात बैठना कठिन लगती है।

यह यहाँ कहते हैं। संसारी प्राणी चार पर्यायवाले हैं, यह तो कहा। चार गति में जीव की अस्ति जो है, वह चार पर्यायवाले हैं परन्तु वस्तु दृष्टि उनकी देखें, उसमें कायम रहनेवाला परमात्मस्वरूप आत्मा, उस दृष्टि से वे सब हेय हैं। आहाहा! वे तो सिद्धसमान ही हैं। आहाहा! वह आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। समकित–चौथा गुणस्थान जिसे प्रथम प्रगट हो, उसका विषय यह एक ज्ञायकभाव है। उसकी चार पर्याय भी उसका विषय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। क्या हो ? निवृत्ति नहीं मिलती। प्रवृत्ति में सब धर्म मना गये हैं। यह प्रवृत्ति दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, उसमें धर्म मना लिया गया, वह तो राग है। आहाहा! और वह तो उदयभाव है।

यहाँ तो उदय, उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिकभाव भी संसारी जीव को है, ऐसा कहा। आहाहा! आत्मा को वह भाव नहीं। आत्मा तो त्रिकाली ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु है। अनाकुल आनन्द का नाथ, ऐसा भगवान सर्वज्ञ ने जैसा देखा, अनुभव किया और परमात्मा ने प्रगट किया, ऐसा ही सबका आत्मा अन्दर है। चार भाव को और उसे सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं, तो फिर शरीर को, वाणी को, मन को, बाहर की इस धूल को – पैसा–वैसा को धूल (को) मेरा (अपना) माने, वह सब मिथ्यात्व और अज्ञान है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चक्रवर्ती समकिती एक रजकण भी मेरा है, ऐसा नहीं मानते। भरत चक्रवर्ती, एक राग का कण मेरा है, ऐसा नहीं मानते। ऋषभदेव भगवान के पुत्र, प्रथम तीर्थंकर के पुत्र चक्रवर्ती। छियानवे हजार स्त्रियाँ, छियानवे करोड़ सैनिक.. आहाहा! मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप ऐसी मेरी चीज़ है, ऐसा मानते थे। आहाहा! जैसे अग्नि और बर्फ। दृष्टान्त आया था न ? बहिन ने (बहिनश्री के वचनामृत में) आया था। अग्नि और बर्फ के बीच खड़ा हुआ प्राणी। वह अग्नि की ओर नहीं जाता, बर्फ की ओर जायेगा। बीच में खड़ा, वह इस ओर ढलेगा, ऐसे नहीं जायेगा।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, पुण्य और पाप के भाव वह अग्नि है। आहाहा! शुभ और अशुभभाव, वह अग्नि और शुभ-अशुभभावरहित अन्दर प्रभु शीतल-ठण्डा बर्फ जैसा अविकारी शान्तरस है, तो धर्मी जीव शान्तरस की ओर जायेगा परन्तु यह विकारभाव अग्नि समान है, उस ओर नहीं जायेगा। आहाहा! ऐसी बात है। कभी सुनी नहीं होगी और एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, ऐसी बात करके माने कि धर्म हो गया। अरे! प्रभु! अनन्त काल बीत गया, नाथ! ऐसे-ऐसे तो अनन्त भव किये परन्तु एक भी भव घटा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **( औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,... )** ऐसा कहा न? है। **( वे सब... )** उदयभाववाले भी, हों! अन्दर **( वे सब शुद्धनय के कथन से... )** पवित्र दृष्टि और कथन से, वास्तविक वस्तु की दृष्टि के कथन से **( शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं )**। सिद्ध की पर्याय ली। यह नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! इसमें कहीं दुकान-बुकान में चला होगा, पैसा और धूल इकट्ठी की और करोड़ रुपये, दो करोड़ रुपये, दस करोड़ रुपये और धूल करोड़... आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि इस शरीर का एक रजकण है... यह तो अनन्त रजकण का बना हुआ जड, मिट्टी, धूल, उसका एक रजकण भी आत्मा का नहीं है और अंगुली हिलती है, वह भी आत्मा से नहीं। अरे! यह कौन माने? अंगुली चलती है, जीभ चलती है, जड़ है, जड़ से चलता है; आत्मा से नहीं। आत्मा तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, अपनी चीज़ में विराजमान है। वह परचीज़ की क्रिया का अभिमानी संसार में चौरासी लाख योनि में भटकता है। यहाँ कहा न कि **( औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,... )** वह भी व्यवहारनय से। ऐसा कहा न? आहाहा!

ऊपर नहीं कहा? कि **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं**। आहाहा! सब भगवान अन्दर, यदि सिद्धभगवान स्वरूप न हों तो सिद्धभगवान होगा कहाँ से? प्राप्त की प्राप्ति है तो प्राप्ति होती है। कुएँ में हो वह हौज में आता है। अवेड़ा (हौज का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? हौज में आता है। इसी प्रकार अन्दर में अनन्त ज्ञान, आनन्द और शान्ति है। अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, जिसमें राग की गन्ध नहीं, ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से शुद्धनय से सिद्ध समान देखने में आता है। आहाहा! है?

टीका में पाठ है। **व्यवहारनय के कथन से विद्यमान हैं**। आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं**। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! यह एक बात बैठे तो इसे सम्यग्दर्शन हो। बाकी क्रियाकाण्ड और अपवास करके मर जाये, आहाहा! रात्रि भोजन त्याग, अपवास और शरीर का ब्रह्मचर्य पाले, ऐसी क्रियाएँ अनन्त बार की हैं और अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया है परन्तु अन्तर का आत्मा भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ, उस पर इसने कभी दृष्टि नहीं की, उसका स्वीकार, सत्कार, आदर नहीं किया। इस रागभाव का आदर किया। आहाहा! ऐसा कहा न? कोष्ठक में भी यह है।

**( जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं, वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं )**। सिद्ध समान हैं। आहाहा! पैसा और धूल वह तो कहीं रह गयी। शरीर, मिट्टी, यह तो मिट्टी का, धूल का बना हुआ है। यह श्मशान में राख होकर उड़ जायेगा।

**'रजकण तेरे भटकेंगे, जैसे भटकती रेत,**
**फिर नरभव पाये कहाँ? चेत चेत नर चेत।'**

यह वस्तुस्वरूप नहीं समझा, अन्दर में सम्यग्ज्ञान नहीं किया, डोरा सुई में नहीं पिरोया तो वह सुई खो जायेगी। सुई में सूत का डोरा पिरोया नहीं होगा तो वह खो जायेगी। ऐसे आत्मारूपी सुई, वह चार भाव से भिन्न अकेला ज्ञायक, ऐसा जिसने ज्ञान नहीं किया, ऐसा श्रुतज्ञान—भावज्ञान नहीं किया, वह चार गति में भटकेगा। आहाहा! ऐसी बात है। पूरे दिन करना क्या? यह सब स्टील के सब कारखाने। बड़े कारखाने। तीन-तीन करोड़ के कारखाने। लालचन्दभाई है न? थे न? उज्जैन.. उज्जैन। उज्जैन में लालचन्दभाई थे। उन्हें तीन करोड़ का कारखाना था। वहाँ हम गये थे। चरण कराये थे। व्याख्यान सुनते हैं परन्तु फिर भ्रमणा ऐसी कि ब्राह्मणों से माला जपावे, जिससे हमारा कुछ यह बढ़े, पैसे की आमदनी बढ़े। आहाहा! हम उतरे, उस घर में ब्राह्मण (जप) करते थे। सेठ करोड़पति। तीन करोड़ का एक मील। ऐ... क्या करते हो यह तुम? कुछ खबर नहीं होती। धूल में नहीं मिलता।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! सुन तो सही। यहाँ तो चार भाव, वे पर्याय में हैं। उदयभाव—यह राग-द्वेष, दया, दान, यह उदयभाव; अन्दर में आंशिक शान्ति प्रगट हो, वह उपशमभाव;

जो प्रगट होने के बाद जाये नहीं, वह क्षायिकभाव और किंचित् उघाड़ तथा किंचित् उघाड़ नहीं, वह क्षयोपशमभाव। इन चारों भावरूप परिणमित संसारी प्राणी हैं। आया न? आहाहा! इन **चार विभावभावरूप परिणत होने से संसार में भी विद्यमान हैं...** आहाहा! व्यवहारनय का विषय है, आदरणीय नहीं। आहाहा! **वे सब शुद्धनय के कथन से...** आहाहा! **शुद्धगुणपर्यायों द्वारा सिद्धभगवन्त समान हैं। ( अर्थात् जो जीव व्यवहारनय के कथन से औदयिकादि... )** उदय अर्थात् रागादि। दया, दान, भक्ति, भगवान का नाम स्मरण यह सब उदयभाव, राग। रागादि के परिणाम को करनेवाला **( विभावभावोंवाले होने से संसारी हैं,... )** आहाहा!

**( वे सब शुद्धनय के कथन से शुद्ध गुण तथा शुद्ध पर्यायोंवाले होने से सिद्ध सदृश हैं )**। आहाहा! कैसे जँचे? पूरे दिन पाप का धन्धा-पानी, स्त्री-पुत्र को सम्हालना, रखना, प्रसन्न करना और छह-सात घण्टे सोना। आहाहा! अरे रे! समय चला जा रहा है। मनुष्यपने का अवतार... मृत्यु का पल है वह बदले, ऐसा नहीं है। भगवान के ज्ञान में आया है कि इस पल में देह छूटनेवाली है तो वह छूटेगी ही छूटेगी। आहाहा! जिस समय में, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस प्रकार से निश्चित हो गया है, वहाँ एकदम देह छूट जानेवाली है। आत्मा अपनी सत्ता है तो लेकर चला जायेगा। आहाहा! कहाँ जायेगा? कि जैसे भाव स्वयं ने किये हैं, उसमें रहकर जायेगा। आहाहा! रागादि को अपना भाव माना हो, वह मिथ्यादृष्टि लेकर चार गति में भटकने जायेगा। आहाहा! दया, दान का भाव राग और वह भी मेरा, मुझे लाभदायक, ऐसी जो मिथ्यादृष्टि लेकर चार गति में भटकने जायेगा। आहाहा!

यहाँ तो उन्हें तो निकाल दिया परन्तु उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव को भी संसारी परिणमित है, ऐसा कहा। आहाहा! और तेरा आत्मा तो सिद्ध समान है। आहाहा! उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय तो निर्मल है। कहते हैं, वह भले हो, वह संसारी प्राणी परिणत है। सिद्ध में वह नहीं। आहाहा! सिद्ध भगवान पूर्णानन्द में सर्वांग में ज्ञान और आनन्द पड़े हैं। उनकी दृष्टि से आत्मा को देखो तो, ये चार भाव अन्तर में नहीं हैं। आहाहा!

**इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा ) कहा है कि**—ऊपर श्लोक है

व्यवहरणनयः स्याद्यद्यपि प्राक्पदव्या-
मिह निहित-पदानां हन्त हस्तावलम्बः।
तदपि परम-मर्थं चिच्चमत्कार-मात्रं,
परविरहित-मन्तः पश्यतां नैष किञ्चित्॥

आहाहा! **यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है...** कि रागादि भाव हैं। **ऐसे जीवों को, अरे रे!** आचार्य कहते हैं कि अरे रे! खेद है। यह पुण्य और पाप के भाव में पड़ा है, वह प्राणी दु:खी है। चार गति में भटकनेवाला वह प्राणी है। आहाहा! करोड़पति, अरबपति हो, वह मरकर सूकर हो। आहाहा! ऐसे अनन्त अवतार किये। अनन्त बार अरबपति हुआ, अनन्त बार अरबपति मरकर सूकर हुआ। यहाँ कमजोर प्राणी हो, वह छूए नहीं और वहाँ सूकर (होकर) विष्टा खाये। आहाहा! अनन्त-अनन्त काल। गत काल में अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. भव का कहीं अन्त नहीं, इतने अनन्त भव किये। आहाहा!

**यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है—ऐसे जीवों को, अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो,...** निमित्तरूप भले हो, **तथापि...** आहाहा! **जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र,...** चैतन्यचमत्कार ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, चैतन्य के प्रकाश का पिण्ड प्रभु! चैतन्य के नूर से भरपूर पूर, उस चैतन्य के नूर का पूर प्रभु अन्दर है। आहाहा! अरे रे! कभी सामने भी देखा नहीं। चैतन्य के पूर से भरा हुआ अन्दर तत्त्व, पानी का पूर जैसे बहता है, वैसे यह चैतन्य पूर ऐसे ध्रुव। ऐसे ध्रुव। अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा ध्रुव.. ध्रुव रहता है। आहाहा! ऐसा जो आत्मा... **अरे रे!** आचार्य कहते हैं कि **अरे रे!** भगवान तू कहाँ है और क्या करता है? प्रभु! विकारी दया, दान के भाव को तेरे मानकर भटककर मर गया है - चौरासी के अवतार में भटककर मर गया है। आहाहा!

**अरे रे! हस्तावलम्बनरूप भले हो, तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र,...** चैतन्यचमत्कार! आहाहा! अपने क्षेत्र में रहकर स्व को-पर को पूर्ण जाननेवाला भगवान, देह में विराजमान भगवान आत्मा। आहाहा! अपने क्षेत्र में रहकर, अपने भाव में रहकर, अपने और पर को जाननेवाला भगवान आत्मा है। आहाहा! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। दया, दान, भक्ति, व्रतादि के परिणाम तो पुण्यबन्ध का कारण, संसार में भटकने का कारण है। आहाहा!

**जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित...** आहाहा! रागादि से रहित चैतन्यमात्र भगवान अन्दर आत्मा है। आहाहा! **ऐसे परम पदार्थ को...** चैतन्यचमत्कारमात्र, मात्र कहने से अन्दर दूसरा कुछ नहीं। दया, दान के विकल्प भी राग और विकार और दुःख / आकुलता, उससे रहित चैतन्यमात्र अकेला चैतन्य.. चैतन्यप्रकाश। जैसे चन्द्र शीतल का पिण्ड है, वैसे यह शीतल अविकारी चैतन्य पिण्ड प्रभु अन्दर है। आहाहा! वह चैतन्यमात्र पर से रहित... आहाहा! शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी, धूल, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब तो कहीं रह गये, परन्तु अन्दर में दया, दान के परिणाम भी पर, उनसे भी प्रभु अन्दर भिन्न है। आहाहा!

**ऐसे परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** आहाहा! चैतन्य चमत्कारी वस्तु अन्दर, अपने क्षेत्र में रहकर सबको जाने और देखे, किसी पर को करे और भोगे नहीं.. आहाहा! ऐसी जो चीज़ अपने में है, वह भगवान आत्मा **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** जो जीव, समकित में इस प्रकार देखते हैं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में श्रावक होने से पहले। श्रावक को पंचम गुणस्थान, वह तो कोई अलौकिक बातें हैं। यह तो अभी सम्यग्दर्शन होने के समय **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं,...** आहाहा! परम पदार्थ जो अनादि-अनन्त सनातन सत्य ज्ञायकमूर्ति प्रभु को सम्यग्दृष्टि, परसन्मुख का लक्ष्य छोड़कर अन्तर में देखते हैं। आहाहा! **उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** उन्हें व्यवहार कुछ नहीं है। आहाहा! है, पर्याय में राग है, पर्याय में पर्याय का भाव है, परन्तु अन्तर में जहाँ देखे तो उसमें कुछ नहीं। आहाहा! समझ में आया? **यह व्यवहारनय कुछ नहीं है।** आहाहा! उसमें कुछ आत्मा का शरण नहीं, ऐसा कहते हैं। राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सब विकारभाव, दुःखरूप अशरण है। शरणरूप वह तो भगवान अन्दर भिन्न विराजता है। कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, यह बात सुनना कठिन। यह जैन परमेश्वर त्रिलोक के नाथ कहते हैं। एक अंगुली, इसे स्पर्श नहीं करती, छूती नहीं क्योंकि एक दूसरे में अभाव है। आहाहा! एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी स्पर्श नहीं करता। अन्तर में अभाव है। आहाहा! ऐसी चीज़ को देखनेवाले को **व्यवहारनय कुछ नहीं है।** उसे फिर पर्याय में राग है, वह गिनती नहीं करता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई! एक तो यह बात ही

(कहीं नहीं है)। सर्वत्र गड़बड़ हो गयी है और यह बात कहे तो कहते हैं एकान्त है.. एकान्त है। यह निश्चय एकान्त है। ठीक, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का पुकार है। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ सीमन्धरस्वामी भगवान तो महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं। वहाँ से यह वाणी आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि वहाँ गये थे। संवत् ४९ के वर्ष (में गये थे) दो हजार वर्ष पहले। आठ दिन रहे थे। आकर यह बनाया है। त्रिलोक के नाथ का कथन तो यह है। सीमन्धर भगवान प्रभु विराजते हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली महाविदेह में विराजते हैं। ओहो..!

यहाँ कहते हैं कि आत्मा को अन्दर शुद्ध पूर्णानन्द, रागरहित और पर्यायरहित जो देखे, उसे **व्यवहारनय कुछ नहीं है**। उसे व्यवहार कुछ नहीं है। आहाहा! अर्थात् उसके व्यवहार की कोई गिनती नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सुनना कठिन पड़े। पूरे दिन परद्रव्य के साथ सम्बन्ध। आहाहा! यहाँ कहे कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। त्रिलोकनाथ का पुकार है। अनन्त द्रव्य अनन्तरूप से कैसे रहें? अनन्त-अनन्तरूप से कैसे रहें? भगवान ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु आदि छह द्रव्य देखे हैं। जाति से छह द्रव्य, संख्या से अनन्त। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को चुम्बन नहीं करता। आहाहा! (चुम्बन करे) तब तो भावरूप हो जाये। एक का भाव दूसरे रूप हो जाये तो भावरूप हुआ। एक दूसरे में तो अभाव है। यह बात बैठना... आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो कुछ अन्तर में इस भगवान को देखे, उसे व्यवहारनय कुछ नहीं है। आहाहा! पर से रहित चैतन्यचमत्कारमात्र। चैतन्यचमत्कारमात्र। जानन.. जानन.. जाननस्वभाव। जाननस्वभाव का पूर भरा है। ऐसे चमत्कार को देखनेवाले **परम पदार्थ को अन्तरंग में देखते हैं, उन्हें यह व्यवहारनय कुछ नहीं है**। व्यवहारनय की कोई गिनती नहीं है। है, ऐसा जानता है कि है। आदर-वादर नहीं। ऐसा वीतराग का मार्ग है।

(***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## श्लोक-७३

**और ( इस ४९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ) —**

( स्वागता )

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति ।।७३।।

( वीरछन्द )

**शुद्धतत्त्व के रसिक, तत्त्व का चिन्तवन करके यही कहें।**
**मुक्त और संसार दशा में अन्तर नहीं शुद्धनय से॥७३॥**

**श्लोकार्थः—''शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;'' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर ( परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर ), शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।।७३।।**

प्रवचन-५४, श्लोक-७३, गाथा-५०, सोमवार, श्रावण कृष्ण ७, दिनांक ०१-०९-१९८०

नियमसार ७३ वाँ श्लोक है।

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ सन्सृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्व-विचारे शुद्ध-तत्त्व-रसिकाः प्रवदन्ति ।।७३।।

***श्लोकार्थ :*— शुद्धनिश्चयनय से...** परमार्थदृष्टि से, वस्तुस्वभाव की त्रिकाल सनातन स्वभाव की दृष्टि से। **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहा! सनातन सत्य वस्तु, जिसमें एक समय की पर्याय भी गौण है; त्रिकाली वस्तु, अखण्ड आनन्द पूर्ण वस्तु, अनादि-अनन्त शुद्ध सत्तारूप एक चीज़, वह और संसार अवस्था, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। उसकी मुक्त अवस्था, उस (वस्तु की) मुक्त दशा, वह वस्तु इस सनातन सत्य

तत्त्व की मुक्तदशा और इसकी संसारदशा, दोनों पर्यायनय का विषय, व्यवहारनय का विषय दोनों समान हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! कहाँ निगोद की दशा, कहाँ सिद्ध की दशा! शुद्धनिश्चयनय से अन्तर की दृष्टि से देखें, वस्तुस्वभाव सहजात्मस्वरूप सहज आत्मस्वरूप त्रिकाल-इस दृष्टि से देखें तो **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहाहा!

**ऐसा ही वास्तव में,...** किसी को ऐसा लगे कि यह क्या?-कि **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** वास्तविक ज्ञायकतत्त्व को विचारने पर, ज्ञायकस्वभाव त्रिकाली शाश्वत् चीज़ को विचारने पर। आहा! **( परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर )..** निरूपण तो कथनशैली है परन्तु वस्तु के स्वभाव से देखें तो **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** शुद्धतत्त्व के रसिक, आहाहा! द्रव्यस्वभाव के रसिक! ज्ञायक-स्वभावभाव, वह त्रिकाल स्वभावभाव, उसके रसिक पुरुष मुक्ति और संसार में कोई अन्तर नहीं कहते। आहाहा! लो! यह गुजराती आया। आहाहा!

वस्तुस्वरूप त्रिकाली देखने पर, सत्सनातन सत्य एकरूप ध्रुव की दृष्टि से देखने पर, मुक्त-सिद्ध अवस्था और संसार अवस्था दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहा!

**श्रोता :** अवस्थादृष्टि से या द्रव्यदृष्टि से? किस दृष्टि से?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** द्रव्यदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि कहो या निश्चयनय विषय कहो। शुद्धनिश्चयनय कहो या द्रव्यदृष्टि कहो। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि से देखने पर, संसार और मुक्ति दोनों पर्याय में कोई अन्तर नहीं है, दोनों व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, परन्तु व्यवहारनय का विषय है। निश्चय विषय में एकरूप प्रभु सनातन सत्य अनिर्मित, अनाश-विनाश नहीं होने से त्रिकाल एकरूप रहनेवाला तत्त्व, उसकी दृष्टि से देखने पर मुक्ति और संसार दोनों पर्याय है, इसलिये उस पर्याय में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। आहाहा! अब यह बात किस प्रकार बैठे? कहाँ निगोद का जीव, आहा! कहाँ उस निगोद के जीव में अनन्त-अनन्त जीव बाहर निकलने के नहीं। आहा! परन्तु पर्यायदृष्टि से देखें तो वह निगोद की पर्याय और सिद्ध की पर्याय दोनों व्यवहारनय है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि से देखने पर उस मुक्ति और संसार दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

दोनों पर्यायनय का, व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, आहाहा! ऐसी बात! यहाँ तो अब एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय करना... इच्छामि पडिक्कमणा आता है न?

***वस्तुरूप की दृष्टि से देखने पर वस्तु में पर्याय है ही नहीं।*** फिर संसार पर्याय हो, निगोद की अनन्त.. अनन्त पर्याय। आहाहा! जो निगोद के असंख्य शरीर, उसके एक शरीर में अनन्तवें भाग मुक्ति पाये और अनन्त-अनन्त गुने रह गये परन्तु वह सब पर्याय का अन्तर है, वस्तु तो भगवान सनातन (सत्य प्रभु है)। आहाहा! व्यवहार में अन्तर है, वह निश्चयदृष्टि में अन्तर नहीं है। समझ में आया? आहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना पूर्ण सत्य का स्वीकार नहीं हो सकता। एक समय की पर्यायदृष्टि, चाहे तो मुक्ति है, वह पर्याय है, पर्यायदृष्टि तो एक समय है और यह त्रिकाली चीज़ है, इस त्रिकाल चीज़ की अपेक्षा से एक समय की मुक्तपर्याय या एक समय की संसारपर्याय दोनों एक समय है। दोनों व्यवहारनय है। क्योंकि एक के बाद एक है। वस्तु तो सनातन अनादि-अनन्त एकरूप है। इस दृष्टि से देखने पर।

यही वास्तव में। पाठ में है न '**एवमेव' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** तत्त्ववस्तु भगवान पूर्णानन्द का विचार करने पर, परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा उसका ज्ञान करने पर। निरूपण अर्थात् कथन है। **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** आहाहा! शुद्धतत्त्व के रसिक। आहाहा! जिसमें पर्याय का रसिकपना भी नहीं। राग का रसिकपना तो नहीं, निमित्त का तो रसिकपना नहीं, संयोगी चीज़ भगवान संयोग से है, उसकी बात भी यहाँ तो (नहीं) आहाहा! परमार्थ से बन्ध और मोक्ष दो नहीं, बन्ध और मोक्ष ही जिसमें नहीं, आहाहा! बन्ध और मोक्ष तो पर्याय है। अब ५० गाथा।

## गाथा-५०

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पूर्वोक्तसकलभावाः परद्रव्यं परस्वभावा इति हेयाः।
स्वकद्रव्यमुपादेयं अन्तस्तत्त्वं भवेदात्मा।।५०।।

हेयोपादेयत्यागोपादानलक्षणकथनमिदम्। ये केचिद् विभावगुणपर्यायास्ते पूर्वं व्यवहार-नयादेशादुपादेयत्वेनोक्ताः शुद्धनिश्चयनयबलेन हेया भवन्ति। कुतः ? परस्वभावत्वात्, अत एव परद्रव्यं भवति। सकलविभावगुणपर्यायनिर्मुक्तं शुद्धान्त-स्तत्त्वस्वरूपं स्वद्रव्यमुपादेयम्। अस्य खलु सहजज्ञानसहजदर्शनसहजचारित्रसहजपरम-वीतरागसुखात्मकस्य शुद्धान्तस्तत्त्व-स्वरूपस्याधारः सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण-कारणसमयसार इति।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिः ह्न

( शार्दूलविक्रीडित )

सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां,
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।।

---

( हरिगीत )

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

गाथार्थः—[ पूर्वोक्तसकलभावाः ] पूर्वोक्त सर्व भाव [ परस्वभावाः ] परस्वभाव हैं, [ परद्रव्यम् ] परद्रव्य हैं, [ इति ] इसलिए [ हेयाः ] हेय हैं, [ अन्तस्तत्त्वं ] अन्तःतत्त्व [ स्वकद्रव्यम् ] ऐसा स्वद्रव्य—[ आत्मा ]आत्मा—[ उपादेयम् ] उपादेय [ भवेत् ] है।

टीकाः—यह, हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।

जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले ( ४९वीं गाथा में ) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से ) वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं। सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतरागसुखात्मक शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण ( सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है — ऐसा ) कारणसमयसार है।

इसी प्रकार ( आचार्यदेव ) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने ( श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि —

( वीरछन्द )

हे उदात्तचित् चरित् मुमुक्षु ! यह सिद्धान्त करो सेवन।
शुद्ध एक चैतन्यमात्र घन हूँ सदैव मैं ज्योति परम॥
यह जो मुझसे सदा विलक्षण विविध विभाव प्रगट होते।
इन स्वरूप मैं नहीं कभी भी मेरे लिए सभी पर ये॥

श्लोकार्थ :— जिनके चित्त का चरित्र उदात्त ( उदार, उच्च, उज्ज्वल ) हैं — ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।

---

## गाथा-५० पर प्रवचन

---

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

आहाहा! पचासवीं गाथा जरा कठिन है, सख्त है। यहाँ तो क्षायिकभाव भी व्यवहारनय के विषय में ले लिया है। पंचम पारिणामिकभाव जो ज्ञायकभाव, उसकी

अपेक्षा से उदयभाव और क्षायिकभाव दोनों व्यवहारनय का विषय है। यहाँ निश्चय में वह आता नहीं। आहा! ऐसा सूक्ष्म! लोग पूरे दिन रुपये में उलझे होते हैं। आहाहा!

एक प्रकार से कहें तो एक ही प्रभु एक ओर आत्मा तथा एक ओर विकल्प और पर्याय-यह सब लोक में, पर में जाता है। आहाहा! एकरूप स्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि में तो उसकी पर्याय में भी (संसार और मुक्ति) दोनों में अन्तर नहीं तो राग-प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग में अन्तर है-ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

*टीका :*— **यह, हेय-उपादेय...** छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य। **अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** आहाहा! **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** ये चार भाव, नारकादि उदयभाव, मतिज्ञान आदि क्षयोपशमभाव, केवलज्ञान आदि क्षायिकभाव, समकित और क्षयोपशम आदि। आहा! वे **जो कोई विभावगुणपर्यायें...** वे सब विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! त्रिकाली सहज सनातन सत्य, जिसमें कोई घाल-मेल नहीं, जिसमें कोई उपजना और विनशना कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी स्थिति में जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! चार ज्ञान के... अरे! चार भाव—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव। **वे पहले ( ४९वीं गाथा में ) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,...** जानने के लिये उपादान कहने में आयी थी क्योंकि वे हैं। हैं, वे जाननेयोग्य हैं; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! वे ४९ गाथा में उपादेयरूप से कहने में आयी थी।

**किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** आहाहा! अन्तर्दृष्टि के बल से, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा शाश्वत् टंकोत्कीर्ण ऐसा जो भगवान त्रिकाली एकरूप स्वभाव, उसकी दृष्टि से **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! वे चारों ही भाव हेय हैं। यहाँ तो अभी शुभराग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। दया, दान, व्रत, महाव्रत, भगवान की भक्ति, पूजा, नामस्मरण, गुणस्मरण इस राग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इससे पूर्व जो चार भाव कहे थे... आहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम ये भेद भी कहे थे न? आहाहा! वे सब **शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** अकेले ज्ञायकभाव के अवलम्बन में चारों भाव का अवलम्बन है नहीं। इसलिए इस अपेक्षा से वे हेय है। चारों ही भाव का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! शुभराग दया,

दान, व्रत, भक्ति, पूजा (का) भाव होता है, होता है, परन्तु आदरणीय नहीं। जब वे भाव आदरणीय नहीं। आहाहा! तो इससे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तो निर्मल है, वे तो मलिन हैं। निर्मल को जब हेय कहा, फिर मलिन तो हेय कहीं रह गया। आहाहा!

निर्मल ज्ञायक केवलज्ञानपर्याय, अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, वह पर्याय भी त्रिकाल निश्चयनय की दृष्टि से हेय है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति को हेय मानना इसे कठिन पड़ता है और हेय माने उसे मिथ्यात्वी मानता है। आहाहा! यहाँ तो त्रिकाली सनातन वस्तु, एकरूप रहनेवाले चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखें तो वे शुद्ध और अशुद्ध दोनों भाव हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, त्यागनेयोग्य हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभराग त्यागनेयोग्य है (ऐसा कहें), वहाँ इसे कठिन पड़ता है। आहा! चन्दुभाई कहाँ गये? आये नहीं? ठीक नहीं होगा। आहाहा!

यह ५० वीं गाथा बहुत ऊँची है। अर्ध सैंकड़ा। आहाहा! पचास। भगवान आत्मा एक ही समय में परिपूर्ण प्रभु पड़ा है। परिपूर्ण आनन्द, परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण सत्ता, परिपूर्ण श्रद्धा, परिपूर्ण शान्ति, उपशमरस आदि परिपूर्ण से भरा पड़ा है। उस त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से देखें तो बन्ध और मोक्ष की दोनों पर्यायें हेय हैं। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन भी हेय है। आहाहा! क्योंकि साधक को वे हैं नहीं और हैं नहीं, उसका लक्ष्य करने जायेगा तो राग होगा। यह कठिन विषय है, भाई! आहाहा!

बड़ा विवाद, झगड़ा यह होता है न? निमित्त से होता है, निमित्त से होता है। निमित्त से होता है; नहीं होता—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि एकान्ती है-ऐसा कहते हैं। अरे, जगत्! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त तो एक ओर रहा, मोक्ष और बन्ध वे निमित्त से हैं—ऐसा तो है ही नहीं। आत्मा में बन्ध और मोक्ष वे निमित्त से हैं —ऐसा तो है नहीं। अपनी योग्यता से बन्ध और मोक्ष है। आहाहा! उन्हें भी यहाँ त्रिकाल की दृष्टि से अन्तर्मुख दृष्टि करने में वे मददगार नहीं हैं, उनका आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। इसलिए चारों भाव हेय हैं। आहाहा! गजब बात है।

यह वापस ऐसी बात करते हैं कि ये सोनगढ़वाले ही यह कहते हैं। परन्तु यह कहाँ सोनगढ़ का है? यह नियमसार सोनगढ़ का सूत्र है? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। दूसरे शास्त्रों की तो प्ररूपणा की है परन्तु यह तो मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! वे कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं... पंचम काल के प्राणी, पंचम काल के

साधु, पंचम काल के श्रोताओं को ऐसा कहते हैं... आहाहा! गजब है। आठ वर्ष की बालिका हो या करोड़ पूर्व की आयुष्यवाला आदमी हो। आहा! तैंतीस सागर की स्थितिवाला देव हो या अन्तर्मुहूर्त की स्थितिवाला निगोद का जीव हो... आहाहा! सब पर्याय है। इस त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा से वे सब हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं, सन्मुख होनेयोग्य नहीं। आहाहा! शरण करनेयोग्य नहीं, उन्हें उत्तम माननेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

**शुद्धनिश्चयनय के बल से...** चारों ही भाव। आहाहा! ज्ञानी को उदयभाव होता है, राग होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक राग और दु:ख होता है, परन्तु वह हेय है। आहाहा! राग, शुभराग... आहा! वह भी हेय है, त्यागने योग्य है। अरे! पंचम काल के प्राणी अल्प पुण्य लेकर आये। भगवान महाविदेह में बिराजते हैं। कहाँ जन्म छोड़कर यहाँ जन्म (में) आये। आहाहा! उसे परमात्मा की वाणी ऐसा कहती है... आहाहा! प्रभु! तू अन्दर में एकरूप वस्तु है, तेरी वर्तमान पर्याय-अवस्था त्रिकाली पर जाये, इस अपेक्षा से वही एक आदरणीय है। जो पर्याय उस पर जाये, उसके (पर्याय) प्रति लक्ष्य करने जैसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा समझ में आया? जो पर्याय-अवस्था अन्तर में त्रिकाली ज्ञायकभाव पर जाये, वह पर्याय भी हेय है। आहाहा! (जो) पर्याय, स्वद्रव्य का आश्रय करे, वह पर्याय भी हेय है, उस पर्याय का विषय जो त्रिकाल है, आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु सनातन वज्र, ज्ञान वज्र, ज्ञान का हीरा ऐसा चैतन्य प्रभु भगवान की दृष्टि में, उसकी दृष्टि भी हेय है। आहाहा! गजब बात है! कहो, यह सब तब कहाँ था? यह सब किया था, वर्षी तप किया था न? तब यह बात कहाँ थी? कान में पड़ी थी? सुनी थी? आहाहा!

**श्रोता :** पूरे भारत में कहाँ थी?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बहुत कठिन बात, बापू! कठिन अर्थात् अपूर्व। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ एक स्वरूप से बिराजमान है, उसे अनेकपने का आरोप नहीं देना। आहाहा! त्रिकाली भगवान तो सादि-अनन्त और अनादि-सान्त; संसार अनादि-सान्त, मोक्ष, सादि-अनन्त... आहाहा! उस त्रिकाली सनातन में इन दो का अभाव है; इसलिए त्रिकाली सनातन की अपेक्षा से दोनों हेय हैं। आहाहा! इसका विस्तार तो यह है। संक्षिप्त तो बहुत संक्षिप्त कर दिया। आहाहा! संसार अनादि-सान्त (अशुद्ध) पर्यायरूप से; मोक्ष सादि-अनन्त शुद्ध (पर्यायरूप से), परन्तु वे सब पर्याय हैं। उसकी अवधि एक

समय की है। भले रहे सादि-अनन्त, परन्तु उसकी अवधि एक समय की है। बन्ध और मोक्ष एक समय की (अवधिवाली पर्याय है)। बन्ध की अवस्था एक समय है, उसका अभाव करके दूसरे समय जो पर्याय हो, वह एक समय की अवधिवाली है। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा में राग का बन्ध जो अनादि अज्ञान, वह एक समय की पर्याय है। एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय की स्थिति है और रूपान्तर हो (अर्थात् कि) बन्ध का अभाव होकर मोक्ष हो, उसकी भी एक समय की स्थिति है। आहाहा! तो वह भले सादि-अनन्त रहे और संसार भले अनादि-सान्त हो गया परन्तु दोनों वस्तु की चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा कहाँ मुम्बई में सुनने मिले? धूल-पूरे दिन धूल और पैसा और... आहाहा! मुम्बई में क्या, देश में भी मुश्किल है न, बापू! कितना विरोध करते हैं! निमित्त से होता है, निमित्त से (होता है - ऐसा) न माने, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू!

प्रत्येक द्रव्य, पर्यायरहित कोई द्रव्य होता है किसी काल में? तीन काल में पर्यायरहित द्रव्य होता है? तब अब उस पर्याय को दूसरा करे, यह कहाँ से आया? आहाहा! यहाँ तो उस पर्याय को भी उड़ा देते हैं। पर से पर्याय हुई नहीं, अपने से हुई है, राग में अटकने की बन्ध पर्याय और मोक्ष-केवलज्ञान होने की मोक्ष पर्याय, वह एक समय में अन्तर पड़ जाता है। एक समय में बन्ध और दूसरे समय में मोक्ष। आहाहा! परन्तु वे दोनों (एक) समय की स्थितिवाले हैं। आहाहा! त्रिकाल की स्थिति की अपेक्षा से उन्हें हेय और छोड़नेयोग्य (कहा) है। आहाहा!

**किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से?** अब कारण देते हैं। **हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब गाथा है!! केवलज्ञान, वह परस्वभाव; त्रिकाल स्वभाव नहीं। आहाहा! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो विकार परस्वभाव है ही। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है, कठिन बात है। आचार्य महाराज कहते हैं, मैंने तो मेरे लिये बनाया है। तू सुन और तुझे बैठे तो बिठा, अनादर करना नहीं। सत्य ऐसा महँगा-ऐसे अनादर करना नहीं, बापू!

भाई! तेरा नाथ भगवान इतना है कि जिसकी कीमत के समक्ष एक समय की पर्याय की कीमत है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव की कीमत के समक्ष इस केवलज्ञान की

एक समय की पर्याय की भी कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ विवाद उठे (कि) गुरु की भक्ति आदरने (योग्य) नहीं? भक्ति करने योग्य नहीं? भगवान! सुन न, बापू! भक्ति का भाव आवे, होता है परन्तु वह त्यागने योग्य है, वह आश्रय करने योग्य नहीं। आहाहा! भाव-शुभभाव होता है। आहा! परन्तु वह दु:खरूप है और उसका अभाव होकर आनन्दरूपदशा होती है। द्रव्यस्वभाव का जो आनन्द है; शुभभाव.. आहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का शुभभाव (हो) परन्तु वह दु:खरूप है, प्रभु! क्योंकि प्रभु आनन्दस्वरूप है।

भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त, अनादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। एक समय भी दु:ख और आकुलता जिसमें नहीं। आहाहा! और संसार की आकुलता, अरे! समयान्तर होकर निराकुलता प्रगट हो परन्तु वह भी पर्याय है। आहाहा! त्रिकाली निराकुल आनन्द के समक्ष नयी प्रगट हुई अनाकुलता पर्याय, वह भी हेय है। **किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब बात है। फिर लोग तो सोनगढ़ के नाम से कहते हैं कि व्यवहार उड़ाते हैं, व्यवहार से लाभ होता है—ऐसा नहीं कहते, अकेली निश्चय की बात ही करते हैं। उसे जँचा हो, ऐसा कहे। जो जँचा हो, वह आत्मा (अर्थात् कि) जो अभिप्राय जँचा हो, वह तो आत्मा वैसा हो गया होता है, पर्याय में आत्मा ही ऐसा हुआ हो। अब करना क्या उसे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसा राग की एकता का भाव, परभाव, परस्वभाव है, वैसा मुक्ति का स्वभाव परस्वभाव है। आहाहा! गजब बात है प्रभु! कान में पड़ना मुश्किल पड़े। आहाहा! मात्र समयान्तर है। वस्तु तो सनातन त्रिकाल है, उसमें उपजना या विनशना है ही नहीं। अब उत्पाद-व्यय जो है, उत्पाद हुआ मोक्ष का, व्यय हुआ बन्ध का, वह भी समय की स्थिति है। आहाहा! भले दूसरे समय मोक्ष रहे परन्तु अवधि तो एक समय की ही है। आहाहा! त्रिकाली मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा, उसे मुक्तस्वरूप कहना वह भी मानो कहीं किसी की बन्ध की अपेक्षा थी, इसलिए छूटा और मुक्त है - ऐसा भी नहीं। वह तो त्रिकाली मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! कठिन लगे, अनजाने व्यक्ति को पहले-पहले सुनता हो उसे तो ऐसा लगे कि यह जैनधर्म है? यह जैनधर्म ऐसा होगा? ऐसा अन्य धर्म निकाला कहाँ से? कहो, सेठ! आहाहा!

है, पर्याय है, बन्ध है, मोक्ष है परन्तु एक समय की अवधिवाले, दोनों एक समय की अवधिवाले। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय रहकर दूसरे समय दूसरा हो जाता है

और भगवान जो अन्दर है, वह तो एकरूप त्रिकाल अनादि और एकरूप रहता है। आहाहा! सनातन टंकोत्कीर्ण वस्तु, आहाहा! जैसे टाँकी से उकेर कर कोई एकाकार वस्तु निकाली हो, वैसा एकाकार त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप भगवान, उसे आदि और अन्त नहीं, उत्पन्न और व्यय नहीं, उत्पाद और व्यय का जिसमें अभाव है। आहाहा!

इस प्रकार तीनों को सत् कहना। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्-तीनों सत् हैं। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में (सूत्र है)। उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों सत् हैं परन्तु उत्पाद-व्यय एक-एक समय का सत् है। उत्पाद और व्यय एक समय का सत् है और प्रभु है, वह अनादि का सत् है। आहाहा! अरे रे! यह कैसे जँचे? इस दुनिया की धमाल... आहाहा! पूरे दिन स्त्री-पुत्र और धन्धा-व्यापार, और उसमें यह बात। आहाहा!

प्रभु कहते हैं, तुझमें मुक्ति भी नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि कर। आहाहा! क्योंकि मुक्ति की अवस्था भी एक समय की है, दूसरे समय दूसरी पर्याय होती है, तीसरे समय तीसरी पर्याय होती है। वह उत्पाद का एक ही समय है, व्यय का भी एक ही समय है। आहाहा! भले सत् हो... आहाहा! त्रिकाली सनातन सत् अकेला ज्ञायकभाव, जिसमें हीनाधिकपना नहीं, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें न्यूनाधिकता ये दो नहीं। आहाहा! जिसमें एकरूपता त्रिकाल है। आहाहा! ५० वीं गाथा में गजब किया है।

**श्रोता :** आपने गजब किया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रभु! तू कौन है? आहाहा! प्रभु! तुझे कहाँ दृष्टि देनी है? जो सनातन रहे, वहाँ देनी है या बदले, उसमें दृष्टि देनी है? आहाहा! बदले वह तो पलटा/व्यय हो जायेगा और वह भी वह व्यय होगा पारिणामिक में, ध्रुव में। आहाहा! वहाँ दृष्टि को छोड़ दे, आहाहा! उत्पाद-व्यय की दृष्टि को छोड़ दे। आहाहा! है तीनों सत्। यहाँ एक सत् ऊपर दृष्टि (रख)। ध्रुव पर दृष्टि करनेवाला उत्पाद-व्यय है। दृष्टि करनेवाला जिसे हेय मानता है, वह (वह स्वयं) है। आहाहा!

जो हेय कहता है, वह हेय कौन कहता है? यह पर्याय मानती है या कोई अध्धर से मानता है? आहाहा! पर्यायरहित द्रव्य तो कभी तीन काल में होता नहीं। पर्यायरहित द्रव्य हो तो वह तो गधे के सींग जैसा हुआ। जैसे गधे को सींग नहीं होते, उसी प्रकार इस पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं पर्याय भले हो! आहाहा! तीनों काल में किसी समय में पर्यायरहित

द्रव्य नहीं होता, तथापि उस एक समय की पर्याय की कीमत नहीं है। भले वह एक समय में पर्याय में रूपान्तर हो जाये। कहाँ बन्ध का भाव और कहाँ मोक्ष का भाव! आहाहा! एक समय में रूपान्तर! जो तीन काल-तीन लोक को जाने और बन्ध की पर्याय राग को तो यह जानने योग्य है, यह भी पता नहीं। वह रूपान्तर होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! वह भी यहाँ त्रिकाल एकरूप रहनेवाला प्रभु, उसके आश्रय में वह भी हेय है। कठिन लगे, बापू! क्या हो ? बहुत से तो ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़वालों ने घर का निकाला है, घर का धर्म निकाला है। आहाहा! नया निकाला है। हम चलते हैं, परम्परा चलती है, हमारी परम्परा चलती है, यह करना, ऐसा करना, ऐसा करना, उससे यह तो सब दूसरा प्रकार ही निकाला। अरे प्रभु! तेरे स्वरूप में ही यह है, प्रभु! प्ररूपणा में तो है ही, कथनशैली में तो है ही, शास्त्र में तो है ही परन्तु तुझमें है। आहाहा!

जितना यह कहा जाता है... आहाहा! एक समय में वह त्रिकाली वर्तमान है, ऐसा त्रिकाली! भले भविष्य में रहे, सनातन एकरूप (रहता है) आहाहा! उसे जाननेवाली पर्याय है, जाननेवाली ध्रुव नहीं, वह पर्याय जाननेवाली है। आहाहा! अरे! मोक्ष की पर्याय भी जो केवलज्ञान, जो द्रव्य को जाननेवाली है, जो तीन काल को जाननेवाली है... आहाहा! वह पर्याय जिसने द्रव्य का आश्रय किया है और पर्याय प्रगट हुई है, वह भी हेय है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! ऐसी बात कहीं मिलना मुश्किल पड़े ऐसा है। आहाहा! कठिन बात है, सुनना कठिन पड़े ऐसी है। लोग तो कुछ के कुछ रास्ते चढ़ गये हैं। आहाहा! यह सोनगढ़ को तो तिरस्कार.. तिरस्कार... तिरस्कार.. (करते हैं)। यह तो एकान्त मिथ्यात्वी हैं, एकान्त मिथ्यात्वी हैं (-ऐसा कहते हैं)। आहाहा! अरे प्रभु! तेरी यह मान्यता भी एक समय की है, प्रभु! यह तेरी विपरीत मान्यता भी एक समय की है। यह एक समय की पलटने में देरी नहीं लगेगी। आहाहा! त्रिकाली का नाथ अन्दर बिराजता है, प्रभु! उसका आश्रय लेने पर एक समय की मिथ्यात्व पर्याय नहीं रह सकेगी। आहाहा! ५० (गाथा में) गजब बात है।

५० वीं गाथा में तीन बोल लेंगे। एक तो हेय कहा **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** दो बात। एक तो हेय कहा, मोक्ष और बन्धपर्याय दोनों हेय कही। कारण ? हेय का कारण— वह परस्वभाव है, वह त्रिकाली स्वभाव नहीं। आहाहा!

वह सनातन सत्य है, जिसे कुछ पलटना नहीं, उपजना नहीं, बदलना नहीं - ऐसा

वह सत्य है। आहाहा! उस सत्य की अपेक्षा से केवलज्ञान आदि परस्वभाव है। हेय तो कहा परन्तु हेय का कारण कौन? कारण क्या? कि परस्वभाव है। आहाहा!

अरे! प्रभु! केवलज्ञान परस्वभाव!! गजब बात, भाई! अभी तो विकार को परस्वभाव मानने में विवाद (उठता है)। विकार परस्वभाव? तो विकार तो स्वभाव हो जायेगा, पर का स्वभाव। वह तो पर के निमित्त से विकार होता है। वह विकार पर के निमित्त से न हो तो स्वभाव हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि पर के निमित्त बिना हो, वह उसका विभावस्वभाव अपना है। आहा! वह बन्ध अपना है। आहाहा! बन्ध की पर्याय (की) अवधि एक समय की है, प्रभु! आहाहा! भले समयान्तर होते-होते अनन्त काल गया परन्तु मुद्दत तो एक समय की ही है। अनादि है परन्तु अवधि उसकी एक समय की है और जब गुलाँट खाता है-द्रव्य की दृष्टि करता है, तब मुक्ति भी एक समय की है। इसलिये वह मुक्ति की पर्याय-जो पर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, वह पर्याय भी हेय है, परस्वभाव है। आहाहा! परस्वभाव, स्व -स्वभाव का आश्रय करता है। हेय है, वह स्व का आश्रय करता है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगे प्रभु! क्या हो?

यहाँ तो (कलश में) कहा है न कि **शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति**। शुद्धतत्त्व के रसिक तो ऐसा ही कहते हैं। ऊपर आ गया न? शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष तो ऐसा ही कहते हैं। आहाहा! अनादि काल से प्रभु! राग-द्वेष और अज्ञान में (रहा) परन्तु उनकी अवधि तो एक समय की है। वह समय-समय करते अनन्त काल गया और रूपान्तर होने पर भी प्रभु एक ही समय है। मोक्ष भी एक ही समय रहता है, द्रव्य त्रिकाल रहता है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय एक समय (रहती है)। दूसरे समय दूसरी, वह नहीं, वह नहीं, वैसी। वह नहीं, वैसी। वैसी अवश्य परन्तु वह नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। सेठिया गये? है? ठीक! ये सुनने जैसा है, सेठिया! आहाहा! आहाहा!

दो कारण कहे। एक स्वद्रव्य के आश्रय की अपेक्षा से सभी चार भाव हेय हैं। हेय हैं उनका कारण (क्या)? कि उसका कारण (वे) परस्वभाव हैं। आहाहा! दूसरी बात-और परस्वभाव हैं, इसलिये... आहाहा! गजब बात है। और **वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं**। आहाहा! गजब बात है। सुनना कठिन पड़े, प्रभु! तेरा स्वरूप ऐसा है, भाई!

अनादि अनन्त सनातन चैतन्य का हीरा अनन्त गुण के रत्न से भरपूर सनातन नित्य ध्रुव है। उसकी दृष्टि की अपेक्षा से चार भाव भी हेय हैं क्योंकि परस्वभाव हैं। आहाहा!

केवलज्ञान परस्वभाव है। त्रिकाली स्वस्वभाव है, उसकी अपेक्षा से, उत्पन्न हुआ भाव- यह तो उत्पन्न हुआ भाव है और द्रव्य है, वह तो सनातन सत्य है। आहाहा! ऐसी बात है। हीराभाई! आहाहा!

५० वीं गाथा, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ने स्वयं लिखा है न **पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं**। यह तो अर्थकार-टीकाकार कहते हैं (परन्तु) स्वयं कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है, प्रभु! मेरी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, इससे मैं ऐसा कहता हूँ कि बन्ध और मोक्षपर्याय, वह हेय है और उसका कारण ऐसा कहता हूँ कि वे परस्वभाव हैं और इसलिए ही वे परद्रव्य हैं। आहाहा! पर के साथ सम्बन्ध नहीं। अपनी ही पर्याय की बात है। बन्ध और मोक्ष की पर्याय अपनी पर्याय की बात है परन्तु वह परद्रव्य है। आहाहा! क्यों? जैसे परद्रव्य में से नयी निर्मल आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय-मोक्ष की पर्याय हो तो भी उसमें से नयी आनन्द की पर्याय नयी पर्याय में से नहीं आती। आहाहा! गजब बात है। भाग्यवान को कान में पड़े ऐसा है। आहाहा!

राग तो दुःखदायक है, वह तो संसार है, वह तो एक समय की अवस्था पलट सकती है परन्तु पलटकर मोक्ष हो, उस समय की अवस्था भी एक समय की ही है। क्यों? कि त्रिकाली की अपेक्षा से एक समय है; इसलिए त्रिकाली की अपेक्षा से हेय है; इसलिए त्रिकाली के स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। **और इसीलिए...** हेय के कारण परस्वभाव है, इसीलिए वह परद्रव्य है। आहाहा!

अपनी केवलज्ञानपर्याय, सिद्धपर्याय, अनन्त चतुष्टय बाह्य प्रगट हुए; शक्ति में जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य था, वह पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, तथापि कहते हैं कि वह तो परद्रव्य है। आहाहा! क्योंकि उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। जैसे परद्रव्य में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे इस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती। आनन्द की पर्याय आती है भगवान त्रिकाल त्रिलोक के नाथ में से आती है। आहाहा! जिसमें से अनन्त आनन्द की पर्याय आवे, उसे हम स्वद्रव्य कहते हैं। आहाहा! और जिस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय न आवे, उसे हम स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य कहते हैं। गजब बात है। आहा! **इसीलिए परद्रव्य हैं**। आहा! इसमें विशेष आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५५, गाथा-५०, मंगलवार, श्रावण शुक्ला ८ दिनांक ०२-०९-१९८०

नियमसार ५०वीं गाथा, हिन्दी में टीका। गाथा फिर से लेते हैं।

**पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**
**सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।**
**पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।**
**अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही।।५०।।**

सूक्ष्म अधिकार है, मूल अधिकार है। परमात्मा सर्वज्ञदेव तीर्थंकरदेव के अन्तर के पेट की बात है। जो अनादि काल का सनातन धर्म क्या है ? वह बात है।

**टीका: —यह, हेय-उपादेय...** छोड़नेयोग्य – आदरनेयोग्य **अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** त्याग का अथवा ग्रहण का अथवा हेय का, छोड़ने का और आदरने का, यह अधिकार इसमें है। **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** आहाहा! कठिन बात है। आत्मा में चार प्रकार की पर्यायें होती हैं। एक दया, दान, व्रत, भक्ति का उदयभाव, एक उसका उपशमभाव, राग का उपशम-दबना, एक क्षयोपशमभाव, एक क्षायिकभाव, ये चार भाव आत्मद्रव्य की चार पर्यायें हैं। आत्मद्रव्य की चार पर्यायें / अवस्थाएँ हैं। यह कहते हैं कि **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** ये चार पर्यायें। आहाहा! कठिन बात है।

**वे पहले ( ४९वीं गाथा में ) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, ४९ ( गाथा ) में किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से...** परन्तु अन्तर के आत्मस्वभाव की शक्ति के बल से अथवा शुद्धचैतन्य को प्राप्त करने के बल से वे चार पर्यायें हेय हैं। आहाहा! उदयभाव तो हेय है ही। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा यह सब राग तो बन्ध का कारण हेय है ही। परन्तु उसका उपशम होना। जैसे पानी में मैल नीचे बैठ जाये और पानी स्थिर हो, वैसे विकार का मैल नीचे बैठ जाये और उपशम हो जाये, वह उपशमभाव भी यहाँ तो हेय है, त्यागने योग्य है। हेय है, वह त्यागनेयोग्य है। आहाहा!

जिसे आत्मज्ञान प्रथम सम्यग्दर्शन, धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली श्रेणी, अनन्त काल में नहीं बनी हुई अपूर्व, ऐसी दृष्टि करनी हो, उसे उदयभाव, उपशमभाव और ज्ञान के क्षयोपशम में उघाड़ भाव और किंचित विघ्न; और केवलज्ञानादि क्षायिकभाव या क्षायिक समकित आदि, ये चारों भाव... आहाहा! **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! कठिन बात है। ५० गाथा। कल तो बहुत चला था। समझ में आया?

अन्दर एक पंचम पारिणामिकस्वभावभाव, ध्रुवभाव, अनादि-अनन्त, सनातन नित्य भाव एक ही सम्यग्दृष्टि को उपादेय है। जिसे धर्म की पहली सीढ़ी प्रगट करनी हो तो उसे अनादि-अनन्त चैतन्यस्वरूप जो शुद्ध पारिणामिकस्वभाव, जो ज्ञायकभाव, त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह एक ही आदरणीय है। दृष्टि वहाँ करनेयोग्य है। आहाहा! कठिन बात है।

यह शरीरादि तो जड़ मिट्टी है। हलन-चलन की क्रिया होती है, वह सब जड़ की (क्रिया) है। आत्मा कभी जड़ में कुछ नहीं कर सकता। जड़ को स्पर्श भी नहीं करता न! आहाहा! समयसार की तीसरी गाथा (में कहा है कि) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। हमारी गुजराती भाषा में अड़ते नथी (ऐसा कहते हैं)। यहाँ कहते हैं स्पर्श नहीं करता। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! गजब बात है। यह अंगुली अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है। इसमें एक-एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! क्योंकि द्रव्य, वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में अस्ति रखती है। पर के कारण उसकी अस्ति किंचित् नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ, परमाणु या आत्मा अपना त्रिकाली द्रव्य वस्तु, उसकी शक्ति जो गुण, ज्ञान, दर्शन आदि और उसकी पर्याय अवस्था वर्तमान हालत, विचार, इतन तीन में इसका अस्तित्व है। इन तीन में उसकी मौजूदगी है। वह मौजूदगी दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! कहो, बलुभाई! यह कभी सुना था? तब लंघन किया था। वर्षीतप किया था। आहाहा! अरे प्रभु! मार्ग अलग है, प्रभु! वीतराग तीन लोक के नाथ परमेश्वर महाविदेह में विराजमान हैं। बीस तीर्थंकर, लाखों केवली विराजते हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त तीर्थंकर होंगे, अनन्त केवली होंगे, अनन्त सन्त सच्चे मुनि जैनदर्शन के होंगे, उन प्रत्येक का यह कथन है। यह कथन है। आहाहा!

शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी, परिवार, वह तो भिन्न है। वे तो आत्मा की

पर्याय में भी नहीं। क्या कहा ? आत्मा की जो अवस्था-पर्याय, पलटती दशा है, उसमें वे नहीं। पर, वह संसार नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति वह संसार है नहीं। संसार आत्मा की पर्याय में द्रव्य-गुण शुद्ध से संसरण-हटकर विकार में रहना, वह संसार है। आहाहा! बात कठिन है, भाई! कभी सुनी नहीं, की नहीं।

चौरासी के अवतार करते-करते अनन्त काल चला गया है। चौरासी लाख योनि। एक आत्मज्ञान बिना, आत्मदर्शन, समकित बिना एक-एक योनि में अनन्त बार अवतार धारण किये। बाकी सब क्रिया तूने की है। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण किया, दिगम्बर नग्न मुनि हुआ, जंगल में बसा और 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना...' भगवान सच्चिदानन्द प्रभु जिनेश्वर परमेश्वर ने जो आत्मा आनन्दकन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, अतीन्द्रिय ज्ञान का कश, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर, ऐसा जो प्रभु आत्मा भगवान ने देखा है। उस आत्मा को अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी स्पर्श नहीं किया। आहाहा! पर्यायदृष्टि में रहा। पर्याय अर्थात् वर्तमान अवस्था, बदलती पर्याय विचारणा। इसके अतिरिक्त ध्रुवस्वरूप जो त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उस ओर तो एक समय भी झुकाव किया नहीं।

यह कहते हैं, **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** त्रिकाली ज्ञायकभाव के ज्ञान के बल से। आहाहा! व्यवहारनय से उसके हैं, ऐसा कहा था, आत्मा के हैं व्यवहार से परन्तु निश्चय अन्तर त्रिकाली सत्यार्थ, वास्तविकता, त्रिकालता और त्रिकाली रहनेवाला सत्य, उस दृष्टि से देखो तो वह **शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से ) वे हेय हैं।** वे चारों भाव हेय हैं। आहाहा! गजब बात है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। यह पुस्तक (ग्रन्थ) मैंने मेरे लिये बनाया है। समयसार, प्रवचनसार आदि तो उपदेशरूप से सबके काम आवे, ऐसा बनाया है। यह पुस्तक भी काम आवे, इसलिए बनायी है, परन्तु मैंने तो मेरे लिये बनायी है। आहाहा! अन्तिम गाथा में है कि मैंने मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! अरे रे! इन्होंने क्या किया ?

एक आत्मा की उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय, वह पर्याय भी आदरणीय नहीं है। क्यों ? उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती। आहाहा! नयी पर्याय शुद्ध निर्मल वीतरागी आनन्द की दशा, द्रव्य में से आती है। इस कारण उस पर्याय को हेय कहा है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन बात है। किसी को तो ऐसा लगे कि यह निकाला कहाँ से ?

ऐसा नया मार्ग कहाँ से निकाला ? अरे ! प्रभु ! ये शास्त्र तो अनादि के हैं, महावीर भगवान के समय के हैं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाये तब के हैं। आहाहा ! इसमें नियमसार की ५० गाथा (चलती है)।

नियम ऐसा है कि, नियम ऐसा है कि, इस नियम का सार, कि पर्याय में चार प्रकार की पर्याय होती है। उसकी स्थिति एक समय की है। राग हो तो भी एक समय रहे, उपशमभाव भी एक समय रहे, क्षयोपशमभाव भी एक समय रहे, अरे ! क्षायिक केवलज्ञान भी एक समय रहे। केवलज्ञान एक समय रहे, दूसरे समय में वह केवलज्ञान न रहे। केवलज्ञान, दूसरे समय दूसरा। वैसा, परन्तु वह नहीं। आहाहा ! कठिन बात है, प्रभु ! जैनमार्ग ऐसा कठिन है। सब परम्परा टूट गयी। बाहर में चार गति में भटकने का मार्ग रह गया। आहाहा ! पुण्य की क्रिया करो और मोक्ष जाओगे। दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ – जाओ, मोक्ष होगा। कहाँ गये ? आहाहा !

यहाँ परमात्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य ने सीधे सुना हुआ, वे जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। अपने हित के लिये बनाया हुआ। यह पुस्तक (ग्रन्थ) अपने हित के लिये बनायी है। वह जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु ! तुझमें दो प्रकार है। कोई शरीर, वाणी, मन, कर्म-फर्म वह तो आत्मा को स्पर्श नहीं करते। कर्म जड़ हैं, उन्हें आत्मा स्पर्श नहीं करता। आत्मा अरूपी है। कर्म जड़ रूपी है। शरीररूपी को आत्मा स्पर्श नहीं करता। स्पर्श नहीं करता। यह बात कैसी ? अरे ! वह आत्मा को तो स्पर्श नहीं करता, परन्तु उसमें जो अनन्त परमाणु हैं, वे एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करते। एक-एक परमाणु अपने अस्तित्व में है। दूसरे परमाणु अपने अस्तित्व की अस्ति में है। पर की अस्ति को स्पर्श नहीं करते। आहाहा ! ऐसा कठिन काम है। प्रभु ! मार्ग तो ऐसा है। दुनिया को बैठे, न बैठे। दुनिया विरोध करे। उसे न बैठे तो विरोध करे।

**मुमुक्षु :** अज्ञानी लोग करे...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अज्ञानी को वस्तु की खबर नहीं है। यह भगवान अन्दर है, परन्तु इसकी उसे खबर नहीं है।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि ये चार भाव हेय हैं। आहाहा ! अरे ! क्षायिकभाव, क्षायिक समकित भी पर्याय है न ? और यहाँ साधक, (को) केवलज्ञान तो है नहीं। तो केवलज्ञान

का-पर का लक्ष्य करे तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा! इस कारण से अपने अस्तित्व में दो प्रकार, पर के अस्तित्व की तो बात ही नहीं है। शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह तो पर का अस्तित्व है। अपने को और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अपनी अस्ति और पर की अस्ति को कुछ सम्बन्ध नहीं है। पर की अस्ति उसके कारण से है और अपनी अस्ति अपने कारण से है। आहाहा! अरे रे! प्रभु! ऐसी सूक्ष्म बात है, प्रभु!

कहते हैं कि पर की अस्ति की तो हम यहाँ बात ही नहीं करते क्योंकि पर की अस्ति में अपनी अस्ति को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! परन्तु अपनी अस्ति में दो प्रकार हैं। आत्मा की अस्ति में दो प्रकार हैं। एक वर्तमान पर्याय प्रकार—दया, दान, व्रतादि का उदयभाव, वह राग को मन्द करना अथवा दबाना, नीचे रहना, कुछ उघाड़ ऊपर शान्ति होना, वह उपशमभाव; क्षयोपशम अर्थात् ज्ञान में उघाड़ होना, कुछ विघ्न रहना, कुछ उघाड़ और क्षायिकभाव विघ्नरहित पर्याय। ये चारों पर्यायें आत्मा में नहीं हैं। पर्याय में है, वे हेय हैं। आहाहा! ऐसी बात! स्त्री, पुत्र की तो बात ही नहीं। वह तो उनका द्रव्य उनके कारण से आकर उनकी अस्ति से रहा है। वह कहीं तेरी अस्ति से उनकी अस्ति नहीं रही है। आहाहा! इस शरीर के अस्तित्व की, उसके कारण अस्ति द्रव्य-गुण-पर्याय उसके, उसके कारण उसकी अस्ति है। यह हलन-चलन होना, वह आत्मा से नहीं होता। उसकी अस्ति से उसका हलन-चलन है। आत्मा से बिल्कुल नहीं। आहाहा! तुम्हारे पैसे कहाँ गये इसमें? ये सब करोड़पति। धूलपति धूल। वह धूल तो अजीव है। अजीव की सत्ता में जीव की सत्ता का प्रवेश नहीं है और अजीव की सत्ता जीव की सत्ता को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! यह क्या कहते हैं?

भगवान! भगवान तीन लोक के नाथ ने यह कहा है। परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! उन्होंने कही हुई यह बात है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। ओहो! साक्षात् परमात्मा की वाणी आठ दिन सुनी और कितनी ही बातें छद्मस्थ श्रुतकेवली जो थे, परन्तु श्रुत में पूरे, उनके साथ चर्चा करके कितने ही निर्णय किये थे, वह सब लेकर यहाँ आये। आकर यह शास्त्र बनाया। आहाहा!

प्रभु! एक बार सुन न! तेरी अस्ति पर की अस्ति के कारण है? शरीर की अस्ति के कारण तेरी अस्ति है? इस वाणी की अस्ति के कारण तेरी अस्ति है? और वाणी की अस्ति तेरी अस्ति के कारण है? आहा..! यह वाणी है, वह जड़-मिट्टी परमाणु की पर्याय

है। उसकी अस्ति तेरे कारण नहीं। इसी प्रकार इस शरीर की हलन-चलन आदि क्रिया, वह तेरे कारण नहीं है। वह जड़ की अस्ति के कारण, उसकी अस्ति के कारण, उसके अस्तित्व के कारण, उसकी मौजूदगी के कारण, उसकी क्रिया जड़ में उसके कारण होती है। आत्मा से बिल्कुल नहीं होती। आहाहा!

**मुमुक्षु :** पैसा कमाने का काम आत्मा करे?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पैसा कौन कमाये? धूल। पैसा जड़-मिट्टी। आहा..हा..! हमने भी पाँच वर्ष दुकान में धन्धा किया था न, पालेज में बड़ी दुकान चलती है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है, तीन लड़के हैं, परन्तु इस वर्ष बँटवारा कर दिया। नहीं तो तीन लड़के, बुआ के लड़के भागीदार थे। हम दो थे और वे दो थे और दो दुकानें थीं। उसमें (संवत्) १९६३ से १९६८ तक तो मैंने दुकान चलायी है। पिताजी थे। उमराला से १९५९ के वर्ष में वहाँ गये थे। छप्पनियाँ (दुष्काल) के बाद गये थे। पिताजी चार वर्ष रहे (संवत्) १९६३ के वर्ष में गुजर गये। १९६३ से १९६८ के वर्ष तक भागीदार के साथ मैंने दुकान चलायी। पाँच वर्ष चलायी थी। अभी वह दुकान तो बड़ी हो गयी है। चालीस लाख रुपये, चार लाख की आमदनी। लड़के मनसुख और वे आये थे। अरे! धूल में। यहाँ कौन कमावे और कौन कमावे? किसके पैसे? किसके पैसे?

प्रभु! पैसा अस्तिवाली चीज़ है या अनअस्तिवाली? तो अस्तिवाली चीज़ तेरे कारण है या उसके कारण है? आहाहा! अरे रे! तूने न्याय से बात नहीं सुनी, प्रभु! आहाहा! पैसे की अस्ति उसके द्रव्य-गुण-पर्याय की अस्ति के कारण है या तेरे कारण है? इस स्त्री की अस्ति, तेरी स्त्री तू जो मानता है, मानता है; है नहीं। आत्मा को स्त्री नहीं है। स्त्री की अस्ति उसके द्रव्य-गुण-पर्याय में उसकी अस्ति उसके कारण है। उसके पास जो कर्म है, वह कर्म की अस्ति कर्म के कारण है, आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! रामजीभाई को एक ही लड़का है, इसलिए ऐसे प्रश्न करते हैं। एक ही लड़का है न? सुमनभाई! महीने में आठ हजार का वेतन है। मुम्बई! अमेरिका भेजा था। पाप करके (पैसा) पैदा किया था और पैंतीस हजार खर्च करके लड़के को पढ़ाया। पाप करके किया था और पाप करके दिया। उस लड़के का क्या, ऐसा पूछते हैं। वह लड़का उसकी अस्ति में उसके कारण से है। इसके कारण उसकी अस्ति नहीं है और उसकी अस्ति के कारण इसकी अस्ति नहीं है। आहाहा!

अरे परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव, उन्हें कौन सुनेगा? उनका नाद कौन झेलेगा? उनके नाद को कौन हाँ करेगा? आहाहा! दुनिया पागल, अज्ञान में पागल हुई। आहाहा! उसमें यह बात... आहाहा! एक-एक रजकण, उसकी अस्ति के कारण है। उसके कारण है। अंगुली की अस्ति के कारण यह नहीं और इसके कारण वह नहीं। आत्मा के कारण उसकी (पुद्गल की) अस्ति नहीं। वह तो मिट्टी है। मिट्टी अस्ति-मौजूदगी उसके कारण, जड़ के कारण है; आत्मा के कारण बिल्कुल नहीं। आहाहा! इसलिए उसकी बात तो यहाँ की नहीं कि शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पैसा वह हेय है, यह बात यहाँ नहीं की, क्योंकि इसमें है नहीं तो फिर हेय किसे? हेय तो अपने में हो, हो उसे हेय कर सकते हैं परन्तु पर का हो, उसमें पर में हेय-उपादेय कहाँ? पर तो पर की चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

पर की चीज़ तो पर के कारण, स्वयं की अस्ति के कारण है तो उसका त्याग-ग्रहण आत्मा में नहीं है। आत्मा में एक त्याग-उपादान नाम का गुण है, एक शक्ति है। आत्मा में त्याग-उपादान। तो एक भी रजकण का त्याग और एक भी रजकण का ग्रहण, उससे प्रभु रहित है। अरे रे! वलुभाई! अरे! भगवान का नाद कौन सुनेगा? अरे! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ...। श्रीमद् एक बार कहते थे कि अरे रे! मेरी यह बात कौन सुनेगा? यहाँ तो तीन लोक के नाथ, दिव्यध्वनि द्वारा बात आयी, वह कहे, दिव्यध्वनि की अस्ति मेरे कारण नहीं है। आहाहा! यह आवाज निकलती है, वह जड़ की। उस जड़ की अस्ति जड़ के कारण से है, स्वयं के कारण से; आत्मा के कारण से नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहे, दया पालो, व्रत करो, भक्ति करो और यह करो। अरे! भगवान! कदाचित् उसमें राग की मन्दता करो तो पुण्य होगा और उस पुण्य से चार गति में भटकने का बनेगा। आहाहा! वह पुण्य स्वयं संसार है। आत्मा त्रिकाली आनन्द का नाथ, उसमें 'संसरणं इति संसार:' उसमें से हटकर, त्रिकाली में से हटकर विकार में आया, वह संसरणं इति संसार: - वह पर में आया, यह तो बात ही नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

यह तुम्हारा कारखाना चलता है न? क्या कहलाता है वह? एक बार गये थे। स्टील-स्टील। स्टील का बड़ा कारखाना है। ....लोहे का, हमारे क्या करना है कहा। स्टील का कारखाना है। काँप में। धूल का कारखाना उसके कारण चलता है, वह कारखाना मनुष्य के कारण भी नहीं, चन्दुभाई के कारण तो नहीं ही।

**मुमुक्षु :** .....पैसा तो हमको मिलता है न ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा ! अरे ! किसे पैसा मिले ? प्रभु ! पैसा, वह कोई चीज़ है या नहीं ? तो वह चीज़ इस चीज़ को मिले या स्पर्शे ? प्रभु ! यह बात दूसरी है, जगत से न्यारी है। वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वर का मार्ग दुनिया से अत्यन्त न्यारा है। इस लक्ष्मी को आत्मा स्पर्श नहीं करता तो इसे लक्ष्मी कहाँ से मिली ? तब मिला क्या ? कि उसके आने पर इसे ऐसा लगा कि मेरी है, ऐसी ममता इसे मिली। वह ममता इसकी पर्याय में स्वयं की है। वह लक्ष्मी ने नहीं करायी है। आहाहा ! बात-बात में अन्तर ! दुनिया के साथ... दुनिया में रहना और दुनिया से अन्तर। दुनिया में कहाँ रहता है ? आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि तेरी अस्ति में वह लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, इज्जत, वस्त्र, वह तेरी अस्ति के कारण है ही नहीं; इसलिए उनकी तो हम बात करते नहीं कि वे छोड़ने योग्य हैं और ग्रहण करनेयोग्य तेरी चीज़ है। वह तो आत्मा के गुण में नहीं। आत्मा का एक ऐसा गुण है - त्याग-उपादानशून्यत्वशक्ति। एक रजकण से लेकर दाल, भात, रोटी, सब्जी, वस्त्र, पैसा, उसका त्याग और उसका ग्रहण, उससे आत्मा शून्य है। आहाहा ! अरे रे ! इस बात को झेले, प्रभु ! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव, अनन्त तीर्थंकरों का यह नाद है। अरे ! अभी यह सब छिन्न-भिन्न हो गया है। अभी कहीं न कहीं ( किसी न किसी ) नाम से लोग बेचारे भटक मरते हैं। आहाहा !

भगवान त्रिलोक के नाथ, अनन्त तीर्थंकरों की यह आवाज है। आहाहा ! यह आवाज, उनका कहना, यह भी निमित्त से है। आहाहा ! आवाज, आवाज से है। वह आवाज आत्मा से नहीं, परन्तु उस आवाज में ऐसा आया.. आहाहा ! कि तेरी अस्ति में दो बातें हैं। तू आत्मा है न, प्रभु ! तो तुझमें दो बातें हैं। एक त्रिकाली द्रव्य है और एक वर्तमान पर्याय / अवस्था है। बदलती अवस्था और एक त्रिकाली ध्रुव, यह दो अस्ति तुझमें है। तुझमें दो अस्ति के अतिरिक्त तीसरी कोई अस्ति नहीं है। आहाहा ! अब इसकी पर्याय की जो अस्ति, इसकी अवस्था जो है। जो ऐसे विचार चलें, बदलें, उस अस्ति के चार प्रकार हैं। उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव। इसकी अस्ति की पर्याय में चार भाव। जो पर की अस्ति के कारण नहीं है, जो पर की अस्ति में नहीं है। वे चार भाव भी हेय हैं। आहाहा ! छोड़नेयोग्य हैं। जिसे धर्म करना हो, जिसे सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी, पहला सोपान करना हो उसे; तेरी अस्ति के अतिरिक्त के त्याग-ग्रहण की

बात यहाँ है ही नहीं, क्योंकि पर के त्याग-ग्रहण से तो तू त्रिकाल शून्य है। पर के त्याग और ग्रहण से तो त्रिकाल शून्य है। आहाहा! रजनीभाई! क्या यह तुम्हारे पैसे-वैसे धूल।

**मुमुक्षु :** ......

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लोग कहते हैं, उस एक-एक लड़के को करोड़-करोड़ रुपये हैं, ऐसा कहते हैं। यह बात सुनी है। मकान देखने गये थे। पोपटभाई के पास रहते थे, मकान बनाया है। जमीन ली है। लड़के कभी निवृत्त होकर नम्बर से आते हैं। आहाहा!

अरे! भगवान! तेरी अस्ति में जो चीज़ नहीं, उसके ग्रहण-त्याग की यहाँ बात नहीं है, क्योंकि तू पर के ग्रहण-त्याग से रहित है। अब बात रही तेरी पर्याय-अवस्था, वह तेरी अस्ति, तेरी दशा में राग, द्वेष, दया, दान, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव, वह तेरी पर्याय में, अस्ति में है। वह अस्ति हेय है। उस पर नजर रखने की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! उस पर नजर रखने से तो राग होगा और संसार में परिभ्रमण करेगा। आहाहा! चिमनभाई! इसमें कहाँ तुम्हारी मुम्बई की धमाधम। आहाहा! धमाल.. धमाल.. धमाल..

अरे! प्रभु! तेरी मौजूदगी में, तेरी अस्ति में, आत्मा में द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् ज्ञान-दर्शन आदि शक्ति, और पलटती अवस्था, ये तीन तेरी अस्ति में है। तीन के अतिरिक्त चौथी चीज़ तेरी अस्ति में नहीं है। आहाहा! यह बात पागल लगे ऐसी है। पागल को पागल लगे, ऐसा है। पूरी दुनिया पागल है। आहाहा! बलुभाई! ये सब बुद्धिवाले कहलाते हैं, वे सब पागल हैं। आहाहा! तीन लोक के नाथ पागल कहते हैं। परमात्मप्रकाश में पाठ है कि दुनिया सत्य कहनेवाले को पागल कहती है और सत्य कहनेवाला दुनिया को पागल मानता है। आहाहा!

यहाँ दो बातें हुई। एक तो आत्मा में द्रव्य-वस्तु, गुण-शक्ति, ज्ञान-दर्शन आदि और उसकी बदलती अवस्था, इन तीनों में इसकी अस्ति है। बाकी बाह्य चीज़ में इसकी अस्ति नहीं है और बाह्य चीज़ के कारण इसकी अस्ति नहीं है और इसके कारण बाह्य चीज़ की अस्ति नहीं है। अब इसकी पर्याय में चार प्रकार की पर्याय की अस्ति है। आहाहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव। चार भाव भी सुने नहीं होंगे। अरे रे! ये चार भाव भी... कहा न?

**शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! पर की तो बात कहाँ करनी? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, धूल; धूल अर्थात् पैसा। आहाहा! वे तो उनकी अस्ति से वहाँ रहे

और उनकी अस्ति से जाते हैं। तेरे प्रयत्न से आवे और जावे, यह बात तीन काल में सत्य नहीं है। आहाहा! तेरी अस्ति में तो राग और द्वेष विकार हो, या धर्म की उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक पर्याय हो। इस त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से (हो), तथापि वह पर्याय हेय है। क्यों ?—कि वह पर्याय-अवस्था जो है, उसमें से नयी अवस्था उत्पन्न नहीं होती। नयी अवस्था में से अवस्था उत्पन्न नहीं होती। अवस्था / पर्याय, द्रव्य-त्रिकाली द्रव्य भगवान आत्मा अनादि सनातन सत् प्रभु में से पर्याय आती है। पर्याय में से पर्याय नहीं आती। इस कारण चार प्रकार की पर्याय को भी हेय कहा गया है, उसकी दृष्टि छोड़ दे। भगवान पर दृष्टि कर। त्रिकाल परमात्मस्वरूप भगवान, पंचम भाव, इन चार भाव से भिन्न। चार भाव पर्याय के हैं और पंचम भाव द्रव्य का, वस्तु का है। ज्ञायकभाव। ज्ञायक... आहाहा!

**किस कारण से ?** हेय है। है शब्द ? हेय कहा, वह किस कारण से है। कारण बिना कार्य होता नहीं। अपनी पर्याय अवस्था में जो चार भाव होते हैं, वे नजर में से छोड़ने योग्य है। वहाँ नजर रखने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उनके लक्ष्य से राग होता है। आहाहा! **किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! है ? आहाहा! प्रभु.. प्रभु.. प्रभु! अनन्त तीर्थंकर हो गये, होते हैं और होंगे। उनका यह भाव है, उनका यह भाव है। परन्तु इस जगत को यह बैठना (समझ में आना कठिन पड़ता है)। सुनना कठिन पड़ता है। सुनने को ही मिलता नहीं। यह करो.. यह करो.. दया पालो, व्रत करो, रात्रिभोजन नहीं करो, छह परबी व्रत पालो, परबी कन्दमूल न खाओ, ऐसी सब बातें। आहाहा! जो परद्रव्य का ग्रहण-त्याग कर नहीं सकता, उसकी बातें। आहाहा!

तेरी पर्याय में.. अभी कितने ही तो पर्याय को भी नहीं समझते होंगे। तेरी चीज़ जो शाश्वत चीज़ नित्य है, वह द्रव्य है और पलटती अवस्था बदलती है, वह पर्याय है। उस पर्याय में चार भाव होते हैं, तो चार भाव हेय हैं। **किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! लो, यह हिन्दी में आया ? होवे वह आवे न ? दुनिया मानो, न मानो। चौरासी के अवतार कर-करके अनादि से भटक रहा है। बापू! एक-एक नरक, एक-एक नरक में अनन्त-अनन्त अवतार किये हैं। पहले नरक की दस हजार वर्ष की स्थिति है। पहला नरक रत्नप्रभा... आहाहा! रत्नप्रभा नाम है।

एक साधु ने एक बुढ़िया से पूछा था कि बुढ़िया! रत्नप्रभा जाना है ? अरे! माँ-बाप! हम जायेंगे ? तुम्हारे जैसे जायें रत्नप्रभा। उसे ऐसा कि रत्नप्रभा अर्थात् मानो क्या होगा ?

परन्तु पहले नरक का नाम रत्नप्रभा है। आहाहा! साधु ने कहा कि बुढ़िया! तुम्हें रत्नप्रभा में जाना है? महाराज! हमारे जैसे प्राणी रत्नप्रभा नहीं जाते, आपके जैसे जाते हैं। अर र! उसे अभी रत्नप्रभा किसे कहना, कहाँ है? उसकी भी खबर नहीं होती। आहाहा! और सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण करके माने कि धर्म हो गया। वहाँ धूल में भी धर्म नहीं। धूल में भी नहीं अर्थात् क्या? कि उसे साधारण पुण्य बँधे धूल। वह चार गति में भटकने के लिये पुण्य है। आहाहा!

**किस कारण से?** हेय है? प्रभु! परन्तु अपनी पर्याय में है और हेय है? अपने में है नहीं, ऐसे शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इज्जत, कीर्ति, मकान, वह तो अपने में नहीं, वे तो परचीज़ हैं। उनके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है, परन्तु अपनी पर्याय में है, उसे हेय क्यों कहा? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। है न? **किस कारण से?** आहाहा! अपनी अवस्था में होनेवाली पर्याय राग, द्वेष, दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा.. अरे! उनसे रहित परन्तु उपशमभाव, धर्म भाव... आहाहा! वह भी हेय छोड़नेयोग्य है, प्रभु!—ऐसा आप किस कारण से कहते हो? कारण क्या है? कारण है, प्रभु! **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! प्रभु! वे परस्वभाव हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, विकार तो परस्वभाव है ही, परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव को परस्वभाव कहा। पर्याय को परस्वभाव कहा। आहाहा! अरे रे! इसने कभी जिन्दगी में सुना भी नहीं होगा और यह जिन्दगी चली जा रही है। कहाँ अवतार होगा? सत्ता तो रहनेवाली है। आत्मा की सत्ता तो अनादि-अनन्त सत्ता है। वह (शरीर) छूट जायेगा, इसकी (आत्मा की) सत्ता तो रहेगी। कहाँ रहेगी? आहाहा! कहाँ जायेगा? भटकता राम कहीं सूकर में, कौवे में, कुत्ते में, नरक में (रहेगा)। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त भव किये। सत्य को समझा नहीं, सत्य की शरण में गया नहीं। आहा!

यहाँ कहते हैं कि वे चार भाव भी तेरा त्रिकाली सत्व नहीं है। **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** हेय है? किस कारण से हेय है? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा तो परस्वभाव है ही परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव परस्वभाव है। वह आत्मा का त्रिकाली स्वभाव नहीं। आत्मा त्रिकाली टिकती चीज़, उसमें वे (पर्यायें) टिकती चीज़ नहीं। वे तो एक समय टिकती हैं। आहाहा! धर्म की दशा प्रगट हो, वह भी एक समय टिकती है। आहाहा! त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हो, उसकी स्थिति भी एक समय की है। दूसरे समय दूसरा, तीसरे समय तीसरा, ऐसे पर्याय बदलती है और त्रिकाली चीज़ ध्रुव है। आहाहा! यह उपजे-विनशे, उस पर्याय के पीछे, उसके

तल में, पर्याय के तल में ध्रुव भरा है। आहाहा! अरे! भगवान! ऐसी बात कहाँ से... ? त्रिलोक के नाथ की बात है। आहाहा!

**किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं।** पर्याय को परद्रव्य कहा, प्रभु! परवस्तु, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति नहीं। उसके साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो उसके कारण से आवे, उसके कारण से रहे, उसके कारण से जाये। तेरे कारण से आवे नहीं, तेरे कारण से रक्षा - रक्षा रहे नहीं और तू देने जाये तो दे सके नहीं। वह तेरी शक्ति के बाहर की बात है। आहाहा! परन्तु अन्दर में जो भाव, चार भाव, पर्याय के भाव, वे परद्रव्य हैं। परद्रव्य परवस्तु है। आहाहा! क्योंकि जैसे परद्रव्य में से अपनी धर्म पर्याय प्रगट नहीं होती। जैसे परद्रव्य में से शरीर, वाणी, कर्म, परपदार्थ, देव-गुरु-शास्त्र आदि में से अपनी धर्म पर्याय प्रगट नहीं होती; वैसे पर्याय में से पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! एक समय की पर्याय है, उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। उस पर्याय का तो व्यय हो जाता है। पर्याय की उत्पत्ति तो त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होती है। इस अपेक्षा से - स्वद्रव्य की अपेक्षा से उस धर्म की पर्याय को भी परद्रव्य कहा। आहाहा! गजब बात है। नरेन्द्रभाई! ऐसा कभी सुना नहीं। भाग्यशाली हो कि आया। ऐसी बात है, बापू! क्या कहें ? किसे कहें ? कहाँ कहें ? ऐसी गड़बड़ चली है... आहाहा! कि सत्य बात को मिथ्या सिद्ध करना और मिथ्या बात को सत्य सिद्ध करना, ऐसी गड़बड़ चली है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि राग दया, दान का भाव परद्रव्य है। वह तो ठीक, परन्तु उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव जो धर्मभाव... आहाहा! वह परद्रव्य है। परद्रव्य क्यों (कहा) ? कि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती; वैसे पर्याय में से नयी पर्याय नहीं होती। नयी पर्याय तो अन्दर द्रव्य में से आती है। खजाना भरा है, उसमें से निकलती है। अन्दर भगवान का खजाना भरा है। आहाहा! लो, सुरेशभाई! कभी ऐसा सुना नहीं था कहीं ? यह पालो, यह करो, इच्छामि पडिकम्मो, इरिया वहिया तस्स उत्तरि करणेणं निस्सारि करणेणं अप्पाणं वोसिरामि। यह अप्पाणं वोसरे का क्या अर्थ है, इसकी खबर नहीं होती... आहाहा! कहा न ? लोगस्स में आता है न ? विहुयरयमला। लीमड़ी में दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली को विरोध था। लीमड़ी में संघवी का उपाश्रय है न ? एक सेठ का उपाश्रय था। दोनों को पहले विरोध था। बहुत वर्ष की बात है। उसमें एक स्थानकवासी महिला थी। वह सामायिक करके बैठी दो घड़ी। उसमें लोगस्स आया। उसमें विहुयरयमला आता है न ? उसमें विहा

रोई मल्या, ऐसा बोली। स्वयं दशाश्रीमाली और विशाश्रीमाली के साथ विरोध था। इसलिए उसमें विहुयरयमला की जगह विहा रोई मल्या। लोग कहे कि अपने विवाद का शब्द लोगस्स में कहाँ से आया? अपने यहाँ दशा और विशा को मेल नहीं, उसमें यह कहाँ से आया? अन्दर अर्थ तो देखो। तब कहे विहुईरयमला।

हे त्रिलोकनाथ! आपने विहुई अर्थात् टाले हैं। विशेषे हुई टाल्या, जैसे यह पंक्षी धूल चिपकी हो उसे खिरा डाले, वैसे हे नाथ! आपने आत्मा के आनन्द के स्वाद में अन्दर जाकर और इस कर्मरूपी रज को विहुई अर्थात् टाला है। वि अर्थात् विशेष हुई अर्थात टाला। क्या टाला? विहुईरयमला - रज। कर्म की रज टाली और मल अर्थात् पुण्य-पाप के भावमल टाले। वह रज जड़ है और यह मल (विकार) पर्याय में है। प्रभु! आप दोनों को टालकर मोक्ष पधारे। इसकी भी खबर नहीं पड़ती। जयनारायण! अरे रे!

यहाँ यह कहते हैं कि चार प्रकार की पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। पर्याय, द्रव्य त्रिकाल में से आती है। इस अपेक्षा से—स्व त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से हम पर्याय को परद्रव्य कहते हैं। परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। परद्रव्य कहते हैं, क्योंकि उसमें से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। वह तो इस पर्याय की एक समय की स्थिति है। एक समय की स्थिति में से दूसरी कहाँ से आयी? और द्रव्य जो त्रिकाली भगवान, उस पर्याय के पीछे प्रभु आत्मा त्रिकाली अनादि-अनन्त ध्रुव है, उस ध्रुव में से पर्याय आती है। इस अपेक्षा से ध्रुव को द्रव्य कहने पर, पर्याय को परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातों-बातों में अन्तर, प्रभु! पागल कहे, हों! पागल कहे। दुनिया के साथ मेल नहीं खाये, वह तो नहीं खाये। अब तो साढ़े पैतालीस वर्ष हुए, यहाँ सोनगढ़ में साढ़े पैतालीस वर्ष तो यहाँ हुए। पैंतालीस वर्ष में आये थे। शरीर को ९१ चलता है। आहाहा! पैतालीस वर्ष से यह बात बाहर आयी है। आहाहा! खलबलाहट भी हो गया है। अफ्रीका में, लन्दन में, अमेरिका में वाचन चलता है। लन्दन में वाँचन चलता है, प्रेमचन्द नाम से एक है। आहाहा!

प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। शान्ति से सुन न भाई! इसकी अस्ति में जो चार पर्याय है, उसकी अवधि एक समय की है। इसलिए उसमें उसे नयी पर्याय, धर्म की नयी पर्याय नहीं आती। इस कारण वह चार पर्याय, उनमें तीन धर्म की और एक अधर्म की, उन चारों को हम परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तीन बोल लिये। एक तो हेय कहा, क्योंकि?—परस्वभाव है। परस्वभाव है, इसलिए वह परद्रव्य है। आहाहा! ऐसा

कब सुना था ? बलुभाई ! परदेश में भटकते थे। आहाहा ! अरे रे ! त्रिलोकनाथ परमेश्वर, जिनेश्वर का यह माल अन्दर का रह गया। ऊपर के छिलके कूटे। आहाहा ! यह यहाँ कहा कि परद्रव्य है। विशेष बाद में कहेंगे..... ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

---

**प्रवचन-५६, गाथा-५०, बुधवार, श्रावण कृष्ण ९ दिनांक ०३-०९-१९८०**

---

नियमसार, ५० वीं गाथा। थोड़ा बाकी है न ? यहाँ तक आया है। टीका फिर से लेते हैं।

**जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, वे पहले ( ४९वीं गाथा में ) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से.. शुद्ध निश्चयनय से वे हेय हैं।** आहाहा ! चार भाव पर्याय जो है, उन पर भी दृष्टि देने योग्य नहीं है। जाननेयोग्य है। जानने में आवे परन्तु आदर तो एक त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव वह एक ही आदरणीय है। यह आया न ? **शुद्धनिश्चयनय के बल से ( शुद्धनिश्चयनय से ) वे हेय हैं। किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से वर्तमान पर्याय, वह परस्वभाव है। आहाहा ! त्रिकाली द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से.. क्योंकि वह दृष्टि का विषय है। त्रिकाली चैतन्यवस्तु, वह दृष्टि का ध्येय वस्तु है। उसकी अपेक्षा से चार भाव हेय हैं। पर्याय में चार भाव उत्पन्न होते हैं, (वे हेय हैं।) आहाहा ! अब उसमें इसे शुभराग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा-भगवान की पूजा और भक्ति को हेय मानते हैं। प्रियंकरजी ! होता है; शुभभाव, अशुभ से बचने के लिये आता है, परन्तु वह हेय है। वह छोड़नेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा ! यहाँ तक तो आया था।

**सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** यह भी अभी भाव लिया। आहाहा ! **स्वद्रव्य उपादेय है।** देखा ? अन्तःतत्त्वस्वरूप को स्वद्रव्य कहा। जरा सूक्ष्म बात आयेगी। पर्याय को जब परद्रव्य कहा तो अन्तःतत्त्व जो स्वभाव-त्रिकाली स्वभाव उसे स्वद्रव्य कहा। समझ में आया ? अभी वापस स्वद्रव्य का आधार दूसरा लेंगे। आहाहा ! यह शुद्ध अन्तःतत्त्व अर्थात् भावस्वरूप **स्वद्रव्य उपादेय है।** त्रिकाली द्रव्यस्वभावभाव, वह उपादेय है।

**वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन...** आहाहा! जो अन्त:तत्त्वस्वरूप कहा वह। समझ में आया? **सर्वविभाव-गुणपर्यायों से रहित शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य...** कहा, इस अपेक्षा से **वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र...** त्रिकाली **सहजपरमवीतराग -सुखात्मक शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** आहाहा! शुद्ध अन्त:तत्त्वस्वरूप। शुद्ध अन्त:स्वभावभावस्वरूप **इस स्वद्रव्य का आधार...** आहाहा! इसे स्वद्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तब इसके स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! और उस स्वद्रव्य का आधार है, वह पंचम पारिणामिकभाव है। आहाहा! है?

**शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार...** यह द्रव्य। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन जो ध्रुव, उस **स्वद्रव्य का आधार...** आहाहा! **सहजपरमपारिणामिक -भावलक्षण...** यह पर्याय को जब परद्रव्य कहा, तब गुण को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! वर्तमान क्षणिक रहनेवाली पर्याय को जब परद्रव्य कहा तो कायम रहनेवाले स्वभाव को स्वद्रव्य कहा परन्तु वह स्वभाव जो कायम रहनेवाला है, उसका आधार स्वद्रव्य है। आहाहा! कठिन बात है। **स्वद्रव्य का...** यह स्वद्रव्य अर्थात्? त्रिकाली स्वभाव का। वर्तमान स्वभाव पर्याय को जब परद्रव्य कहा, तब त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। उस स्वद्रव्य का आधार... आहाहा! द्रव्य का आधार। उस स्वभाव त्रिकाली को स्वद्रव्य कहा। उस **स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण ( सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है — ऐसा ) कारणसमयसार है**। आहाहा! कठिन बात है।

परद्रव्य तो कहीं रह गये। आत्मा के अतिरिक्त कर्म-शरीर-वाणी-मन, वे तो कहीं दूर रह गये। उन्हें तो यहाँ परद्रव्यरूप से भी गिनने में नहीं आया। आहाहा! यहाँ तो इसकी पर्याय, एक समय की अवधिवाली क्षायिक आदि पर्याय को जब परद्रव्य कहा तो त्रिकाली स्वभाव, अभी द्रव्य नहीं; त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** गुण को स्वद्रव्य कहा?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्वभाव को स्वद्रव्य कहा और उसका आधार कारणपरमात्मा। एकरूप। स्वभाववान। स्वभाव का आधार स्वभाववान कारणपरमात्मा। आहाहा! वह कारणसमयसार। ५०वीं गाथा में गजब है। आहाहा!

यहाँ तो अपनी सत्ता में जो पर्याय होती है, उस पर्याय को परद्रव्य कहा। आहाहा!

गजब बात है। तब त्रिकाली गुणस्वभाव को स्वद्रव्य कहा। त्रिकाली गुणस्वभाव को स्वद्रव्य कहा और उस स्वद्रव्य का आधार परमपारिणामिक कारणसमयसार भगवान.. आहाहा! ऐसे शब्द तो श्वेताम्बर के बत्तीस-पैंतालीस सूत्र की टीका में कहीं नहीं है। आहाहा! गजब बात है।

परद्रव्य को तो परद्रव्य कहा, वह तो कहीं रह गया। आहाहा! वह तो औपचारिक परद्रव्य है। शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह तो औपचारिक परद्रव्य है। अब आत्मा में जो रागादि और क्षायिक आदि पर्याय हुई... आहाहा! वह अण-उपचारी द्रव्य है। वास्तविक द्रव्य नहीं है। आहाहा! पर्याय है। पर्याय को यहाँ परद्रव्य कहा। आहाहा! और उसे जब परद्रव्य कहा तब पर्याय के त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। स्वद्रव्य में भी दृष्टि... उसका आधार जो परमपारिणामिकभाव है, वहाँ दृष्टि देनी है। आहाहा! कभी ऐसा सुना नहीं होगा।

**मुमुक्षु :** आप नयी वस्तु ले आये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह वस्तु भगवान के पास से आयी है। और वह स्वयं के लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह तो मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! तो उसका लाभ कब होता है? मेरे लिये बनाया, तो उसका लाभ... यह बनाया, यह कहना व्यवहार है, क्योंकि यह परमाणु की पर्याय है। आहाहा! इस परमाणु की पर्याय को तो हम उपचार और अनुपचार से भी मेरी है, ऐसा नहीं कहते। आहाहा! गजब बात है। अपने आत्मा में अनन्त गुण की अनन्त पर्याय (होती है), चाहे तो क्षायिक, क्षयोपशम, उपशम हो, उसे यहाँ लक्ष्य छुड़ाने को परद्रव्यरूप से (कहा है)। उस अल्प सत्व में से.. अल्प सत्व में से नयी निर्मल दशा, आनन्द की दशा उत्पन्न नहीं होती। आहाहा!

जैसे परद्रव्य में से आनन्द की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ये चार पर्यायें हैं, अपने अस्तित्व में हैं, पर के अस्तित्व में नहीं, परन्तु इनकी स्थिति एक समय की है। आहाहा! इस कारण से एक समय की स्थिति में से नया परम आनन्द प्रगट नहीं होता। आहाहा! इस कारण से। **किस कारण से?** ऐसा कहा था न? **किस कारण से?** ऐसा कहा था न? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** ऐसा कहा था। आहाहा! वह त्रिकाली स्वभावभाव है। आहाहा! अब जब पर्याय क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम और औदयिक को परद्रव्य कहा, परस्वभाव कहा, तब अब स्वद्रव्य किसे कहें? आहाहा! कि स्वद्रव्य तो त्रिकाली गुण, ज्ञान, आनन्द

आदि ध्रुव रहनेवाले हैं। पर्याय तो एक समय रहनेवाली है। आहाहा! त्रिकाली ध्रुवस्वभाव को यहाँ स्वद्रव्य कहकर उस स्वभाव का यह भेद है। उस स्वभाव का आधार स्वद्रव्य कारणपरमात्मा है। आहाहा! कहो, धन्नालालजी! ग्वालियर में कभी सुना नहीं। आहाहा! ऐसी बात! आहाहा! अमृत का समुद्र बहा है। अमृत का समुद्र बहा है। आहाहा! आहाहा!

भगवान! एक द्रव्य है न? एकरूप त्रिकाली एकरूप द्रव्य है न? आहाहा! तू त्रिकाली कारणपरमात्मा है न, नाथ! तू कारणपरमात्मा... आहाहा! जिसमें अनन्त गुण हैं, उनके भेद भी नहीं। अनन्त गुण हैं, उसके प्रभु! तुझे भेद भी नहीं। तू तो एकरूप यह द्रव्य जो स्वभाव त्रिकाली है। आहाहा! त्रिकाली ध्रुवस्वभाव। पर्याय को तो पर में, परद्रव्य में डाल दिया। परन्तु त्रिकाली जो तेरा स्वभाव है, वह भी द्रव्य है, परन्तु उस द्रव्य का आधार कारणपरमात्मा है। आहाहा! अरे! ऐसी बात कहाँ है? कान में-कान में बात पड़े। आहाहा! कहीं है नहीं। ३२-४५ (श्वेताम्बर मान्य सूत्र में) आहाहा! यह चीज़ कोई अलग है। यह अन्तर की आयी हुई चीज़ है। आहाहा!

एकरूप चैतन्य एकरूप चैतन्य के अनेक स्वभाव, उन्हें यहाँ स्वद्रव्यरूप से कहा गया है। आहाहा! एकरूप जो त्रिकाली भगवान, कारणसमयसार परमपारिणामिक स्वभावभाव, एकरूप सहजस्वभावभाव के आश्रय से रहनेवाले जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द स्वभाव है, उसे यहाँ स्वद्रव्य कहा। आहाहा!

स्वभाव के दो भेद किये। एक पर्यायस्वभाव, एक गुणस्वभाव। समझ में आया? आहाहा! जब पर्यायस्वभाव को परद्रव्य कहा... परद्रव्य की तो यहाँ बात ही नहीं। इसके पर्यायस्वभाव को जब परद्रव्य कहा, आहाहा! तब गुणस्वभाव त्रिकाल को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! तब उस स्वद्रव्य का आधार... स्वद्रव्य में तो अनन्त गुण हैं, अनन्त गुण हैं। आहाहा! तो उनका एकरूप आधार कारणपरमात्मा है। आहाहा! समझ में आये ऐसी बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! हिन्दुस्तान में अलग प्रकार है। लोगों को नयी लगती है। यह क्या? ऐसा क्या कहा और? अभी तो स्वद्रव्य का आधार कारणसमयसार लिया। स्वद्रव्य दूसरा अलग कैसा?

यहाँ तो स्वद्रव्य किसे कहा? प्रभु! जब पर्याय को परद्रव्य कहा... शरीर, वाणी, मन, कर्म की तो यहाँ बात ही नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार की तो बात ही नहीं। वे तो परद्रव्य उसके कारण से आये, उसके कारण से रहे, उसके कारण से परिणमते हैं। उसके

कारण से परिणमते हैं। उसके कारण से परिणमन करके रहते हैं। उनकी अस्ति में तेरा बिल्कुल अधिकार नहीं है। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, शरीर, वाणी, मन की पर्याय में भी तेरा कोई अधिकार नहीं है। द्रव्य-गुण में तो नहीं.. आहाहा! उनकी पर्याय में भी तेरा बिल्कुल अधिकार नहीं है। उन्हें परद्रव्य कहा, यह नहीं। वे तो भिन्न चीज़ है। उन्हें परद्रव्य क्या? आहाहा! तुझमें जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय होती है, वह पर्याय जब कायम टिकनेवाली नहीं और उसके आश्रय से लाभ, नये आनन्द का लाभ नहीं होता। आहाहा! इस कारण से जब क्षायिक आदि पर्याय को भी हमने परद्रव्य कहा तो स्वद्रव्य कौन? तेरा स्वद्रव्य कौन? आहाहा! गजब बात है! यह शास्त्र कहीं सोनगढ़ का है?

**मुमुक्षु :** यहाँ से प्रकाशित किया है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** चाहे जहाँ से प्रकाशित किया हो। शास्त्र, गाथा, टीका यह तो हजारों वर्ष से चलती आयी है। कुन्दकुन्दाचार्य को तो दो हजार वर्ष हुए। इस टीका को नौ सौ वर्ष हुए। आहाहा! अन्तिम में अन्तिम, सार में सार, अकेला मक्खन है। आहाहा!

प्रभु! तेरी पर्याय में भी जो नहीं, उसकी तो हम बात ही नहीं करते। तेरी पर्याय में जो चीज़ नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, कर्म, शरीर, वाणी, मन, यह तो तेरी पर्याय में भी नहीं। आहाहा! ऐसा है या नहीं? आहाहा! प्रभु! तेरी पर्याय-अवस्था जो है, जो त्रिकाली द्रव्य और द्रव्य का आधार जो कारणप्रभु, उसकी जो त्रिकाली अनन्त पर्याय... आहाहा! उसे भी प्रभु हमने परद्रव्य कहा क्योंकि उनकी ओर से लक्ष्य छुड़ाने के लिये (परद्रव्य कहा) उनके लक्ष्य से आस्रव उत्पन्न होता है, प्रभु! पर्याय के लक्ष्य से आस्रव उत्पन्न होता है। आहाहा! और जब परद्रव्य के आश्रय से आस्रव उत्पन्न होता है, इसीलिए स्वद्रव्य जो अनन्त गुण हैं.. आहाहा! परन्तु नयी उत्पत्ति होना, जो नया आनन्द और शान्ति का प्रवाह आना, धर्म का प्रवाह आना, उस अनन्त गुण के भेद पर से स्वद्रव्य कहा, उससे भी नहीं। आहाहा! कहो, रजनीभाई! जिन्दगी में कभी सुना नहीं। रुपया.. रुपया.. रुपया.. में। रुपये में स्वयं रूप घुस गया। अपना रूप वहाँ रुपये में घुस गया। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पर्याय में परद्रव्य की जहाँ अस्ति त्रिकाल नहीं। अपनी पर्याय / अवस्था,.. द्रव्य-गुण एक ओर रखो, परन्तु इसकी पर्याय-अवस्था में परद्रव्य त्रिकाल नहीं है। इसे कहीं स्पर्श भी नहीं करते। अपनी पर्याय परद्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! अरे रे! यह बात.. अपनी पर्याय पर को स्पर्श नहीं करती, उस पर की हम बात नहीं करते

परन्तु अपनी पर्याय में जो अस्तित्व है, उसके आश्रय से भी शान्ति, आनन्द, नया आनन्द, नयी शान्ति उत्पन्न नहीं होती। भले उस पर्याय में शान्ति और आनन्द हो। आहाहा! परन्तु वह अभी अधूरी शान्ति और आनन्द है। अरे! क्षायिक और आनन्द हो। आहाहा! तथापि एक समय की पर्याय है। उसके आधार से नयी आनन्द की पर्याय, पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इस कारण से पर्याय को जब परद्रव्य कहा। पर्यायस्वभाव को परद्रव्य कहा, तब गुणस्वभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! समझ में आया?

परद्रव्य की तो बात ही नहीं है। तेरी एक समय की क्षायिक आदि पर्याय, केवलज्ञानादि पर्याय... आहाहा! उसे जब परद्रव्य कहा, तब स्वद्रव्य कौन? आहाहा! स्वद्रव्य त्रिकाली स्वभाव, ध्रुवस्वभाव। ज्ञान, दर्शन, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसी जो अनन्त स्वभाव शक्ति को स्वद्रव्य कहा, तब उसका आधार कौन? उसका आधार एकरूप कारणपरमात्मा है। आहाहा! आहाहा! अब यहाँ की मजाक करे ऐसा है न? ताराचन्दजी! ऐसी बात कभी सुनी है? आहाहा! गजब काम किया है। एक गाथा में तो बारह अंग का सार!! आहाहा!

यह स्वद्रव्य जो है, वह **सहजज्ञान...** त्रिकाली, **सहजदर्शन...** त्रिकाली, **सहजचारित्र...** त्रिकाली, **सहजपरमवीतरागसुखात्मक...** त्रिकाली, ऐसा जो **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** अन्तःतत्त्वस्वरूप कहा है। समझ में आया? आहाहा! उसमें आता है न? भाई! तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं में। भाई! हिम्मतभाई! तत्त्वार्थश्रद्धानं। वहाँ तत्त्व को भाव कहा है और अर्थ को द्रव्य कहा है। अर्थ कहा है। तत्त्वार्थ। आहाहा! तत्त्व अर्थात् भाव और अर्थ अर्थात् द्रव्य। आहाहा! उसकी श्रद्धा को समकित कहते हैं। वह बात यहाँ लेते हैं कि जो इसका त्रिकाली भाव, वह स्वभाव है... आहाहा! तब उसका आधार, वह अर्थ अर्थात् स्वद्रव्य है। वह कारणपरमात्मा है। ऐसी बात है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञपरमात्मा के अतिरिक्त यह बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। आहाहा! अभी सम्प्रदाय में भी फेरफार हो गया। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य करके मार्ग चलाना, वह मार्ग चलता नहीं, मेरे नाथ!

प्रभु! तुम कौन हो? आहाहा! तू तो अनन्त गुण का आधार है। आहाहा! अनन्त गुणस्वरूप भी नहीं। आहाहा! पर्याय का तो आधार नहीं। आहाहा! गजब बात है। क्या इसमें से निकालना? आहाहा! वह त्रिकाली स्वभाव, उसे भी हम स्वद्रव्य-द्रव्य कहते हैं। आहाहा! तब उस त्रिकाली स्वभाव का आधार, एकरूपता। वह त्रिकाली स्वभाव, वह अनेकरूप है। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तब गुण अनेक हैं, इसलिए उन्हें स्वद्रव्य

कहते हैं। अब पर्याय की अनेकता को परद्रव्य कहा, तब गुण की अनेकता को स्वद्रव्य कहा, तब उसका आधार भगवान एकरूप है, उसे कारणपरमात्मा कहा। आहाहा! धन्य भाग्य! आहाहा! ऐसी चीज़ है, उसकी अन्तर्दृष्टि करना, उस त्रिकाली अनन्त गुण स्वद्रव्य का आधार एकरूप है। वे (गुण) तो अनेक हुए न? अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान आदि अनन्त हुए। उनका एकरूप जो कारणपरमात्मा, कारणसमयसार उसका आश्रय लेने से सम्यग्दर्शन से लेकर मोक्ष की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा तो कभी तुम्हारे बाप-दादा के पास सुना नहीं होगा। आहाहा! गजब बात है।

सन्त, दिगम्बर, उनमें कुन्दकुन्दाचार्य, उसमें फिर कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! मैंने किसी दूसरे के लिये नहीं बनाया। '**पुव्वुत्तसयलभावा परद्रव्वं**' आहाहा! मैंने मेरे लिये कहा है कि जितनी पर्यायें हैं, वे सब परद्रव्य हैं और परस्वभाव हैं.. आहाहा! क्योंकि उसके आश्रय से आत्मा को शान्ति बढ़ती नहीं, उत्पन्न नहीं होती। भले क्षायिकभाव, उपशमभाव की शान्ति हो, परन्तु उसके अवलम्बन से नयी शान्ति और नयी आनन्द की वृद्धि... आहाहा! उससे नहीं होती। इसलिए हम... आहाहा! अनन्त गुण का भी आश्रय करने का इनकार किया है कि अनन्त गुण, वह द्रव्य-स्वद्रव्य है। आहाहा! उसका आधार... है?

**शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार...** इसे द्रव्य कहा, त्रिकाली स्वभाव को द्रव्य कहा। जब पर्याय को परद्रव्य कहा, तब त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा। आहाहा! ऐसी बात है। यहाँ तो अभी बाहर में विवाद चलता है। व्यवहार से होता है, राग से होता है, शुभराग से होता है... अरे प्रभु! तेरे हित की बात है न, नाथ! यह तो चीज़ अनन्त काल... आहाहा! भाई! तूने विचार नहीं किया। अनन्त काल कहाँ गया? किस प्रकार गया? और कैसे भव किये? आहाहा! कोई शरण नहीं। जंगल में भटकते हिरण को गोली मारकर फाड़कर खाया। सिंह ने आकर फाड़कर खाया। आहाहा! ऐसे अनन्त-अनन्त अवतार किये, प्रभु! अस्तिवाली.. अस्तिवाली.. आहाहा! इस सब अस्ति को छोड़ने के लिये, प्रभु को पहुँचने के लिये.. आहाहा! कहते हैं कि उन अनन्त गुणों को भी हम स्वद्रव्य कहते हैं और वे अनन्त हैं, इसलिए उनका एकरूप आधार द्रव्य को कहते हैं। आहाहा! वस्तु को कारणसमयसार कहा। वहाँ द्रव्य शब्द नहीं लिया। वहाँ कारणसमयसार लिया। आहाहा! क्योंकि उस कारण के आश्रय से कार्य होता है। आहाहा!

कारणसमयसार क्यों कहा ? है न ? **शुद्ध-अन्तःतत्त्वस्वरूप...** अन्तःतत्त्व है न! यह भाव कहा है। अन्तःतत्त्व कहा है, यह भाव कहा है। उस अन्तःतत्त्वस्वरूप **स्वद्रव्य का...** वह द्रव्य। अन्तःस्वभाव त्रिकाली, वह स्वद्रव्य। आहाहा! उसका **आधार सहजपरम -पारिणामिकभावलक्षण...** जिसका लक्षण... आहाहा! गजब बात है आचार्यों की! दिगम्बर सन्तों के सिवाय ऐसी एक लाईन भी कहीं नहीं है।

**मुमुक्षु :** यह आपके सिवाय भी नहीं है, ऐसा आपने नहीं निकाला होता तो अज्ञानी लोगों को खबर कहाँ से पड़ती ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब देखा है। बत्तीस-पैंतालीस सूत्र। (संवत्) १९७६ के वर्ष में। पाँच महीने में पैंतालीस सूत्र देखे। आहाहा! श्वेताम्बर के पैंतालीस। सबेरे एक बार व्याख्यान देना, फिर बिल्कुल मौन परन्तु यह चीज़, एक लाईन... आहाहा! गजब की बात है! आत्मा प्रभु! तेरा हित करना हो तो, तेरा श्रेय और धर्म करना हो तो, प्रभु! पर्याय के आश्रय से नहीं अनन्त गुण के गुण अंश हैं, उनके आश्रय नहीं क्योंकि गुण भी एक अंश है। आहाहा! उस अनन्त गुण का आधार जो भगवान कारणसमयसार है, उसे द्रव्य नहीं कहा। उन्हें दो को द्रव्य कहा। परद्रव्य और स्वद्रव्य। इसे द्रव्य नहीं कहा, इसे कारणसमयसार कहा। क्योंकि इस कारण में से कार्य आता है। आहाहा! कभी सुना था ? आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग, वह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह कथन कहीं नहीं है, प्रभु! यह कथन लोगों को कठिन लगता है, प्रभु! कठिन नहीं है। यह तेरी चीज़ ही है न, प्रभु! तू ही ऐसा है न! आहाहा! उन अनन्त गुण को जो स्वद्रव्य कहा, उसका आधार तू स्वयं ही कारणरूप है न, उन गुण के कारणरूप तो तू ही है न। आहाहा! वह कारण भगवान है, उसका आश्रय ले, प्रभु! उसमें से कार्य आयेगा। परद्रव्य में से नहीं, स्वद्रव्य में से नहीं। आहाहा! विमलचन्दजी! ऐसी बात है।

**मुमुक्षु :** अन्तःतत्त्व का आधार कारणसमयसार ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, कारणसमयसार। आहाहा! अन्तःतत्त्व को स्वभाव, उसका आधार वह कारणसमयसार। आहाहा! क्यों ?-कि वह अन्तःतत्त्व जो कहा, वह तो अनन्त गुण है। उन अनन्त गुण के आश्रय से तेरा कार्य सिद्ध नहीं होगा, प्रभु! आहाहा! तेरा कार्य सिद्ध तो अनन्त गुण का आधार, वह कारणसमयसार है। उसे द्रव्य नहीं कहा। कारणसमयसार

(कहा है)। वह कारण, तेरे कार्य का कारण वह है। आहाहा! सम्यग्दर्शनरूपी कार्य, सम्यग्ज्ञानरूपी कार्य, सम्यक्चारित्ररूपी कार्य, केवलज्ञानरूपी कार्य, इन सबका कारण, कारणसमयसार है। आहाहा! ऐसी बात तो कब आयी होगी? आहाहा! ५०वीं गाथा।

**( सहज परम पारिणामिकभाव जिसका लक्षण है... )** उस कारणसमयसार का लक्षण यह है। अनन्त गुण, भेदरूप नहीं-ऐसा कहा। समझ में आया? क्योंकि उनका आधार **सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण...** अनन्त गुण लक्षण, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! **( सहज परम पारिणामिकभाव जिसका लक्षण है... )** जिसका लक्षण यह है। आहाहा! **( —ऐसा ) कारणसमयसार है।** भगवान। उसके आश्रय से प्रभु सबके कार्य की सिद्धि है। आहाहा! गजब बात है। कठोर लगे, महँगी लगे, अपूर्व लगे परन्तु वस्तु तो यह है। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का यह पुकार है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अरे! अनन्त सन्त, उनका यह पुकार है। अन्तिम में अन्तिम यह पुकार है। आहाहा!

परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ दे, पर्याय का पर्यायरूप परद्रव्य.. आहाहा! स्वद्रव्य का लक्ष्य भेदरूप है, उसे छोड़ दे। आहाहा! उसका कारण **सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण** उसका लक्षण ऐसा किया। त्रिकाली कारणसमयसार का लक्षण। अनन्त गुणस्वभाव, ऐसा नहीं लिया। आहाहा! त्रिकाली कारणसमयसार, प्रभु! आहाहा! उसका लक्षण ऐसा नहीं लिया कि अनन्त गुण। आहाहा! उनका आधार कहकर सहजपरमपारिणामिक लक्षण उसका कहा। आहाहा! गजब टीका की है! आहाहा! स्वाभाविक परमपारिणामिकभावलक्षण, ऐसा कहा है। आहाहा! अनन्त गुण का आधार, इसलिए उसे कहा, ऐसा भी नहीं कहा। वह अनन्त गुण का आधार है, उसका लक्षण क्या? उसका लक्षण क्या? उसका लक्षण क्या? किस लक्षण से वह लक्ष्य ज्ञात होता है? किस लक्षण से वह लक्ष्य ज्ञात होता है। आहाहा! धन्य भाग्य..! आहाहा! वीतराग की वाणी यह है। त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का यह फरमान है। परमात्मा वहाँ रह गये, वाणी आयी।

भाषा क्या है? देखा? सीमन्धर भगवान के पास गये थे। वहाँ से परमात्मा का यह नाद लाये हैं, परमात्मा की यह ध्वनि लाये हैं। गाथा क्या कही, देखा! '**पुव्वुत्तसयलभावा**' पूर्व जो सर्वभाव कहे '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं।**' ऐसा तीन लोक के नाथ के पास हमने सुना है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ से लाये हैं न? '**सगदव्वमुवादेयं**' आहाहा! '**सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा।**' परन्तु वह स्वद्रव्य कौन है? कि अन्तर्तत्त्व जो

भाव है, भाव जो गुण है, उनका एकरूप वह आत्मा, वह कारणसमयसार। अप्पा कहा न? इस गाथा में से लिया। '**पुव्वुत्तसयलभावा**' पर्यायादि के भेद '**परदव्वं परसहावमिदि हेयं**।' इसलिए वे हेय हैं। '**सगदव्वमुवादेयं**' अब स्वद्रव्य। '**मुवादेयं**' परन्तु क्या? कि '**अन्तस्तत्त्वं**' वह अन्त:तत्त्व भाव जो है, '**हवे**' ऐसा जो आत्मा। '**अप्पा**' ऐसा अन्तर्तत्त्व का जो आत्मा एकरूप जो है... आहाहा! इन भगवान की वाणी में ऐसा आया है। आहाहा! फिर निश्चय की मजाक करते हैं, व्यवहार में मजा मानते हैं। स्वतन्त्र है प्रभु। आहाहा! ऐसा अवसर कब आवे? आहाहा! **कारणसमयसार है**। आहाहा!

**इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि —**

**सिद्धान्तोऽय-मुदात्त-चित्त-चरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां,**
**शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योति: सदैवास्म्यहम्।**
**एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा-**
**स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।।**

आहाहा! यह अमृतचन्द्राचार्य। टीका की है पद्मप्रभमलधारिदेव ने। यह आधार देते हैं अमृतचन्द्राचार्यदेव का।

**श्लोकार्थ:—जिनके चित्त का चरित्र उदात्त हैं...** आहाहा! जिनके ज्ञान का अभिप्राय उदार है। आहाहा! जिनके चित्त अर्थात् ज्ञान। ज्ञान का चारित्र अर्थात् आचरण। उसके ज्ञान के आचरण में जिनकी उदारता है। आहाहा! **(उदार, उच्च, उज्ज्वल) हैं...** क्या कहा? जिनके ज्ञान का चारित्र-आत्मा की अन्दर रमणता, आत्मज्ञान की रमणता जिसकी उदार है। आहाहा! उच्च है, उज्ज्वल है। **ऐसे मोक्षार्थी...** ऐसे मोक्षार्थी। **इस सिद्धान्त का सेवन करो...** आहाहा!

**इस सिद्धान्त का सेवन करो...** आहाहा! **कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति...** गुणभेद भी नहीं। आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्यमय हूँ। चैतन्यवाला, ऐसा नहीं। मैं तो शुद्धचैतन्यमय एक। भेद नहीं, गुणभेद भी नहीं। आहाहा! **परमज्योति...** एक परम चैतन्य ज्योति। आहाहा! एक परम चैतन्य ज्योति ही, **परम ज्योति ही सदैव हूँ;...** त्रिकाल हूँ। मैं तो त्रिकाल सदा ही परम ज्योति हूँ। है? **शुद्ध चैतन्यमय एक...** आहाहा! शुद्ध, चैतन्यमय, एक परमज्योति... आहाहा! द्रव्य **ही सदैव हूँ;... परम ज्योति ही...** एकान्त कहा।

एकान्त कहा, देखो! कथंचित् यह हूँ और कथंचित् यह हूँ, ऐसा नहीं कहा। कथंचित् परम ज्योति और कथंचित् पर्याय... आहाहा! ऐसा नहीं कहा। **एक परम ज्योति ही...** परम ज्योति ही **सदैव हूँ;...** सदा मैं एकरूप हूँ। आहाहा! **सदैव हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले...** अपने त्रिकाली ज्ञायकभाव से भिन्न लक्षणवाले। आहाहा! **विविध प्रकार के भाव...** आहाहा! विविध, अनेक प्रकार के भाव। **प्रगट होते हैं,...** हैं अवश्य। **वह मैं नहीं हूँ,...** हैं, भाव हैं, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! अनन्त-अनन्त भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! **वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** आहाहा! मेरा स्वस्वभाव चैतन्य परमज्योति है। आहाहा! परम एक ज्योति महा, उसके अतिरिक्त सब परद्रव्य है। आहाहा!

**वे सब मुझे परद्रव्य हैं।** एक परम ज्योति त्रिकाली कारणसमयसार, वह मैं स्व हूँ। इसके अतिरिक्त सब बात परद्रव्य है। अर..र! गुणभेद, पर्यायभेद, परद्रव्य है तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, धमाल लाखों करोड़ों खर्च करके गजरथ चलावे और शोभायात्रा निकाले... आहाहा! उसमें अतिशय मान ले। इन्द्र। अपने भी उसमें हुआ था न? पहला इन्द्र एक लाख पन्द्रह हजार। क्या कहलाता है वह? पूनमचन्द गोदिका। एक लाख पन्द्रह हजार। दूसरा हमारा सूरतवाला मनहर, अस्सी हजार। इसके मुहूर्त के समय, परन्तु यह सब बाहर की बातें, बापू! उसमें कदाचित् राग की मन्दता का भाव हो परन्तु वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! इससे कोई प्रसन्न हो जाने जैसा नहीं है कि ओहोहो! मैं एक लाख पन्द्रह हजार का इन्द्र हुआ सौधर्म (इन्द्र)। आहाहा!

अरे! यहाँ अफ्रीका में तो रामजीभाई का भानेज... ये रामजीभाई नहीं? नहीं यहाँ? नहीं आते? '....' पास में बैठते हैं। उनका भानेज, साढ़े तीन लाख का एक इन्द्र। नैरोबी में सौधर्म इन्द्र बना। साढ़े तीन लाख। उसमें ऐसा हो जाये कि हम... आहाहा! परन्तु वह वस्तु परद्रव्य है। लेना, देना वह आत्मा के अधिकार की बात ही नहीं है। यह पैसा लेना, देना, रखना... आहाहा! यह अधिकार जीव का तीन काल में नहीं है। आहाहा! उसमें से यह मान लिया जाये कि इसमें दस लाख खर्च किये, बीस लाख खर्च किये; इसलिए कुछ भव घटेंगे और धर्म होगा, (इस बात में कुछ दम नहीं है)। आहाहा! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं। होता है, शुभभाव होते हैं। अशुभ से बचने को ऐसा शुभभाव-व्यवहार आये बिना नहीं रहता परन्तु वह व्यवहार कोई धर्म नहीं है। आता नहीं, ऐसा भी नहीं और आता है, वह धर्म नहीं। आहाहा! यहाँ तो मुझसे सब परद्रव्य है। आहा! मुझे और पर को कोई सम्बन्ध नहीं है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

## श्लोक-७४

और ( इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ) —

( शालिनी )

**न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।**
**इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ।।७४।।**

(वीरछन्द)

**शुद्ध जीव से अन्य सभी पुद्गलमय भाव नहीं मेरे।**
**तत्त्वविज्ञ जो यह कहते वे अति अपूर्व सिद्धि पाते॥७४॥**

**श्लोकार्थः—'शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'—ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं॥७४॥**

प्रवचन-५७, श्लोक-७४, गाथा-५० से ५५, गुरुवार, श्रावण कृष्ण १०, दिनांक ०४-०९-१९८०

नियमसार श्लोक ७४, श्लोक है।

**न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकायादन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।**
**इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ।।७४।।**

**श्लोकार्थः—शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे...** शुद्ध जीवास्तिकाय लिया है। शुद्ध जीव नहीं लिया। क्योंकि असंख्य प्रदेश लिये न ? शुद्ध जीव-अस्ति-काय। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड। ऐसे **शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब...** भाव आहाहा! शुद्ध जीवास्तिकाय एक ही पदार्थ त्रिकाल लिया है। उससे (अन्य) **सब पुद्गलद्रव्य के भाव,...** हैं। आहाहा! मैं तो एक शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। मेरे अस्ति, मेरी हयाति, मेरी मौजूदगी शुद्ध अस्ति असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड हूँ। आहाहा!

**अन्य...** उससे **अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव,...** सब पुद्गलद्रव्य के भाव। आहाहा! **वे वास्तव में हमारे नहीं हैं...** वास्तव में वे हमारी चीज़ नहीं हैं। आहाहा! अस्ति-नास्ति की है। त्रिकाली जीवास्तिकाय वह अस्ति, वह मैं; उसके अतिरिक्त सब पुद्गल, वह मैं नहीं। आहाहा! **ऐसा जो तत्त्ववेदी...** इस प्रकार से जो कोई तत्त्व जाननेवाला, शुद्ध जीवास्तिकाय तत्त्व एक स्वरूप और अन्य सब पुद्गलस्वभाव, ऐसे जो तत्त्व को जाननेवाला.. आहाहा! **तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं,...** ऐसी बात स्पष्टरूप से कहता है। अर्थात् उसकी बात स्पष्टरूप से जानता है। कहता है, वह शब्द कथन ऊपर आया। आहाहा!

मैं एक शुद्ध जीवास्तिकाय, अस्ति-तत्त्व हयातिवाला तत्त्व शुद्ध जीवास्तिकाय वह मैं, असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का एकरूप पिण्ड, ऐसे जीवास्तिकाय से अन्य जितने भाव हैं, वे सब पुद्गल के हैं। आहाहा! उनसे मैं भिन्न हूँ। ऐसे जो तत्त्व का जाननेवाला। वेदी अर्थात् जाननेवाला। **स्पष्टरूप से कहते हैं,...** स्पष्टरूप से जानता है। कहता है, वह तो कथन है। वह तो समझाने की एक शैली है। '**वक्ति**' शब्द रखा है न? '**इत्थं व्यक्तं वक्ति**' ऐसा जो कहता है अर्थात् मैं तो एक शुद्ध जीवास्तिकाय भगवान, पूर्णानन्द का नाथ स्वरूप चैतन्य, मुझसे अन्य सब पुद्गल के भाव हैं। आहाहा! यहाँ तो क्षायिक भाव को भी पुद्गल में डाल दिया। निमित्त है न? उसकी अपेक्षा से उसमें डाल दिया। त्रिकाली शुद्ध उपादान... त्रिकाली शुद्ध उपादान। जीव अस्तिकाय समूह असंख्य प्रदेशी.. आहाहा! वह मैं हूँ, ऐसे तत्त्व का जाननेवाला अथवा तत्त्व को वेदनेवाला... आहाहा! ऐसा कहता है अथवा ऐसा तत्त्व वेदन करता है। कहता है, वह तो एक शब्द है। ऐसे तत्त्व को अन्तर में वेदनेवाला। है? **वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।** बहुत संक्षिप्त कहा है। आहाहा!

एक ओर भगवान पूर्णानन्द प्रभु, एक ओर पर्यायादि सब भेद पर। मैं तो त्रिकाली जीवास्तिकाय हूँ। ऐसे तत्त्व को वेदन करनेवाला, ऐसे तत्त्व के जाननसहित, ज्ञानसहित, ज्ञेय बनाकर वेदनेवाला, वह जीव... आहाहा! **अति अपूर्व...** स्पष्टरूप से जो वेदता है अर्थात् प्रत्यक्षरूप से जो वेदता है। स्पष्टरूप से अर्थात् यह। आहाहा! इस प्रकार प्रत्यक्ष। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वरूप अखण्ड, अभेद और दूसरी चीज़ पर। ऐसे तत्त्व को वेदनेवाले, तत्त्व का अनुभव करनेवाले जीव। **अति अपूर्व...** अनन्त काल में नहीं हुई, ऐसी **अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।** ओहोहो! बहुत संक्षिप्त में कहा। आहाहा! कुछ क्रिया और कुछ व्यवहार-फ्यवहार की बात ही नहीं। आहाहा!

बात की न,.. एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर सब विकल्प से लेकर, भेद से लेकर (सब पर)। आहाहा! एकरूप अभेदस्वरूप चिदानन्द प्रभु, इस अपेक्षा से सब भेद से लेकर सब पुद्गल हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। आहाहा! सुनना कठिन पड़े। अरे! अनन्त काल से भटकता है। अनन्त-अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार में, अरे! इसने अपने पूर्णस्वरूप की ओर, निधान की ओर नजर नहीं की। आहाहा! अपना जो निधान जो शुद्ध जीवास्तिकाय। शुद्ध जीवास्ति। अशुद्ध नहीं और अकेला जीव नहीं। काय। आहाहा! शुद्ध जीवास्ति, अस्तिकाय - असंख्यप्रदेशी, ऐसा एकरूप मेरा (स्वरूप) और उसके अतिरिक्त पुद्गल के सब भाव मेरे नहीं। ऐसा जो कोई... आहाहा! तत्त्व को जाननेवाला और तत्त्व को वेदनेवाला। जानना-जानना वह वेदन है।

भाई! प्रत्याख्यान में कहा है न? समयसार में, कि आत्मा में राग का त्याग तो नाममात्र है। क्यों?-कि आत्मा ने जाना कि यह राग है, मैं आत्मा हूँ, ऐसा जाना, यह जाना, उस ज्ञान में उसका ग्रहण नहीं किया और अपने में स्थिर हुआ, इसका नाम पर का त्याग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात है, भाई! आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा ने असंख्य प्रदेशी (कहा)। प्रदेश असंख्य और गुण अनन्त, ऐसा जो शुद्ध जीवास्तिकाय, वह अपना स्वरूप है। उसका जो वेदन करता है, जानकर वेदन करता है, वह **अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं**। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! इसमें तो कहीं व्यवहार को... आहाहा!

दो ही बातें ली हैं। एक ओर भगवान शुद्ध जीव अस्ति, सत्ता, अपनी मौजूदगी। शुद्ध-जीव-अस्ति-काय, यह अस्तिकाय, असंख्य प्रदेशी अस्तिकाय। यह सर्वज्ञ सिवाय अन्यत्र होता नहीं। असंख्य प्रदेशी जीव, वह सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी ने देखा नहीं, किसी ने जाना नहीं। अन्यमत में कोई सर्वज्ञ हुए नहीं और किसी ने जाना नहीं। आहाहा! इस कारण कहते हैं कि शुद्ध-जीव-अस्ति-काय। आहाहा! अशुद्धरहित, पुद्गलरहित अपनी अस्ति असंख्य प्रदेशी ऐसी जो काय, वह काय अपनी। यह काय (जड़ शरीर) अपना नहीं। राग, पुण्य, दया, दान, यह काय अपनी नहीं। वह परपुद्गल की है। आहाहा!

अपना स्वरूप शुद्ध, निर्मल अस्तिवाला। काय असंख्य प्रदेशी समूह। अनन्त गुण का धारक, उसका ज्ञान करके जो वेदता है, उसका ज्ञान करके उसका अनुभव करता है,

वह अत्यन्त अपूर्व ऐसी मुक्ति को प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। लोगों को बैठना कठिन पड़े। एक ही बात त्रिकाली ज्ञायकभाव, चैतन्यस्वभाव। असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण। असंख्य प्रदेशी तो क्षेत्र है। आहाहा! द्रव्य जीव है, असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है, त्रिकाल रहनेवाला, वह अनादि-अनन्त है और भाव अनन्त गुण का काय, असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का पिण्ड / शरीर है। आत्मा में अनन्त गुण, वह शरीर है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात कहाँ सुने?

**ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से... वेदते हैं, कहते हैं,...** कहता है ऐसा शब्द है। आहाहा! ऐसा तत्त्व जाननेवाले। ऐसा तत्त्व जाननेवाले। इस प्रकार से है, ऐसे तत्त्व को जाननेवाले। दूसरे प्रकार से नहीं। आहाहा! जगत को बहुत कठिन पड़ता है। जैसे यहाँ पुद्गल की पर्याय को छोड़ दिया। परवस्तु नहीं, राग नहीं, दया, दान नहीं, पर्याय नहीं। आहाहा! अकेला शुद्धजीवास्तिकायसमूह, शुद्ध पवित्र जीव अस्ति हयातिवाली, असंख्य प्रदेशी काय जिसका स्वरूप है, ऐसे तत्त्व को जो अन्तर सन्मुख होकर जानता है। अन्तर सन्मुख होकर जानता है और जाननेपूर्वक वेदन करता है अर्थात् अनुभव करता है। अतीन्द्रिय आनन्दमय भगवान है, उसके अतीन्दिय आनन्द को वेदन करता है। वह अपूर्व-अत्यन्त अपूर्व अनन्त काल में एक समय भी आया नहीं, ऐसी अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करता है। आहाहा! भगवान! ऐसी बात है। आहाहा! दुनिया से पूरी अलग लगे (ऐसी बात है)। यह श्लोक तो पद्मप्रभमलधारिदेव का है। अब मूल श्लोक (गाथा) ५१ से।

## गाथा-५१-५५

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं।।५१।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं।।५२।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी।।५३।।
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि।।५४।।
ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो।।५५।।

विपरीताभिनिवेश-विवर्जित-श्रद्धान-मेव सम्यक्त्वम्।
सन्शय-विमोह-विभ्रम-विवर्जितं भवति सञ्ज्ञानम्।।५१।।
चलमलिन-मगाढत्व-विवर्जित-श्रद्धानमेव सम्यक्त्वम्।
अधिगम-भावो ज्ञानं हेयोपादेय-तत्त्वानाम्।।५२।।
सम्यक्त्वस्य निमित्तं जिनसूत्रं तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः।
अन्तर्हेतवो भणिताः दर्शन-मोहस्य क्षय-प्रभृतेः।।५३।।
सम्यक्त्वं सञ्ज्ञानं विद्यते मोक्षस्य भवति शृणु चरणम्।
व्यवहार-निश्चयेन तु तस्माच्चरणं प्रवक्ष्यामि।।५४।।
व्यवहारनयचरित्रे व्यवहारनयस्य भवति तपश्चरणम्।
निश्चय-नय-चारित्रे तपश्चरणं भवति निश्चयतः।।५५।।

रत्नत्रयस्वरूपाख्यानमेतत्। भेदोपचाररत्नत्रयमपि तावद् विपरीताभिनिवेश-विवर्जितश्रद्धानरूपं भगवतां सिद्धिपरम्पराहेतुभूतानां पञ्चपरमेष्ठिनां चलमलिनागाढ-विवर्जितसमुपजनितनिश्चलभक्तियुक्तत्वमेव। विपरीते हरिहिरण्यगर्भादिप्रणीते पदार्थसार्थे ह्यभिनिवेशाभाव इत्यर्थ:। सञ्ज्ञानमपि च सन्शयविमोहविभ्रमविवर्जितमेव। तत्र सन्शय: तावत् जिनो वा शिवो वा देव इति। विमोह: शाक्यादिप्रोक्ते वस्तुनि निश्चय:। विभ्रमो ह्यज्ञानत्वमेव। पापक्रियानिवृत्ति-परिणामश्चारित्रम्। इति भेदोपचाररत्नत्रयपरिणति:। तत्र जिनप्रणीतहेयोपादेयतत्त्वपरिच्छित्तिरेव सम्यग्ज्ञानम्। अस्य सम्यक्त्वपरिणामस्य बाह्यसहकारिकारणं वीतरागसर्वज्ञमुखकमलविनिर्गतसमस्तवस्तुप्रतिपादनसमर्थद्रव्य-श्रुतमेव तत्त्वज्ञानमिति। ये मुमुक्षव: तेऽप्युचारत: पदार्थनिर्णयहेतुत्वात् अन्तरङ्गहेतव इत्युक्ता: दर्शनमोहनीयकर्मक्षयप्रभृते: सकाशादिति। अभेदानुपचाररत्नत्रय-परिणतेर्जीवस्य टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावनिजपरमतत्त्वश्रद्धानेन, तत्परिच्छित्तिमात्रान्तर्मुख-परमबोधेन, तद्रूपाविचलस्थितिरूपसहजचारित्रेण अभूतपूर्व: सिद्धपर्यायो भवति। य: परमजिन-योगीश्वर: प्रथमं पापक्रियानिवृत्तिरूपव्यवहारनयचारित्रे तिष्ठति, तस्य खलु व्यवहारनय-गोचरतपश्चरणं भवति। सहजनिश्चयनयात्मकपरमस्वभावात्मकपरमात्मनि प्रतपनं तप:। स्वस्वरूपाविचलस्थितिरूपं सहजनिश्चयचारित्रं अनेन तपसा भवतीति।

तथा चोक्तमेकत्वसप्ततौ ह्न

( अनुष्टुप् )

दर्शनं निश्चय: पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योग: शिवाश्रय:।।

---

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है।।५१।।

चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है।।५२।।

जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो।।५३।।

सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अत: चारित्र मम प्रतिपाद्य है।।५४।।

व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये॥५५॥

गाथार्थः—[ विपरीताभिनिवेशविवर्जितश्रद्धानम् एव ] विपरीत अभिनिवेश* रहित श्रद्धान ही [ सम्यक्त्वम् ] सम्यक्त्व है; [ संशयविमोहविभ्रमविवर्जितम् ] संशय, विमोह और विभ्रम रहित ( ज्ञान ) वह [ संज्ञानम् भवति ] सम्यग्ज्ञान है।

[ चलमलिनगाढत्वविवर्जितश्रद्धानम् ] चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान ही [ सम्यक्त्वम् ] सम्यक्त्व है; [ हेयोपादेयतत्त्वानाम् ] हेय और उपादेय तत्त्वों को [ अधिगमभावः ] जाननेरूप भाव वह [ ज्ञानम् ] ( सम्यक् ) ज्ञान है।

[ सम्यक्त्वस्य निमित्तं ] सम्यक्त्व का निमित्त [ जिनसूत्रं ] जिनसूत्र है; [ तस्य ज्ञायकाः पुरुषाः ] जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को [ अन्तर्हेतवः ] ( सम्यक्त्व के ) अंतरंग हेतु [ भणिताः ] कहे हैं, [ दर्शनमोहस्य क्षयप्रभृतेः ] क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।

[ शृणु ] सुन, [ मोक्षस्य ] मोक्ष के लिए [ सम्यक्त्वं ] सम्यक्त्व होता है, [ संज्ञानं ] सम्यग्ज्ञान [ विद्यते ] होता है, [ चरणम् ] चारित्र ( भी ) [ भवति ] होता है; [ तस्मात् ] इसलिए [ व्यवहारनिश्चयेन तु ] मैं व्यवहार और निश्चय से [ चरणं प्रवक्ष्यामि ] चारित्र कहूँगा।

[ व्यवहारनयचरित्रे ] व्यवहारनय के चारित्र में [ व्यवहारनयस्य ] व्यवहारनय का [ तपश्चरणम् ] तपश्चरण [ भवति ] होता है; [ निश्चयनयचारित्रे ] निश्चयनय के चारित्र में [ निश्चयतः ] निश्चय से [ तपश्चरणम् ] तपश्चरण [ भवति ] होता है।

*टीकाः*—यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।

प्रथम, भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप —ऐसा जो सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति उत्पन्न हुआ चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना, वही सम्यक्त्व है। विष्णुब्रह्मादिकथित विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है—ऐसा अर्थ है। संशय, विमोह और विभ्रमरहित ( ज्ञान ) ही सम्यग्ज्ञान है। वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे ( ऐसा शंकारूप ), वह संशय है; शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय ( अर्थात्

* अभिनिवेश=अभिप्राय; आग्रह।

बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय ), वह विमोह है; अज्ञानपना ( अर्थात् वस्तु क्या है तत्सम्बन्धी अजानपना ) ही विभ्रम है। पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है। ऐसी भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है। उसमें, जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है। इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है। जो मुमुक्षु हैं उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण ( सम्यक्त्वपरिणाम के ) अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।

अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, तद्ज्ञानमात्र ( उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप ) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा और उसरूप से ( अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से ) अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा अभूतपूर्व* सिद्धपर्याय होती है। जो परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं, उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है। सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है; निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।

इसी प्रकार एकत्वसप्तति में ( श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि —

( दोहा )

आतम निश्चय दर्श है आत्मबोध ही ज्ञान।
आत्मलीनता चरित - इन त्रय मिल शिवपथ जान॥

श्लोकार्थः—आत्मा का निश्चय वह दर्शन है, आत्मा का बोध वह ज्ञान है, आत्मा में ही स्थिति वह चारित्र है—ऐसा योग ( अर्थात् इन तीनों की एकता ) शिवपद का कारण है।

---

* अभूतपूर्व=पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व।

## गाथा ५१-५५ पर प्रवचन

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ।।५१।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
अधिगम-भावो णाणं हेयोवादेय-तच्चाणं ।।५२।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर-हेऊ भणिदा दंसण-मोहस्स खयपहुदी ।।५३।।
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहार-णिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि ।।५४।।
ववहारणयचरित्ते ववहार-णयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छय-णय-चारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो ।।५५।।

नीचे हरिगीत

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
संशय, विमोह, विभ्रान्ति विरहित ज्ञान सुज्ञानत्व है ॥५१॥
चल, मल, अगाढ़पने रहित श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
आदेय, हेय पदार्थ का अवबोध सुज्ञानत्व है॥५२॥
जिनसूत्र समकितहेतु है, अरु सूत्रज्ञाता पुरुष जो।
वह जान अंतर्हेतु जिसके दर्श-मोहक्षयादि हो॥५३॥
सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान अरु चारित्र मोक्ष उपाय है।
व्यवहार निश्चय से अतः चारित्र मम प्रतिपाद्य है॥५४॥
व्यवहारनयचारित्र में व्यवहारनय तप जानिये।
चारित्र निश्चय में तपश्चर्या नियत-नय मानिये॥५५॥

आहाहा! इसकी टीका दूसरे पृष्ठ पर।

*टीका:*—**यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** है? रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, ये तीन रत्नत्रय हैं, ये तीन रत्न हैं। आहाहा! जिस रत्न का मोल देने से मुक्ति मिलती है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीन रत्न हैं। आहाहा! दुनिया के हीरा-माणेक के रत्न तो धूल के हैं। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति के दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय, वह मुक्ति का हेतु-कारण है; दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! अब प्रथम व्यवहार कहते हैं।

**प्रथम, भेदोपचार...** भेद अर्थात् व्यवहार से-उपचार से। टीका है? है? **भेदोपचार-व्यवहाररत्नत्रय इस प्रकार है:**—व्यवहाररत्नत्रय, वह तो शुद्ध राग है, परन्तु आता है। निश्चयरत्नत्रय है, वह मोक्ष का मार्ग है। जब तक निश्चय पूर्ण प्राप्त न हो, तब तक अन्दर राग व्यवहार आता है, परन्तु वह राग आदरणीय नहीं है, हेय है। यह कहते हैं। प्रथम, **भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है:**—आहाहा! व्यवहार से, भेद से, उपचार से। उपचार अर्थात् वास्तविक नहीं। ऐसे उपचार से **रत्नत्रय इस प्रकार है:**—आहाहा! **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप**—विपरीत / उल्टे आग्रहरहित। अभिनिवेश अर्थात् आग्रह, अभिप्राय। विपरीत अभिप्रायरहित... आहाहा! **श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के...** व्यवहार की बात है, हों! निश्चय की बात नहीं। यह तो व्यवहार समकित की बात है। शुभराग। व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग। आहाहा! निश्चय समकित अर्थात् आनन्ददशा का अन्तर निर्विकल्प अनुभव। आहाहा!

**भेदोपचार-रत्नत्रय इस प्रकार है—विपरीत अभिनिवेशरहित...** समकिती का व्यवहार भी, निश्चय समकित आत्मज्ञान हो, उसे व्यवहार भी ऐसा होता है कि **विपरीत अभिनिवेशरहित श्रद्धानरूप—ऐसा जो सिद्धि के...** ऐसे जो मुक्ति के **परम्पराहेतुभूत...** निश्चय तो साक्षात् कारण है। व्यवहार तो छूट जाता है। व्यवहार आता है तो छूट जाता है तो परम्पराहेतु कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? परम्पराहेतुभूत। व्यवहार परम्पराहेतुभूत (कहा है)।

**मुमुक्षु :** सोनगढ़ मानता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कहा न? निश्चय हो, उसे यह व्यवहार होता है। उसे यह व्यवहार होता है, यह व्यवहार साक्षात् कारण नहीं है। साक्षात् कारण तो स्व के आश्रय से

अनुभव (हो, वह साक्षात् कारण है)। उसके साथ राग आता है, उसका अभाव होकर मुक्ति होती है तो परम्परा कारण कहा जाता है। आहाहा!

**सिद्धि के परम्पराहेतुभूत भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति...** भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रति। भगवन्त पंच परमेष्ठी। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु – इन पंच परमेष्ठी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई। **चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित...** आहाहा! इसका अर्थ करेंगे। **चलता-मलिनता-अगाढ़तारहित निश्चल भक्तियुक्तपना,...** निश्चल अर्थात् चलित न हो। निश्चय नहीं। निश्चल – चलित न हो, ऐसी भक्तियुक्तरूप से समकित व्यवहार समकित है। यह निश्चय समकित जिसे है, उसे ऐसा व्यवहार समकित आता है। पूर्ण दशा प्राप्त करने से पहले बीच में ऐसा राग आता है, उस व्यवहार की बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

**विष्णुब्रह्मादिकथित...** विष्णु आदि और ब्रह्म आदि **कथित विपरीत पदार्थसमूह...** उन्होंने तो सब विपरीत पदार्थ कहे हैं। आहाहा! यहाँ तो भगवन्त सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो पदार्थ कहे, उनकी चलता-मलिनता-अगाढ़ता रहित व्यवहार श्रद्धा-राग, (उसकी बात है)। आहाहा! ये विष्णु ब्रह्मादि ईश्वरादि के नाम से **कथित विपरीत पदार्थसमूह...** कोई ईश्वर कर्ता नहीं है, ये ईश्वर कर्ता माननेवाले, विष्णु माननेवाले, ब्रह्मा को (कर्ता) माननेवाले, ये सब विपरीत पदार्थ हैं। आहाहा! उसे तो व्यवहार समकित की श्रद्धा भी नहीं है। आहाहा! ये ब्रह्मा-विष्णु और महेश – शंकर। ब्रह्मा-विष्णु-महेश—शंकर आदि को माने, वह तो विपरीत अभिनिवेश / अभिप्राय है।

**विपरीत पदार्थसमूह के प्रति अभिनिवेश का अभाव ही सम्यक्त्व है...** उसका अभिनिवेश अर्थात् अभिप्राय, उनके प्रति अभिप्राय का अभाव ही व्यवहार सम्यक्त्व है। व्यवहार है, राग है। आहाहा! जब तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जब तक आत्मा न हो, तब तक निश्चय आत्मा के अवलम्बन से जो मोक्षमार्ग शुरु हुआ, उसके साथ अपूर्ण निश्चय मोक्षमार्ग है, तो साथ में राग आता है। उसे यहाँ चलता-मलिनतारहित, विपरीत श्रद्धारहित व्यवहार समकित कहा गया है। आहा..हा..! **ऐसा अर्थ है।** (विपरीत अभिनिवेश का) **अभाव ही सम्यक्त्व है...** ऐसा है?

अब इसका अर्थ करते हैं। **संशय, विमोह और विभ्रमरहित (ज्ञान) ही सम्यग्ज्ञान है।** आहाहा! यह अभी व्यवहार की बात चलती है। **संशय,...** जहाँ शंका नहीं, **विमोह...**

नहीं-भ्रमणा नहीं। **विभ्रम...** नहीं। ऐसा होगा या ऐसा होगा, ऐसा विभ्रम नहीं। **संशय, विमोह और विभ्रमरहित ( ज्ञान ) ही सम्यग्ज्ञान है।** यह व्यवहारज्ञान है, यह अभी राग है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान है, आत्मा का अनुभव-आनन्द का अनुभव है, उसमें अपूर्ण दशा है, पूर्ण दशा नहीं, उस भूमिका में ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि **संशय, विमोह और विभ्रमरहित ( ज्ञान ) ही सम्यग्ज्ञान है।** यह व्यवहार है। अभी व्यवहार सम्यक् लिया। आहाहा! व्यवहार अर्थात् अभी शुभराग। **वहाँ, जिन देव होंगे या शिव देव होंगे ( ऐसा शंकारूप ), वह संशय है;...** यह संशय की व्याख्या। सर्वज्ञ भगवान होंगे यह सत्य है या शिव देव शंकरादि, ब्रह्म, विष्णु, शंकर आदि सत्य होंगे? ऐसी शंका को यहाँ संशय कहते हैं। वह संशयरहित हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शनसहित व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं। आहाहा!

**शाक्यादिकथित वस्तु में निश्चय...** शाक्य अर्थात् बौद्ध। बौद्ध का बहुत प्रचार है न? बौद्धधर्म, वह मिथ्यात्व है। एक क्षणिक को मानता है। त्रिकाल आत्मा को नहीं मानता। वह तो क्षणिक को ही मानता है। शाक्य अर्थात् बौद्ध। **( अर्थात् बुद्धादि कथित... )** इसके अतिरिक्त अनेक अज्ञानियों द्वारा कथन की हुई, उस वस्तु में निश्चय, उसका नाम विमोह है। विमोह मिथ्यात्व राग है। आहाहा! **( अर्थात् बुद्धादि कथित पदार्थ का निर्णय ), वह विमोह है;...** आहाहा! **अज्ञानपना ( अर्थात् वस्तु क्या है, तत्सम्बन्धी अजानपना ) ही विभ्रम है।** अभी तो व्यवहार की बात चलती है, हों! वस्तु कैसी है? ऐसी वस्तु का अजानपना, वस्तुस्थिति की मर्यादा, उसका अजानपना वह विभ्रम है। आहाहा!

**पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम, वह चारित्र है।** व्यवहार। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना, समकिती को निश्चयसहित पापक्रिया से निवृत्तिरूप शुभराग आता है, वह व्यवहारचारित्र है। उसका नाम राग है। आहाहा! वह व्यवहार (तो) निश्चय हो उसे व्यवहार होता है। जिसे आत्मा का अनुभव, आनन्द का अनुभव नहीं, उसे तो यह व्यवहार भी गिनने में नहीं आता। आहाहा! **पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषयरहित पंच महाव्रत के परिणाम, वे चारित्र-राग हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, वे राग हैं। मुनि को भी; समकिती को भी जब तक पूर्ण चारित्रदशा न हो, तब बीच में यह राग आये बिना नहीं रहता। आहाहा! परन्तु वह राग हेय है। छोड़नेयोग्य है, जाननेयोग्य है। है, ऐसा जानकर छोड़नेयोग्य है।

छोड़नेयोग्य का अर्थ ऐसा है कि सम्यग्ज्ञान ने जाना, वह दु:ख विपरीत है तो उस विपरीत का ग्रहण नहीं और ज्ञान में ज्ञानरूप स्थिरता है, उसका नाम विभ्रम का त्याग कहते हैं। आहाहा! शब्द-शब्द में बहुत सूक्ष्मता, प्रभु! यह तो जिनेश्वर का मार्ग है। वीतराग सर्वज्ञ तीन लोक के नाथ। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर हुए, वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं, सबका एक ही कथन है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ' परमार्थ का पन्थ दो-तीन (नहीं है)। यह भी सही और यह भी सही, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पापक्रिया से निवृत्तिरूप परिणाम भी चारित्र है, ऐसी भेद उपचार रत्नत्रयपरिणति है, वह व्यवहार है। भेद अर्थात् व्यवहार, उपचार, वास्तविकता नहीं। उपचार अर्थात् वास्तविकता नहीं।

**भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है**। वास्तविक रत्नत्रयपरिणति नहीं। **भेदोपचार-रत्नत्रयपरिणति है**। आहाहा! **उसमें,...** अब भेदरत्नत्रयपरिणति... जो स्वभाव आत्मा त्रिकाली शुद्ध का अवलम्बन / आश्रय निश्चय है, अनुभव है, आनन्द का अनुभव है, उसके पाप की निवृत्तिरूप परिणाम को व्यवहारचारित्र कहते हैं। आहाहा! **उसमें,...** उसमें अर्थात् व्यवहार में। **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है**। आहाहा! यह भी व्यवहार है। हेय और उपादेय दो आये न? दो आये, इसलिए व्यवहार हुआ। और **उसमें,...** कहा न? व्यवहाररत्नत्रय जो राग कहा, **उसमें, जिनप्रणीत...** तीन लोक के नाथ जिनप्रणीत—वीतराग का कहा हुआ हेय-उपादेय। यह छोड़नेयोग्य है, यह आदरनेयोग्य है, यह भी व्यवहार ज्ञान में जाता है, यह व्यवहार ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

**संशय, विमोह और विभ्रमरहित...** यह दर्शन और ज्ञान; और पाप की निवृत्तिरूप पंच महाव्रतादि के परिणाम, यह व्यवहारचारित्र है। इन तीन में **हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है**। आहाहा! निश्चय सम्यग्ज्ञान तो अन्तर का अनुभव करना, वह है। हेय-उपादेय दो आये न? दो आये, इसलिए व्यवहार हुआ। वह निषेधयोग्य है। यह (निश्चय) ग्रहण करनेयोग्य है। दो आये। इसलिए शब्द लिया कि व्यवहाररत्नत्रय परिणति है उसमें। ऐसा लिया न, भाई? इसलिए **उसमें...** शब्द लिया न? व्यवहाररत्नत्रय परिणति है। व्यवहार कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा (का त्याग), उनका ज्ञान और पाप के निवृत्तरूप परिणाम चारित्र पंच महाव्रत।

**उसमें...** आहाहा! **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान...** सर्वज्ञ भगवान ने त्रिलोकनाथ परमात्मा वीतरागदेव ने जो हेय कहा, रागादि हेय कहे और स्वभाव को

उपादेय कहा, वह भी व्यवहार में जाता है। व्यवहार में दो आये न ? आहाहा ! भारी कठिन। ऐसा मार्ग ! छोटी उम्र में तो साधारण सीखते थे। दस वर्ष की उम्र से सामायिक और... अभी तो ९१ हुए। ८१ वर्ष पहले की बात है। जैनशाला में पढ़ने जाते थे न, तब सामायिक और सब कण्ठस्थ किया था। दस वर्ष की उम्र में सामायिक, प्रतिक्रमण सब मुखाग्र-कण्ठस्थ किया था और यह मानते थे कि अपने यह धर्म है और हमें सिखानेवाला भी वहाँ एक 'सोमचन्द भगत' अन्धे थे – उमराला में (थे), वे सिखाते थे। सोमचन्द अन्ध थे और एक हमारे रूपचन्दभाई नाम के भानेज थे। वहाँ पूना में लड़का है। हमारी बहिन का लड़का था। बड़ी उम्र का था। वह सिखाता था, परन्तु ऐसा सब सीखें। यह तो अस्सी वर्ष पहले की बात है। उस समय मानते और मुखाग्र कण्ठस्थ किया था। सामायिक, प्रतिक्रमण, पाँचों प्रतिक्रमण कण्ठस्थ किये थे। परन्तु वह सब व्यवहार विकल्प है। उसे तो निश्चय भी नहीं है।

यहाँ तो निश्चय आत्मा का भान है, अनुभव है, आनन्द का स्वाद है, उसकी दशा में पूर्णदशा नहीं तो ऐसा राग आये बिना नहीं रहता। उस राग को यहाँ व्यवहाररत्नत्रय की परिणति कहते हैं। आहाहा ! अन्दर है या नहीं ? **उसमें...** उसमें अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय में। निश्चय में तो हेय-उपादेय ऐसे दो भेद ही नहीं हैं। अकेला त्रिकाली आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध जीवास्तिकाय पहले कहा है। आहाहा ! कलश में कहा है। शुद्ध जीवास्तिकाय अखण्ड-अभेद है, उसका आश्रय करके निश्चय होता है, उसका नाम निश्चय है। जहाँ पर की अपेक्षा आयी, उसे व्यवहार कहते हैं। आहाहा ! अरे ! कब सुने ? कब विचार करे ? कब जँचे ? मनुष्यभव चला जाता है। अवतार तो... वर्ष चले जाते हैं। निश्चय से तो जितने दिन और महीने जाते हैं, उतना मृत्यु का समय नक्की-निश्चित है। केवलज्ञान में मृत्यु का समय और अन्दर... निर्णय है कि इस समय में, इस क्षण में यह देह छूटेगी। आहाहा ! ये मृत्यु के निकट दिन जाते हैं। मृत्यु के नजदीक जाते हैं और उसमें अधिक, हम कुछ विशेष हुए, ऐसा मानता है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि स्व आत्मा भगवान पूर्णानन्द... कहेंगे। पहले कलश में कह गये हैं। विशेष कहेंगे... जिसे अन्दर शुद्ध जीवास्तिकाय, त्रिकाल शुद्ध जीव-अस्ति/मौजूदगी, अनादि-अनन्त सनातन सत्य प्रभु, भगवान केवलज्ञानी ने जो देखा, अनुभव किया और केवलज्ञान हुआ। ऐसे अनन्त केवली और अनन्त जीवों ने देखा। उन्होंने जो

कहा, उसमें भी हेय और उपादेय दो लेना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! यह किसे? यह व्यवहार, हेय-उपादेय का व्यवहार ज्ञान किसे? आहाहा! जिसे आत्मा चैतन्यमूर्ति शुद्ध जीवास्तिकाय का अनुभव, आनन्द का स्वाद आया हो। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का अनुभव हुआ हो, ऐसा स्वाश्रय निश्चय हुआ हो, उसे यह व्यवहार पराश्रय व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! इस निश्चय के बिना तो व्यवहार भी नहीं कहते। वह तो व्यवहाराभास है। वह अनन्त बार किया।

अरे! चौरासी लाख के अवतार में दिगम्बर साधु भी अनन्त बार हुआ। दिगम्बर साधु। जैन की वास्तविकता दिगम्बर तो अनादि तत्त्व है। उसका साधु होकर पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, हजारों रानियाँ त्यागकर क्रिया की, परन्तु वह सब बन्ध का कारण है। आहाहा! उससे रहित अन्दर भगवान अमूर्तिक, शुभराग की भी जिसने अपेक्षा नहीं, ऐसा निर्मलानन्द का नाथ, प्रभु, जीवास्तिकाय का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति (प्रगट हो), उसे ऐसा व्यवहार होता है। उसका व्यवहार ऐसा होता है। जिसे निश्चय नहीं, उसे तो व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा!

यहाँ आया? **उसमें...** आहाहा! **जिनप्रणीत...** वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव तीर्थंकरदेव ने कहे हुए तत्त्व, उन हेय-उपादेय तत्त्व का ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान व्यवहार है। आहाहा! पहले भी आ गया है। हिम्मतभाई! बाह्यतत्त्व, परमात्मतत्त्व, पहले आ गया है। कौन सी गाथा? पाँचवीं? देखो! पृष्ठ १२ - **तत्त्व बहि:तत्त्व और अन्त:तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व ऐसे (दो) भेदोंवाले...** जीव श्रद्धा को व्यवहार समकित कहते हैं। है? **बहि:तत्त्व** रागादि, **अन्त:तत्त्व** जीवादि **परमात्मतत्त्व...** आहाहा! **ऐसे (दो) भेदोंवाले हैं अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष, ऐसे भेदों के कारण सात प्रकार के हैं। उनका (-आप्त का, आगम का और तत्त्व का) सम्यक् श्रद्धान, सो व्यवहारसाधन है।** है? व्यवहार है, राग है। आहाहा!

क्या कहा? कि **अन्त:तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व...** उसके साथ बहि:तत्त्व की श्रद्धा को जोड़ना, तो दो की श्रद्धा, वह व्यवहार समकित है। है? और जीव-अजीव आदि नौ तत्त्व की श्रद्धा भी व्यवहारतत्त्व है। है? आहाहा! **तत्त्व बहि:तत्त्व और अन्त:तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व...** निश्चय और बहि:तत्त्व व्यवहार, **ऐसे (दो) भेदोंवाले हैं अथवा जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध तथा मोक्ष, ऐसे भेदों के कारण...** दो प्रकार।

**बहि:तत्त्व और अन्त:तत्त्वरूप परमात्मतत्त्व...** की श्रद्धा और इन नौ तत्त्व की श्रद्धा। **उनका ( -आप्त का, आगम का और तत्त्व का ) सम्यक् श्रद्धान, सो व्यवहारसम्यक्त्व है।** आहाहा! परमात्म (तत्त्व) तो अन्दर आया और साथ में बाह्यतत्त्व भी आया। इसलिए बाह्य जहाँ आया, इसलिए दो तत्त्व हुए, दो हुए, इसलिए व्यवहार हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु!

यह यहाँ कहा। **उसमें...** व्यवहार जो चलता है, **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।** यह व्यवहार है। यह व्यवहार कहा। वहाँ जो व्यवहार कहा, वह व्यवहार है। आहाहा! व्यवहार अर्थात् राग है, वह धर्म नहीं। जहाँ निश्चय आत्मा के आनन्द के अनुभव का वेदन हुआ, वहाँ अपूर्ण है तो राग आता है। ये सात तत्त्व और अन्त: तत्त्व और बहि:तत्त्व की श्रद्धा अथवा इन जीव आदि की श्रद्धा, (वह होती है)। आहाहा! अथवा हेय उपादेय का ज्ञान, वह व्यवहार है। आहाहा! गजब है!

यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! भगवान के पास गये थे। वर्तमान में समवसरण में त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, वहाँ गये थे, आठ दिन वहाँ रहे थे। आहाहा! और भगवान की प्ररूपणा तो सबेरे, दोपहर, शाम तीन बार छह-छह घड़ी होती है। फिर तो प्ररूपणा नहीं होती। व्याख्यान बन्द हो, ऐसे समय में दूसरे जो वीतरागी मुनि, सन्त थे। सच्चे दिगम्बर सन्त थे, उनके साथ चर्चा करके बहुत समाधान किया। वहाँ से आकर ये शास्त्र बनाया। उसमें भी यह शास्त्र तो, समयसार, प्रवचनसार, ये सब शास्त्र बनाये वे तो साधारण तत्त्व को समझाने के लिये, परन्तु यह शास्त्र तो मैंने मेरे आत्मा के लिये बनाया है। मेरे आत्मा के हित के लिये बनाया है। आहाहा! गजब बात! कठिन पड़े। कहो रजनीभाई! पुस्तक है या नहीं? घर पर रखी होगी, पढ़ी नहीं होगी। पिताजी ने तो पढ़ी थी। इनने पढ़ी थी। बहिनश्री के वचनामृत। भूपतभाई ने बहिनश्री के वचनामृत चार बार पढ़ी थी। गुजर गये। करोड़ों रुपये हैं। धूल भी साथ में नहीं आया कुछ। आहाहा! यहाँ आते थे, रहते थे। चले गये। ओहोहो!

यहाँ कहते हैं प्रभु! तू एक बार सुन तो सही। परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव की आज्ञा में क्या चलता है? कि एक तो जिसे आत्मा का अनुभव, आनन्द... बाह्य और अभ्यन्तर तत्त्व का भेद छोड़कर अन्तर तत्त्व का अनुभव अन्दर निर्विकल्प आनन्द (प्रगट हुआ), आनन्द में समकित होता है, उसे यहाँ पूर्ण दशा नहीं है, वहाँ ऐसा व्यवहार आता

है। आहाहा! जहाँ निश्चय आत्मज्ञान और आनन्द नहीं, वहाँ व्यवहार, व्यवहार कहने में नहीं आता। एक (अंक) के बिना शून्य को गिनती में नहीं लेते। एक के बाद शून्य हो तो फिर दस गिना जाता है, परन्तु अकेले शून्य को गिनने में नहीं आता। इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, नाथ! उसके अनुभव बिना अकेला व्यवहार-व्यवहार वह एक के बिना शून्य है परन्तु निश्चय हो और पूर्ण वीतराग न हो तो उसमें बीच में ऐसा व्यवहार आता है। वह राग पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! वह व्यवहार भी पुण्यबन्ध का कारण राग है। आहाहा! अरे रे! चौरासी के अवतार में अनन्त काल गया। आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु! अभेद। बहि:तत्त्व और अन्त:तत्त्व ऐसे दो भेद भी जिसमें नहीं। आहाहा! दो भेद को लक्ष्य में लेता है, तो व्यवहार और विकल्प-राग आ जाता है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **जिनप्रणीत हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।** व्यवहार। आहाहा! अब **इस सम्यक्त्वपरिणाम का...** अब सम्यक्त्व की बात की। समकिती जीव है, आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, आनन्द का अनुभव हुआ है, अतीन्द्रिय आत्मा में अनन्त गुण हैं। प्रभु आत्मा भगवन्त में अनन्त गुण भरे हैं। उन अनन्त गुण की अन्तर सन्मुख होकर, अन्तर अभिमुख होकर अनुभव हुआ है, ऐसे समकिती जीव को... ये समकित के परिणाम कहो, ये समकित के परिणाम हैं। समकित कोई गुण नहीं है। आहाहा! यह त्रिकाली भगवान आत्मा, वह द्रव्य है और त्रिकाली श्रद्धा, ज्ञान आदि गुण हैं, वे ध्रुव हैं और यह समकित तथा चारित्र आदि मोक्ष का मार्ग, वह परिणाम है, वह पर्याय है। आहाहा!

**इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण...** देखो जहाँ समकित के परिणाम हुए, आत्मदर्शन हुआ, आत्मा आनन्द का साक्षात्कार हुआ... आहाहा! उसे सम्यक्त्व परिणाम हुआ, समकित हुआ, अनन्त काल में नहीं हुआ ऐसा सम्यग्दर्शन, आत्मा के आनन्द के आश्रय से हुआ, ऐसे **सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण...** उसका बाह्य सहकारी कारण कौन ? अन्तर तो अपना स्वरूप। **बाह्य सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** आहाहा!

**इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण...** सहकारी-साथ में रहनेवाला। निश्चय के साथ रहनेवाला, उसका नाम सहकारी। सहकारी अर्थात् साथ में रहनेवाला। आहाहा! वह **सहकारी कारण वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ समस्त वस्तु**

**के प्रतिपादन में समर्थ ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** सहकारी कारण वह भगवान का तत्त्वज्ञान ही है। सहकारी अर्थात् व्यवहार... आहाहा! समकित तो निश्चय आत्मा के आश्रय से है, तो बाह्य सहकारी कारण तत्त्वज्ञान / भगवान के वचन का ज्ञान है। है? आहाहा! **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** आहाहा! दूसरे बाह्य निमित्त नहीं।

विशेष कहेंगे.... ( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

---

**प्रवचन-५८, गाथा-५०-५५, शुक्रवार, श्रावण कृष्ण ११, दिनांक ०५-०९-१९८०**

---

नियमसार शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथा। यह शुद्धभाव अर्थात् पर्याय नहीं, ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव लेना। वह शुद्धभाव है। वैसे तो पर्याय में-अवस्था में तीन प्रकार के भाव हैं—शुभ, अशुभ, और शुद्ध। अशुभ, पापबन्ध का कारण; शुभ, पुण्यबन्ध का कारण; शुद्ध, धर्मस्वरूप। ये तीन प्रकार के परिणाम हैं। यह बात अभी यहाँ नहीं है। यह परिणाम शुद्ध... धर्म के शुद्ध परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, जो मोक्ष का यथार्थ मार्ग है, वह किसके आश्रय से उत्पन्न होता है? यह यहाँ शुद्धभाव ध्रुव का अधिकार है। समझ में आया? ऊपर शुद्धभाव है न? वह त्रिकाली शुद्ध। अखण्ड आनन्द चैतन्यशक्ति की व्यक्ति। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्ष का मार्ग, वह चैतन्यशक्ति की व्यक्ति / प्रगटता छे। प्रगटता है। गुजराती आ जाती है न? आहाहा!

क्या कहा? कि आत्मा जो ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु है, वह शक्तिरूप है, वह स्वभावरूप है। उसमें व्यक्तिरूप अर्थात् प्रगटरूप, त्रिकाली सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का पिण्ड जो आत्मा है, उसमें अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन, पर्यायरूप मोक्षमार्ग के कारणरूप जो प्रगट होती है, उस पर्याय की बात नहीं है। वह पर्याय जिसमें से उत्पन्न होती है, ऐसे शुद्ध ध्रुवभाव का अधिकार है। आहाहा! ऐसी बात! पहले यह बात। अब उस शुद्धभाव के आश्रय से, जो त्रिकाली शुद्धभाव है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन परिणाम धर्मरूपी मोक्ष का मार्ग, उसकी शुरुआत सम्यग्दर्शन से होती है, तो वह सम्यग्दर्शन त्रिकाली ध्रुव चैतन्य सनातन शक्तिरूप चैतन्यस्वभाव, त्रिकाली शक्ति स्वभावरूप है। उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन के परिणाम, पर्याय; परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, वह धर्म की पहली दशा उत्पन्न होती है। आहाहा!

यह यहाँ आया। **इस सम्यक्त्वपरिणाम का...** यहाँ से लेना है। अभी सम्यक्त्वपरिणाम कहा न? कि त्रिकाली भगवान अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव वस्तु भगवान आत्मा के आश्रय से / अवलम्बन से, उसके लक्ष्य से जो सम्यग्दर्शनपरिणाम / पर्याय / अवस्था उत्पन्न होती है, वह मोक्ष का मार्ग है। उस सम्यग्दर्शनपरिणाम का **बाह्य सहकारी कारण...** उसका बाह्य सहकारी कारण / निमित्त कौन? **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव के **मुखकमल से निकला हुआ...** यह भी व्यवहार से कहा है—मुखकमल से। वरना तो भगवान की वाणी निकलती है, वह पूरे शरीर में से ओम ध्वनि उठती है परन्तु यहाँ लोग बाह्य से समझते हैं, इस अपेक्षा से इन्होंने **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** ऐसा लिया है। समझ में आया?

प्रभु की वाणी मुख से नहीं निकलती। होंठ बन्द, कण्ठ कंपना, वह बन्द; पूरे शरीर में से ओमध्वनि उठती है। वह ॐकारध्वनि सुनकर... 'ॐकार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे।' जो सन्त गणधर हैं, साधु के गण अर्थात् झुण्ड के धरनेवाले। साधु-सन्त आत्मा के आनन्द के अनुभवी, ऐसे जो सन्त के गण अर्थात् समूह, उनके जो प्रमुख, उन्हें यहाँ गणधरदेव कहते हैं। वे गणधरदेव 'ॐकारध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारे; रचि आगम उपदेश।' और उसमें से - भगवान की वाणी में से आगम की रचना करते हैं। 'रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारे।' भव्य प्राणी योग्य और पात्र जो होते हैं, वे संशय अर्थात् मिथ्यात्व का नाश करते हैं। उन्हें सम्यग्दर्शन के परिणाम उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! बात में फेरफार बहुत हो गया है। इसलिए दूसरी बात लगेगी। आहाहा!

जो सम्यग्दर्शन के परिणाम... है? उनका बाह्य कारण कौन? अन्तरकारण तो अन्तर त्रिकाली ध्रुव भगवान है, उसके अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। अन्तरंग कारण तो अन्तर आत्मा है। आहाहा! अन्तरंग कारण और बहिरंग कारण। रजनीभाई! निकाला था न? क्या कहलाता है? संघ। संघ निकाला था।

**मुमुक्षु :** इन प्रवीणभाई ने।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** प्रवीणभाई ने? ठीक, रजनीभाई ने निकाला था। ये सब भाई हैं। ये सब करोड़पति हैं। एक व्यक्ति ऐसा कहता था। होवे वह ठीक, हमने तो सुना है। ये वलुभाई डॉक्टर है न? वलुभाई कहते हैं कि छह भाई हैं, उन प्रत्येक के पास एक-एक

करोड़ रुपये हैं, ऐसा कहते थे। भले कम-ज्यादा हो। वे वलुभाई नहीं थे? वे डॉक्टर। वलुभाई नहीं थे? आंकड़ियावाले। आंकड़िया नहीं, आठकोटवाले। बड़े डॉक्टर हैं। बड़ा दवाखाना सत्रह लाख का था। सब निकाल दिया। आहाहा! आत्मा सम्यग्दर्शन के परिणाम; परिणाम अर्थात् उसकी अवस्था। त्रिकाली अवस्थायी, ध्रुवस्वरूप त्रिकाली अवस्थायी पदार्थ भगवान आत्मा, उसके आश्रय से उत्पन्न होता है। अन्तरंग कारण तो ध्रुव है। समझ में आया? अभी तो धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान। आहाहा! भाषा ऐसी है। दामोदरभाई! जरा नवीन लगे ऐसी है, बापू! ऐसी वस्तु है। क्या कहें? आहाहा! तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य आठ दिन गये थे। आहाहा! संवत् ४९ (में) दो हजार वर्ष पहले। वहाँ से आकर यह सब बनाया है। उसमें भी यह पुस्तक (नियमसार ग्रन्थ) तो स्वयं के लिये बनाया है। अन्त में लिखा है न? १८७वीं गाथा, देखो! अन्तिम गाथा है न? अन्तिम गाथा। १८७, आहाहा! (गाथा) १८७, पृष्ठ ३७१, उसमें पहली गाथा, ऊपर।

'**णियभावणाणिमित्तं**' ऊपर गाथा। '**णियभावणाणिमित्तं**' मैंने मेरे निमित्त के भाव से '**मए कदं**' मैंने कहा। '**णियमसारणामसुदं**' यह नियमसार मैंने तो मेरे आत्मा के लिये बनाया है। आहाहा! '**णच्चा जिणोवदेसं**' वीतराग त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव का साक्षात् उपदेश सुनकर, साक्षात् जानकर '**णच्चा**' अर्थात् जानकर। '**पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं**' पहले और आगे-पीछे के विरोधरहित, अविरोध से मैंने इसमें कथन किया है। पूर्व में पहले कुछ कहा और फिर कुछ कहा, ऐसा विरोध नहीं है। आहाहा! आहाहा! '**णियभावणाणिमित्तं**' नीचे पाठ। '**सब दोष पूर्वापर रहित उपदेश श्री जिनदेव का। मैं जान, अपनी भावना हित नियमसार सुश्रुत रचा॥**' नीचे हिन्दी है। आहाहा!

**इस सम्यक्त्वपरिणाम का बाह्य सहकारी कारण...** अन्तरंग कारण कौन? अन्तरंग कारण ध्रुव। आहाहा! सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान। पगथिया (सीढ़ी का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? सोपान। वह अन्तर्मुख ध्रुवस्वरूप। जड़ मोहकर्म जो है, वह भावक, उससे उत्पन्न हुआ भाव—भावक का भाव। मोहकर्म जो जड़ है, वह भावक अर्थात् भाव करनेवाला है। क्या करनेवाला? मोहकर्म भावक—भाव करनेवाला। कौन सा भाव? मिथ्यात्व, अव्रत, राग-द्वेष के परिणाम करनेवाला, ऐसा जो भावकभाव। कर्म भावक। भाव का करनेवाला। भावक का भाव; मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान,

मिथ्याचारित्र जो अनादि से हैं वे। वे भावक का भाव। चित्शक्ति का व्यक्तिभाव। चित्शक्ति चैतन्यमूर्ति भगवान, उस शक्ति के स्वभावरूप जो है, उसके आश्रय से व्यक्त जो प्रगट परिणाम हुए, वे सम्यग्दर्शन परिणाम हैं। आहाहा!

उस सम्यग्दर्शन परिणाम का अन्तरंग हेतु तो भगवान ध्रुव आत्मा है। **बाह्य सहकारी...** बाह्य सहकारी (अर्थात्) साथ में निमित्तरूप बाह्य कारण होता है, वह क्या? **वीतरागसर्वज्ञ के मुखकमल से निकला हुआ...** वीतराग के मुखकमल से निकली हुई वाणी अर्थात् ॐध्वनि निकली। उसमें से रचा हुआ शास्त्र। वह **समस्त वस्तु के प्रतिपादन में समर्थ...** भगवान की वाणी तीन काल, तीन लोक के पदार्थों को जानकर प्रतिपादन करने में समर्थ है। आहाहा! यह वाणी.. आया? **ऐसा द्रव्यश्रुतरूप...** वह वाणी जो है द्रव्यश्रुत। द्रव्यश्रुत अर्थात् वाणी। भावश्रुत तो अन्तर में, आत्मा में आत्मा के आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना, उसे भावश्रुत कहते हैं, परन्तु यह तो वाणी-द्रव्यश्रुत है।

वीतराग की वाणी जो ॐ दिव्यध्वनि निकली, वह द्रव्यश्रुत... आहाहा! **रूप तत्त्वज्ञान ही है।** बाह्य सहकारी कारण तो यही है। बाह्य सहकारी कारण कोई अज्ञानी के वचन हों, मिथ्यादृष्टि.. भगवान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ने कहे हुए के अतिरिक्त विपरीत मान्यतावाला, समकित का बाह्य कारण वह नहीं है। आहाहा! अरे रे! अन्तरंग कारण तो प्रभु है। अन्तर्मुख देखने पर चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा, चैतन्यशक्ति में देखने से, एकाग्र होने से चैतन्य की व्यक्ति / प्रगटता दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुए, उनमें यहाँ सम्यग्दर्शन की बात चलती है। वह अन्तरंग कारण सम्यग्दर्शन परिणाम, उनका बाह्य कारण वीतराग के मुखकमल से निकली हुई वाणी, वह द्रव्यश्रुत, वह बाह्य सहकारण है। निमित्त में वह निमित्त ही है। वीतराग की वाणी के अतिरिक्त अज्ञानियों ने कल्पित की हुई वाणी होती है, वह बाह्य निमित्तकारण भी उसे नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है।

**ऐसा द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान...** वह बाह्य सहकारी कारण है। है न? **तत्त्वज्ञान ही है।** वह द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी ही बाह्य निमित्त है। अज्ञानियों की वाणी निमित्त नहीं है। वीतराग परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ की वाणी के अतिरिक्त कोई अज्ञानी कल्पित बातें करने लगा हो, वह समकित का बाह्य कारण भी नहीं है। आहाहा! अन्तरंग कारण तो है ही नहीं। समझ में आया? बाह्य सहकारी कारण भी अज्ञानी (अर्थात्) सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त किसी की वाणी बाह्य में निमित्त भी नहीं है। आहाहा! **ही है**—ऐसा लिखा

है न? **द्रव्यश्रुतरूप तत्त्वज्ञान ही है।** वह एक ही निमित्त है; दूसरा कोई निमित्त नहीं हो सकता। आहाहा! अब यह वीतराग की वाणी क्या? इसकी परीक्षा पहले करनी पड़े न? यह कोई वीतराग की वाणी है या अज्ञानी ने कल्पित की है और अपने स्वरूप के भान बिना अपनी कल्पना से शास्त्र बनाया है? या वीतराग की वाणी से बनाया है? उसकी परीक्षा करनी पड़ेगी। आहाहा! समझ में आया? यह कहा—यह **तत्त्वज्ञान ही है।** अब.. आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। अब अन्तर के अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन परिणाम उत्पन्न हुए, बाह्य सहकारी कारण वीतराग की वाणी, तथा एक अन्तरंग कारण; है तो बाह्य कारण, परन्तु उसे अन्तरंग कारण कहते हैं। किस प्रकार से? देखो!

**जो मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से...** जो सम्यग्दृष्टि जीव हैं, धर्मी हैं, उन्हें उपचार से-व्यवहार से **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** वास्तविक पदार्थ के निर्णय के कारणरूप से-हेतुरूप से **( सम्यक्त्वपरिणाम के ) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! क्या कहा? सम्यग्दर्शन परिणाम में अन्तरंग हेतु तो शुद्ध ध्रुव ही है, परन्तु सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त है, उसका अभिप्राय है, वह अन्दर समझने का है; इसलिए उस अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहा है। है तो बाह्य कारण। आहाहा! ऐसी बात अब! समझ में आया?

जैसे भगवान की वाणी द्रव्यश्रुत बाह्य कारण है, वैसे समकिती धर्मी की वाणी भी बाह्य कारण है, तथापि मुमुक्षु धर्मी जीव को उपचार से, व्यवहार से **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण ( सम्यक्त्वपरिणाम के ) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! है तो भगवान, अपने स्वरूप से परिणाम प्रगट हुए। बाह्य कारण में द्रव्यश्रुत-भगवान की वाणी ली और एक धर्मी जीव ने भी जो धर्म सुनाया, वह लिया है। अत: उस धर्मी जीव का अभिप्राय अन्तर में समझने के लिये उस जीव को अन्तरंग हेतु कहा है। है तो बाह्य। आहाहा! धीरे से समझना है, भाई! यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ की साक्षात् दिव्यध्वनि है। आहाहा!

कहते हैं कि सम्यग्दर्शन परिणाम धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्ष के मार्ग का पहला सोपान, उस सम्यग्दर्शन परिणाम का अन्तरंग हेतु तो ध्रुव है और बाह्य हेतु वीतराग की वाणी निमित्तकारण सहकारी है, परन्तु धर्मी जीव ने उपदेश किया और वह धर्मी सम्यक्त्वी-ज्ञानी है, उसका उपदेश है तो वह उपदेश सुनकर उसका अभिप्राय प्राप्त किया। उसका

अभिप्राय क्या है, यह पकड़ लिया; इस कारण सम्यक्त्वपरिणामी जीव को, उस धर्मी जीव के परिणाम अन्तरंग कारण कहा गया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बातें कभी सुनने को मिले?

अरे! भगवान! जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ... आहाहा! परमात्मा, जिन्हें इच्छा का तो नाश हो गया है। वाणी तो वाणी के कारण से निकलती है। ॐध्वनि उठती है। आहाहा! शरीर बन्द, होंठ बन्द, कण्ठ बन्द; पूरे शरीर में से ॐध्वनि उठती है। वह ॐध्वनि सुनकर गणधर शास्त्र रचते हैं। वे शास्त्र समकिती को बाह्य सहकारी कारण कहने में आये हैं। आहाहा! तदुपरान्त धर्मी ने जो आत्मज्ञान का, सम्यग्दर्शन का, मोक्षमार्ग का उपदेश दिया, वह मुमुक्षु जीव। जिसने उपदेश दिया, वह मुमुक्षु जीव... आहाहा! है?

**मुमुक्षु हैं, उन्हें भी उपचार से...** वे तो पर हैं न? **पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** अन्तर पदार्थ आत्मा और राग की भिन्नता के निर्णय में निमित्त होने के कारण। **हेतुपने के कारण अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** आहाहा! उसका जो धर्म, परिणाम, धर्म का जो उपदेश दिया, वह इसने सुना और अपने सम्यक् परिणाम अपने ध्रुव के अवलम्बन से उत्पन्न हुए, उसे बाह्य सहकारी निमित्त वीतराग की वाणी है और मुमुक्षु जीव के अन्तर का अभिप्राय, वह अन्तरंग से, उपचार से हेतु कहा गया है। आहाहा! है तो बाह्य। समझ में आया? परन्तु अन्तर में उसका अभिप्राय समझता है। अन्तर में समझता है तो अपने ध्रुव के आश्रय से, परन्तु उपदेशक निमित्त ज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जो है, उनका अभिप्राय समझने में अन्तरंग हेतु उपचार से, व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! एक शब्द भी बदले तो फेरफार हो जाये ऐसा है, बापू! यह वीतराग की वाणी है, यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

समकिती को, ध्रुव के अवलम्बन से धर्म परिणाम जिसे अन्तर से उत्पन्न हुए, वह अन्तरंग कारण तो आत्मा ही है, परन्तु वीतराग की वाणी को बाह्य सहकारी कारण निमित्त कहा है। एक बात। और एक बात, वह वाणी कहनेवाले का अभिप्राय, अन्तर में समझना है परन्तु वह अभिप्राय है तो पर। है तो उपचार से, पर परन्तु उपचार से, व्यवहार से अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** बहुत स्पष्टीकरण किया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्दर है न! आहाहा! अरे रे! अनन्त काल हुआ, इसके जन्म-मरण मिटे नहीं। चौरासी के अवतार में सत्यवस्तु मिली नहीं। असत्य में सत्य मानकर जिन्दगी गँवा दी। आहाहा! वास्तविक सर्वज्ञ वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में क्या परमार्थ आया है? वह कभी सुनने को मिला नहीं और सुनने को मिले तो अन्तर में निर्णय करने का समय नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन / धर्म के परिणाम। परिणाम है। वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव है, परन्तु उसके अवलम्बन से जो सम्यग्दर्शन परिणाम उत्पन्न हुआ, उसका बाह्य सहकारी कारण वीतराग के श्रीमुख से निकली हुई वाणी है, उसे बाह्य सहकारी कारण कहते हैं और जो इसे उपदेश देनेवाले सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्राप्त आत्मा, वह इसे उपदेश देनेवाले समकिती को, उस पुरुष को भी यहाँ अन्तरंग कारण कहने में आया है। है तो बाह्य। आहाहा! समझ में आया?

**मुमुक्षु हैं, उन्हें भी...** उन्हें 'भी' क्यों कहा? कि द्रव्यश्रुत तो पहले निमित्त कहा, भगवान की वाणी बाह्य द्रव्यश्रुत को निमित्त कहा। यह भी है तो निमित्त। इसलिए कहा कि... आहाहा! **मुमुक्षु हैं, उन्हें भी...** उन्हें भी। वाणी को तो द्रव्य (श्रुत) सहकारी कारण कहा, वाणी साथ में होती है। वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेवाला अन्तरंग से प्राप्त करता है। उसे बाह्य से वीतराग की वाणी निमित्त है। **उन्हें भी उपचार से पदार्थनिर्णय के हेतुपने के कारण...** पदार्थ के निश्चय के हेतुपने के कारण **( सम्यक्त्वपरिणाम के ) अन्तरंग हेतु कहे हैं,...** वे सम्यक्त्व परिणाम जो उत्पन्न हुए उसे धर्मी जीव को अन्तरंग हेतु कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! क्या?

**क्योंकि... अन्तरंग हेतु क्यों कहा? उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।** किन्हें? सुनानेवाले को। सुनता है, उसने तो सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है, तो बाह्य सहकारी कारण द्रव्यश्रुत वीतराग की वाणी है और जो मुमुक्षु हैं, उन्हें समझाते हैं। मुमुक्षु जीव जो समझाते हैं, उन्हें दर्शन मोहनीयकर्म के क्षयोपशम, क्षयादिक हुए हैं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि या अज्ञानी निमित्त नहीं होते, ऐसा सिद्ध करना है। इस कारण बाह्य है—द्रव्यश्रुत भी बाह्य है और मुमुक्षु जो उपदेशक हैं, समकिती हैं, वे भी बाह्य हैं परन्तु उनका अभिप्राय समझने में निमित्त है तो उन्हें अन्तरंग कारण कहा है। उस वाणी से भी जोर (वजन) देने के लिये

उन्हें अन्तरंग कारण कहा है। आहाहा! अरे रे! यह पढ़े कब और सुने कब ? आहाहा! जिन्दगी चली जा रही है।

क्षण में उड़ जाता है, देखो न! चुन्नीभाई का चिमन, कैसा शरीर! मुम्बई। यहाँ उनका घर है। ऐसा शरीर देखो तो लट्ठ जैसा ऐसा। क्षण में हार्टफेल हुआ, उड़ गया। हार्टफेल हो गया। हार्टअटैक कहे अर्थात् हार्ट का हूमलो। अटैक अर्थात हूमलो कहलाता है। हार्टफेल कहलाता है अर्थात् हार्ट छूट गया। आहाहा! मूल तो ऐसा होता है कि जिसे देह छूटने का प्रसंग होता है, तब खून होता है, वह जम जाता है, अन्दर जम जाता है। उसे अपने पुराने लोग हृदय के पाटिया भींसाय छे, ऐसा कहते हैं। मूल तो यह अन्दर खून घूमता है, वह खून अन्दर जम जाता है। जम जाता है, इसलिए श्वास रुक जाती है। श्वास रुक जाती है, इसलिए श्वास निकलती नहीं और पीड़ा.. पीड़ा.. पीड़ा.. आहाहा! उसमें देह छूट जाती है। आहाहा! यहाँ तो बहुत देखा है, बापू! यह तो ९१ वर्ष हुए। अठारह वर्ष की छोट उम्र से तो देखते हैं। दुनिया को, व्यापार को, धन्धे को, धर्म को, शास्त्र को देखते हैं। आहाहा! कहाँ-कहाँ बेचारे दु:खी।

यहाँ कहते हैं वे अन्तरंग हेतु कहे हैं। हैं तो बाह्य। इसका अर्थ दूसरा करते हैं कि अन्तरंग हेतु तो समकिती को दर्शनमोहनीय का क्षय हुआ है, उसे कहना - ऐसा कहते हैं। ऐसा अर्थ नहीं है। जो समकित प्राप्त हुआ है, उसके दर्शनमोह का क्षयोपशम, क्षायिक आदि लेना, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं है। ... उसे जो निमित्त है, द्रव्यश्रुत निमित्त है, तो वह अभिप्राय, कहनेवाले के अभिप्राय को अन्तरंग हेतु कहा है।

**क्योंकि उन्हें...** उन्हें अर्थात् जिन्होंने धर्म का उपदेश दिया है उन्हें। अन्तरंग निमित्त कारण जिन्हें कहा है उन्हें, **दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं।** सामने समकिती जीव है। क्षायिक समकित है, क्षयोपशम समकित है। वह जीव, उनके अभिप्राय को अन्तरंग कारण कहने में आता है। प्राप्त करनेवाले का अन्तरंग कारण तो ध्रुव है परन्तु बाह्य से, उपचार से उस धर्मी जीव को भी अन्तरंग कारण कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात अब! ओहोहो! वीतराग सर्वज्ञ का विरह पड़ा। पंचम काल। आहाहा! उनका हृदय, उनके अन्तर के अभिप्राय से निकली हुई वाणी क्या है ? उसका अर्थ करने में बहुत गड़बड़ हो गयी है। आहाहा! इसमें तो अपना हित है, प्रभु! सत्य की शरण लेगा तो अपना हित होगा। असत्य की शरण लेगा तो अहित होगा। यह तो हित-अहित स्वयं के लिये बात है। और सर्व प्राणी...

द्रव्यसंग्रह में तो ऐसा कहा, 'सर्व प्राणी इस बात को समझो और मोक्ष जाओ। आठ कर्म का नाश होकर सर्व मोक्ष जाओ'—ऐसा हम कहते हैं, ऐसा आया है। आहाहा! धर्मी स्वयं तो आठ कर्म का नाश करके मोक्ष जानेवाले हैं। परन्तु द्रव्यसंग्रह में.. आहाहा! एक (ध्यान के प्रकरण में) चार विचार आते हैं न? आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, संस्थानविचय - ऐसे धर्मध्यान के चार बोल हैं। धर्मध्यान के चार बोल। आहाहा! उनमें अपायविचय का अर्थ किया है, अपाय अर्थात् निश्चय करना, विचारना। उस विचार में ऐसा विचार करना कि मैं तो आठ कर्मरहित हो जाऊँगा। मेरी चीज़ आनन्दकन्द है और राग से भिन्न भान हुआ है। मैं एक-दो भव में आठ कर्म से रहित होऊँगा परन्तु सर्व प्राणी आठ कर्म से रहित होकर मोक्ष को प्राप्त करो—ऐसी भावना वहाँ द्रव्यसंग्रह शास्त्र में ली है। आहाहा! सर्व प्राणी.. आहाहा! प्रभु! कोई दुश्मन नहीं, कोई बैरी नहीं, कोई आत्मा हीन नहीं। सब परिपूर्ण परमात्मशक्ति से भरपूर आत्मा हैं। आहाहा! प्रभु! इस शक्ति की व्यक्ति हो जाओ, ऐसा कहते हैं। यह शक्ति है, उसकी व्यक्ति / प्रगटता मुझमें होगी। आहाहा! तो सब प्राणियों की शक्ति की व्यक्ति हो जाओ। कोई प्राणी संसार में दु:खी न रहो। जन्म-मरण के दु:ख में न रहो। आहाहा! ऐसी भावना भायी है। द्रव्यसंग्रह शास्त्र है। हमने तो हजारों शास्त्र देखे हैं। करोड़ों श्लोक... आहाहा! अपायविचय में यह लिया है।

समयसार की ३८ गाथा में भी ऐसा ही लिया है कि हम कहते हैं, वह समझकर प्रभु! तू अप्रतिहत... कैसा? क्या कहलाता है? अबुद्ध था। श्रोता अबुद्ध था। उसे गुरु ने समझाया कि आत्मा आनन्दमय, राग से भिन्न है। वह समझा और वह ऐसा समझा... ऐसा पाठ है। समयसार की ३८वीं गाथा है। ऐसा समझा कि फिर से गिरे नहीं। वह ज्ञान और आनन्द से मुक्ति लेगा, ऐसा होगा। अप्रतिबुद्ध को भी ऐसा समझाया और प्रतिबुद्ध को भी ऐसा हुआ। ऐसे अप्रतिबुद्ध योग्य (पात्र) लिये हैं। आहाहा! भगवान! तू भी लोकालोक को जाननेवाला हो जा। आहाहा! ऐसी तो बात दो-तीन जगह है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में है, बन्ध अधिकार में है, परमात्मप्रकाश शास्त्र में भी यह बात है। सर्व जीव मन-वचन-काया से छूटकर; करना-कराना-अनुमोदन विकल्प है, उसे छोड़कर सब भगवान हो जाओ। प्रभु! परमात्मा हो जाओ। इस संसार के जन्म-मरण तुझे कलंक है, नाथ! आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, **अन्तरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उन्हें दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक**

**हैं**। किसे? प्राप्त करनेवाले को नहीं। जो समझानेवाला धर्मी है, वह समकिती है। दर्शन-मोह के क्षयादिक हुए हैं। उसकी वाणी इसने सुनी और अन्दर का अभिप्राय पकड़ा तो इस कारण से उनको अन्तरंग हेतु कहा गया है। आहाहा! इन दो लाईनों का ऐसा अर्थ है। अब इसमें पढ़े कौन और विचारे कौन? आहाहा! दुनिया में अज्ञान चलता आता है। अकस्मात् मृत्यु आ जाती है। इसे कहीं मृत्यु पहले कहने आती है कि मैं अब आती हूँ। देह छूटने का अवसर, आती हूँ—ऐसा कहे? आहाहा! देह छूटने के समय... एकदम। वह छूटी हुई ही है। एक कहाँ है। आत्मा भिन्न, यह (शरीर) भिन्न। अरे! अन्दर राग और द्वेष, पुण्य और पाप के भाव तथा प्रभु आत्मा दोनों भिन्न हैं। आहा!

जैसे धुली दाल में छिलके और दाल जैसे भिन्न हैं। धुली दाल श्वेत होती है। ऊपर का छिलका भिन्न है। इसी प्रकार भगवान आत्मा धुली दाल जैसा निर्मलानन्द है और पुण्य तथा पाप छिलके जैसे ऊपर हैं। आहाहा! ऐसी वीतराग की वाणी! तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में साक्षात् विराजते हैं। इन्द्र जाते हैं, सिंह, बाघ, और नाग भगवान की वाणी सुनने जाते हैं। आहाहा! सबेरे, दोपहर और शाम। आहाहा! और उनमें से कुछ समझकर मोक्ष चले जाते हैं। अभी यहाँ से तो मोक्ष नहीं है। सिद्धान्त में पाठ है कि छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ जीव मनुष्यक्षेत्र में से मुक्त होंगे। क्या कहा? यह मनुष्यक्षेत्र पैंतालीस लाख योजन में है। बाकी असंख्य द्वीप, समुद्र तिर्यंच से भरे हुए हैं। तिर्यंच / ढोर / पशु। असंख्य द्वीप समुद्र। यह ढाई द्वीप जो है, उस पैंतालीस लाख योजन में ही मनुष्य है। आहाहा! तो इन मनुष्य में सब आत्मा प्राप्त करो। आहाहा! सबको आत्मज्ञान हो जाओ। असंख्य तिर्यंच बाहर हैं परन्तु हैं समकिती। बाहर भी तिर्यंच सिंह, बाघ भी कोई समकिती हैं। असंख्य मिथ्यादृष्टि हैं तो कोई एक समकिती भी है, ऐसे असंख्य समकिती ढाई द्वीप के बाहर हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! ऐसी बात प्रभु! तुझे सुनने को मिली.. आहाहा! अब तुझे काम करना बाकी है, भाई! यह काम करना है। राग से भिन्न होकर भेदज्ञान करना। भेदज्ञान करने से राग का स्वामीपना उड़ जाता है और स्वरूप का स्वामीपना हो जाता है। इस प्रकार क्रम-क्रम से राग घटकर वीतराग हो जाता है। आहाहा! यह कहा, **दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयादिक हैं**। यह व्यवहार की बात की। अब निश्चय की (बात करते हैं)।

**अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को,...** क्या कहते हैं? कि भगवान

आत्मा अन्दर शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता स्वभाव के आश्रय से की, वह अभेद हुआ। पर के कारण नहीं, राग के कारण नहीं, निमित्त के कारण नहीं। उस **अभेद-अनुपचार...** उपचार भी नहीं। भेद पड़े ऐसा उपचार। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन उपचार हैं। सच्चे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीन उपचार हैं। तीन हुए तो यह उपचार है। एकरूप अभेद.. आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु सत् कायम रहनेवाला भगवान, चिदानन्द। चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्दरूप प्रभु के **अभेद-अनुपचार...** भेद भी नहीं।

**रत्नत्रयपरिणति...** यह निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा है। ऊपर तो सम्यग्दर्शन निश्चय ही था, परन्तु बाहर का व्यवहार बताया था। यह तो अन्तरंग अकेला अभेद... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन आत्मा, जिसमें दया, दान, व्रत के विकल्प की भी गन्ध नहीं, ऐसा निर्मलानन्द प्रभु।

**ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।**
**ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे।**
**श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो, श्री जिन वीर ने धर्म प्रकाशियो**
**प्रबल कषाय अभाव रे,**

इसमें राग और पुण्य का ठिकाना नहीं। आहाहा! पुण्य-पाप ये दो कषाय हैं। कष अर्थात् संसार और आय अर्थात् लाभ। कषाय शब्द में दो शब्द हैं। कषाय—कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। इन पुण्य-पाप के परिणाम से-कषाय से संसार के परिभ्रमण का लाभ मिलता है। आहा! वीर ने कषाय के अभाव को धर्म बताया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव, जैसे निर्मल स्फटिक वैसे निर्मलानन्द प्रभु अन्दर है। पुण्य-पाप का मैल ऊपर है। जैसे छिलका ऊपर होता है। तुम्हारे (हिन्दी में) फोतरा को क्या कहते हैं? छिलका। आहाहा! ऐसे एकरूप चैतन्य की दृष्टि-ज्ञान और रमणता एकरूप। तीन भी नहीं। तीन करे तो उपचार-भेद हो जाये।

**अभेद-अनुपचार...** अनुपचार अर्थात् तीन भेद नहीं। तीन का एकरूप। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता तीनों एकरूप हो जाये, उसे यहाँ अभेद-अनुपचार कहते हैं। आहाहा! **अभेद-अनुपचार...** क्या? रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रत्नत्रय। तीन रत्न। आहाहा! जिस रत्न के मोल में मुक्ति मिलती है। दुनिया

के रत्न में तो पैसा-धूल मिले। आहाहा! इन्दौर से सेठ आये थे न, कितने लाख का? कोई दस लाख का हार पहना हुआ। नीलमणी का। आहाहा! वे तो धूल के टुकड़े हैं। आहाहा! यह तो आत्मा चैतन्यरत्न... आहाहा! रत्नत्रय। सम्यग्दर्शन, शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव, प्रतीति और शुद्ध चैतन्य का ज्ञान.. शास्त्रज्ञान भी नहीं; और उस शुद्धचैतन्य की रमणता-चारित्र। चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना, अन्दर जमना। आहाहा! ऐसी जो **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणति...** अर्थात् पर्याय। तीन रत्नत्रयरूपी अवस्था। मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

**अभेद...** अर्थात् कि **अनुपचार...** क्या? यहाँ लाईन की न? अभेद क्या? कि अनुपचार। अनुपचार कौन? कि रत्नत्रयपरिणति। आहाहा! मार्ग अलग प्रकार का है, प्रभु! अनन्त-अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी आत्मज्ञान किया नहीं। साधु हुआ, त्यागी हुआ, श्रावक हुआ, स्त्री, पुत्र, हजारों रानियाँ छोड़ी परन्तु अन्तर में आत्मज्ञान बिना सब व्यर्थ गया। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने की चीज़ यह रत्नत्रय परिणति है। इसके बिना सब शून्य है। आहाहा!

रत्नत्रयपरिणति-पर्याय। परिणति अर्थात् अवस्था। निश्चय, अभेद। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन का भेद नहीं। तीनों का एकरूप, ऐसी **रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आहाहा! टाँकी से उकेरकर जैसे अन्दर से मूर्ति निकाले, वैसे प्रभु अन्दर में राग के टंकण निकालकर अन्तर से निर्मलानन्द टंकोत्कीर्ण प्रभु निकला। आहाहा! ऐसा **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक...** जाननस्वभाव। जिसका अकेला जाननस्वभाव, प्रज्ञास्वभाव। प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप भगवान। जानन और आनन्दरूप जिसका स्वरूप अन्दर है। ऐसा **ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आहाहा! निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अभेद कहे, अनुपचार कहे और भेद नहीं। अब इन तीन में एक। ये तीन नहीं। अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ अन्दर है, उसमें दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता हुई। तीनों की अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के साथ तीनों का एकत्व आत्मा के साथ हुआ। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात है। कथा-वार्ता होवे तो कुछ बैठे (समझ में आये), किसी का ऐसा कर दे, दया पाले, पैसा दे, भूखे को आहार देना, प्यासे को पानी देना, रोगी को दवा देना, मकान न हो उसे स्थल दे तो समझ में तो आये। क्या दे? बापू! एक रजकण भी

आत्मा दे नहीं सकता, ले नहीं सकता। आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य को कभी छूता भी नहीं। एक शरीर को आत्मा स्पर्श नहीं करता, आत्मा अन्दर अत्यन्त भिन्न है। अरे रे! कभी शरीर को स्पर्श नहीं किया तो आहार-पानी रोटी, स्त्री, कुटुम्ब को ( स्पर्श करे, ऐसा नहीं है)। भगवान! भगवान का पुकार है कि भगवान! तू एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को कभी स्पर्श नहीं किया है। आहाहा! अरे रे! ऐसी वाणी सुनने को मिले नहीं, वह कब समझे और कब काल निकाले? आहाहा!

कहते हैं कि देखो! तीन रत्नत्रयपरिणति कही। तीन कही न? अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। तीन कही परन्तु वस्तु एक है। द्रव्य एक ज्ञायक है। आहाहा! **ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** ऐसा निज परमतत्त्व भगवान अन्दर ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसके अन्तर की श्रद्धा द्वारा, **तद्ज्ञानमात्र ( उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप )...** शास्त्रज्ञान भी नहीं। वह तो परवस्तु है। अन्तर ज्ञानस्वरूप। जैसे शक्कर में मीठास और सफेदाई भरी है, जैसे अग्नि में उष्णता है; वैसे भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द भरे हैं। अरे रे! आहाहा! इस आनन्द और ज्ञान की एकता **निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा, तद्ज्ञानमात्र ( उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप ) ऐसे अन्तर्मुख परमबोध द्वारा...** अन्तर्मुख परमज्ञान द्वारा। आहाहा! दो बोल लिये। दो बोल कौन से? निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा और तद्ज्ञानमात्र अन्तर्मुख परमबोध द्वारा—श्रद्धा और ज्ञान दो लिये।

**और उसरूप से ( अर्थात् निज परमतत्त्वरूप से ) अविचलरूप से स्थित होनेरूप...** और चलित नहीं, ऐसे अन्दर स्वरूप में स्थिर हो। समकितसहित, ज्ञानसहित स्थित हो, उसका नाम अविचल, स्थित अर्थात् चारित्र। है? **अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र...** स्वाभाविक चारित्र। आहाहा! उसके **द्वारा अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा एकरूप ज्ञायक द्वारा सिद्धपद की पर्याय, परमात्मा की पर्याय उत्पन्न होती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-५९, श्लोक-७५, गाथा-५१-५५, शनिवार, श्रावण शुक्ल १२, दिनांक ०६-०९-१९८०

नियमसार, फिर से अन्तिम पेराग्राफ लेते हैं। आत्मा को मुक्ति-मोक्ष कैसे हो? मोक्ष कैसे हो, यह बात चलती है। सूक्ष्म बात है, भगवान! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय -परिणतिवाले...** कहो, यह घर में कभी पढ़ा है? ब्याज से पैसा घुमावे। पुस्तक तो है न?

**मुमुक्षु :** पढ़ा परन्तु समझ में नहीं आया?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परन्तु पढ़ा नहीं। पहले पढ़े, फिर समझे, न समझे-वह बाद की बात। आहाहा! पाँच-सात करोड़ रुपये और पैसे। अब उस धूल में... पाँच-छह करोड़ रुपये। धूल-धूल। ऐसे सब कितने ही देखे हैं। यहाँ तो कहते हैं कि मुक्ति किसकी होती है? भाई को बताओ।

**अभेद-अनुपचार-रत्नत्रयपरिणतिवाले...** क्या कहते हैं? आत्मा अनन्त आनन्द, ज्ञानस्वरूपी जो अभेदवस्तु है, वह अभेद अर्थात् एकरूप वस्तु है। वह अनुपचार है। व्यवहार नहीं, निश्चय। अभेद अर्थात् कि भेद नहीं और अनुपचार अर्थात् निश्चय। आहाहा! आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय स्वरूप प्रभु, अनन्त गुण का पिण्ड, उसका **अभेद-अनुपचार...** अर्थात् निश्चय। **रत्नत्रयपरिणतिवाले...** जिसे सच्चा निश्चयरत्नत्रय—सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र प्रगट हुए हैं, उस जीव को। भाषा ऐसी है। भगवान की सैद्धान्तिक भाषा संक्षिप्त है। आहाहा!

अभेद चैतन्यस्वरूप में राग-द्वेष, पुण्य-पाप तो नहीं परन्तु उसमें गुण-गुणी भेद भी नहीं। आहाहा! गुणी आत्मा और आनन्द, ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त गुण, यह भेद भी दृष्टि में नहीं लेना। दृष्टि में अभेद एकरूप लेना। अनुपचार अर्थात् निश्चय। उपचार नहीं अर्थात् निश्चय। आहाहा! **अभेद-अनुपचार-रत्नत्रय...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह रत्नत्रय। तीन रत्न। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। निश्चय तीन रत्न। आहाहा! वह **रत्नत्रयपरिणतिवाले...** उसकी परिणति अर्थात् पर्याय। यह रत्नत्रय है, वह पर्याय है,

उसका विषय है, वह अभेद अनुपचार है। त्रिकाली वस्तु भगवान आत्मा अखण्ड अभेद अनन्त गुण का पिण्ड, वह अभेद अनुपचार अर्थात् निश्चय, ऐसी रत्नत्रयपरिणति, जो स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र उत्पन्न हुए, जो निर्विकल्प आनन्दसहित रत्नत्रय उत्पन्न होता है, उस रत्नत्रय परिणतिवाले जीव को मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

**टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** आहाहा! जो भगवान आत्मा टंकोत्कीर्ण शाश्वत। शाश्वत एकरूप जिसका स्वभाव है। अनन्त गुण हैं, परन्तु उसका स्वरूप एकरूप स्वभाव है। द्रव्यरूप से, तत्त्वरूप से एकरूप स्वभाव है। जैसे शक्कर में गलपण और मिठास आदि है, तथापि शक्कररूप से एक है। इसी प्रकार आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण हैं परन्तु वस्तुरूप से एक है। आहाहा! ऐसा उपदेश! उस **रत्नत्रयपरिणतिवाले जीव को, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** टंकोत्कीर्ण अर्थात् शाश्वत्। एक ज्ञायक। जानन.. जानन.. जानन.. जाननेवाला.. जाननेवाला.. ज्ञायक जिसका भगवान आत्मा का स्वभाव। आहाहा!

**ज्ञायक जिसका एक स्वभाव है...** जानन एक ही स्वभाव है। अनन्त गुण हैं परन्तु सबमें एकरूप ज्ञायक एक स्वभाव है। आहाहा! है? **टंकोत्कीर्ण ज्ञायक जिसका...** अर्थात् आत्मा का। **एक स्वभाव है—ऐसे निज परमतत्त्व की श्रद्धा द्वारा,...** ऐसा प्रभु आत्मा, निज—अपनी, परमतत्त्व की श्रद्धा। वह परमतत्त्व ज्ञायकस्वरूप, अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति का सागर, परन्तु एकरूप वस्तु, उस तत्त्व की श्रद्धा द्वारा। **ऐसे निज परमतत्त्व...** ऐसा जो ज्ञायक, उसकी **श्रद्धा द्वारा,...** तीन कहेंगे। श्रद्धा द्वारा, ज्ञान द्वारा, चारित्र द्वारा तीनों एक होकर मुक्ति होगी, तब सिद्धपद होगा। आहाहा!

**तद्ज्ञानमात्र ( उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप )...** स्वरूप ज्ञायक भगवान-जानन-देखन चैतन्यसूर्य, चैतन्यचन्द्र, चैतन्य प्रकाश का पूर, उसका ज्ञान। उसका ज्ञान... आहाहा! भाषा भी कठिन। प्रभु का मार्ग, जिनेश्वरदेव का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! **( उस निज परमतत्त्व के ज्ञानमात्रस्वरूप )...** परमतत्त्व जो भगवान आत्मा, उसका ज्ञान। शास्त्रज्ञान और दूसरे ज्ञान यहाँ काम नहीं करते। आहाहा! मोक्ष के उपाय में तो एक चैतन्य ज्ञायकभाव का ज्ञान। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है जरा। सुजानमलजी! जिसके अभी कान में

पड़ा न हो कि यह चीज़ क्या है ? अरे रे ! उसे कब समझना और कब करना ? अनन्त काल से भटकता है। उसे इस द्वारा ही मुक्ति होगी; दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इसलिए श्रद्धामात्र और उस परमतत्त्व की **तद्ज्ञानमात्र...** तद्ज्ञानमात्र अर्थात् अकेला चैतन्यमूर्ति का ही ज्ञान। दूसरा कुछ नहीं। तद्ज्ञानमात्र—अर्थात् ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा पूर्णानन्द स्वरूप, तदज्ञानमात्र - उसका ज्ञान। यह दूसरा बोल हुआ। पहले समकित - श्रद्धा कहा, यह ज्ञान कहा और उस **( निज परमतत्त्वरूप से ) अविचलरूप से...** वह परमतत्त्व भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का गंज प्रभु ! ज्ञान और आनन्द का महापर्वत अरूपी प्रभु अन्दर है। आहाहा ! उसमें **अविचलरूप से स्थित...** चलित न हो, उस प्रकार से स्थित, वह चारित्र है। चारित्र कहीं पंच महाव्रत और दया, दान, व्रत, भक्ति, वह कोई चारित्र नहीं है। वे तो सब राग और विकल्प का जाल है। आहाहा ! क्या कहा ?

**अविचलरूप से स्थित होनेरूप सहजचारित्र द्वारा...** स्वाभाविक चारित्र द्वारा। स्वाभाविक चारित्र अर्थात् अन्दर आनन्दस्वरूप, ज्ञान, आनन्दस्वरूप की श्रद्धा, त्रिकाली आनन्दस्वरूप में रमणता। आहाहा ! ऐसा महँगा, बापू ! लोगों को पहुँचना ( कठिन लगता है)। उसका ज्ञान, उसका अविचल चारित्र मात्र **सहजचारित्र द्वारा...** है ? स्वाभाविक चारित्र द्वारा। **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** पहले कभी नहीं हुई। सिद्धपद कभी नहीं हुआ। इसके द्वारा, सिद्धपद पूर्व में नहीं हुआ ऐसा (पद) प्राप्त होता है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा एकरूप ज्ञायक, शुद्ध चैतन्यज्योत, उस एक की श्रद्धा-समकित और उसका ज्ञान और उसमें अविचलरूप से-चलित न हो, ऐसी स्थिरता, इन तीन से अभूतपूर्व—पूर्व में कभी सिद्धि हुई नहीं (ऐसी)—इन तीन से सिद्धि होती है। आहाहा ! समझ में आया ? भाषा तो सादी है, प्रभु ! भाव तो जो हो, वह है। क्या हो ? तीन लोक के नाथ की बात है। सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा की वाणी में यह आया है। वह वाणी सन्तों ने स्वयं.. शास्त्र की रचना की है।

कहते हैं कि अभूतपूर्व सिद्धपर्याय। सिद्ध भगवान जो आत्मा अभूत—पूर्व में कभी दशा हुई नहीं। अनन्त काल में अनन्त भव नरक और निगोद के किये। चींटी, कौआ, कुत्ता, सूकर और... आहाहा ! ऐसे अनन्त-अनन्त भव में कभी एक समय भी सिद्धपद प्राप्त नहीं हुआ। आहाहा ! इन सबका नाश करके अपने आनन्दस्वरूप भगवान की श्रद्धा, ज्ञान और

अविचल चारित्र द्वारा अभूतपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी नहीं हुई, ऐसी सिद्धि अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है। आहाहा! अरे रे! ऐसा सूक्ष्म।

इसमें रुपया-वुपैया क्या काम करते होंगे? ....भाई! यह सब पैसेवाले करोड़पति हैं। धूल-धूलपति। उसी-उसी में रुकते हैं। अरे! आज अभी मलूपचन्दभाई का सुना न! चन्दुभाई के बड़े बापू। आहाहा! उम्र कितनी थी? ८० वर्ष। दुर्बल / डगमगाता शरीर। बड़े लड़के के पास पाँच करोड़ रुपये। स्वीट्जरलैण्ड। यहाँ मुम्बई में पूनमचन्द के पास छह करोड़ रुपये। दूसरे दो लड़के मुम्बई, उस एक के पास पन्द्रह-पन्द्रह लाख होंगे। वे अभी बीमार पड़े हैं... पड़ गयी है और रोते हैं। आहाहा! यह संसार की दशा है। कोई शरणभूत नहीं है। शरणभूत अन्दर भगवान है। आहाहा! बहादुरभाई! यह बात है, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो बहुत वर्ष देखे। ९१ वर्ष हुए। १८ वर्ष की उम्र से तो सब दुनिया देखते आये हैं। व्यापार... बड़ा-बड़ा व्यापार किया है। मुम्बई, सूरत माल लेने जाते थे। सब बहुत देखा है। धूल में कुछ नहीं मिलता। आहाहा!

यह प्रभु अन्दर देह में विराजता चैतन्य रत्न... आहाहा! उस चैतन्य रत्न की ज्ञायकपने की एकरूपी श्रद्धा। गुण-गुणी दो भेद नहीं। एकरूप चैतन्य की अन्दर अनुभव में प्रतीति और एकरूप से उसका ज्ञान। अविचलरूपी स्वरूप में चारित्र / रमणता, अविचलरूपी स्थिति। आहाहा! उस चारित्र द्वारा **अभूतपूर्व सिद्धपर्याय होती है।** वहाँ तक तो कल आया था। कल यहाँ तक आया था। यह तो जरा कठिन था, इसलिए फिर से लिया है। आहाहा! यहाँ तो सैकड़ों बार वाँचन हो गया है। ६६ वर्ष दीक्षा लिये हो गये और दुकान में भी १८ वर्ष की उम्र से मैं तो शास्त्र पढ़ता था। दुकान घर की-पिताजी की, उसमें शास्त्र पढ़ता था। स्थानकवासी के। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगणांग, अध्यात्म कल्पद्रुम इत्यादि। आहाहा! परन्तु यह चीज़ कोई अलग। समयसार जहाँ (संवत्) १९७८ के वर्ष में मिला, तब मैंने बात बाहर प्रसिद्ध की कि शरीररहित होना हो तो यह चीज़ है। सिद्धपद प्राप्त करना हो तो यह चीज़ है। आहाहा! है? अभूतपूर्व। भभूतमल! यह अभूतपूर्व कहते हैं। आहाहा!

अभूत अर्थात् ***अभूतपूर्व=पहले कभी न हुआ हो; अपूर्व।*** **जो परमजिनयोगीश्वर...** कहते हैं कि वह किसे होती है? कि **परमजिनयोगीश्वर...** वापस। आहाहा! परम वीतरागी

दशा जिन्हें प्रगट हुई है। आत्मा में से पूर्ण वीतरागदशा प्रगट हुई है, ऐसे जिन, वे भी परम उत्कृष्ट। आहाहा! ऐसे परम जिन योगीश्वर। ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र को तो प्राप्त हैं। आहाहा! नग्न मुनि दिगम्बर, जंगल में बसनेवाले। प्रभु के बाद फिर पाँच सौ वर्ष में दिगम्बर में से यह श्वेताम्बर निकले हैं और फिर पाँच सौ वर्ष पहले इन श्वेताम्बर में से स्थानकवासी निकले हैं और स्थानकवासी में से वह तुलसी तेरापन्थी। तुलसी है न तेरापन्थी? खबर है। यहाँ आया था। अनादि सनातन यह सत्यधर्म जो वीतराग का, वह यह है। वे परमजिनयोगीश्वर। आहाहा! परम वीतरागी योगी अर्थात् योग-स्वरूप में जुड़ान। योगी अर्थात् वे बाबा नहीं। योग-जुड़ान। आहाहा! तस्सुत्तरी में आता है। ...तीन शल्यरहित। मिथ्यात्व, माया और निदान तीन शल्यरहित। अन्दर की रमणता। आहाहा! कभी सामायिक की है या नहीं? उसमें आता है न तस्सुत्तरी? उसमें प्रायश्चित्त करणेणं, विसोहि करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं कम्माणं। (वह तो) साधारण बात है। यह तो अलौकिक बातें हैं। आहाहा!

अन्तर में जिनयोगीश्वर निश्चय को प्राप्त हुए हैं। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द। यह जो विषयों के आनन्द हैं, पैसा, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के भोग का आनन्द है, वह तो जहर का प्याला है। आहाहा! समझ में आया? यह विषयानन्द, पैसानन्द, भोगानन्द यह सब आनन्द मानते हैं, वे तो जहर का प्याला है। आहाहा! जहर.. जहर.. है। उससे रहित भगवान **परमजिनयोगीश्वर पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** पहले एकदम निश्चय पूर्ण नहीं होता। निश्चय तो है, परन्तु पूर्ण निश्चय नहीं होता। **पहले पापक्रिया से निवृत्तिरूप व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** तब आत्मा का ज्ञान और दर्शन-चारित्रसहित अन्तर में पापक्रिया से निवृत्तिरूप पंच महाव्रत के परिणाम होते हैं। आहाहा! **व्यवहारनय के चारित्र में होते हैं,...** वह व्यवहारनय है। वह पुण्य-बन्ध का कारण है। निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! व्यवहार आता है, परन्तु वह पुण्यबन्ध का है।

**उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण होता है।** महाव्रतादि, निश्चय-सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित पाप की निवृत्तिरूप महाव्रत, **उन्हें वास्तव में व्यवहारनयगोचर तपश्चरण...** अर्थात् तपस्या। वह व्यवहार तपस्या है, व्यवहारचारित्र है, पुण्यबन्ध का

कारण है। आहाहा! होता है, पहले आता है। **सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;...** वास्तविक तप तो यह है। यथार्थ मोक्ष का मार्ग (यह है)। यह अपवास करना... वह तो सब लंघन है। उपवास-उप अर्थात् आत्मा में समीपता। अतीन्द्रिय आनन्द में वास। समीपता अन्दर बसना, उसका नाम उपवास है। वह आत्मा के भान बिना के सब अप-वास है। अप अर्थात् बुरा वास है। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात! अनन्त काल भटकते हुआ, प्रभु! वास्तविक तत्त्व को प्राप्त करने की दरकार भी नहीं की। सुनने मिलना कठिन। मिलने के बाद इस बात में प्रयत्न से प्राप्ति करना, वह की नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं आहाहा! उस सहज निश्चयनयस्वरूप। वे पंच महाव्रतादि के परिणाम तो राग है। होते हैं, परन्तु अन्दर निश्चय जो है-सहज निश्चयनयस्वरूप। स्वाभाविक निश्चयनय, आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसका नाम निश्चय सत्यचारित्र कहा जाता है। आहाहा! अरे रे! बात में बहुत अन्तर है। वीतराग त्रिलोकनाथ की कथनी-वाणी की अलौकिकता है। वे कहते हैं कि निश्चयचारित्रसहित उसे व्यवहार होता है। सहज स्वाभाविक निश्चयनयस्वरूप परम स्वभावरूप। परमस्वभावस्वरूप परमस्वभावशान्त वीतरागस्वरूप **परमात्मा में प्रतपन,...** ऐसे जो परमात्मा, आत्मा अन्दर शुद्धचैतन्यघन है, उसमें रहना, वह तप है। है? **प्रतपन, वह तप है;...** आहाहा! यह तो हजारों वर्ष पहले के शास्त्र हैं। दो हजार वर्ष पहले के मूल पाठ हैं, यह टीका ९०० वर्ष पहले की है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने टीका बनायी। मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्यदेव का है।

सहज स्वाभाविक निश्चयनयस्वरूप परमस्वभावस्वरूप। परमस्वभावस्वरूप वीतरागमूर्ति आत्मा। आहाहा! उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ वीतरागस्वभाव। वीतरागस्वरूप आत्मा के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ परम वीतरागस्वरूप परमात्मा में। ऐसा जो त्रिकाली परमात्मा अन्दर, ध्रुव, उसमें **प्रतपन...** प्र—विशेष, तपन—एकाग्र, लीनता। वह तप है। उसका नाम भगवान तप कहते हैं। बाकी तो सब लंघन है। ये सब वर्षीतप को करते हैं न? ऐ.. आहाहा! अहमदाबाद में जेसंगभाई थे... जेसंग उजमसी, बड़ी मिल के मालिक, यहाँ भावनगर मिल में। उनका लड़का मंगलभाई था। उसकी बहू ने वर्षीतप किये थे। पश्चात् बाद में पारणे में पिचहत्तर हजार रुपये खर्च किये थे। गृहस्थ व्यक्ति, करोड़ रुपये। मंगलभाई यहाँ सुनने आते थे। भावनगर आवे, इसलिए यहाँ आवे परन्तु इस बात को कुछ

समझ नहीं सके। उनकी बहू, स्वयं मर गये पश्चात् उनकी बहू ने वर्षीतप किया। वह बड़ी रेल... क्या कहलाती है? स्पेशल, अहमदाबाद से पालीताणा। पिचहत्तर हजार रुपये खर्च किये। वे मानो कि धर्म हो जायेगा। वर्षीतप करके पिहत्तर हजार खर्च किये।

अरे! भाई! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि **सहजनिश्चयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा...** परमस्वभावस्वरूप परमात्मा-आत्मा। परम त्रिकाली ज्ञान आनन्द आदि स्वरूप में प्रतपन। प्र-विशेष, तपन-स्थिर, **वह तप है;...** उस तप से मुक्ति होती है। उस तप से निर्जरा और संवर होते हैं। आहाहा! है या नहीं? **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप...** निज स्वरूप में अविचल-चलित न हो, ऐसी स्थितिरूप। **सहज निश्चयचारित्र...** स्वभाविक-सच्चा-सत्यचारित्र **इस तप से होता है।** उस तप से सच्चा चारित्र होता है। आहाहा! अरे रे! सुनने को भी मिलता नहीं। अन्दर है या नहीं? घर की बहियाँ प्रतिदिन देखता है। नाम-फाम, उधार, यह देखने में फुर्सत नहीं मिलती। आहाहा! और देखने जाये तो झट जँचता नहीं। सत् समागम बिना कठिन बात, भगवान! मार्ग प्रभु! तेरा कठिन है परन्तु उसका फल भी अलौकिक सिद्ध है न? आहाहा!

परम निश्चय यहाँ चारित्र कहा **अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** ऊपर तप कहा है न? **परमात्मा में प्रतपन, वह तप है;...** परम स्वरूप भगवान आत्मा में अन्दर में तप। उस **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज निश्चयचारित्र इस तप से होता है।** आहाहा! पहले तो अभी समझने में कठिन पड़े। क्या हो? जिन्दगी चली जा रही है। मरण के समीप हो जाता है। एक दिन आयेगा और देह छूट जायेगी। इसका आत्मा तो अनादि-अनन्त है। इसने क्या किया? यह तत्त्व निश्चय यदि यथार्थ दृष्टि -ज्ञान आदि नहीं किया तो जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। आहाहा! करोड़ों रुपये का दान किया हो, गोशाला में करोड़ों रुपये खर्च किये हों... आहाहा! दया, दान में करोड़ों रुपये खर्च किये हों तो उसमें कोई धर्म नहीं है। आहाहा! अभिमान छोड़कर राग की मन्दता करे, मैं करता हूँ, मैं देता हूँ - ऐसा अभिमान छोड़े तो शुभभाव होता है। पुण्य-बन्धन होता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** .....विचारता हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्तापना माने तो मिथ्यात्व के साथ अनन्त संसार है। मैंने किया,

मैंने दिया, यह पैसा मेरी चीज़ है, पैसा तो धूल है। तू तो चैतन्य प्रभु है। चैतन्य की धूल? आहाहा! यह पैसा मेरा और मैंने खर्च किया। आहाहा! यह तो मिथ्यादृष्टि की कर्ताबुद्धि है। आहाहा! कठिन काम है, प्रभु! उसका फल भी ऐसा है न? अनन्त संसार का अन्त आ जाये और 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में...' आहाहा! मोक्ष, उसका यह कारण 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन-ज्ञान अनन्त सहित जो।' ऐसी सिद्धदशा की प्राप्ति, ऐसी तपस्या से और ऐसे चारित्र से होती है। आहाहा!

**इसी प्रकार एकत्वसप्तति में ( श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दि पंच - विंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि**—आधार दिया है।

**दर्शनं निश्चयः पुन्सि बोधस्तद्बोध इष्यते।**
**स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः॥**

ऊपर श्लोक है, नीचे श्लोकार्थ। **आत्मा का निश्चय, वह ( सम्यग )दर्शन है,...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह कोई समकित नहीं है। वह तो राग है। **आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,...** भगवान पूर्णानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द। सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का खजाना-भण्डार, प्रभु का दर्शन, उसकी प्रतीति, उसके सन्मुख होकर ज्ञान में-ख्याल में लेकर उसकी प्रतीति, उसका नाम दर्शन, उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! कितनी शर्तें? ऊपर शर्तें रखी हैं।

**आत्मा का निश्चय, वह दर्शन है,...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय ज्ञान से भरपूर भरा है। जैसे शक्कर में मिठास भरी है, वैसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। उस अतीन्द्रिय आनन्द सन्मुख होकर श्रद्धा हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उसका नाम दर्शन। **आत्मा का बोध, वह ज्ञान है,...** शास्त्र के ज्ञान आदि नहीं। वे तो बाहर की बातें हैं। आत्मा का बोध। भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका ज्ञान, उसे बोध अर्थात् ज्ञान कहते हैं। आहाहा!

और **आत्मा में ही स्थिति, वह चारित्र है...** चारित्र कोई बाहर की चीज़ क्रियाकाण्ड नहीं है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु में स्थिति / स्थिरता, वह आनन्द में रमणता, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! एक-एक व्याख्या अलग है। **ऐसा योग ( अर्थात् इन**

**तीनों की एकता )...** इन तीन की एकता। आहाहा! क्या कहा? आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, अनुभव। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु, सच्चिदानन्द अनाकुल शान्ति का रसकन्द है, उसका अनुभव होकर प्रतीति होना, ज्ञान होकर प्रतीति होना, वह सम्यग्दर्शन और उसका ज्ञान होना, वह ज्ञान है। आहाहा! आत्मा का बोध, वह ज्ञान है और **आत्मा में ही स्थिति...** आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! आत्मा में ही स्थिति। 'ही' शब्द है। आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ सागर है। उस आत्मा में अन्दर स्थिति होना, वह चारित्र है। आहाहा! **एकत्वसप्ततति** पद्मनन्दि में से लिया है। बहुत संक्षिप्त!

यह शरीर तो जड़, मिट्टी, धूल है। अन्दर आठ कर्म हैं, वे भी मिट्टी धूल हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम पुण्य है और हिंसा, झूठ, कमाना, दुकान के धन्धे में ध्यान रखना, वह पाप है। आहाहा! इन पुण्य और पाप तथा अजीव से भिन्न, ऐसा जो भगवान आत्मा अन्दर, उस आत्मा के सन्मुख की प्रतीति और अनुभव होकर भान होना, और उसका ज्ञान, उसमें रमणता होना, वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ये तीन, इस विधि से इसकी मुक्ति और सिद्धि है। आहाहा! कठिन लगे, बापू! क्या हो? मार्ग तो यह है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पन्थ।' परमात्मा जिनेश्वरदेव अनन्त तीर्थंकर हुए, अनन्त होंगे, वर्तमान संख्यात तीर्थंकर, केवली वर्तते हैं। सबका एक कथन है, एक ही प्रकार यह है।

आत्मा अन्दर वस्तु भगवान चिदानन्द प्रभु अनन्त-अनन्त आनन्द के गुण का रचित प्रभु! गुण से भरपूर भगवान के सन्मुख के अनुभव की श्रद्धा, उसके अनुभव का ज्ञान और उसमें रमणता, यह चारित्र, ये तीनों मुक्ति का कारण है। मुक्ति का कारण ये तीन हैं। आहाहा! भाषा भी कठिन पड़े। क्या हो? प्रभु!

अनन्त काल हुआ परन्तु यह भूल गया। भूल गया, अनन्त काल। आहाहा! करोड़ों रुपये हों तो क्या करे? कहो, भभूतमलजी! अभी मलूपचन्दभाई का दृष्टान्त नहीं दिया? उसके दो लड़कों में एक के पास छह करोड़ और एक के पास पाँच करोड़ तथा दूसरे दो हैं, उनके पास दस-पन्द्रह लाख। चार लड़के हैं। हमारे चन्दुभाई बालब्रह्मचारी हैं, उनके दादा हैं। उनके बापू के बड़े भाई! अभी कहते हैं अहमदाबाद में अर्धपक्षघात (हुआ है।) चलते हुए गिर गये, दरार पड़ गयी है। आहाहा! कितनी बार फिर रुदन करते हैं, रोते हैं। क्या हो? प्रभु! जड़ की दशा में क्या हो? जड़ की अवस्था, प्रभु! जिस समय में जो

होनेवाली है, वह होगी; तुझसे रुकेगी नहीं। तुझसे सुधरेगी नहीं और तू माने कि मैं इसे सुधार दूँ। आहाहा!

सुख तो आत्मा में, आनन्द में अन्दर है। उसकी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। **ऐसा योग ( अर्थात् इन तीनों की एकता ) शिवपद का कारण है।** इन तीन की एकता ही मोक्ष का कारण है। शिवपद अर्थात् मोक्ष। नमोत्थुणं में आता है। ..नमोत्थुणं में नहीं आता? सामायिक का पाठ। नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवन्ताणं.. उसमें अन्त में आता है। शिवमलय -मरुयमणंता.. शिव अर्थात्? वह शिवशंकर नहीं। शिव अर्थात् कल्याणस्वरूप। अन्तर शिव-कल्याणस्वरूप, वह है। आया न? आहाहा! शिवपद का कारण, कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा सिद्धपद। निरुपद्रव स्वरूप, जिसमें उपद्रव नहीं, अकेला आनन्द का सागर नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर; जैसे समुद्र में बाढ़ आती है, वैसे पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है। आहाहा! उसका नाम मुक्ति है, उसका नाम सिद्धपद है। आहाहा! बातें-बातें फेर (अन्तर) प्रभु! प्रभु का मार्ग ही अलग है। वीतराग जिनेश्वरदेव.. आहाहा! यह शिवपद यह कहते हैं। शिवपद का यह कारण है।

## श्लोक-७५

**और ( इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं ) —**

( मालिनी )

**जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,**
**चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।**
**अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,**
**सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च।।७५।।**

**इति सुकविजनपयोजमित्रपञ्चेन्द्रियप्रसरवर्जितगात्रमात्रपरिग्रहश्रीपद्मप्रभमलधारिदेव-विरचितायां नियमसारव्याख्यायां तात्पर्यवृत्तौ शुद्धभावाधिकारः तृतीयः श्रुतस्कन्धः।**

(हरिगीतिका)

**यह सहज ज्ञान तथा सहज दृष्टि सदा जयवन्त है।**
**इस तरह सहज विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है॥**
**जो पापपुञ्ज विहीन कर्दम पंक्ति से नित रहित है।**
**संस्थित सहज निज तत्त्व में वह चेतना जयवन्त है॥७५॥**

**श्लोकार्थः—सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी (सहज) यह दृष्टि सदा जयवन्त है, वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है; पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है।७५।**

**इस प्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य के समान है और पाँच इन्द्रियों के विस्ताररहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था—ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य -देवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) शुद्धभाव अधिकार नाम का तीसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

---

## श्लोक-७५ पर प्रवचन

---

**और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं)**—अब टीकाकार श्लोक कहते हैं।

**जयति सहज-बोधस्तादृशी दृष्टिरेषा,**
**चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।**
**अघकुलमलपङ्कानीकनिर्मुक्तमूर्तिः,**
**सहजपरमतत्त्वे सन्स्थिता चेतना च॥७५॥**

आहाहा! क्या कहते हैं? **सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** इसके दो अर्थ हैं। एक तो

भगवान अन्दर आत्मा, स्वाभाविक ज्ञान का पिण्ड प्रभु सदा जयवन्त है, परन्तु उसके अन्दर अनुभव की प्रतीति / सम्यक्त्व हुआ, वह भी जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सहजज्ञान...** त्रिकाली स्वभाव भगवान ज्ञान **सदा जयवन्त...** तीनों काल में जयवन्त। आहाहा! निगोद, प्याज और लहसुन में हो, तो भी प्रभु अन्दर आत्मा जो है, वह तो निर्मलानन्द है। उसकी पर्याय में, दशा में सब भूल है। पर्याय में, अवस्था में संसार है, उसकी चीज़ तो निर्मलानन्द त्रिकाल शुद्ध है। है?

**सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** आहाहा! कैसे जँचे? बाहर के अभिमान। हमने यह किया, हमने यह किया, हमने यह दुकान लगायी, फिर इतना कमाया, इतना कमाया। आहाहा! अफ्रीका में बहुत आमदनी है। छह हजार लोग अपने महाजन हैं। जामनगर के आसपास के गाँवों के छह हजार महाजन। सब बहुत पैसेवाले। हबशी लोगों का बहुत डर। आये थे सब, आये थे। हबशी लोगों का डर। कब मारेंगे? आहाहा! एक बात की थी न? कि तीन व्यक्तियों को घर में जाकर मार डाला। फिर तो उसका बाप आया, उसे मार डाला। चार को मार डाला। आहाहा! ये वीरचन्दभाई के भाई बैठे। इनके लड़के को भी मारा। मारकर असाध्य कर डाला। फिर चले गये। मानो मर गया इसलिए... आहाहा! हबशी लोग बहुत पापी मुसलमान। आहाहा! इसलिए पैसेवालों को बहुत डर। इस पैसे का सुख... आहाहा! हम उतरे थे, वह पन्द्रह लाख का मकान है। तीन पटी चारों ओर एक वण्डी, उसमें तार का एक पूरा भाग, तीसरा फिर तार के अन्दर का... इसलिए तीन पटी उकले तो अन्दर में गिर सके इतना डर। आहाहा! और करोड़पति। आहाहा! चालीस-चालीस लाख रुपये के कपड़े के धन्धे। पूरी दुकान कपड़े से भरी हो। घोड़ा लकड़ी का। आहाहा! दुनिया का यह सुख!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! **सहजज्ञान सदा जयवन्त है,...** वह सुख है। आहाहा! अन्तर में ज्ञानस्वभाव स्वाभाविक ज्ञान, यह शास्त्र पढ़कर और बाहर के एल.एल.बी. तथा एम.ए. एल.एल.बी. के पुंछड़े डिग्रियाँ वकील को होती है और एम.ए. (एम.बी.बी.एस.) की डिग्रियाँ डॉक्टर को होती हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि स्वाभाविक ज्ञान सदा जयवन्त। आत्मा का ज्ञान। भगवान आत्मा प्रज्ञास्वरूप, ज्ञानस्वरूप, जाननस्वरूप का पिण्ड, वह स्वाभाविक ज्ञान का पिण्ड जयवन्त वर्तता है। वह है तो जयवन्त, परन्तु यहाँ दृष्टि हुई है,

वह भी कहता है कि यह जयवन्त वर्तता है। जाने बिना जयवन्त वर्ते, यह किसे कहना? आहाहा! जो चीज़ जानने में आयी नहीं, वह चीज़ है, ऐसा कैसे माने? आहाहा! वह चीज़ जो है, भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु, उसका ज्ञान होता है कि यह चीज़ ज्ञान है, तो ज्ञान होता है उसे सच्चा ज्ञान कहते हैं। आहाहा! ऐसा सब महँगा। यहाँ तो यह चलता है, भाई! यहाँ पैंतालीस वर्ष, साढ़े पैंतालीस वर्ष हुए। यह तो जंगल था। यहाँ तो सर्वत्र भैंसा बैठते थे। आहाहा! तीन लोक के नाथ की ऐसी बात! साक्षात् भगवान सीमन्धर प्रभु विराजते हैं; कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, वहाँ से आकर अपने लिये यह (शास्त्र) बनाया था। आहाहा! यह शास्त्र स्वयं के लिये बनाया। दूसरे समयसार आदि तो उपदेशकरूप से है। यह तो अपने हित के लिये बनाया है। आहाहा!

कहते हैं कि **सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी ( सहज ) यह दृष्टि...** आहाहा! **सदा जयवन्त है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन भी सदा जयवन्त है। अन्तर में जो दर्शन सम्यक् है, वह तो त्रिकाली जयवन्त है, परन्तु पर्याय में भान हुआ, वह भी जयवन्त वर्तता है। उस पर्याय ने उसे माना, तब कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? **यह दृष्टि सदा जयवन्त है,...**

**वैसा ही ( सहज ) विशुद्ध चारित्र...** आहाहा! विशुद्ध चारित्र। स्वरूप ज्ञानानन्द में रमणता, वह चारित्र। चारित्र अर्थात् चरना, रमना, जमना। जैसे हरी घास को गोचरी गाय खाती है, वैसे अन्दर में आनन्द का सागर नाथ, उसे अन्तर अनुभव है, उस अन्दर से आनन्द की गोचरी करे। आहाहा! इसका नाम चारित्र है, ऐसी बात है प्रभु! बहुत फेरफार। दूसरे लोगों को जँचना कठिन पड़े।

**विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है;...** त्रिकाली तो जयवन्त है, परन्तु हमारी वर्तमान दशा भी जयवन्त वर्तती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनिराज की व्याख्या है। हमारे दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय में जयवन्त वर्तते हैं और उनका विषय तो जयवन्त वर्तता ही है। वह तो त्रिकाली है। आहाहा! बात-बात में अन्तर है। सब लोग नहीं कहते? 'आनन्द कहे परमाणन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मले एक त्रांबिया न तेर।' इसी प्रकार प्रभु कहते हैं कि मेरे और तेरे, बापू! अनादि से भटकता है, उसकी बात और मुझमें अन्तर है। बहुत सब बात में अन्तर है। आहाहा! दुनिया में ऐसा कहते हैं न, 'माणसे माणसे फेर, एक

लाखे न मले अने एक त्रांबिया न तेर।' ऐसी बात प्रभु की सुनना मिलना, मुश्किल पड़ती है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ कहते हैं **विशुद्ध चारित्र भी सदा.. चारित्र भी..** है न? अर्थात् ज्ञान भी है, दृष्टि भी है और तदुपरान्त चारित्र भी है। आहाहा! मुनिराज हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। दिगम्बर मुनि ९०० वर्ष पहले टीका रचनेवाले। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा की टीका रचनेवाले। **चारित्र भी सदा जयवन्त है; पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित...** आहाहा! पापसमूहरूपी मल। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। 'पाप को तो पाप सब कहे, परन्तु अनुभवी जीव पुण्य को पाप कहे।' आहाहा! योगीन्द्रदेव में आता है। 'पाप को पाप तो सब कहे, पुण्य को भी अनुभवीजन पाप कहे।' राग, दया, दान, व्रत वह पाप। आत्मा की शान्ति से विरुद्ध भाव, (वह पाप है)। आहाहा! **पापसमूहरूपी मल की अथवा कीचड़ को पंक्ति से रहित...** आहाहा! यह पुण्य और पाप राग की पंक्ति अनादि से ऐसे चलती है। अज्ञानी में यही अनादि से चलता है। पंक्ति। पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. पुण्य-पाप.. शुभ-अशुभ.. शुभ-अशुभ.. इस **पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है, ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित...** आहाहा! ऐसा सहज परमतत्त्व, स्वाभाविक आनन्द का नाथ प्रभु में संस्थित अर्थात् रहनेवाली **चेतना भी...** अनुभव। तदुपरान्त **चेतना भी सदा जयवन्त है।** जानन-देखन की चेतना भी सदा जयवन्त है और पर्याय में जानन-देखन आया, उससे ख्याल आया कि यह चेतन जयवन्त है तो पर्याय भी जयवन्त है। आहाहा! **सदा जयवन्त है।** लो, मांगलिक हो गया। कल समयसार लिया जायेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)